MP
1-5




卐 सत् सत् सोऽहं गुरु 卐 सोऽहं हंसः सद्गुरु शरणम् 卐 ॐ श्रीराम सत्यराम सोऽहं गुरु राम 卐

# श्रीकबीर-शान्तिसंदेश

ज्ञान चौंतिसादि खण्ड बीजक विशेषांक

वर्ष ६ अंक १-२-३



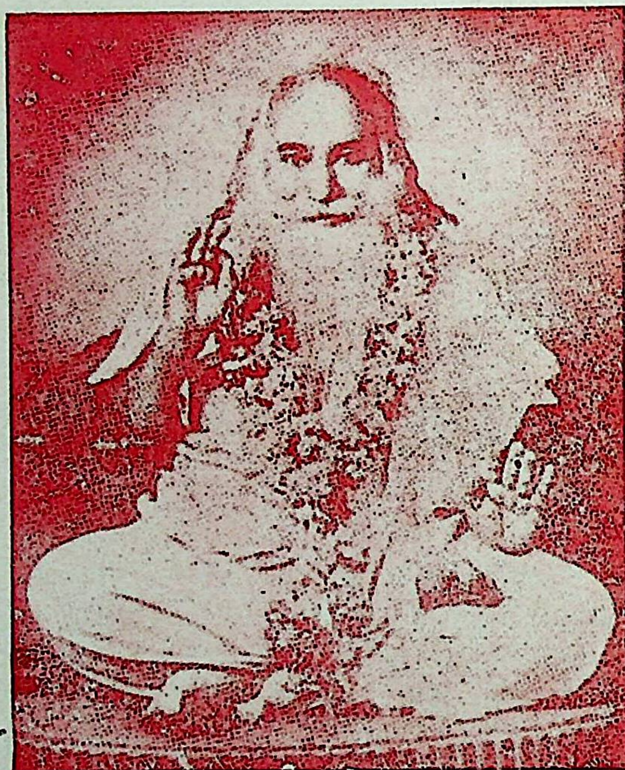
मोको कहाँ ढूंढ़े बंदे मैं तो तेरे पास में।

सद्गुरु कबीर

श्रीकबीर शान्ति संदेश के आद्य उद्भावक और श्रीकबीर कीर्तिमंदिर काशी संस्था के आद्य संस्थापक :—महन्त श्री शांतिदास जी गुरु श्री १०८ श्री पुरुषोत्तम दास जी महाराज साहब, श्रीकबीराश्रम, जामनगर [ सौराष्ट्र ]

संवत २०४० कबीराब्द ५८३ जनवरी, फरवरी, मार्च १९८४

यतीन्द्र वागीशं विगतरजसं शान्तिमनधम् सदानन्दं स्वामिन् ? सुरतपरकल्याणमनिशम् ।
दयागारस्वातं कमलदलनिर्लेपमनसम् नमामि श्यामोऽहं शमनभवदुखं निशदिनम् ।।



श्री कबीर शान्ति संदेश के आद्य उद्भावक परमात्मदेव सद्गुरु देव श्री १००८ महन्त शान्तिदास जी महाराज साहब गुरु श्री १००८ श्री पुरुषोत्तमदास जी महाराज साहब ।




卐 सत् सत् सोऽहं गुरु 卐 सोऽहं हंसः सद्गुरु शरणम् 卐 ॐ श्री राम सत्यराम सोहं गुरु राम 卐

# श्री कबीर - शान्ति संदेश

वर्ष ६ ] जनवरी, फरवरी, मार्च १९८३ कबीराब्द ५८३ [ अंक १, २, ३

## सद्गुरु कबीर 'बीजक' का ज्ञान चौंतीसा से हिंडोला खंड

### ज्ञान चौंतीसा

थो ओंकार आदि जो जाने,
लिषि कै मेटे ताहि सो माने।
थो ओंकार कहै सभ कोई,
जिन्हि यह लषा सो बिरला होई॥
काका कमल किरन महँ पावे,
ससि बिगसित संपुट नहिं आवे।
तहाँ कुसुम रंग जो पावे,
औगह गहि के गगन रहावे॥
षाषा चाहि षोरि मनावे;
षसमहिं छाँड़ि दहूँ दिशि धावे॥
षसमहिं छाँड़ि छिमा ह्वै रहिये,
होय न बीज अषे पद लहिये।
गागा गुरु के बचनहि मान,
दूसर सबद करो नहिं कान॥
तहाँ बिहँगम कबहुं न जाई,
औगह गहि के गगन रहाई।
घाघा घट बिनसे घट होई,
घट ही में घट राखु समोई॥
जो घट घटे घटहिं फिरि आवे,
घट ही महँ फिरि घटहिं समावे॥

नाना निरषत निसि दिन जाई,
निरषत नेन रहा रतनाई।
निमिष एक जो निरषे पावे,
ताहि निमिष मँह नेन छपावे॥
चाचा चित्र रच्यो बड़भारी,
चित्र छाँड़ि तैं चेतु चित्रकारी।
जिन्ह यह चित्र विचित्र उषेला,
चित्र छाँड़ि तैं चेतु चितेला॥
छाछा आहिं छत्रपति पासा,
छकि किन रहसि मेटि सभ आसा।
मैं तोहीं छिन छिन समुझावा,
षसम छाँड़ि कस आपु बँधावा।
जाजा ई तन जियतहिं जारो;
जोबन जारि जुगुति जो पारो॥
जो किछु जानि जानि परि जरे,
घटहिं जोति उजियारी करे।
झाझा अरुझि सरुझि कित जान,
हींडत ढूढ़त जाहि परान।
कोटि सुमेरु ढूँढ़ि फिरि आवे,
जो गढ़ गढ़े गढ़हिं सो पावे॥

नाना निगरह नेह करु, निरुवारो संदेहु।
नहीं देषि नहिं भाजिये, परम सयानप येहु॥
नहिं देषिये नहिं आपु भजाऊ,
जहाँ नहीं वहाँ तन मन लाऊ।
जहाँ नहीं वहाँ सभ किछु जानी,
जहाँ नहीं वहाँ ले पहिचानी॥
टाटा बिकट बाट मन माहीं,
षोलि कपाट महल मो जाहीं।
रही लटापटि जुटि तेहि माहीं,
होहिं अटल ते कबहुं न जाहीं॥
ठाठा ठौरि दूरि ठग नियरे,
नित कै निठुर कीन्ह मन घेरे।
जे ठग ठगे सभ लोग सयाना,
सो ठग चीन्हि ठौर पहिचाना॥
डाडा डर उपजे डर होई,
डरही मँह डर राषु समोई।
जो डर डरे डरहिं फिरि आवे,
डरहो मँह फिरि डरहि समावे॥
ढाढा ढूँढ़त हो कित जान,
हींडत ढूढ़त जाहि परान।
कोटि सुमेरु ढूँढ़ि फिरि आवे,
जिहि ढूँढा सो कबहूं न पावे॥
नाना दुई बसाये गाऊँ,
रे ना ढूढ़े तेरे नाऊँ।
मूये एक जाँय तजि घना,
मरे इत्यादिक तेके गना॥
ताता अति त्रियौ नहिं जाई,
तन त्रिभुवन मँह राषु छिपाई।
जो तन त्रिभुवन माँहि छिपावे,
तत्तहि मिले तत्त सो पावे॥
थाथा अति अथाह थाहि नहिं जाई
ईथिर ऊथिर नाहि रहाई।
थोर थोर थिर होहु रे भाई,
बिनु थंभे जस मंदिल थँभाई॥
दादा देषहु बिनसनिहारा,
जस देषहु तस करहु विचारा।
दसहुं दुआरे तारी लावे,
तब दयाल के दरसन पावे॥
धाधा अरध माँहि अँधियारी,
अरध छांड़ि ऊरध मन तारी।
अरध छाँड़ि ऊरध मन लावे,
आपा मेटि कै प्रेम बढ़ावे॥
चौथे वो नाना मँह जाई,
राम का गदहा हो षर षाई।
पापा पाप करैं सभ कोई,
पाप के करे धरम नहिं होई॥
पापा कहै सुनहु रे भाई,
हमरे सेवे किछुओ न पाई।
फाफा फल लागै बड़ दूरी,
चाषे सतगुरु देइ न तूरी॥
फाफा कहै सुनहु रे भाई,
सरग पताल की षबरि न पाई॥
बा बा बर बर कर सभ कोई,
बर बर करै काज नहिं होई।
बा बा बात कहै हरथाई,
फल का मरम न जानहु भाई॥
भाभा भभरि रहा भर पूरी,
भभरे ते है नियरे दूरी।
भा भा कहै सुनहु रे भाई,
भभरे आई भभरे जाई॥
मामा सेवै मरम न पाई,
हमरे सेवे मूल गँवाई।
माया मोह रहा जग पूरी,
माया मोहहि लषहु विसूरो॥
जा जा जगत रहा भर पूरी,
जगतहुं ते है जाना दूरी।
जा जा कहै सुनहु रे भाई,
हमरे सेवे जे जे पाई॥
रा रा रारि रहा अरुझाई,
राम कहै दुख दालिद जाई।
रा रा कहै सुनहु रे भाई,
सतगुरु पूछि कै सेवहि आई॥

लाला तुतरे बात जनाई,
तुतरे पा तुतरे परचाई।
अपने तुतर और को कहई,
एकै षेत दुनौ निरबहई॥
वा वा वह वह कह सभ कोई,
वह वह कहै काज नहिं होई।
वह तो कहै सुनै जो कोई,
सुरग पताल न देखै जोई॥
सा सा सर नहिं देखै कोई,
सर सीतलता ‘के होई।
सा सा कहै सुनहु रे भाई,
सुन्न समान चला जग जाई॥

षा षा षर षर कर सभ कोई;
षर षर करै काज नहिं होई।
षा षा कहै सुनहु रे भाई,
राम नाम ले जाहु पराई॥
सा सा सरा रच्यो बरियाई,
सर बेधे सब लोग तबाई।
सा सा के घर सुतगुन होई,
इतनी बात न जानै कोई॥
हा हा करत जीव सभ जाई,
छेव परे तब को समुझाई।
छेव परे केहु अंत न पावा,
कहहिं कबीर अगमन गोहरावा॥

## बिप्रमतीसी

सुनहु सबनि मिलि बिप्रमतीसी,
हरि बिनु बूड़ी नाव भरीसी।
ब्राह्मण होके ब्रह्म न जानै,
घर मँह जग्य प्रतिग्रह आनै।
जे सिरजा तेहि नहिं पहिचानै,
करम भरम ले बैठि बषानै।
ग्रहन अमावस और दुईजा,
सांती पांती प्रयोजन पूजा।
प्रेत, कनक मुष अंतर बासा,
आहुति सहित होम की आसा।
कुल उत्तिम जग माँहि कहावै,
फिरि फिरि मद्धिम करम करावै।
सुत दारा मिलि जूठो षाई,
हरि भगतन की छूति कराई॥
करम असौच उचिष्टा षाहीं,
गति भरिष्ट जमलोकहिं जाहीं।
नहाँ षोरि उत्तिम होय आवैं,
बिस्नु भगत देखे दुख पावै।
स्वारथ लागि रहै बेकाजा,
नाम लेत पावक जिमि डाझा।

राम क्रिस्न की छोड़िन आशा,
पढ़ि गुन भए किरितम के दासा।
करम पढ़ै करमहि के ध्यावै
जे पूछे तेहि करम दिढ़ावै।
निहकरमी की निंदा कीजे,
करम करे ताही चित दीजे॥
ऐसी भगति भगवंत की लावै;
हिरनाकुस को पंथ चलावै॥
देषहु सुमति केर परगासा,
बिनु अभि अंतर किरितिम दासा।
जाके पूजे पाप न ऊड़े,
नाम सुमिरनो भव मँह बूड़े॥
पाप पुन्य के हाथे पासा,
मारि जगत्र का कीन्हि बिनासा।
ई बहनी कुल बहनि कहावैं,
ई ग्रिह जारैं ऊ ग्रिह मारैं॥
बैठे ते घर साहु कहावैं,
भीतर भेद मन मुसहि लगावैं।
ऐसी बिधि सुर बिप्र भनिजे,
नाम लेत पंचासन दीजे॥

बूड़ि गए नहिं आपु सँभारा,
ऊँच नीच कहु काहि जोहारा।
ऊँच नीच है मद्धिम बानी,
एकै पवन एक है पानी॥
एकै मटिया एक कुंभारा,
एक सभनि का सिरजनि हारा।
एक चाक सभ चित्र बनाया,
नाद बिंद के मध्य समाया॥
ब्यापी एक सकल की जोती,
नाम धरे का कहिए भोती।

राछस करना देव कहावै,
बाद करैं गोपाल न पावै॥
हंस देह तजि न्यारा होई,
ताकर जाति कहै धौं कोई।
स्याह सफेद कि राता पियरा,
अबरन बरन कि ताता सियरा॥
हिन्दू तुरुक कि बूढ़ो बारा,
नारि पुरुष का करहु बिचारा।
कहिये काहि कहा नहिं माने,
दास कबीर सोई पै जाने॥

बहा है बहि जात है, कर गहै चहुँ ओर।
समुझाये समुझै नहीं, देहु धका दुई और॥

## कहरा

(१) कहरा

सहज ध्यान रहु सहज ध्यान रहु,
गुरु के वचन समाई हो।
मेली सिष्टि चराचर राखहु,
रहहु दिस्टि लवलाई हो॥
जस दुष देखि रहहु यह औसर,
अस सुष होई है पाये हो।
जो षुटुकार बेगि नहिं लागे,
ह्रिदय निवारहु कोहू हो॥
मुकुति की डोरि गाढ़ी जानि षेचहु,
तब बाझी बड़ रोहू हो।
मनुवहि कहहु रहहु मन मारे,
षिझवा षीझि न बोले हो॥
मानू मीत मितैयो न छोड़े,
कमऊ गाँठि न खोले हो।
भोगउ भोग भुगुति जनि भूलहु,
जोग जुगुति तन साधहु हो॥

जो यहि भाँति करहु मतवाली,
ता मत के चित बाँधहु हो।
नहिं तो ठाकुर है अति दारुन,
करि है चाल कुचाली हो।
बाँधि मारि डंड सभ लेहै,
छुटि है सब मतवाली हो॥
जब ही साँवत आनि पहूँचे,
पीठि साँटि भल टुटिहै हो।
ठाढ़े लोग कुटुम सभ देषे,
कहै काहु के न छुटि है हो॥
एक तो निहुरी पाँव परि बिनवे,
बिनती किये न माने हो।
अनचिन्ह रहे न कियेहु चिन्हारी,
सो कैसे पहिचाने हो॥
लीन्ह बुलाय बात नहिं पूछे,
केवट गर्ब तन बोले हो।
जे करि गाँठ सँमर किछु नाहीं,
से निरधन होय डोले हो।

जिन्हि सभ जुक्ति अगमन के राषिन,
धरिन मच्छ भरि डेहरी हो।
जे कर हाथ पाँव कछु नाहीं,
धरन लागू तेहि सोहरी हो॥
पेलना अछत पेलि चलु बौरे,
तीर तीर का टोवहु हो।
उथले रहहु परहु जनि गहिरे,
मति हाथहु की षोवहु हो॥
तरके घाम उपर की भुमरी,
छाँह कवहुं नहि पायहु हो।
ऐसनि जानि पसीझहुँ सीझहु,
कस न छतुरिया छायहु हो॥
जे किछु षेल कियहु सो कीयहुँ,
बहुरि षेल कस होई हो।
सासु ननद दोउ देत उलाहन,
रहहु लाज मुष गोई हो॥
गुर भौ ढील गौन भइ लचपचि,
कहा न मानेहु मोरा हो।
वाजी तुरकी कबहु न सावेहु,
चढ़ेउ काठ के घोरा हो॥
ताल झाँझ भल बाजत आवे,
कहरा सभ कोई नाचे हो।
जेहि रँग दुलह बियाहन आये,
दुलहिन तेहि रँग राचे हो॥
नौका अछत षेवै नहि जानहु,
कैसे लगवहुं तीरा हो।
कहँहि कवीर राम रस माते,
जोलहा दास. कवीरा हो॥

( २ ) कहरा

मत सुनु मानिक मत सुनु मानिक,
ह्रिदया बंद निवारहु हो।
अटपट कुम्हरा करे कुँभरैया,
चमरा गाँव न बाँचे हो॥
नित उठि कोरिया बेट भरतु है,
छिपिया आँगन नाचे हो।
नित उठि नौआ नाव चढ़तु है,
बेरहि बेरा वोरे हो॥
राउर को किछु षबरि न जानहुं,
कैसे के झगरा निबेरहु हो।
एक गाँव में पाँच तरुनि बसे,
जिहि मँह जेठ जेठानी हो॥
आपन आपन झगरा प्रगासिनि,
पिया सो प्रीत नसानी हो।
भैसिहि माँह रहत नित बकुला,
तिकुला ताकि न लीन्हा हो॥
गाइन माँहि बसेउ नहि कवहूं,
कैसे के पद पहचनबेउ हो।
पंथी पंथ पूछि नहि लीन्हों,
मूढ़हि मूढ़ गँवारा हो॥
घाट छाँड़ि कस औघट रेगहुं,
कैसे के लगवहुँ तीरा हो।
जतइत के धन हेरिन ललचिन,
कोदइत के मन दौरा हो॥
दुइ चकरी जनि दरर पसारहु,
तब पैहो ठिक ठौरा हो।
प्रेम बान एक सतगुरु दीन्हों
गाढ़ो तीर कमाना हो॥
दास कबीर कीन्ह यह कहरा,
महरा माँहि समाना हो।

( ३ ) कहरा

राम नाम को सेवहु बीरा,
दूरि नाहि दुरि आसा हो।
और देव का पूजहु बौरे,
ई सभ झूठी आसा हो॥
ऊपर उजर कहा भौ बौरे,
भीतर अजहु कारो हो।
तन के बिरध कहा भौ बौरे,
मनुवाँ अजहूं बारो हो॥
मुष के दाँत गये कहा बौरे,
भीतर दाँत लोहे के हो।
फिरि फिरि चना चबाउ विषय के,
काम क्रोध मद लोभ के हो॥
तन की सकल सत्या घटि गयऊ,
मनहि दिलासा दूनो हो।

कहँहि कबीर सुनहु हो संतो,
सकल सयानप ऊनी हो ॥

## ( ४ ) कहरा

ओढ़न मोरा राम नाम मैं,
रामहिं का बनिजारा हो ।
राम नाम का करहुं बनिजिया,
हरि मोरा हटवाई हो ॥
सहस नाम का करौं पसारा,
दिन दिन होत सवाई हो ।
जाके देव मैं नव पँचसेरवा,
ताके होत अढ़ाई हो ॥
कानी तराजू सेर तिनि पउवा,
डहकन ढोल बजाई हो ।
सेर पसेरी पूरा कइले,
पासंग कवहु न जाई हो ।
कहँहि कबीर सुनहु हो संतो,
जोर चला जहँड़ाई हो ॥

## ( ५ ) कहरा

राम नाम भजु राम नाम भजु,
चेति देषु मन मांही हो ।
लछ करोरि जोरि धन गाड़िन्हि,
चलत डोलावत बाँही हो ॥
दादा बाबा और परपाजा,
जिन्ह के ई भुँइ भाड़े हो ।
आंधर भये हियहु की फूटो,
तिन्ह काहे सभ छाँड़े हो ॥
ई संसार असार को धंधा,
अंत काल कोइ नाहीं हो ।
उपजत बिनसत बार न लागे,
जौं बादर की छाँही हो ॥
नाता गोता कुल कुटुम सभ,
इन्ह करि कौन बड़ाई हो ।
कहँहि कबीर एक राम भजे बिनु,
बूड़ी सभ चतुराई हो ॥

## ( ६ ) कहरा

राम नाम बिनु राम नाम बिनु,
मिथ्या जनम गँवाई हो ।
सेमर सेइ सुवा ज्यौं जहड़े,
ऊन परे पछिताई हो ॥
जैसे मदपि गाँठि अरथ दे,
घरहु की अकिल गँवाई हो ।
स्वादे वोद्र भरे धौं कैसे,
ओसैं प्यास न जाई हो ॥
दरवहीन जैसे पुरुषारथ,
मनही माँहि तवाँई हो ।
गाँठी रतन मरम नहिं जाने,
पारिष लीन्हा छोरी हो ।
कहँहि कवीर यह औसर बीते,
रतन न मिले बहोरी हो ॥

## ( ७ ) कहरा

रहहुं सँभारे राम विचारे,
कहता हौं जे पुकारे हो ।
मूँड़ मुड़ाये फूलि के बैठे,
मुद्रा पहिरि मजूसा हो ॥
तेहि ऊपर किछु छार लपेटे,
भितर भितर घर मूसा हो ॥
गाँव बसतु है गरब भारती,
बाम काम हंकारा हो ।
मोहनि जहाँ तहाँ ले जैहे,
नहिं पति रहहि वोहारा हो ॥
माँझ मझरिया बसै जो जानै,
जन होइहैं सो थीरा हो ।
निरभै भे तहँ गुरु की नगरिया,
सुष सोवै दास कबीरा हो ।

## ( ८ ) कहरा

छेम कुसल औ सही सलामत,
कहहु कवन को दीन्हा हो ॥
आवत जात दोऊ विधि लूटे,
सरब तंग हरि लीन्हा हो ॥

सुर-नर-मुनि जति-पीर-अवलिया,
मीरा पैदा कीन्हा हो।
कहँ लौं गनौ अनंत कोटि लौं,
सकल पयाना कीन्हा हो॥
पानी पवन अकाश जायँगे,
चन्द जायँगे सूरा हो।
ये भी जायेंगे वो भी जायेंगे,
परत न काहु के पूरा हो॥
कुसले कहत कहत जग बिनसे,
कुसल काल की फाँसी हो।
कहँहि कबीर सारी दुनिया बिनसै,
रहैं राम अविनासी हो॥

( ९ ) कहरा

ऐसनि देह निरालप बौरे,
मुवले छुवे न कोई हो।
डाँड की डोरिया तोरि लराइन,
जो कोटिन धन होई हो॥
उरध निरासा उपजि तरासा,
हकराइन्हि परिवारा हो।
जो कोइ आवे बेगि चलावे,
पल एक रहन न पायी हो॥
चंदन चीर चतुर सभ लेपहिं,
गर गज मुकुता हारा हो।
चहुँ दिसि गीध मुये तन लूटं,
जंबुक बोद्र बिदारा हो॥
कहँहु कबीर सुनहु हो संतो,
ग्यानहीन मति हीना हो।
एक एक दिन याही गति सभ की,
कहाँ राव कहाँ दीना हो॥

( १० ) कहरा

हौं सभहिन में हौं ना हो मोहि,
बिलग बिलग बिलगाई हो।
ओढ़न मोरा एक पिछौरा,
लोग बोलैं एकताई हो।
एक निरंतर अंतर नाहीं,
ज्यौं ससि घट जल झाँई हो॥
एक समान कोई समुझत नाहीं,
जाते जरा मरन भ्रम जाई हो।
रैनि दिवस मैं तहँवाँ नाहीं,
नारि पुरुष समताई हो।
ना मैं बालक बूढ़ो नाहीं,
ना मोरे चिलकाई हो॥
त्रिबिधि रहौं सभनि माँ बरतों,
नाम मोर रमुराई हो।
पठये न जाऊँ आने न आऊँ,
सहज रहौं दुनियाई हो॥
जोलहा तान बान न जाने,
फाटि बिने दस ठाँई हो।
गुरु परताप जिन्है जस भाषौं,
जन बिरले सुधि पाई हो॥
अनंत कोटि मन हीरा बेधौ,
फिटिक मोल नहिं पाई हो।
सुर नर मुनि जाके षोज परे हैं,
किछु किछु कबीरन्हि पाई हो॥

( ११ ) कहरा

ननदी गे तैं बिषम सोहागिनी,
तैं निदले संसारा गे।
आवत देखि मैं एक संग सूती
तैं और षसम हमारा गे॥
मोरे बाप के दुइ मेहररुआ,
मैं अरु मोर जेठानी गे।
जब हम अइलीं रसिक के जग में,
तबहिं बात जग जानी गे॥
माई मोरि मुवलि पिता के संगे,
सरा रचि मुवल संघाती गे।
अपने मुवली और ले मुवली,
लोग कुटुम संग साथी गे॥
जौ लौं साँस रहै घट भीतर,
तौ लौं कुसल परी है गे।
कहँहि कबीर जब साँस निकरि गो,
मंदिर अनल जरी है गे।

### ( १२ ) कहरा

ई माया रघुनाथ की बहूरि,
खेलन चली अहेरा हो ।।
चतुर चिकनिया चुनि-चुनि मारे,
काहु न राखे नेरा हो ।
मौनी बीर दिगम्बर मारे,
ध्यान धरंते जोगी हो ।
जंगल में के जंगम मारे,
माया किनहु न भोगी हो ।।
बेद पढ़ंते बेदुआ मारे,
पूजा करंते सामी हो ।
अरथ बिचारत पंडित मारे,
बांधेउ सकल लगामी हो ।।
सिंगी रिषि बन भीतर मारे,
सिर ब्रह्मा का फोरी हो ।
नाथ मछंदर चले पीठि दे,
सिंघल हूं में बोरी हो ।।
साकट के घर करता धरता,
हरि भगतन को चेरी हो ;
कहँहि कबीर सुनहु हो संतो,
ज्यों आवै त्यों फेरी हो ।।

## बसंत

### ( १ ) बसंत

जाके बारह मास बसंत होय,
ताके परमारथ बूझे बिरला कोय ।
बरिसे अगिनि अखण्ड धार,
हरियर भौ बन अठारह भार ।।
पनिया आदर धरनि लोय,
पवन गहै कस मलिन होय ।
बिनु तरिवर फूले आकास,
सिव बिरंचि तहँ लेहिं वास ।।
सनकादिक भूले भँवर वोय,
लख चौरासी जोइनि जोय ।।
जो तोहि सतगुरु सत्त लखाव,
ताते न छूटे चरन भाव ।
अमर लोक फल चावे चाव,
कहँहि कबीर बूझे सो पाव ।।

### ( २ ) बसंत

रसना पढ़ि लेहु सिरी बसंत,
पुनि जाइ परिहौ जम के फंद ।
मेरु दण्ड पर डंक दीन्ह,
अस्ट कँवल पर जारि दीन्ह ।।
ब्रह्म अगिनि कीयो परगास,
अरध उरध तहँ बहै बतास ।।
नव नारी परिमल सो गाँव,
सखी पाँच तहँ देखन धाव ।
अनहद बाजा रहल पूरी,
पुरुष बहत्तरि खलै धूरि ।।
माया देखि कस रहहु भूलि,
जस बनसपति रहि है फूलि ।
कहैं कबीर हरी के दास,
फगुवा माँगै वैकुण्ठ बास ।।

### ( ३ ) बसंत

मैं आयउँ मेहतर मिलन तोहिं,
रितु बसंत पहिरावहु मोहिं ।
लंबी पुरिया पाई छीन,
सूत पुराना खूँटा तीन ।।
सर लागे तेहि तिन सौ साठ,
कसनि बहत्तर लागू गाँठ ।
खुर खुर खुर चालैं नारि,
बैठि जोलाहिनि पलथी मारि ।
उपर नचनिया करत कोड़,
करिगह महँ दुइ चलै गोड़ ।।

पाँच पचीसौ दसहूं द्वार,
सषी पाँच तहँ रची धमार।
रंग बिरंगी पहिरे चीर,
हरि के चरन धै गावैं कबीर॥

(४) बसंत

बुढ़िया हँसि बोले मैं नितहीं बारि,
मोसो तरुनि कहु कवनि नारि।
दाँत गयल मोरे पान षात,
केस गयल मोरे गंग नहात।
नयन गयल मोरे कजरा देत,
वयस गयल पर पुरुष लेत॥
जान पुरुषवा मोर अहार,
अनजाने का करौं सिंगार।
कहँहि कबीर बुढ़िया आनंद गाय,
पूत भतारहि बैठी षाय॥

(५) बसंत

तुम बूझहु पंडित कवनि नारि,
काहु न वियाहलि है कुमारि॥
सभ देवन मिलि हरिहीं दीन्ह,
चारिउ जुग हरि संग लीन्ह।
प्रथमे पदुमिनि रूप आहि,
है साँपिनि जग षेदि षाय॥
इ भरि जुवती वै बर नाह,
अति रे तेज तिय रैनि ताह।
कहँहि कबीर यह जगत पियारि।
अपन बलकवे रहलि मारि॥

(६) बसंत

माइ मोर मनुषा अती सुजान,
धान कुटि कुटि करत बिहान।
बड़े भोर उठि आँगन बाढु,
बड़े षाँच ले गोबर काढु॥
बासी भात मनुसे लिहल षाय,
बड़ घेला ले पानी को जाय॥
अपने सैंया को बाँधो पाट,
ले बेचौंगी हाटौं हाट।
कहँहि कबीर ये हरि के काज,
जोइया के ढिग रहि कवनि लाज॥

(७) बसंत

घरहिं में बाबू बाढ़लि रारि,
उठि उठि लागे चपल नारि।
एक बड़ी जाके पाँच हाथ,
पाँचौ के पचीस साथ॥
पचीस बतावैं और और,
और बतावैं केयक ठौर।
अंतर मध्ये अंत लेइ,
झकझोरि झोरा जीवहिं देइ॥
आपन आपन चाहैं भोग,
कहु कैसे कुसल परी है जोग।
बिवेक बिचार न करैं कोय,
सभ षलक तमासा देषैं लोय॥
मुष फारि सभ हँसै राव रंक,
ताते धरे न पावैं एको अंग।
नियरे न षोजे बतावैं दूरि,
चहुं दिसि बागुलि रहलि पूरि॥
लच्छ अहेरी एक जीव,
तातैं पुकारे पीव पीव।
अबकी बार जो होय चुकाव,
कहँहि कबीर ताकी पूरी दाव॥

(८) बसंत

कर पल्लौं के बल षेलैं नारि,
पंडित हो सो लेइ बिचारि।
कपरा न पहिने रहै उघारि,
निरजिव सो धनि अती पियारि॥
उलटी पलटी बाजू तार,
काहू मारे काहु उबार।
कहैं कबोर दासन के दास,
काहू पुष दे काहु निरास॥

(९) बसंत

ऐसो दुरलभ जात सरीर,
राम नाम भजि लागु तीर।

गये बेनु बलि गयो कंस,
दुरजोधन गये बूड़े बंस।
पिरथु गये प्रिथिमि के राव,
तिरिविक्रम गये रहे न काव॥
छौ चकवे मंडलिक झारि;
अजहूं हो नरू देषु विचारि।
हनुमंत कस्यप जनक बालि,
ई सभ छेकल जम के द्वारि॥
गोपीचन्द भल कीन्ह जोग,
जस रावन मारेउ करत भोग।
ऐसी जात देषि सभन्हि की जान,
कहँहि कबीर भजु राम नाम॥

## ( १० ) बसंत

सबही मदमाते कोइ न जाग,
सँगहि चोर घर मूसन लाग।
जोगी माते जोग ध्यान,
पंडित माते पढ़ी पुरान॥
तपसी माते तप के भेव,
संन्यासी माते करि हमेव।
मोलाना माते पढ़ि मोसाफ,
काजी माते दे निसाफ।
संसारी माते माया के धार,
राजा माते करि हंकार।
माते सुकदेव ऊधो अंकूर,
हनुमत माते ले लंगूर॥
सिव माते हरि चरन सेव,
कलि माते नामा जयदेव।
सत्त सत्त कहैं सुम्रिति बेद,
जस रावन मारो घर के भेद॥
चंचल मन के अधम काम,
कहँहि कबीर भजु राम नाम॥

## ( ११ ) बसंत

सिव कासी कैसे भई तुहारि,
अजहुं हो सिव देषु बिचारि॥
चोवा चंदन अगर पान,
घर घर सुम्रिति बेद पुरान।
बहुबिधि भवनन्हि लागु भोग,
नगर कोलाहल करत लोग॥
बहुबिधि परजा लोग तोर,
तेहि कारन चित ढीठ मोर।
हमरे बलकवा के इहै ग्यान,
तोहरा को समझावै आन॥
जो जाहि मन से रहत आय,
जीव को मरन कहु कहाँ समाय।
ताकर जो किछु होय अकाज,
ताहि दोष नहिं साहब लाज॥
हर हरषित सों कहल भेव,
जहाँ हम तहाँ दुसर न केव।
दिना चार मन धरहु धीर,
जस देषैं तस कहैं कबीर॥

## ( १२ ) बसंत

हमरे कहल के नहिं पतियार,
आपु बूड़े नल सलिल धार॥
अंध कहै अंधा पतियाय,
जस बिसुवा के लगन धराय।
सो तो कहियै ऐसो अबूझ,
षसम ठाढ़ ढिग नाही सूझ॥
आपन - आपन चाहैं मान,
झूठ परपंच साँच करि मान।
झूठा कबहुं न करिहैं काज,
हौं बरजौं तोहि सुनु नीलाज॥
छाँड़हु पाषंड मानहु बात,
नाहिं तो परबहु जम के हाथ।
कहँहि कबीर नल कियहु न षोज,
भटकि मुवल जस बन के रोझ॥

# चाचर

## ( १ ) चाचर

षेलति माया मोहिनी, जिन्ह जेर कियो संसार ॥
रचेउ रंग ते चूनरी कोइ, सुन्दरि पहिरि आय।
सोभा अद्‌बुद रूप की, महिमा बरनि न जाय ॥
चन्द्रबदनि मृगलोचनि माया, बुंदका दियो उघारि।
जती सती सभ मोहिया, गज गति ऐसी वाकी चाल ॥

नारद के मुष माड़ि के, लीन्हों बदन छिनाय।
गरब गहेली गरब ते, उलटि चली मुसुकाय ॥
सिव सन ब्रह्मा दौरि के, दूनो पकरे जाय।
फगुवा लीन्ह छुड़ाय के, बहुरि दियो छिटकाय ॥

अनहद धुनि बाजा बजे, स्रवन सुनत भौ चाव।
षेलनिहारा षेलि हैं, जैसी वाकी दांव ॥
ग्यान ढाल आगे दियो, टारे टरै न पांव।
षेलनिहारा षेलिहैं, बहुरि न ऐसी दाव ॥

सुर नर मुनि औ देवता, गोरष दत्ता व्यास।
सनक सनन्दन हारिया, औरकि केतिक बात ॥
छिलकत थोथे प्रेम सों, धरि पिचकारी गात।
के लीन्हों बसि आपने, फिरि फिरि चितवत जात ॥

ग्यान डांग ले रोपिया, तिरगुन दियो है साथ।
सिव सन ब्रह्मा लेन कहो है, और कि केतिक बात ॥
एक ओर सुर नर मुनि ठाढ़े, एक अकेली आप।
दिस्टि परे उन काहु न छाड़े, के लीन्हों एक धाप ॥

जेते थे तेते लिये, घूँघट माँहि समोय।
काजरवा की रेष है, अदग गया नहिं कोय ॥
इन्द्र क्रिस्न द्वारे खड़े, लोचन ललचि नचाय।
कहँहि कबीर ते ऊबरे, जाहि न मोहि समाय ॥

## ( २ ) चाचर

जारहु जग का नेहरा मन बौरा हो।
जामें सोग संताप, समुझ मन बौरा हो ॥
तन धन सों का गर्वसी, मन बौरा हो।
भसम किरिमि जाके साज, समुझु मन बौरा हो ॥
बिना नेव का देवधरा, मन बौरा हो।
बिनु कहगिल की ईंट, समुझु मन बौरा हो।
कालबूत की हस्तिनी, मन बौरा हो ॥
चित्र रच्यो जगदीश, समुझु मन बौरा हो ॥

काम अंध गज बंसि परे, मन बौरा हो।
अंकुस सहियो सोस, समुझु मन बौरा हो ॥
मरकट मूठी स्वाद की, मन बौरा हो।
लीन्हों भुजा पसारि, समुझु मन बौरा हो ॥

छूटन की संसय परी, मन बौरा हो ॥
घर घर नचेउ द्वार, समुझु मन बौरा हो।
ऊँच नीच जानेउ नहीं, मन बौरा हो।
घर घर षांयउ डांग, समुझु मन बौरा हो।
ज्यौं सुवना ललनी गह्यो, मन बौरा हो।
ऐसों भरम बिचारु, समुझु मन बौरा हो ॥

पढ़े गुने का कोजिए मन बौरा हो।
अंत बिलैया षाय, समुझु मन बौरा हो ॥
सूने घर का पाहुना, मन बौरा हो।
ज्यौं आवे त्यौं जाय, समुझु मन बौरा हो ॥
नहाने को तीरथ घना, मन बौरा हो।
पूजन को बहु देव, समुझु मन बौरा हो।
बिनु पानी नल बूड़ि हो, मन बौरा हो ॥
तुम टेकहु राम जहाज, समुझु मन बौरा हो ॥
कहँहि कबीर जग भरमिया, मन बौरा हो।
तुम छांड़ेहु हरि की सेव, समुझु मन बौरा हो।

## बेली

### ( १ ) बेली

हंसा सरवर सरीर में, हो रमैया राम।
जागत चोर घर मूसै, हो रमैया राम॥
जो जागल सो भागल, हो रमैया राम।
सोवत गयल बिगोय, हो रमैया राम॥
आजु बसेरा नियरे, हो रमैया राम।
काल्हि बसेरा बड़ि दूरि, हो रमैया राम॥
जैहौं बिराने देस, हो रमैया राम।
नैन भरहुगे धूरि, हो रमैया राम।
त्रास मथन दधि मथन कियो, हो रमैया राम।
भवन मथेउ भरिपूरि, हो रमैया राम॥
फिरके हंसा पाहुन भयो, हो रमैया राम।
बेधिन पद निरवान, हो रमैया राम॥
तुम हसा मन मानिक, हो रमैया राम।
हट लो मानहु मोर, हो रमैया राम॥
जस रे कियहु तस पायहु, हो रमैया राम।
हमरे दोष जनि देहु, हो रमैया राम॥
अगम काटि गम कियहु, हो रमैया राम।
सहज कियहु बेपार, हो रमैया राम॥
राम नाम धन बनिज कियहु हो रमैया राम।
लादेहु बस्तु अमोल, हो रमैया राम॥
पाँच लदनुँवा लादि चले, हो रमैया राम।
नौ बहिया दस गोनि, हो रमैया राम॥
पाच लदनुवाँ षाँगि परे, हो रमैया राम।
षाषरि डारिनि फोरि, हो रमैया राम॥
सिर धुनि हंसा उड़ि चले, हो रमैया राम।
सरवर मीत जोहारि, हो रमैया राम॥
आगि जो लागी सरवर में, हो रमैया राम।
सरवर जरि भौ धूरि, हो रमैया राम॥
कहँहि कबीर सुनु संतो, हो रमैया राम।
परषि लेहु षरा षोट, हो रमैया राम॥

### ( २ ) बेली

भल सुम्रिवि जहँड़ायहु, हो रमैया राम।
धोषे कियहु बिसवास, हो रमैया राम॥
सो तो है बन सोकसी, हो रमैया राम।
सैर कियहु बिसवास, हो रमैया राम॥
ई तो बेद भागवत, हो रमैया राम।
गुरु दीहल मोहि थापि, हो रमैया राम॥
गोबर कोट उठायहु, हो रमैया राम।
परिहरि जैबहु षेत, हो रमैया राम॥
बुधिबल जहाँ न पहुंचे, हो रमैया राम।
तहाँ षोज कस होय, हो रमैया राम॥
से सुनि मन धीरज भयल, हो रमैया राम।
मन बढ़ि रहल लजाय, हो रमैया राम॥
फिरि पाछे जनि हेरहु, हो रमैया राम।
कालबूत सब आहि, हो रमैया राम॥
कहँहि कबीर सुन तो, हो रमैया राम।
मन बुधि ढिग फैलावहु, हो रमैया राम॥



# बिरहुली

आदि अंत नहिं होत विरहुली,
नहिं जरि पल्लौं पेड़ बिरहुली।
निसु बासर नहिं होत विरहुली,
पवन पानि नहिं मूल विरहुली॥
ब्रह्मादिक सनकादिक विरहुली,
कथि गेल जोग अपार बिरहुली।
मास असाढ़े सितलि बिरहुली,
बोइन्हि सातो बीज विरहुली।
नित कोड़े नित छिचैं विरहुली,
नित नव पल्लो पेड़ बिरहुली॥
छिछिल बिरहुली छिछिल विरहुली,
छिछिल रहलि तिहुँलोक बिरहुली।
फूल एक भल फूलल बिरहुली,
फूलि रहल संसार बिरहुली॥
सो फूल लोरे संत जना बिरहुली,
बंदिक राउर जाहि बिरहुली।
सो फूल वंदहि भक्त जना बिरहुली,
डसि गैल बेतल साँप बिरहुली॥
विषहर मंत्र न माने बिरहुली,
गारुड़ि बोले अपार बिरहुली॥
बिषकि कियारी बोयहु बिरहुली,
लोढ़त का पछितावहु बिरहुली॥
जनम जनम जम अंतर बिरहुली,
फल एक कनयर डार बिरहुली।
कहँहि कबीर सचु पावहुँ बिरहुली,
जो फल चाषहुँ मोर बिरहुली॥



# हिंडोला

## ( १ ) हिंडोला

भरम हिंडोलना झूले, सभ जग आय॥
पाप पुन्न के षंभा दोऊ, मेरु माया मांह।
लोभ मरुवा बिषे भँवरा, काम कीला ठानि॥
सुभ असुभ बनाय डाँड़ी, गहे दोनों पानि॥
करम पटरिया बैठि के, को को न झूले आनि।
झूले गन गंध्रप मुनिवर, झूले सुरपति इन्द्र॥
झूलैं तो नारद सारदा, झूले व्यास फनींद।
झूलैं विरंचि महेस सुक मुनि, झूलैं सूरज चंद॥
आपु निरगुन सगुन होय के, झूलिया गोविन्द।
छव चारि चौदह सात इकइस, तीनि लोक बनाय॥
षानि बानी षोजि देषहु, थिर न कोइ रहाय।
षंड ब्रह्मंड षट दरसना, छूटत कतहूं नाहि॥
साधु संत बिचारि देषहु, जिव निस्तर कहँ जाहि।
ससि सुर रैनी सारदी, तहाँ तत्त पल्लौं नाहि॥
काल अकाल परले नहीं, तहाँ संत बिरले जाहि।
तहँ के बिछुरे बहु कलप बीते, भूमि परे भुलाय।
साधु संगति षोजि देषहुं, बहुरि उलटि समाय।
यहि झूलिवे की भय नहीं, जो होहिं संत सुजान।
कहँहि कबीर सतसुकित मिले, तो बहुरि न झूलैं आय॥

### ( २ ) हिंडोला

बहु बिधि चित्र बनाय के, हरि रच्यो क्रीड़ा रास।
जाहि न इच्छा झूलिवे की, ऐसी बुधि केहि पास ।।
झूलत झूलत बहुँ कलप बीते, मन नहिं छोड़ै आस।
रच्यो हिंडोला अहोनिसि, चारि जुग चौमास ।।
कबहुक ऊँच से नीच कबहूँ, सरग भूमि ले जाय।
अति भ्रमत भरम हिंडोलवा हो, नेकु नहिं ठहराय ।।
डरपत हौं यहि झूलिवे को, राखु जादव राय।
कहैं कबीर गोपाल बिनती, सरन हरि तुम पास ।।

### ( ३ ) हिंडोला

लोभ मोह के खंभा दोऊ, मन से रच्यो हिंडोल।
झूलहिं जीव जहान जहाँ लगि, कतहुँ न देखौं ठौर ।।
चतुर झूलहिं चतुराइया, झूलहिं राजा सेस।
चाँद सूरज दोउ झूलहिं, उनहुँ न अग्या भेल ।।
लख चौरासी जीव झूलहिं, रविसुत धरिया ध्यान।
कोटि कलप जुग बीतल, अजहुँ न मानै हारि ।।
धरति अकास दोऊ झूलहिं, झूलहिं पवना नीर।
देह धरे हरि झूलहिं ठाढ़े, देखहिं हंस कबीर ।।

---

# संपादकीय

सद्‌गुरु कबीर साहब जैसे आज है वैसे ही कल भी चिरनवीन और चिरसत्य थे। ऐसे महापुरुषों का मूल्य चिरस्थायी होता है उनका अवमूल्यन कभी होता ही नहीं। ऐसे लोग कालातीत होते हैं। ऐसे महापुरुषों पर काल का प्रभाव पड़ता ही नहीं। ये अपनी छाप काल पर अवश्य ही छोड़ जाते हैं किन्तु काल का छाप इन पर नहीं पड़ता। काल एक ही है जो सतयुग, त्रेता; द्वापर एवं कलियुग में विभक्त है। भगवान् का जो अवतार तत्तद् युगों में हुआ करता है उसमें कोई फेरबदल नहीं हो सकता, न इसमें कोई फेर बदल कर सकता है। काल अथवा अवतार के क्रम में व्यतिक्रम नहीं होता। ईश्वर का जो सन्तावतार होता है इसमें काल की सापेक्षता होती ही नहीं, वे एक ही युग में कई बार आ सकते हैं तथा आते देखे भी गये हैं। सद्‌गुरु कबीर साहब ऐसे ही हैं जो एक ही युग में कई बार आ चुके हैं। सन्तों को इस लीला की महिमा की जानकारी साधारण मस्तिष्क वाले नहीं कर सकते। सद्‌गुरु कबीर शाश्वत हैं। आज के विद्यमान पंथ एवं सम्प्रदाय इनके अनेक बार आगमन के ज्वलंत प्रमाण हैं।

कवि क्रान्तिदर्शी होता है वह भूत का द्रष्टा, वर्तमान का स्रष्टा और भविष्य का व्याख्याता होता है। उपनिषद् में ब्रह्म के लिए भी कवि शब्द का प्रयोग हुआ है।

"कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः····" काव्य के आलोचकों की दृष्टि में सद्‌गुरु कबीर कवि भले न हों किन्तु कवि की जो क्रान्तिदर्शिता है उनमें उनकी कविता खरी उतरती है। सद्‌गुरु कबीर की वाणी भी भूतभविष्य एवं वर्तमान के लिए पूर्ण उपयुक्त है। जिस समय सद्‌गुरु कबीर साहब सदेह थे उस समय उनकी वाणी का महत्त्व जितना था आज उससे कम नहीं हैं। उनकी वाणी अज्ञान रूपी रोग के लिए कड़वी औषधि के सदृश अवश्य है साथ स्वस्थ के लिए प्रसादात्मक भी।

माला पहिरे टोपी पहिरे, छाप तिलक अनुमाना ।।
साखी सबदी गावत फिरे, आतम खबर न जाना ।।

वेष बना लेना तो आसान है पर आत्म तत्त्व को जानना कठिन है। अतत्त्वदर्शी के लिए यह कड़वी औषधि के समान है किन्तु तत्त्वदर्शी इसे सुनकर मगन हो जाता है उसके लिए वेष का कोई महत्व नहीं है। वह कह बैठता है कि—

मन मगन हुआ तो क्या बोले।

धुन सुनके मनुआ मगन हुआ" शब्द के श्रोत्रकुहर में पड़ते ही मन स्थिर हो जाता है। हिंसा के लिए भी उन्होंने कहा है कि—

जीव न मारो बापुरा सबके एकै प्राण।
हत्या कबहुँ न छूटिहैं कोटिन सुनो पुरान ।।

पुराण सुनकर भी उस हिंसा का बदला समाप्त नहीं हो सकता, यह वाणी अतत्त्वदर्शी के लिए समस्या उत्पन्न कर देती है, तत्त्वदर्शी क्यों किसी की हिंसा करेगा वह तो स्व को 'पर' में और 'पर' को 'स्व' में देखता है। ऐसे ही गूढ़ तत्त्वों को खोजने के लिए सद्गुरु कबीर के सरल शब्दों का प्रयोगे देखते ही बनता है।

सद्गुरु कबीर की वाणी बीजक मात्र नहीं है। अपितु उसी तरह के उनके पद बहुत मिलते हैं इन वाणियों की सुरक्षा उनके शिष्य परम्परा के सिद्ध सन्तों ने ही किया है, जो बीजक के रूप में है। उसके अतिरिक्त सन्तों के द्वारा सुरक्षित वाणी को आज के गण्यमान्य विद्वानों ने कबीर ग्रन्थावली का रूप दिया है। बीजक एवं ग्रंथावली के पद प्रायः मिलते जुलते हैं। किन्तु कुछ पद ऐसे हैं जो बीजक में नहीं हैं, और कुछ पद ऐसे हैं जो कबीर ग्रंथावली में नहीं है। उद्धरण देखा जा सकता है—

दुलहिन गावहुं मंगलचार। —कबीर ग्रंथावली
सन्तो भक्ति सतगुरु आनी ॥ —बीजक

जो ज्ञान बीजक में है वही ज्ञान कबीर ग्रन्थावली में भी है, शब्दों में अवश्य अन्तर हो गया है। कबीर ग्रंथावली में कहीं पंजाबी तथा कहीं राजस्थानी का प्रभाव दिखाई पड़ता है, किन्तु बीजक में अधिकतर खड़ी बोली एवं पूर्वी का प्रभाव ही अधिक स्पष्ट है। विद्वानों की दृष्टि में सद्गुरु कबीर की वाणी दोनो ही हैं। बीजक और कबीर ग्रंथावली में प्रकरणों का अन्तर है। कबीर ग्रंथावली में केवल साखी, पद और रमैनी यही तीन प्रकरण हैं और बीजक में इनके अतिरिक्त ज्ञान चौंतीसा, विप्रबतीसी, कहरा, वसन्त, चाचर, बेली, बिरहुली तथा हिंडोला ये आठ और आ जाते हैं, विद्वानों ने संत नाभादास जी के भक्तमाल में वर्णित "रमैनी सबदी साखी" को ही दृष्टि में रखकर कार्य किया है। इसलिए कबीर ग्रंथावली में तीन ही प्रकरण दिखाई पड़ते हैं किन्तु सद्गुरु कबीर के शिष्यों द्वारा सुरक्षित बीजक ग्रंथ में उन तीन के अतिरिक्त आठ प्रकरण और हैं। विद्वानों की मान्यता भी है कि उक्त तीनो प्रकरणों में ही बीजक के अन्य आठ प्रकरणों का समावेश हो सकता है, किन्तु कुछ विद्वानों ने इसे स्वीकार न कर के सद्गुरु कबीर की वाणी बीजक में ग्यारह प्रकरणों को ज्यों का त्यों रहने दिया है। प्रामाणिक दृष्टि से बीजक कबीर ग्रंथावली के पहले से ही सुरक्षित है, कबीर ग्रंथावली के पदों एवं साखियों का संग्रह तथा सम्पादन सर्व प्रथम डा० श्यामसुन्दर दास जी ने सम्वत् १९८३ के बाद ही किया। आपके द्वारा लिखित प्रमाण के आधार पर सद्गुरु कबीर की वाणी का संग्रह उनके शिष्यों ने ही किया था। जिसका लिपिकाल सम्वत् १५६१ उस हस्तलिखित में ही विद्यमान है। यह तो विद्वानों का मत है रही सिद्धान्त की बात। जो सिद्धान्त कबीर बीजक में वर्णित है वहीं कबीर ग्रंथावली में दिखाई पड़ता है।

एकेश्वरवाद, हिंसा, दया, करुणा आदि का वर्णन दोनों में ही मिलता है रमैनी एवं शब्द प्रकरण श्री कबीर शान्ति सन्देश विशेषांक में सन् १९७९-८० तथा १९८०-८१ में प्रकाशित हो चुके हैं। सन् १९८३ में ज्ञान चौंतीसा आदि का विशेषांक प्रकाशित हो रहा है। इस ज्ञान चौंतीसा में सद्गुरु कबीर साहब ने ओंकार तथा क से लेकर ह तक चौंतीस अक्षरों पर गूढ़ विचार व्यक्त किया है जिसे आज के युग में रहस्यवाद तथा प्राचीन परम्परा में आत्मज्ञान स्वरूप बोध कहा जा सकता है। जैसे—

वो ओंकार आदि जो जाने
लिखि के मेटी ताहि सो माने।
वों ओंकार कहै सभ कोई,
जिन यह लखा सो विरला होई ॥

"सर्वे वेदायत्पदमामनन्ति··· ब्रवीम्योमित्येत्" उपनिषद् वर्णित ॐ ब्रह्म वाचक है, वेद उस ब्रह्म का निश्वास है "अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् ऋग्वेदो सामवेदो यजुर्वेदोऽथर्वणश्च ॥" वेद के पूर्व विद्यमान सद्ब्रह्म को जानने वाला कोई विरला ही होता है।

कक्का कमल किरण मँह पावे,
शशि विगसित सम्पुट नहीं आवे।
तहाँ कुसुम रंग जो पावे,
अवगह गहि के गगन रहावे।

जिस प्रकार ज्ञान चौंतीसा, साखी, सबदी तथा रमैनी से भिन्न प्रकरण है उसी प्रकार विप्रमतीसी आदि प्रकरण भी इनमें से अपना विशेष स्थान रखने वाले हैं 'यद्यपि शब्द तथा रमैनी आदि में सामान्य रूपसे किसी भी बात

को संबको सम्बोधित कर कहा गया है। किन्तु

"ब्रह्म जानातीति ब्राह्मणः।

इस उक्ति के आधार पर विप्रमतीसी में विशेष कर ब्राह्मणत्व का बोध कराया है। ब्रह्मविद् होने के कारण क्षत्रिय राजर्षि विश्वामित्र को ब्रह्मविद् वशिष्ठ ने ब्रह्मर्षि कहा था। सद्‌गुरु ने ब्राह्मणोचित कर्तव्य न करने वाले ब्राह्मण के लिए विशेष कर कहा है—

सुनहु सबन मिलि विप्रमतीसी
हरि बिन बूड़े नाव भरीसी
ब्राह्मण होकर ब्रह्म न जने
घर मंह यज्ञ प्रतिग्रह आने

यद्यपि कहरा प्रभाती शब्द के लय वाली है शब्द प्रभाती कह देने से काम चल जाता, किन्तु असावधान को विशेष सावधान करने के लिए अलग प्रकरण किया गया है।

जैसे सहज ध्यान रहु, सहज ध्यान रहु
गुरु के वचन समाहि हो।

वसन्त प्रकरण को भी राग वसन्त कहकर शब्द में अन्तर्भाव हो सकता है, किन्तु नित्य और अनित्य वसन्त का वर्णन करने के लिए इन प्रकरणों से अलग रखा गया है, एक तो बसन्त ऋतु निर्धारित समय तक रहता है, और दूसरा जिसे सद्‌गुरु कबीर साहब ने सहज वसन्त कहा है —

जाके बारह मास बसन्त होय।
ताके परमारथ बूझैं बिरला कोय॥

चाचर एक होली का खेल है, इस खेल में स्त्री पुरुष की जय-पराजय की स्थिति रहती है, माया सबसे यह खेल खेलती है, सबको पराजित कर देती है, इसका विशेष वर्णन होने से अन्य प्रकरणों में इसका भी अन्तर्भाव नहीं हुआ।

खेलति माया मोहनि जिन्ह जेर कियो संसार।

इसी प्रकार बेली, विरहुली तथा हिंडोला आदि में स्वतंत्र विषय होने के कारण इन्हें भी अलग प्रकरण रखा गया है। विश्वविद्यालय तथा कालेजों में पठन-पाठन के लिए कबीर ग्रन्थावली का ही पाठ रखने के कारण विद्वत् समाज अर्थात् साहित्यक्षेत्र के विद्वानों से इसी का प्रचार प्रसार हुआ। बीजक के पंथगत होने के कारण इसे पंथ के ही व्यक्ति विशेष कर जानते हैं। किन्तु अब लोग भी जानने लगे हैं कि कबीर ग्रन्थावली के अतिरिक्त सद्‌गुरु कबीर का मुख्य ग्रंथ बीजक है। पंथगत विद्वानों के अतिरिक्त अन्य विद्वानों के बीजक की टीकायें हो चुकी हैं। इसलिए अब यह विश्वसनीय है।

बीजक हमारे छिपे हुए आत्मधन को बतानेवाला है अग्रबुद्धि प्रदान करने वाला हैं, वह परमात्मा सूक्ष्मदर्शियों को इसी अग्रबुद्धि से दीखता है।

दृश्यते त्वग्रयया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।

हमारी बुद्धि धन, विद्या आदि के मद के कारण कुण्ठित हो चुकी है जब तक यह कुण्ठा समाप्त नहीं होगी तब तक हमें आत्मधन रूपी अमूल्य रत्न को प्राप्त करना सम्भव नहीं। सद्‌गुरु ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
सब अँधियारा मिट गया दीपक रेखा माहिं॥

ज्ञान रूपी दीपक से अज्ञान रूपी सारा अन्धकार समाप्त हो गया। वहाँ न तो भेद रहेगा, न घृणा रहेगी, न किसी तरह का अभिमान रहेगा। न वहाँ मोह रहेगा न वहाँ शोक

तत्र को मोहः को शोकः एकत्वमनुपश्यतः॥

हम आत्म ज्ञान का ढिंढोरा भले पीटे यदि हमारे में भेद दृष्टि बनी है तो हम ब्रह्मविद् नहीं है भेद दृष्टि ही दुःख का मूल है, इसका नाश ही सुख प्राप्ति है।

# मुक्ताकण

शंभुनाथ राय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय

## सबद ( ९ )

संतो बोले ते जग मारे।
अनबोले ते कैसेक बनिहै, सबदहिं कोइ न विचारै ॥१
पहिले जनम पूत को भयऊ, बाप जनमिया पाछे।
बाप पूत को एकै नारी, ई अचरज को काछे ॥२
उंदुर राजा टीका बैठे, बिषहर करै षवासी।
स्वान बापुरो धरनि ढाकनो, बिल्ली घर में दासी ॥३
कागदकार कारकुन आगे, बैल करै पटवारी।
कहहिं कबीर सुनहु हो संतो, भैंसे न्याव निबारी ॥४

चूर्णिका :—अनबोले = बिना कहे, बिना मर्म समझाए। कैसेक = किस प्रकार। सबदहिं = वाणी को, उपदेश को। पूत = जीवरूपी पुत्र। बाप = ब्रह्मरूपी पिता। नारी = मायारूपी स्त्री। काछे = हटाए, निराकरण करे। उंदूर = मनरूपी चूहा। बिषहर = अहंकाररूपी विषधर सर्प। षवासी = अंगरक्षक का काम। स्वान = चैतन्यरूपी कुत्ता। धरनि = बाँध दिया गया, निष्क्रिय कर दिया गया। ढाकनो = भूँकने वाला, रखवाली करने वाला बिल्ली = दुष्प्रवृत्तिरूपी बिल्ली। कागदकार = लेखा रखने वाला। कारकुन = कारिंदा, मुनीम। बैल = अविवेकरूपी बैल। टवारी = लेखपाल। भैंसे = दुर्बुद्धिरूपी भैंसे द्वारा। निवारी = निबटाई जा रही है।

अर्थ—ऐ संतो, ( सच्ची बात ) बोल ( कह ) देने पर ( सारा ) जगत मारने दौड़ता है, मेरी उक्तियों पर कोई ( गंभीरता से ) विचार करता ही नहीं; ( फिर भी चुप रह जाना ठीक नहीं, सत्य का ) बिना कथन किए ( बात ) बनेगी कैसे ॥१॥ ( इसीलिए जगत के प्रबोध हेतु मैं अपनी वाणी बोलता जा रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ) पहले तो ( जीवरूपी ) पुत्र का जन्म हुआ, तत्पश्चात् ( ईश्वररूपी ) पिता ने जन्म लिया ( अर्थात् जगत में उत्पन्न हो जाने के पश्चात् ही मनुष्य भिन्न-भिन्न मतों के अनुसार परमात्मा के विभिन्न रूपों की कल्पना करता है )। ( इतना ही नहीं, इन ) बाप-बेटे ( दोनो ) की नारी भी एक ही है ( भला ) इस अचरज का निराकरण कौन करे। ( वस्तुतः वह नारी माया है, जोकि ईश्वर और जीव दोनों से संबद्ध रहती है। माया के ही माध्यम से ईश्वर सारे प्रपंच का संचालन करता है और जीव का भी नियमन माया द्वारा ही होना है ) ॥२॥ ( माया की लीला देखना चाहो तो जगत में सर्वत्र देख सकते हो, देखो न, मनरूपी ) चूहा टीकाधारी सम्राट बना बैठा है और ( अहंकार रूपी ) विषधर सर्प ( उसके ) अंगरक्षक का कार्य कर रहा है। भूँक-भूँक कर रखवाली करनेवाला ( चैतन्यरूपी ) कुत्ता बाँध दिया गया है और ( दुष्प्रवृत्तिरूपी प्रकृत्या चोरनी ) बिल्ली घर में दासी बन गई है ॥३॥ ( सच्चा ) लेखा रखने वाले ( विवेकरूपी ) कर्मचारी के ऊपर ( अविवेकरूपी ) बैल को लेखपाल नियुक्त किया गया है। कबीर साहब कहते हैं कि ऐ संतजन, सुनो, ( यहाँ तो ) न्याय निबटाने का काम ( दुर्बुद्धिरूपी ) भैंसा कर रहा है ( फिर तुम्हीं ) बताओ, जीव का कितना कल्याण होगा ॥४॥

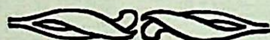
## सबद ( १० )

संतो राह दुनो हम दीठा।
हिंदू तुरुक हटा नहिं मानैं, स्वाद सबनि को मीठा ॥१॥
हिंदू बरत एकादसि साधे, दूध सिंघारा सेती।
अन को त्यागैं मन को न हटकैं, पारन करैं सगौती ॥२॥
तुरुक रोजा नीमाज गुजारैं, बिसमिल बाँग पुकारैं।
इनकी भिस्त कहाँ ते होइहैं, साँझे मुरगी मारैं ॥३॥
हिंदू की दया मेहर तुरुकन की, दूनो घट से त्यागी।
वे हलाल वे झटका मारैं, आगि दुनो घर लागी ॥४॥
हिंदू तुरुक की एक राह है, सतगुरु इहै बताई।
कहहिं कबीर सुनहु हो संतो, राम न कहेउ खुदाई ॥५॥

चूर्णिका :—दीठा = देख लिया है। हटा = वर्जना, मना किया हुआ। मीठा = प्रिय। साधे = करते हैं, साधते हैं।

सेती = से, प्रयोग से। अन को = अन्न को। हटकैं = रोकते हैं। पारन = व्रतांत का भोजन, पारणा। सगोती = आमिष। रोजा = रमजान के महीने में दिन भर किया जाने वाला उपवास। नीमाज = नमाज। गुजारैं = पालन करते हैं। बिसमिल बाँग पुकारैं = ऊँचे स्वर में "बिस्मिलाह" की पुकार लगाते हैं। भिस्त = (बिहिस्त) स्वर्ग। मेहर = दया। हलाल = रेत-रेत कर गला काटना। झटका = एक ही वार में गरदन अलग कर देना।

अर्थ :—ऐ संतो, हमने (हिन्दू और मुसलमान) दोनो के धर्मपथ को (भली-भाँति) समझ लिया है। (कर्तव्याकर्तव्य तथा खाद्य एवं अखाद्य-परक विचार से) हिंदू और मुसलमान (दोनो ही किसी की) वर्जना नहीं मानते हैं, (इनमें से) सभी को स्वाद परम प्रिय है (अर्थात् सभी घोर स्वादपरायण हैं) ॥१॥ (देखो न, एक ओर) हिंदू एकादशी का व्रत करते हैं, दूध और सिंघाड़ा ग्रहण करके। (वे व्रत के दिन) अन्न को त्याग देते हैं (किंतु) मन का निग्रह नहीं कर पाते और पारण (व्रत के समापन) में सगोतीतक खा लेते हैं ॥२॥ (दूसरी ओर) मुसलमान (रमजान के महीने में दिन भर तो) रोजा और नमाज का पालन करते हैं, (अजान करते समय) बिस्मिल्लाह की ऊँची पुकार लगाते हैं, (किंतु) साँझ होते ही (जिह्वा स्वाद के वशीभूत वे) मुरगी मारने लगते हैं, (भला) इन्हें बिहिश्त (स्वर्ग) की प्राप्ति कहाँ से हो सकती है ॥ ३ ॥ हिंदुओं की 'दया' और मुसलमानों की 'मेहर' (नाम की चीज उनकी सबसे बड़ी सद्वृत्ति) थी (किंतु) दोनो ने (इस सद्गुण को) अंतःकरण से त्याग दिया है। मुसलमान हलाल और हिंदू झटका (की विधि को धर्मविहित विधि की संज्ञा देते हुए जीवों को) मारते हैं, (वस्तुतः हिंसा की) आग दोनो घरों (धर्मों) में लगी हुई है ॥४॥ कबीर साहब कहते हैं, ऐ संतो, सुनो, सद्गुरु ने न तो 'राम राम' रटने को कहा है और न 'खुदा खुदा', उसने तो यही बताया है कि हिंदू और मुसलमान (दोनो का श्रेय) मार्ग एक ही है (और वह है अहिंसा) ॥५॥



**जगजीवन राम**

दूरभाष : ३७६५५५

६, कृष्णमेनन मार्ग
नई दिल्ली-११००११

दिनांक ५-१-८३

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि श्री कबीर कीर्ति मन्दिर, काशी से "श्री कबीर शान्ति-सन्देश" का कई वर्षों से प्रकाशन किया जा रहा है और उसके अगले विशेषांक में सद्गुरु कबीर के "बीजक" की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डाला जाएगा। कबीर साहब अपने समय के महान सामाजिक क्रान्ति चेता थे। कबीर साहब ने समाज के अधिष्ठाओं के छल-प्रपञ्च और व्यामोह का पर्दाफाश किया और पीड़ित मानवता को अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया और अभिजात्य पर कबीर साहब ने बड़े तीखे प्रहार किये। अतः आज के जीवन सन्दर्भों में उनकी सार्थकता बढ़ गयी है।

प्रकाशन की सफलता के लिए शुभकामनाएँ।

—जगजीवन राम

# उथले रहहु परहु जनि गहिरे

( लाल बिहारी मिश्र )

मानव, शरीर की दुर्लभता, उपयोगिता और इसके दुरुपयोग से होनेवाली रोमांचकारी हानिको जितना संत की दृष्टि आँक पाती है, उतना अन्य की नहीं। साधारण दृष्टि से तो यह तथ्य ओझल ही रहता है। संत कबीर के समय का मानव प्रायः साधारण दृष्टिकोण का था। मानव-तन की महत्ता को भूल चुका था। राग-द्वेष को प्रश्रय दे रहा था। स्वाद के लिए जीव हिंसा करने लगा था। मजहब के मोह में पड़कर मानव की हिंसा पर भी उतर आया था। सत कबीर का दयालु हृदय इसके भावी भयावह परिणामों से सिहर उठा। मानवों को सचेत करने के लिए वे आगे आये। उनके सदय हृदय का उद्‌गार ही 'बीजक' रूप में अवतीर्ण हुआ है।

'बीजक' ने मानव को वह दिव्य दृष्टि दी, जिससे वह देख सकता है कि उसका जीवन केवल सौ वर्षों का ही नहीं है, जो स्थूल दृष्टि से आँका जाता है। वह तो असंख्य वर्षों से चौरासी लाख योनियों के प्रवाह में असहाय हो बहता चला आ रहा है। अनादि काल से वह इस प्रवाह में तैरते-तैरते थकता है, बेहोश होता है और मर जाता है। दूसरा चोला पाता है। फिर वही तैरना, वही थकान, वही अवसाद और वही मृत्यु। बेचारे जीव को न तो कहीं ठहराव मिलता है और न विश्राम—

चौरासी की धार में कबहुँ न पायो ठौर।

कैसा रोमांचकारी चक्कर है? इस प्रवाह पर उसका कोई चारा नहीं चलता। बस, विवश हो कर हिचकोरें-पर हिचकोरें खाता रहता है। प्रवाह जिधर चाहता है उधर उसे ढकेल देता है, और जो चाहता है उसके मुख से कहलाता रहता है—

चौरासी के बसि पड़े कहे और की और। (साखी)

इस परेशानी का कोइ आदि भी नहीं है। जब से सृष्टि तब से यह परेशानी। सृष्टि का प्रवाह अनादि काल से चलता चला आ रहा है, तब से जीव भी डूबता-उतराता चलता चला आ रहा है। कितनी लंबी है जीव की आयु? गणित के पास वह अंक नहीं है जिससे जीव की इस लंबी आयु को आँका जा सके। जीव की इस लंबी आयु में मानव-आयु उसी तरह नगण्य है जिस तरह मानव-जीवन के सौ वर्षों में चार घंटे। केवल इन चार घंटे को सावधानी-पूर्वक बिताने पर यदि सौ वर्ष सुख पूर्वक बिताये जा सकें, तो प्रत्येक बुद्धिमान इन चार घंटों की सावधानी के लिए तैयार हो जायगा।

संत कबीर ने चेताया कि "मानव-योनि के इन चार घंटों को खूब सावधान हो कर बिताओ। प्रवाह में उथले-उथले' तैरो, गहराई में मत उतरो। गहराई में एषणा रहती हैं। वे तुम्हें फिर भव-चक्र में डाल देंगी। केवल चार घंटों की बात है। इतनी देर तो सावधानी बरतो। तुम्हारी यह सावधानी तुम्हारे सारे दुःख-दर्दों को मिटा देंगी। सावधानी से बस भव-सागर को पार कर जाओ। फिर तो तुम्हें आनन्द-ही-आनन्द मिलेगा। वही तुम्हारा लक्ष्य है। अतीत को मत दोहराओ। पहले भी तो तुम्हें मानव-तन मिला था। परंतु तुम चार घंटे की यह सावधानी न बरत सके। यदि गहरे पानी में न उतरते और 'उथले-उथले' तैरते जाते तो यह 'घनेरी लात' तुम्हें नहीं सहनी पड़ती। मानव, इस बार मत चूको—

मानव जन्महिं पायके चूके अब की घात।
जाय पड़े भव चक्र में, सहे घनेरी लात॥

( साखी-११३ )

"मानव, अपने इस शरीर का मूल्य तो आँको। चौरासी लाख योनियों में अकेली यही एक ऐसी योनि है, जिससे हुई भव-सागर को पार कर लक्ष को प्राप्त कर सकते हो। जानते हो, यह शरीर कितना दुर्लभ है? याद रखो, फिर यह शीघ्र मिलने वाला नहीं है"—

मानुष तन दुर्लभ अहै, होय न दूजी बार।
पक्का फल जो गिरि पड़ा, बहुरि न लागे डार॥

( साखी ११५ )

संत प्रायः भगवान की ही वाणी दोहराया करते हैं। भगवान ने मानव को यह चेतावनी अनादि काल से ही दे रखी है—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति
नो चेदिहावेदीन् महती विनष्टिः।

( केन उप० १३।५ )

अर्थात् इस मनुष्य शरीर के रहते-रहते भव-सागर को पार कर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया गया, तब तो यह तन सार्थक हुआ, और कहीं इस तन से अपना लक्ष्य नहीं प्राप्त किया जा सका तो बहुत-बहुत विनाश होगा।

किन्तु खेद है कि मानव चार घंटों की भी यह सावधानी निभा नहीं पाता। उसके पीछे माया ठगिनी लगी रहती है।

माया महाठगिनि हम जानी। ( शब्द ५९ )।

माया के पास एक अद्भुत वस्तु है—एषणा[1]। इस विषैली वस्तु को वह सुवासित, सुमधुर, सुस्वादु रूप में मानवों के समक्ष प्रस्तुत करती है। इसकी महँक-मात्र से मानव की ज्ञानेन्द्रियाँ विपरीत कार्य करने लगती हैं। सर्प-विष से जैसे कड़वी चीज भी मीठी लगती है, वैसे एषणा के प्रभाव से मनुष्य को 'आनन्द-सिन्धु' खारे लगते हैं और 'खारा भव-सागर' मीठा।' जो उथले-उथले ( अनासक्त होकर ) तैरते हैं उन पर एषणा का प्रभाव नहीं पड़ता। और जो गहराई ( आसक्ति में ) उतरते हैं उन पर यह तुरंत हावी हो जाती है।

बेचारा शातकर्णी भव सागर को पार कर लक्ष्य तक पहुँच जाना चाहता था। इसके लिए उसने घर छोड़ा, स्वाद छोड़ा, अन्न भी छोड़ दिया। मृगों के साथ घास पर गुजर करने लगा।[2] इस तरह भव-सागर में वह 'उथले-उथले' तैर रहा था। माया को भला यह क्यों सुहाता? उसने इन्द्र को प्रेरित किया इसके लिए जल के भीतर अद्भुत भवन तैयार कराया। पाँच अप्सराएँ अपने सौन्दर्य से उसे सँवार रही थीं और अपने गानों से अनुप्राणित कर रहीं थीं "उतरहु जनि गहिरे" पर शातकर्णी का ध्यान नहीं गया ही वे गहराई में उतर गये। उनको तो बस, 'उथले-उथले'। तैरते रहना चाहिए था। थोड़ी गहराई में उतरते ही एषणा उससे चिपट गयी। फिर क्या था? "सौन्दर्य सिन्धु' उसके लिए फीके पड़ गये और उस सौन्दर्य सिन्धु के एक बिन्दु के कोट्यंश से जो अप्सराओं का सौन्दर्य था। वह उसे 'सागर' दीखने लगा।[3] सौन्दर्य सिन्धु उसके पास से गुजरे भी, पर उसने उधर ताका-तक नहीं। सौन्दर्य सिन्धु ने शातकर्णी-की चर्चा भी की, किन्तु माया ने उसके कान बंद कर दिये थे। केवल शातकर्णी ही नहीं, किन्तु उन्नतयोनि के तैंतीस करोड़ देवता भी माया के इस चक्र में से नहीं बच सके। शातकर्णी का 'पचाप्सर भवन' तो जल की सतह की थोड़ी ही गहराई पर बना था। किंतु सत कबीर साहब का कहना है, कि देवताओं के लोक-के लोक भवसागर के जल के बहुत नीचे 'खाई' में बसे हैं—

अबु की रासि समुद्र कि खाई।
रवि ससि कोटी ततिस भाई॥ (रमैनी ४१।१)

शातकर्णी के भवन से उठती हुई अप्सराओं की संगीत-लहरी तो भूतल और गगनतल में सुनी जा सकती थी। किन्तु देवता, इतनी गहराई में हैं कि वहाँ की संगीत लहरी यहाँ तक नहीं पहुँच पाती। इतनी गहराई से समुद्र की ऊपरी सतह पर उनका आना कठिन है। उनका 'उथले-उथले' तैर पाना तो और कठिन है। तैरने की बात तो वे सोचते भी नहीं? उन्होंने उन्हीं लोकों को सब कुछ समझ कर वहाँ आसन जमा रखा है—

---

१. प्रश्न होता है कि 'बुद्धिमान मानव जानबूझ कर फिर अनर्थ कर मार्ग पर क्यों प्रवृत्त हो जाता है?' उत्तर में भाष्य में बतलाया गया कि वह प्रवर्तक 'एषणा' है—"ब्रह्म विद्वांश्चेत् तस्माद् पशुभावात् कर्तव्यता बन्धनरूपात् प्रतिमुच्यते, केनायंकारितः कर्मबन्धनाधिकारेऽवश इव प्रवर्तते, न पुनस्तद्विमोक्षणोपाये विद्याधिकार इति···· एवं तर्हुयचतां किं तत्, यत्प्रवृत्ति हेतु?" तदिहाभिधीयते— 'एषणा' कामः स।" स्वाभाविक्यामविद्यायां वर्तमाना बालाः पराचः कामाननुयन्ति" इति काठक श्रुतौ, स्मृतौ च "काम एषः क्रोध एष ( गी० ३।३७ ) इत्यादि, मानवे च सर्वा प्रवृत्तिः कामहेतुकावेति।" (बृ०भा० १।४।१६)।

२. पुरा स दर्भाङ्कुरमात्रवृत्तिश्चरन् मृगैः सार्धमृषिर्मघोना। समाधिभीतेन किलोपनीतः पञ्चाप्सरो यौवन कूटबन्धम्॥
—( रघुवंश १३।३९ )

३. वही ( १३।४० )।

भंवर जाल में आसन मांडा ...

एषणा ने उनको 'बाउर' बना दिया। वे इस बात को समझते हैं, फिर भी अपने को 'सयाना' मानते हैं। अपने को इतना 'सयाना' समझते हैं कि अध्यात्म विद्या को वे निकृष्ट वस्तु देखने हैं, और इसके पठन-पाठन पर रोक भी लगा देते हैं।[1] यह एषणा द्वारा प्रदत्त विपरीत दृष्टि का परिणाम है। वे सुख-दुःख के रहस्य को न समझ पाये। नहीं समझ सके कि वैषयिक सुख में दुःख भी घुना बैठा है—

चाहत सुख दुख संग न छांड़ा ॥
दुःखका मरम न कोई जाना।
बहुत भाँतिके जग भरमाया ॥
(रमैनी ४१.१-२)

इनसे गलती यह हुई थी कि इन्होंने तैरने का सही तरीका नहीं अपनाया था। नदी पार करने के जितने साधन हैं, वे जल के ऊपर-ऊपर तैरते हैं, गहराई में जाने से बचते हैं। कहीं कोई नाव गहराई में जाने लगती है, तो डांडी तेज कर दी जाती है ताकि वह ऊपरी सतह पर आ जावे।

पेलना अछत पेलु चलु बौरे। (कहरा २.१०)

शातकर्णी जब गहराई में जा रहे थे, तो उन्हें चाहिए था कि डांडी मार कर ऊपरी सतह पर आ जाय और उथले तैरें। किन्तु वे गहराई में उतरते चले गये। और डूब गये। शातकर्णी के समीप सुतीक्ष्ण भी तैर रहे थे। उन्हें तैरने का तरीका मालूम था। वे उथले ही तैरते रहे। शातकर्णी की तरह देवराज ने इन्हें भी गहराई का प्रलोभन दिया था। इन्द्र की भेजी अप्सराएं इन्हें भी नीचे खींच रही थीं। किन्तु उन्होंने निष्काम कर्म की डांडी तेज कर दीं और वे फिर से अनासक्ति की उथली सतह पर आ गये फिर उथले तैरते हुए भवसागर को पार कर लक्ष्य तक पहुंच गये किन्तु शातकर्णी और तैंतीस करोड़ देवताओं को 'एषणा' ने विपरीत दृष्टि दी थी। ये भवसागर पार न कर सके।

यह तो भव-सागर में बसे उन लोगों की बात हुई, जहाँ कण कण में सुख-ही-सुख भरा पड़ा है। साधारण दृष्टि से इनमें रहने वाले दया के पात्र नहीं हैं। किन्तु महनीय हैं। संत कबीर का हृदय इनके प्रति दयार्द्र इसलिए है कि वे आनन्द सिन्धु के एक बिन्दु के लघुतम अंश को ही सब कुछ समझ कर आत्यन्तिक सुख का कोई स्वाद न पा सके—

हृदय बसे तेहि राम न जाना। (रमैनी ४.१२)

भव-सागर के दूसरी ओर तो ऐसे-ऐसे स्थल हैं जहाँ यंत्रणा-ही-यंत्रणा भोगनी पड़ती है। वहाँ के ये शिकारी बहुत-ही कठोर होते हैं—

नहि तो ठाकुर है अतिदारुन करिहै चाल कुचालो हो।
बांध मारि दंड सभलेहें, छुटि है सभ मतवाली हो ॥
(कहरा १.६)

वे साँकलों में बांधकर कभी बड़े-बड़े काटों पर कभी तलवार की धार-से तोखे पत्थर के टुकड़ों पर, कभी लोहे की सूई के समान नुकीली कीलों पर खूब घसीटते हैं और ऊपर से पीटते भी जाते हैं। पीटते-पीटते डंडे टूट जाया करते हैं और शरीर के अंग-प्रत्यंग चिथड़े बन जाते हैं।[2]

जब ही सावत आनि पहुँचे, पीठ साँठ भल टुटि है हो!
(कहरा १.७)।

यह घसीटना, पीटना और फटकार तब-तक चलते रहते हैं, जब तक प्राणी होश नहीं गँवा देता।[3] होश आने पर फिर वही घसीटना, वही पीटना, वही फटकारना और वही लहूलुहान की स्थिति। प्राणी अधिकारी के पाँवों पर गिर कर छुटकारे की याचना करता है। किन्तु वहाँ कोई सुनवायी नहीं होती—

एक तो निहुरि पांव परि विनवै,
बिनति किये नहिं माने हो।
(कहरा १.८)।

संत कबीर का हृदय मानव जीवन के चार घंटों की असावधानी से होनेवाले इस दीर्घकाल व्यापी रोमांचक

---

१. देवराज इन्द्र ने दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि पर यह रोक लगायी थी, कि 'वे उपनिषद् विद्या का प्रवचन न करें।' यदि वे अब मेदिनी को पढ़ायेंगे, तो उनका शिर वर्म से काट डालेंगे। (बृ० उप० भाष्य २.५)

२. ३. (ब्रह्मपुराण २१५ अः)।

परिणामों से दहल उठा। वे इसे सावधान करने के लिए दुनिया में उतर आये—

जो चेतहु तो चेतहु रे भाई।
नहिं तो जीवहिं जम ले जाई॥
(रमैनी १८।२)।

वे डूबते में मानव के समक्ष खड़े हो गये। ढाढस बंधाया "किसी धोखेबाज ने तुझे सागर की गहराई में उतार दिया है। परंतु मानव, घबराओ नहीं। बाहर निकल आओ—

निकरि न बाहर आव।

यदि तुम स्वयं निकलने में असमर्थ हो तो मैं तुम्हें निकालने के लिए तुम्हारे सामने खड़ा हूं, आओ, उथल तैरो, अब गहराई में उतर कर मानव जन्म को व्यर्थ न करो—

हौं हजूर ठाढ़ो कहौं, धोखे न जन्म गमाउ।
(रमैनी २४)।

---

## शुभकामना-सन्देश

फोन : ६९४३२३

हेमवतीनन्दन बहुगुणा
एम० पी०

८१, लोदी स्टेट
नई दिल्ली-११०००३
१० जनवरी १९८३

प्रिय श्री शास्त्री जी,

आज दौरे से वापस आने पर आपका ६-१२-८२ का पत्र देखने को मिला, धन्यवाद। यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि 'श्रीकबीरशान्ति-संदेश' का अगला विशेषांक सद्गुरु कबीर साहेब पर प्रकाशित होने जा रहा है।

कबीर साहब केवल व्यक्ति न थे, बल्कि वह समाज सुधारक थे, मानवता, देश प्रेम और आपसी भाईचारे का जो सन्देश कबीर साहब ने हमें दिया वह कहीं और देखने को नहीं मिलता है।

वर्तमान युग में कबीर साहब जेसे सन्तों की रचनाओं की और अधिक आवश्यकता है। सफल प्रकाशन के लिए मेरी ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ स्वीकार करें।

भवदीय
हेमवती नन्दन बहुगुणा

श्री श्यामदास शास्त्री, 'सम्पादक'
श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था
सी. २६/१ सन्त कबीर रोड, वाराणसी, उ. प्र..

# चाचर

महन्त महावीर दास महामंत्री अखिल भारतीय कबीर पंथ समाज, ई० ८ ए० मुनीरका, नई दिल्ली ६७

श्री कबीर-शान्ति सदेश के सम्पादक श्री श्यामदास जी शास्त्री एवम् श्री हंसदास जी के अनुरोध पर मैं चाचर पर अपनी कुछ अनुभूति लिखने का प्रयास कर रहा हूं। सद्गुरु कबीर साहब ने जो शब्द "चाचर" के अन्तर्गत कहे हैं वे सभी आध्यात्मिक हैं, परन्तु शब्द से साधारणतः यही अर्थ समझ में आता है कि चाचर के शब्द श्रृंगार रस से भरे मनोहारी मायामिश्रित हैं।

चाचर के शब्द में सद्गुरु कबीर साहब ने "मोह" शब्द का पूर्ण विवेचन करते हुए बहुत से उदाहरण देकर यह सिद्ध किया है कि "माया" हर किसी न किसी को "मोह" में फँसाती ही रहती है। चाचर के शब्द को जब हम आध्यात्मिक दृष्टि से देखते हैं तो यह ज्ञान होता है कि 'माया" केवल नारी रूप ही नहीं है बल्कि 'माया' नर या नारी में समाकर "मोह" पैदा करती है, क्योंकि यदि पुरुष में 'मोह' नहीं पैदा हो तो नारी या धन दौलत किसी भी चीज में आसक्ति पैदा नहीं हो सकती है। सद्गुरु कबीर साहब ने इसीलिए "माया" को संबोधित किया है। यह "मन" नारी पुरुष दोनों रूप में होता है। जहाँ नारी पुरुष को अपने आत्मा में फँसाती है वहीं पुरुष भी नारी को अपने जाल में फँसाते हैं। इसलिए सद्गुरु कबीर साहब ने ज्ञान प्राप्त करने के हेतु मानव "मन" को संबोधित किया है। "मन" माया से इतना अधिक जुड़ा होता है कि वह बिना आध्यात्मिक ज्ञान के "मोह" में सर्वदा नाचता रहता है। इसका वर्णन बीजक ग्रंथ के चाचर संख्या एक में है, यद्यपि यह सरल भाषा में बहुत से उदाहरणों से युक्त है। फिर भी सद्गुरु कबीर साहब ने निचोड़ में मानव को सत्यानुभूति प्राप्त करने के लिए अपने ही अन्दर "मोह" को परखने की शिक्षा दी है। जब "मोह" हर मानव के अन्तकरण में पैदा होता है तब त्रिगुण ( सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण ) की शक्ति से मोहित करने लगता है, इसीलिए सतोगुणी ऋषि मुनि भी मोह जाल में फंसते रहे हैं।'

पदों पर अपनी भावना प्रकट करने के पहले यह स्पष्ट करने का प्रयास कर रहा हूं कि "चाचर" में "सद्गुरु कबीर साहब ने जीव को बतलाने की कृपा की है कि संसार में जीव किसी न किसी चीज में आसक्ति पैदा कर लेते हैं जिससे वे आत्मा और परमात्मा की सत्यानुभूति प्राप्त करने की शक्ति खो देती है। इसीलिए सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि "मृतक हो जो साधु, सो सद्गुरु को पावहीं" इससे स्पष्ट होता है कि आत्मा और परमात्मा की अनुभूति प्राप्त करने के लिए संसार से अपने को आसक्ति रहित बनाना ही पड़ेगा। इसीलिए "साधु" के लिए मृतक का उदाहरण दिया है, क्योंकि मृतक आसक्ति रहित, हो जाता है। अतः जीवित साधु, सन्त, महन्त को यह बताते हैं कि वे अपने को मृतक के समान किसी चीज में "मोह" पैदा न होने दें। "मोह" पैदा होने से बहुत सी कल्पनाएँ उत्पन्न होती रहती हैं जिससे मानव में नाना प्रकार के दोषों की उत्पत्ति होती रहती है और यही कारण है कि जीव आवागमन के चक्कर में दुःख सुख भोगता रहता है।

सद्गुरु कबीर साहब ने "चाचर" के शब्द द्वारा जीव को चेताते हुए बताया है कि अपने मन को समझा लो और "मोह" में फँसने से बचा लो, तभी मुक्ति की प्राप्ति संभव है:—

चाचर

खेलति माया मोहनी, मन बौरा हो।
जिन्ह जेर कियो संसार, समुझु मन बौरा हो॥ १॥

इस प्रथम पद द्वारा साफ कहा गया है कि माया मोहनी रूप में खेलती रहती है, अतः अरे मन, तू समझ कि संसार इसी मोहनी से अपने को सम्बन्धित कर आवागमन के चक्र में गिरफ्तार रहता है, और अन्य पद जो इस 'चाचर' (१) में है वह सभी बहुत तरह के उदाहरण से सम्बन्धित हैं। अन्तिम पद इस 'चाचर' का निम्नलिखित है।

कहहिं कबीर ते ऊबरे, मन बौरा हो।
जाहि न मोहसमाय, समुझु मन बौरा हो॥

सतगुरु कबीर साहब ने बतलाया है कि वही साधु, सन्त या जीव आवागमन के चक्र से उबर सकता है जो "मोह" के जाल में फंसकर किसी व्यक्ति या चीज में चाहे वह नारी

हो, नर हो या धन दौलत हो. उसमें आसक्ति न रखे आसक्ति ही मोह का महान् अस्त्र है जिससे मानव का मन नाना प्रकार की कल्पनाओं में फँस कर काम क्रोध-लोभ मोह आदि को अपना लेता है कि मृत्यु समय तक उसकी आसक्ति बनी रहती है। इस 'चाचर' शब्द से हमें ज्ञान प्राप्त करनी चाहिए कि बिन भक्ति करने वाले किसी व्यक्ति विशेष या धन आदि में आसक्ति न रखें और इसके लिए अपने मन को ऐसे समझाएं जिससे वह हर चीज की सत्यता को समझ सकें और इस प्रकार आसक्ति रहित बना लें जिस प्रकार मृतक शरीर में "माया" किसी चीज से सम्बन्धित नहीं रहती।

"चाचर" क्रमांक दो में सद्गुरु कबीर साहब सृष्टि के देवी देवता इत्यादि का उल्लेख करते हुए मन को समझने की ओर सकेत करते हैं कि देवी, देवता, तीर्थ, व्रत इत्यादि सभी आवागमन के चक्र में फँसाने वाले हैं। ये इस प्रकार से जीव को फँसाते हैं कि मन उसमें उलझ जाता है और लोभ मोह के चक्र में इस प्रकार घूमता रहता है कि वह सत्यानुभूति प्राप्त नहीं कर सकता। इस 'चाचर' का पहला पद इस प्रकार है:—

जारहु जग का नेहरा; मन बौरा हो।
जामें सोग संताप, समुझु मन बौरा हो॥

प्रथम पद द्वारा सतगुरु कबीर साहब कहते हैं कि शोक और संताप का कारण आसक्ति है इसीलिए वे कहते हैं कि हे मन, तुम संसार में जितनी वस्तुएं जीव इत्यादि देखते हो, ये तुम्हारे आत्मिक ज्ञान के लिए शून्य हैं इसीलिए संसार की हर चीज को मन से उतार कर आसक्ति रहित बनने की कोशिश करो। मन यदि समझ जाए कि किसी चीज में आसक्ति नहीं पैदा करनी चाहिए तभी परब्रह्म परमेश्वर अर्थात् सतपुरुष की अनुभूति प्राप्त करने की शक्ति पैदा कर सकता है और निर्विकार होकर आवागमन के चक्र से मुक्त हो सकता है। अन्तिम पद में सतगुरु कहते हैं:—

कहँहि कबीर जग भरमिया, मन बौरा हो।
तुम छांड़ेहु हरि के सेव, समुझु मन बौरा हो॥

सद्गुरु कबीर साहब अन्तिम पद सार रूप से कहते हैं कि मन संसार में भरमा हुआ है और प्रभु की भक्ति की ओर तनिक भी नहीं जाता। मन को समझाने के हेतु साधु सन इत्यादि को बतलाते हैं कि संसार के भ्रम में न पड़कर उसे समझें। इसका यह भावार्थ नहीं लगाना चाहिए कि उपयोग की वस्तु का व्यवहार न लिया जाय परन्तु उपयोग की वस्तुओं को समझ बूझ कर व्यवहार करना चाहिए न कि उनमें आसक्ति रखनी चाहिए। स्नान करना ये आवश्यक है तो तीर्थ में स्नान करने की आसक्ति रखना भी भ्रम में पड़ना है। पाँच तत्वों पचीस प्रकृतियों से शरीर संयुक्त रूप से काम करता है जो बाल्य अवस्था से वृद्ध अवस्था तक कई प्रकार का रूप बदलता है। सतगुरु कबीर साहब कहते हैं कि इसको जानकर समझ ले और किसी भी अवस्था में अपने में ही अपने प्रति या दूसरे के प्रति या किसी धनदौलत के प्रति मोह न करे तभी सत्यानुभूति प्राप्त हो सकती है और सत्यानुभूति होने से ही प्रभु की भक्ति अर्थात् आत्मा और परमात्मा का सत्यज्ञान प्राप्त हो सकता है।

सारांश—यहाँ यह व्यक्त करना चाहता हूं कि सतगुरु कबीर साहब ने 'चाचर' के दोनों शब्दों द्वारा हर मानव को भिन्न-भिन्न उदाहरणों द्वारा समझाते हुए बतलाते हैं कि अपने पागल मन को जो ससार के लोभ मोह में आसक्त होकर परब्रह्म परमेश्वर अर्थात् सतपुरुष की अनुभूति भक्ति द्वारा नहीं करते, वे बारम्बार जन्म मरण के चक्र में फँसे रहते हैं और आवागमन से मुक्त नहीं हो सकते। सतगुरु कबीर साहब ने सहज भाव से कहा है कि—

धारा तो दोनों भली, क्या गृही वैराग।
गृही दासातन करे, वैरागी अनुराग॥

इस प्रकार मानव अपने मन का आसक्ति रहित बनाकर आत्मा परमात्मा की अनुभूति करने की क्षमता प्राप्त कर सकता है। अतः सतगुरु के चाचर शब्द से हमें आसक्तिरहित होकर सतपुरुष की भक्ति करनी चाहिए।



# ज्ञान चौंतीसा : साहित्यिक विश्लेषण

[ डा० किशोरी लाल गुप्त, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट् सुधवै, वाराणसी ]

**विधा-विवेचन—**

ज्ञान चौंतीसा बीजक का एक अंश हैं। इसमें व्यंजन-वर्णोंके क्रमानुसार एक-एक वर्ण को लेकर छंद रचना की गई है। देवनागरी लिपि में कुल ३३ व्यंजन वर्ण हैं—

कवर्ग—५ ( क, ख, ग, घ, ङ )
चवर्ग—५ ( च, छ, ज, झ, ञ )
टवर्ग—५ ( ट, ठ, ड, ढ़, ण )
तवर्ग—५ ( त, थ, द, ध, न )
पवर्ग—५ ( प, फ, ब, भ, म )
अंतःस्थ—४ ( य, र, ल, व )
ऊष्म—४ ( श, ष, स, ह )

क्ष, त्र, ज्ञ स्वतंत्र व्यंजन न होकर संयुक्त व्यंजन हैं। क्ष=क्+ष्+अ। त्र=त्+र। ज्ञ=ज+ञ। यद्यपि बाल्यवास्था में इन्हें अंतःस्थ और ऊष्म के साथ अंत में बालकों को स्वतंत्र व्यंजन वर्ण के रूप में पढ़ाया जाता है, फिर भी ये तात्विक दृष्टि से स्वतंत्र व्यंजन वर्ण नहीं है। इन्हें पढ़ाया इसलिए जाता है कि इन संयुक्त वर्णों का लिखित रूप संयुक्त वर्ण जैसा नहीं प्रत्युत स्वतंत्र वर्ण जैसा होता है। संयुक्ताक्षरों में सभी सम्मिलित व्यंजन वर्ण साफ अलग-अलग दिखाई देते हैं। इनमें संयुक्त व्यंजन वर्ण अलग-अलग नहीं हैं। पुरखों ने इनके लिए अलग से स्वतंत्र चिह्न ही प्रदान कर दिया है। कबीर साहब को क्ष,त्र,ज्ञ का यह रहस्य ज्ञात था, अतः उन्होंने क्ष, त्र, ज्ञ को लेकर ज्ञानोपदेश वाले छंद नहीं लिखे। उन्होंने केवल तैंतीस व्यंजन वर्ण लिए।

तैंतीस व्यंजन वर्णों के आधार पर रचना का नाम 'ज्ञान तैंतीसा' होना चाहिए था, पर इसका नाम 'ज्ञान चौंतीसा है। एक संख्या बढ़ गई है। यह वर्ण प्रारंभ में ही बढ़ा है। यह है 'ऊँ' या 'ओं'। यह 'ओं' तीन वर्णों के मेल से बना है अ+उ+म्। अ विष्णु का प्रतीक है, उ ब्रह्मा का और म महेश शिव का। इस वर्ण में स्रष्टा, पालक, संहारक तीनों ब्रह्म-शक्तियाँ समाविष्ट हैं। वह संयुक्त वर्ण अत्यंत महत्व का है। यह नाद-ब्रह्म या प्रणव कहलाता है। इसीलिए गीता में कहा गया है—'ओ मित्येकाक्षरं ब्रह्म।' कहा जाता है पहले शब्द ही था, उसीसे सारी सृष्टि हुई। यह भारतीय मान्यता तो है ही, बाइबिल में भी प्रथमतः शब्द ( Word ) के ही होने की बात कही गई है। चूँकि 'ऊँ' नाद-ब्रह्म है अतः यह प्रत्येक मंत्र के आदि में लगा रहता है, यथा—ऊँ नमः शिवाय ॐ नमः भगवते वासुदेवाय। 'ॐ' के आदि में लग जाने से वाक्य मंत्र बन जाता है। अतः कबीर साहब ने इस रचना का प्रथम छंद ॐ से प्रारंभ करके इसे मंत्र बना दिया है।

ज्ञान चौंतीसा में छंदारंभ व्यंजन-क्रम से हुआ है। स्वर छोड़ दिए गए हैं। प्रथम छंद 'ओंकार' से प्रारंभ होता है। ओं स्वर हैं। स्वर ब्रह्म अद्वैत होता है, व्यंजन वर्ण द्वैत। व्यंजन जीव जैसा है, जिसका अस्तित्व विना स्वर ब्रह्म के अवलंबन के संभव नहीं। यह ज्ञानोपदेश जीव के लिए है अतः केवल व्यंजन वर्णों के आधार पर उपदेश-छंद हैं। व्यंजनों में एक स्वर कहाँ से आ गया? इसके समाधान के लिए इस ओंकार को भी व्यंजन रूप दे दिया गया। बीजक की पुरानी हस्तलिखित प्रतियाँ कैथी लिपि में हैं। उनमें 'ओं' का लिखित रूप 'वो ओं' मिलता है, ऐसा बीजक के प्रसिद्ध टीकाकार विचारदास साहब का मत है। मेरी समझ से 'वो ओं' ओं या ॐ का कैथी रूप नहीं है। यह उसका दुहराया हुआ रूप है, जहाँ प्रथम रूप व्यंजन का है तथा दूसरा उसका वास्तविक स्वर रूप है। 'वो' माया-लिप्त ब्रह्म है, ऊँ' निर्लिप्त। मैं समझता हूँ कि 'वो ओं' का ठीक लिखित रूप 'वों ओं' होना चाहिए और यदि उसे पूर्णतया निर्लिप्त कर दिया जाय तो उनका ठीक रूप होगा 'ओं ओं'। अस्तु।

छंदारंभ में जो व्यंजन वर्ण आए हैं, वे दुहरा कर आए है, यथा -

काका कमल किरन महँ पावे
ससि विगासत संपुट नहि आवे

प्राचीन हस्त लेखों में यह दुहराया हुआ वर्ण दो प्रकार सेमिलता है 'का का' 'खा खा' या 'कक्का' 'खख्खा'। विचार दास जी ने साहब 'का का' 'खा खा' पाठ ही स्वीकार किया है। मैं समझता हूँ 'क क्का' 'ख ख्खा' पाठ ही ठीक है, क्योंकि यह बारहखड़ी की ओर व्यंजन वर्णों में लगी 'अ आ, इ ई, उ ऊ, ए ऐ, ओ औ, अं अः की बारह मात्राओं की ओर संकेत करता है। वास्तविक रूप 'क का' होगा, पर छंदानुरोध से इसे 'कक्का' करना पड़ता है। लड़कपन में वर्ण-बोध करने वाले विद्यार्थी 'क का कि की कु कू' न कहकर 'कक्का, किक्की, कुक्कू' ही कहते हैं।

छंदारंभ में जो ये व्यंजन आए हैं, वे निरर्थक हैं। वाक्य में उनका कोई अर्थ नहीं है, यथा—

डा डा डर उपजे डर सोई
डरही में डर राखु समोई
जो डर डरे, डरहि फिरि आवै
डरही में फिरि डरहि समावै

यहाँ 'डा डा' का कोई अर्थ नहीं। यही तो 'कबीर की भरती' है।

जिस व्यंजन से जो छंद प्रारंभ हुआ है, वह व्यंजन उस छंद के शब्दों में बार बार प्रयुक्त होकर नाद-सौंदर्य की सृष्टि करता है। यह अनुप्रास नामक शब्दालंकार है। ऊपर उद्धृत छंद में ११ बार ड आया है।

ङ, ञ, ण व्यंजनों के स्थान पर पुराने लोग प्रायः 'न' का प्रयोग करते थे। अतः इस ज्ञान-चौंतीसा में भी चार छंदों का आरंभ न से हुआ है—ङ, ञ, ण तथा न वाले छंद।

'ञ' वाले छंद के रूप में दो छंद आए हैं। एक तो यह साखी है—

नाना निगर ( ह ) सनेहु करु, निरूवार संदेहु
नहीं देखि नहि भजिए, परम समानय येहु

दूसरा इसके आगे की यह चौपाई है—

नहि देखिए नहि आहु भजाऊ
जहाँ नहीं तहाँ तन-मन लाऊ
जहाँ नहीं तहाँ सभ किछु जानी
जहाँ नहीं तहँ ले पहिचानी

मैं इसे कलागत दोष मानता हूँ। जैसे सब वर्णों के लिए एक ही छंद हैं, वैसे ही यहाँ भी एक ही छंद होना चाहिए था। एक बात और। इतनी चौपाइयों के बीच में एक दोहा आ गया है, यह भी अनमेल है।

इसी प्रकार 'न' वर्ग से प्रारंभ होने वाला छंद भी सदोष है क्योंकि यह आधा ही है—

चौथे वो नाना महँ जाई
राम का गदहा हो खर खाई

एक तो यह छंद आधा अधूरा है, इसमें दो चरण और होने चाहिए थे; दूसरे इसमें सामान्य पद्धति का परित्याग भी हो गया है। इसे 'ना ना' या 'नन्ना' से शुरू होना चाहिए था; यह शुरू हो रहा है 'चौथे वो' से; नाना तो इसके आगे आ रहा है। 'नाना' यहाँ सार्थक भी है; का का, खा खा, आदि की तरह निरर्थक नहीं। 'नाना महँ जाई' का अर्थ है जीव भगवान का भजन न करने के कारण नाना योनियों में बार बार जन्म लेता हुआ भटकता फिरता है। है तो यह राम का ही अंश, पर दैव दुर्विपाक से गधा होकर घास पात भी खा रहा है।

'कबीर की इस शैली में संतों ने प्रभूत रचना की है। जायसी को अखरावट इसी शैली की रचना है। यह संत काव्य की एक विधा ही है।

छंद-विचार—

ज्ञान-चौंतीसा में तीन प्रकार के छंद प्रयुक्त हैं—

१. चौपाई—१६ मात्राओं का छंद—

ओं ओंकार आदि जो जाने
लिखि कैं मेटे ताहि सो माने
ओं ओंकार कहै सभ कोई
जिन्हि वह लाग सो विरले होई

एक अर्द्धाली १५ मात्राओं की भी है—

मूये एक जाँय तजि घना
मरे इत्यादिक ते के गना

२. पद्धरी—१५ मात्राओं का छंद। चौपाई का अंतिम वर्ण गुरु होता है। यदि उसे ह्रस्व कर दिया जाय तो यह १५ मात्राओं का पद्धरि छद बन जाता है। प्राचीन

आख्यान काव्यों में इसका बहुत प्रयोग हुआ है। सरवन का गीत गाने वाले भिखमंगे इसी छंद का प्रयोग कर के छंदांत में 'हरगंगा' जोड़ देते हैं। चौपाई में लिखित काव्यों में भी यत्र तत्र पद्धरि का मेल मिल जाता है। यह स्थिति यहाँ भी है। मूल रचना चौपाई छंदों में ही है। इसमें भी केवल तीन अर्द्धालियाँ पद्धरी छंद में हैं—

(क) गा गा गुरु के वचनहिं मान
दूसर सब्द करी नहिं कान

(ख) झा झा अरुझि अरुझि कित जान
हींड़त ढूढ़त जाहिं परान

(ग) ढा ढा ढूँढ़त हो कित जान
हींड़त ढूँढ़त जाहिं परान

३. दोहा—समस्त रचना में एक दोहा भी है, जो पीछे उद्धृत किया जा चुका है।

रचना मूलतः चौपाई छंदों में ही है। पद्धरि तो उसमें रँग जाती है। दोहा अनमिल बना रह गया है।

संख्या की दृष्टि से सब मिलाकर ज्ञान चौंतीसा में कुल ३४ छंद हैं।

तत्त्व-दर्शन—

संक्षेप में ज्ञान-चौंतीसा का कथ्य यह है—

१. 'ॐ' सभी कहते हैं, पर बिरले लोगों ने ही उसे देखा है।

२. 'ॐ' सहस्रदल-कमल-स्थित किंजल्क में देखा जा सकता है।

३. जीव परम प्रभु को छोड़कर दशों दिशाओं में दौड़ता फिरता है।

४. गुरु-वचन मानो, दूसरों की बात में न पड़ो।

५. परम प्रभु घट ही में है, उसे वहीं खोजो।

६. यह संसार प्रभु का बनाया चित्र है। इस चित्र में मत अनुरक्त होओ इसके बनाने वाले चित्रकार में रत होओ।

७. जो उस प्रभु में रत हो जाते हैं, वे फिर वहीं अटल हो जाते हैं, वहाँ से टलते नहीं।

८. राम का भजन न करने से जीव अनेक योनियों में जन्म लेता फिरता है। राम का होता हुआ भी वह गदहा होकर घास फूस चरता फिरता है।

९. संसार शून्य के समान है, नश्वर है।

१०. हाय हाय करते सारा जीवन बीत जाता है, मृत्यु आ जाती है। जीते जी जो समझना है समझ लो। मरने पर कौन समझाएगा और कौन समझेगा।

'ज्ञान-चौंतीसा' बीजक का अत्यंत महत्वपूर्ण अंश है। इससे यह भी स्पष्ट है कि कबीर साहब न तो निरक्षर थे, न अविद्वान ही। भले ही उन्होंने मसि कागद न छुई हो, हाथ सें कलम न गही हो। यह लेखन का काम उनके शिष्यगण उनके लिए करते सकते हैं।



मनुष्य योनि प्राप्त कर यदि कल्याण का मार्ग प्रशस्त नहीं किया गया तो चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते हुए नाना प्रकार के कष्ट सहने पड़ेंगे।

—सद्गुरु कबीर

# संत कबीर और आज का समाज

[ परिपूर्णानन्द वर्म्मा ]

संत कबीर सिद्ध योगिराज और दूर-द्रष्टा भी थे। ४०० वर्ष पूर्व सामाजिक कुरीतियों तथा अंध विश्वासों के विरुद्ध उन्होंने जो आवाज उठायी थी, वह आज भी हमारे लिए उसी प्रकार उपयोगी और पथप्रदर्शक हैं जैसे पहले थी। छुआछूत के विषय में उन्होंने कहा था कि "पाडेजी तुम छुआछूत से इतना क्यों घबड़ाते हो। छूत से ही समूची दुनिया पैदा हुई। क्या मेरे शरीर में रक्त बह रहा है और तुम्हारे शरीर में दूध ? तुम ब्राह्मण कैसे हुए और मैं शूद्र कैसे हो गया ? तुम भी तो गन्दे गर्भ में से निकले हो जैसे मैं। जन्म और मरण दोनों समय आदमी अपवित्र अवस्था में रहता है। फिर यह कैसा छुआछूत। ईश्वर के प्रकाश के अलावा और क्या पवित्र है।" इसी प्रकार सम्प्रदायवाद के भिन्न-भिन्न मतावलम्बियों के लिये उन्होंने कहा कि "पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ"। धर्म ग्रंथ रटते, घोखते लोग मर जाते हैं, किन्तु, वे धर्म का असली तत्त्व नहीं समझ पाते। उनके हृदय में एक बूंद भी प्रेम नहीं है। केवल जीभ पर सब कुछ है। असली रहस्य की उन्हें जानकारी नहीं है।

पलटू साहब को दूसरा कबीर कहते थे। इनका जन्म सन् १७५७ में हुआ था मृत्यु सन् १८२५ में। कबीर साहब के ऊपर लिखे विचारों को दुहराते हुए उन्होंने कहा था "उच्च वर्ण वालों ने नीच वर्ण वालों को नष्ट कर दिया है और इस क्रिया में उन्होंने अपने को भी नष्ट कर दिया है। जिसने सत्य को जान लिया है वह अपने देश और पराये देश में कोई अन्तर नहीं समझता। सत्य केवल एक है और वही सर्वोच्च सत्य केवल अपने अन्तस्तल में देखा जा सकता है। आत्मसंयम से बढ़कर न कोई आध्यात्मिक संयम है न शक्ति। ईश्वर किसी एक मजहब की सम्पत्ति नहीं है। अपनी जातिपाँति तथा साम्प्रदायिकता से ऊपर उठो। विनम्र बनो और दूसरों की सेवा करो। विनम्रता ही धर्म है। सहज स्वभाव से ही सत्य को देख पाओगे। सत्य तुम्हारे भीतर बैठा है। बाहर क्यों ढूंढ़ते हो। जिसने मनुष्य में स्थित ईश्वर को नहीं देखा—नहीं पहचाना, उसका जीवन निरर्थक है।"

### ब्रह्म सर्वत्र है

कबीर साहब रामानन्द के शिष्य थे। सन्त रामानन्द का जन्म प्रयाग में हुआ था और श्री रामानुजाचार्य की सन्त परम्परा में पाँचवीं पीढ़ी में थे। उनके विषय में प्रसिद्ध है कि योग तथा दर्शन की शिक्षा उन्होंने उत्तर भारत से ग्रहण की तथा भक्तिमार्ग दक्षिण भारत से प्राप्त किया था। एक दोहे के अनुसार "भक्ति दक्षिण में पैदा हुई. रामानन्द उसे उत्तर भारत ले आये और कबीर साहब ने इसे सातो महाद्वीप तथा भुवन के ९ मण्डलों में फैला दिया।" रामानन्द ईश्वर को "राम" नाम से सम्बोधित करते थे। यही परिपाटी कबीर साहब ने भी रखी। कबीर साहब ने ईश्वर के लिये लिखा है—

भारी कहूँ तो बहु डरूँ. हलका कहूँ तो झूठ।
मैं का जानू राम को नेना कबहुं न दीठ॥

रामानन्द कहते थेः—

"मैं कहाँ जाऊँ। संसार का सब उत्सव तथा संगीत मेरे घर में हो रहा है। मेरा दिल कहीं जाना नहीं चाहता। मेरे मन ने अपने पंख सिकोड़ लिये हैं। वह शान्त हो गया है। ब्रह्म का चन्दन पुष्प से पूजा करने जाना चाहता था पर मेरे गुरु ने प्रकट कर दिया कि ब्रह्म मेरे हृदय के भीतर बैठा है। मैं जहाँ जाता हूं पानी और पत्थर को पूजित होते देखता हूं पर इनमें, सबमें, सर्वत्र तेरा ही वास है। रामानन्द अपने स्वामी ब्रह्म में खो गया है, लुप्त हो गया है। गुरु-वाक्य ही करोड़ों बंधनों को नष्ट करता है।"

रामानन्द की शिष्यों की टोली में रविदास मोची, सेनानाई, धन्ना जाट तथा जुलाहे कबीर साहब बहुत प्रसिद्ध हैं। वैसे इनके अनेक महान् शिष्य थे जैसे राजस्थान की एकछोटी रियासत के राजा पीपा ( जन्म सन् १४२५ ) जो द्वारका के पास पीपावत् स्थानं बनाकर वहीं अपनी छोटी

पत्नी के साथ भजन में लीन हो गये थे।

सन्त कबीर का जन्म सन् १३५८ में हुआ था। कबीर साहब जातपाँत, छुआछूत, तीर्थयात्रा, मूर्त्ति-पूजा, धर्म के बाहरी आडम्बर, इन सबके विरुद्ध थे। सम्प्रदायवाद तथा फिर्कापरस्ती के कट्टर विरोधी थे। वे सरल, स्वाभाविक, सादा जीवन बिताने के हिमायती थे। वे कहते थे कि सत्य का वास हृदय में है, बाहरी आडम्बर में नहीं। हर एक प्राणी में भगवान का वास है। हर एक से प्रेम करो। किसी से घृणा न करो। हिन्दू मुसलमान आपस में झगड़ते क्यों हैं? अपने अभिमान, अहंकार, असत्य तथा अविश्वास को दूर करो। तभी जीवन सफल होगा। जीवन क्षणभंगुर है। समय नष्ट न करो। जितने दिन जीवन है, मूल्यवान् है। तुम्हारे हृदय में ईश्वर का वास है। उसी ईश्वर के पास जाओ। मरने से क्या डरना।

जिस मरने से जग डरैं, मेरे मन आनन्द।
कब मरिहों, कब भेटिहों, पूरन परमानन्द ॥

किसी से भेदभाव न करो। जब तुम्हारे हृदय में ईश्वर का वास है और वह किसी से भेदभाव नहीं करता तो तुम क्यों करते हो। बाहर और भीतर में कोई भेद नहीं है। ईश्वर सर्वत्र है।"

कबीर साहब के इसी महान् उपदेश को अपना कर गुरुग्रंथसाहब में लगभग ८० पद सम्मिलित है तथा तीस रविदास (रैदास) के। कबीर साहब के दो महान् अनुयायी थे, वैश्य धर्मदास साहब जिन्होंने मध्यभारत के छत्तीसगढ़ में अपना आश्रम स्थापित किया था तथा दूसरे थे इलाहाबाद जिले के मलूकदास सा. (सन् १५७४-१६८२)। इन दोनों ने गृहस्थ आश्रम में रहकर कबीर साहब का संदेश चारो ओर फैलाया था। मलूकदास साहब के अनुयायियों का मठ बिहार से काबुल तक फैला हुआ है।

कबीर साहब के अति विख्यात अनुयायी थे दादू जो सन् १५४४ में अहमदाबाद में पैदा हुए थे। सन् १६०३ में इनका देहावसान राजस्थान के नारायण ग्राम में हुआ था। वहीं इनका मुख्य पीठ है। इनके वचनों में कबीर साहब की छाप भरी पड़ी है। दादू ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए थे पर वे जातिपाँति, छुआछूत, तथा धार्मिक भेदभाव के कट्टर विरोधी थे। वे अपने जीवन काल में 'विश्व धर्म" अर्थात् सब मजहबों की एकता की स्थापना का प्रयत्न करते रहे वास्तव में कबीर के मत के सबसे बड़े प्रचारक थे दादू और मलूकदास। दादू के दो महान् कार्य और भी हैं। वे हिन्दी भाषा के अधिकतम उपयोग और उसी में पद-रचना का सबसे आग्रह करते थे। कबीर साहब के समान हिन्दू और मुसलमान दोनों उनके शिष्य थे। उन्हीं के अनुयायियों में प्रसिद्ध फकीर रज्जब हुए हैं जिनकी अमरवाणी सदैव गूंजती रहेगी। रज्जब हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव जानते ही नहीं थे। आज भी उनके सम्प्रदाय की गद्दी पर पहुँचा हुआ फकीर, चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, बैठता है।

रज्जब कहते थे कि "चारो ओर अंधकार है। केवल हमारे हृदय के भीतर प्रकाश है। संन्यास से या शरीर को तपाने से क्या लाभ। क्या वे आन्तरिक प्रकाश के निकट ला सकते हैं? तेरी उपासना जीवन की मस्जिद या मंदिर में ही पूर्ण होगी। आज संसार में जितने लोग हैं उतने ही सम्प्रदाय हैं। इसीलिये आध्यात्मिक प्रयत्न में इतनी विभिन्नता आ गयी है। गंगा की पवित्र धारा नारायण के वरदायक चरणों से निकली है पर नारायण का चरण हर एक भक्त के हृदय में है। इसीलिये हर एक के हृदय से गंगारूपी विचारधारा बह रही है। यदि मैं संसार की सभी विचार-धाराओं को एक में मिला सकूं तो यह संसार में सबसे पवित्र संगम होगा। यह विश्व वेद है। सृष्टि कुरान है। पण्डित और काजी धोखा खा रहे हैं अगर वे सोचते हैं कि यह समूचा जगत् इन पुस्तकों के सूखे पन्ने में बन्द है। उपासक का हृदय ही वह पृष्ठ है जिस पर जीवन के अक्षरों से विश्व व्यापी सत्य की गाथा लिखी जा रही है"

ऊपर लिखी पंक्तियों से बढ़कर आज के युग के लिये, विशेष कर भारत के लिये और क्या उपदेश हो सकता है। कबीर साहब ने सब धर्म समन्वय, मित्रता, आपसी प्रेम, सत्य व्यवहार, सादा तथा सच्चरित्र जीवन तथा ईश्वर में अटूट श्रद्धा की जो धारा बहा दी है उसी में से स्नान कर पलटू, मलूक, दादू, रज्जब ऐसे महान् संत निकले। इतने महान् सन्तों के देश भारत में अब भी छुआछूत, धार्मिक विवाद, परस्पर द्वेष, अनुशासन तथा विनय का अभाव हमारे लिये लज्जा की बात है। आइये, कबीर साहब की शरण में चल कर अपने देश को पतन की ओर जाने से बचा लें। ●

# महात्मा गाँधी और कबीर साहब

डा० पद्मावती देवी त्रिपाठी, श्री सनातन धर्म संस्कृत महाविद्यालय मुक्तीश्वरनाथ हाष्टपुर, गोरखपुर

गाँधी और कबीर साहब दोनो ही अपने युग के प्रष्टा एवं सचेतक रहे हैं। दोनो का ही जीवनकाल समाज का संघर्षमय एव जटिल काल रहा है। गाँधी जी की उत्पत्ति उश समय हुई जब भारत ब्रिटिश शासन की क्रूर दासता में जकड़ा हुआ था। इस देश को मूल जनता को एक ऐसे पथप्रदर्शक व्यक्ति की आवश्यकता थी जो अपने को समाज के अनुकूल ढाल कर समाज का दिशासङ्केतक बने, यह कार्य महात्मा गाँधी ने किया।

कबीर साहब का प्रादुर्भाव भी मध्य युग के ऐसे समाज में हुआ जो विभिन्न मतों एवं सम्प्रदायों में विभक्त था। चौदहवीं से सत्रहवीं सदी तक संतो एवं भक्तों का एक वर्ग जो उत्तरी भारत से लेकर वंग प्रान्त तक पनपा वह कई प्रकार से अभूतपूर्व था। प्राचीनकाल में आत्मा परमात्मा एवं विश्व के विषय में चिंतन अधिकांशतः गिने चुने विद्वान एवं दार्शनिकों तक ही सीमित था। सामान्य जनता आस्तिकता की ओर से विमुख तो न थी फिर भी उसका उद्देश्य परलोक सँवारना न था, परन्तु जिस समय कबीर सा: का प्राकट्य हुआ उस समय आत्मा परमात्मा एवं विश्व-विषयक चिन्तन दार्शनिक विद्वान् ही नहीं बल्कि शास्त्रों की उपेक्षा करनेवाली साधुमण्डलियाँ कर रही थीं। इनमें शामिल होने वाले लोग सामान्य जनता से आये थे। इनमें एक कबीर साहब भी थे जिन्होंने हिन्दू समाज को एक अभूत पूर्व नये मार्ग पर ले जाने का प्रयास किया। भारत में जन्म लेने वाला प्रत्येक मत अपने पूर्ववर्ती मतों से पूर्णतया प्रभावित रहा है, इसलिए विभिन्न धर्मों के होते हुए भी भारतीय संस्कृति एवं समाज की मूल एकता में कभी कोई अन्तर नहीं आया। प्रत्येक धर्म में ईश्वर प्राप्ति के साधन भले ही भिन्न रहे हों, परन्तु साध्य सबका एक ही रहा। ऊपरी भेदों के अन्दर एक प्रकार की एकता जीवित रही। गाँधी जी एवं कबीर साहब दोनो ही बाह्याडम्बर का त्याग कर एकात्ममानववाद की चर्चा करते हैं। दोनों के ही धार्मिक भाव उदार थे।

कबीर साहब का कहना था:—

> एकै मटिया एक कुम्हरा।
> एक सबन का सिरजन हारा॥

वेद, पुराण तथा कुरान सभी उस एक मात्र सत्य का प्रतिपादन करते हैं, यह बात अलग है कि उनके कहने का ढंग भिन्न है। सच्ची स्थिति न हिन्दू समझता है न मुसलमान और न ही अन्य सम्प्रदायवादी जो बाह्याडम्बर को ही सब कुछ मानते हैं। गाँधी जी की धार्मिक भावना बड़ी उदार थी "ईश्वर अल्ला तेरो नाम" की ध्वनि का उद्घोष करके इन्होने भी साम्प्रदायिकता कटुता को दूर करना चाहा था। कबीर साहब को अपने विरोधियों का भय नहीं था—

> कबीर तू काहे डरै, सिर पर हरिका हाथ।

मानव को मानव से अलग करने वाली भेद की सभी बातों को कबीर साहब ने अन्याय युक्त एवं सच्चे धर्म के प्रतिकूल समझा। आत्मविस्तार मनुष्य को निर्भय बना देता है और गाँधी जी को तो इसी भाव के पीछे अपने नश्वर पार्थिव देह का परित्याग भी करना पड़ा। कबीर साहब ने अपने समय में व्याप्त हिन्दू धर्माश्रित विभिन्न सम्प्रदायों का विरोध किया। उन्हें बाह्याडम्बर से चिढ़ थी। गाँधी जी भी जाति गत एकता एवं छूआछूत को लेकर आजीवन संघर्ष करते रहे।

गाँधी जी एवं कबीर साहब दोनों के आराध्य 'राम' थे। उनमें न तो गाँधी ने ही दाशरथि राम की चर्चा की और न कबीर साहब ने ही, बल्कि कबीर साहब ने तो यहाँ तक कहा—

> दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना।
> रामनाम कै मरम है आना॥

गाँधी के आराध्य भी वही राम थे जो प्रत्येक जीवात्मा में रमते रहते हैं। उन्हीं को हिन्दू राम तथा मुसलमान अल्लाह कहते हैं। कबीर साहब विशुद्ध आस्तिक थे किन्तु निराकार के उपासक थे। उन्होंने सज्जन व्यक्तियों एवं संतों को बहुत ही ऊँचा स्थान दिया था।

निराकार की आरसी, संतन ही को देह।
एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाय॥

यह कबीर साहब का सिद्धान्त था। उन्होंने परमात्मा के जिस रूप को स्वीकार किया था वह शङ्कराचार्य तथा गोरखनाथ से भिन्न नहीं था, अर्थात् वे नाम-रूप गुण रहित परमात्मा के उपासक थे।

कबीर साहब जिस राम रहीम की चर्चा करते हैं वह अवतारी नहीं अपितु सृष्टि में व्याप्त सृष्टि का ही रूप हैं। कहीं-कहीं उन्होंने परमात्मा के कुछ रूप चित्र भी खींचे हैं। उनके सामने यह दुविधा न थी कि वे रामानन्द के निराकार राम को माने या पुराणों में वर्णित साकार को।

कबीर साहब का ऐसा दृढ़ विश्वास था कि प्रभु का सत्स्वरूप ज्ञान एवं अनुभव के द्वारा ही जाना जा सकता है, परन्तु उनके ज्ञान का तात्पर्य पुस्तकीय ज्ञान से न था। वेद पुराण के पठन मात्र से कोई ज्ञानी बन सकता है इसको वे नहीं मानते। वे मनुष्य के अपने अनुभव एवं ज्ञान के विस्तार को मानते हैं तथा यह भी मानते हैं कि इस ज्ञान के सहारे ईश्वर के रहस्य को भी समझा जा सकता है। 'एकै आखर प्रेम का पढ़ने' वाला पण्डित होता है। 'राम' का नाम जपना तो कबीर साहब का अच्छा लगता था, परन्तु तोते की तरह नहीं बल्कि परमात्मा के विषय में चिंतन तथा अपनी आत्मा से उसके तादात्म्य के अनुभव को ही वे सच्ची भक्ति मानते थे। एक स्थान पर वे रहते हैं—यदि 'राम' का नाम लेने से मुक्ति मिल जाती तो लोग शक्कर खाते क्यों? नाम लेकर ही सन्तोष कर लेते।

राम के कहे जगत गति पावे खाँड़ कहे मुँह मीठा।

अतएव ज्ञान के बिना प्रभु को समझा नहीं जा सकता है। इसी प्रकार भक्ति के लिए दृढ़ विश्वास एवं भावना की आवश्यकता है। भक्ति निष्काम होनी चाहिए—
"जब लगि भक्ति सकामता, तब लगि निष्फल सेव।"
अथवा "कामी क्रोधी लालची इनते भक्ति न होय।"

गाँधी जी भी निष्काम भक्ति एवं अनुभवगम्य कृत्य पर ही विश्वास करते थे। इस स्थल पर हम गाँधी जी को कबीर साहब से प्रभावित मान सकते हैं।

अपने युग में होने वाली हिंसा का कबीर साहब ने जम कर विरोध किया। मध्ययुग के सुधारकों ने मनुष्य जीवन में अहिंसा के सिद्धांत के पालन पर विशेष बल दिया। गुरु नानक तथा कबीर साहब दोनों ही सन्तों ने हिन्दुओं तथा मुसलमानों में बलि के नाम पर होने वाली हिंसा का कड़ा प्रतिरोध किया।

जीव वधत अरु धरम कहत हौ,
अधरम कहाँ है भाई।
आपन तो मुनि जन ह्वै बैठे,
कासनि कहत कसाई॥ (क० ग्रं०)

अहिंसा एवं सत्य का व्रत गाँधी जी ने आजीवन धारण किया। यहाँ तक कि गाँधी जी वैचारिक हिंसा के भी पक्ष में न थे। मनसा वाचा कर्मणा तीनों प्रकार की हिंसा का परित्याग कर अहिंसा व्रत का पालन करते थे। कबीर साहब के जीवन की विशेषता हमें आधुनिक युग में गाँधी में देखने को मिलती है। वह यह कि उन्होंने अपने आदर्शों एवं सिद्धांतो को शब्दों तक ही सीमित नहीं रखा उसे व्यवहारिक रूप भी दिया। कबीर सा: स्वयं भी कोरे उपदेशक न थे। इसलिए उन्हें ऐसे लोगों से चिढ़ थी जो कहते कुछ और करते कुछ हैं। जहाँ कबीर साहब ने प्रचलित मतवादों का खण्डन किया वहीं उन्होंने अपने स्फुट विचार भी व्यक्त किये। कबीर साहब जनता के बाह्याडम्बर से मुक्त कराना चाहते थे सीधी राह पर लाना उनका प्रमुख उद्देश्य था। इस बात का उन्हें क्षोभ था कि लोग हितकारी सत्य भाषण को पसन्द नहीं करते हैं और अहितकारी झूठ पर तुरन्त विश्वास कर लेते हैं।

साँच कहूँ तो मारन धावै, झूठे जग पतिआवै॥

वस्तुत कबीर साहब मानव हितैषी तथा निर्भीक उपदेष्टा संत थे। गाँधी ने भी अधिकांशत: इनके प्रशस्त मार्ग का अनुशीलन किया। गाँधी जी अहिंसा के प्रबल समर्थक थे। वह जीवन पर्यन्त सच्चे समाजवाद (राम-राज्य) की स्थापना के लिए संघर्ष करते रहे। जाति भेद एवं वर्ग-भेद को मिटाने की सम्यक् कोशिश की। उन्होंने समता का नारा ही नहीं लगाया बल्कि हरिजन बस्ती में अपना आश्रम बना कर हिन्दू समाज के हीन वर्ग के साथ अपने मूल्यवान् जीवन का एक भाग भी बिताया।

कबीर साहब का विचार था कि एक जैसे मानव के लिए अनेक धर्मों का होना तर्क संगत नहीं है। सच्चा धर्म तो सबसे परे है। कबीर साहब भारतीय विचारधारा बाह्याडम्बर हटाकर सच्चे अर्थों में मानव-प्रेम की भावना विकसित करने में समर्थ हुए। गाँधी जी का विचार था कि पाप से घृणा करो, पापी से नहीं।

कबीर साहब के सामने एक महान् कठिनाई थी कि मध्य युग में आधुनिक विचारों के साथ प्रकट हुए थे। पौधे के समान विचारों को भी पनपने के लिए उचित वातावरण चाहिए। उनका काल धार्मिक अंधविश्वास का काल था, बौद्धिकता का नहीं। जनता के विश्वास एवं भावनाओं का सहारा प्रिय था जब कि कबीर साहब सोचने समझने का आग्रह करते रहे।

तू कहता कागद की लेखी
मैं कहता हूँ आखिन की देखी।

धर्म के नाम पर प्रचलित अन्धविश्वासों को उखाड़ फेंकना समाज से जूझना होता है। ऐसा साहस समाज में कतिपय लोग ही कर पाते हैं। कबीर साहब को भी प्रताड़ना झेलनी पड़ी थी।

साँच कहूँ तो मारा जाऊँ।

सादा जीवन उच्च विचार भारतीय दर्शन का आदर्श रहा है। इस आदर्श का पालन करने से मनुष्य स्वावलम्बी बनता है। स्वावलम्बन अहिंसा का मूल मंत्र हैं। अहिंसा से शोषण की प्रवृत्ति का नाश होता है। अहिंसक व्यक्ति दूसरे की भावना का आदर करता है। वह मानव मात्र से, क्या जीव मात्र से प्रेम करता है। परन्तु अहिंसा का भाव कायरता से नहीं है और धर्म निरपेक्षता का अधर्मी होना नहीं है। अहिंसा एवं धार्मिक समन्वय को हमें सही अर्थों में समझना होगा। गाँधी जी ने अहिंसा एवं कायरता के सम्बन्ध में यहाँ तक कहा कि हिंसा कायरता से श्रेष्ठ है।

हम यों भी कह सकते हैं कि वर्तमान काल में कबीर के प्रगतिशील विचारों को गाँधी जी ने व्यावहारिक रूप दे दिया। इन्होंने कुरान तथा गीता का उद्धरण देकर मानवीय सत्य को 'सत्य' धर्म का रूप दिया, विचारों को बौद्धिक आधार से हटा कर विश्वास पर टिका दिया। एक तरफ मुसलमानों के लिए गाँधी हिन्दू महात्मा बन गये तथा इसी ओर कुरान का उदाहरण देने वाले गाँधी कट्टरपंथी हिन्दुओं की दृष्टि में पथभ्रष्ट हो गये।

मध्ययुग में जो सफलता कबीर साहब को मिली उतनी ही वर्तमान युग में गाँधी जी भी पा सके। गाँधी जी विभिन्नता में एकता लाने का प्रयास कर रहे थे तथा कबीर साहब एकता से विभिन्नता मिटा रहे थे।

दोनो ही महात्माओं की कार्य प्रणाली में अन्तर था। गाँधी जी समाज-सुधारक राष्ट्रीय नेता थे तथा कबीर साहब धर्म-विचारक और दार्शनिक थे। यह अलग बात है कि कबीर साहब ने भी सामाजिक कुरीतियों का जमकर विरोध किया तथा सच्चे अर्थों में समाजवाद के पोषक थे।

जो कबीर अधिका गहै, वाकी गति ना मोख।

नेता होने के कारण गाँधी जी की कुछ सीमाएँ थीं। गाँधी जी सब धर्मों की आजीवन प्रशंसा करते रहे परन्तु उन पर एक धर्मात्मा ने गोली चलायी। एक विचारक जो संस्कार से मुसलमान विचारों से हिन्दू तथा सिद्धान्तों से मानवतावादी था, उनका अपने समय के दो प्रमुख विरोधी धर्मानुयायियों द्वारा बराबर ऊँचा स्थान पाना, उसके आदर्शों के विजय का ज्वलंत प्रतीक है।

क्रान्तिकारी सिद्धान्तों एवं आदर्शों की स्थापना बिना संघर्ष के सम्भव नहीं है। जो संघर्ष कबीर सा. ने शताब्दियों पूर्व किया, जिसे इस युग में गाँधी जी ने ग्रहण किया, देश के अभ्युदय के लिए वर्तमान पीढ़ी को भी वह संघर्ष बनाये रखना होगा।

महात्मा गाँधी एवं कबीर साहब दोनो ही हमारी मानवता के सुन्दर प्रतीक हैं, जिनका जीवन ही दलित प्राणिमात्र की सेवा के हेतु उत्सर्ग था।



• हे मानव तेरा गुण ही बड़ा है। तुम्हारी हड्डी और मांस किसी काम के नहीं।

—सद्गुरु कबीर

# ज्ञान चौंतीसा : सार्थकता एवं शिक्षा

उदयशङ्कर शास्त्री; प्राच्यविद्या विशारद

नागरी वर्णमाला में स्वरों को छोड़ कर ३६ अक्षर हैं जिनमें से बहुधा पंचमाक्षरों का प्रयोग अनुस्वार के रूप में किया जाता है इसलिए कुछ संतों ने उनकी गणना नहीं की है, फिर भी यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि 'बीजक' में 'चौंतीसा' क्यों ? छत्तीसा क्यों नहीं । कहीं-कहीं इसे ककहरा भी कहा गया है । बीजक के इस प्रकरण में ६८ चौपाइयाँ और एक साखी है । चौपाइयों को वंद मान लें तो ३४ अक्षर होते हैं, बीजक के ही 'रमैनी' प्रकरण की २४ वीं रमैनी में भी—

'चौंतिस अक्षर से निकरै जोई, पाप पुण्य जानैगा सोई'। चौंतीस अक्षर की ही चर्चा आई है। इससे सिद्ध होता है कि कबीर साहब को ३४ ही अभीष्ट था । कबीर साहब की बानियों में संख्याओं का प्रयोग मिलता है, जिनका प्रयोग ठीक स्थान पर और निश्चित अर्थ में हुआ है— संख्या और अर्थ में कहीं व्यतिक्रम नहीं है।

अक्षरों की गणना में कुछ को छोड़ने का कारण यह है कि 'क्ष' क् और ष के 'त्र' 'त्' और 'र' के तथा 'ज्ञ' ज् और ञ के संयोग से, बने हैं, इसलिए उन्हें अलग न मान कर शेष ३४ अक्षरों को आधार बनाकर संतों ने अपने उपदेशों को उनमें ढालने का प्रयत्न किया है। लोक में इसे 'ककहरा' अखरावती या बारह खड़ी भी कहते हैं। आगे चलकर यह पद्धति एक विधा के रूप में परिणत हो गई। नाथ सिद्धों और सूफियों ने भी इसी परिपाटी को अंगीकार कर के अपनी रचनाएँ की हैं। कालक्रम और ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसे उदाहरण मिलते हैं। गोरख का 'ज्ञान चौंतीसा' और जायसी का 'अखरावट' इसके उदाहरण हैं। गोरख के 'ज्ञान चौंतीसा' में—

'ओंकार आदि पारब्रह्म शिव शक्ती,
नाद बिंद ले काया उत्पती।'

नाद रूप बोलिये पार ब्रह्म, बिंद रूप बोलिये काया, प्रथमें आदि उतपती माया। तथा जायसी के अखरावट में इस पुरानी परिपाटी में थोड़ा व्यतिक्रम दिखाई पड़ता है, पर उसे धार्मिक दृष्टि से देखा जाय तो वह व्यतिक्रम नहीं है, क्योंकि अरबी-फारसी वर्णमाला में आदि अक्षर 'अलिफ़' अल्लाह का वाचक है, वैसे ही जैसे ॐकार में अ उ म का संयोजन है और त्रिदेवों का रूपायन। इसी लिए जायसी ने स्वरों का वर्णन कर के तब व्यंजनों को लिया है—

कहौं सो ज्ञान ककहरा सब आखर महँ लेखि।
पंडित पढ़ अखरावटी टूटा जोरेहु देखि॥

से आरंभ करके ५२ दोहों में अपना अखरावट पूर्ण किया है।

बीजक पर टीका करने वाले सभी व्यक्तियों ने इस चौंतीसा में क्ष, त्र, ज्ञ, ष, का व्यवहार नहीं किया है। पर बीजक के प्रथम टीकाकार पूरन साहेब ने इन अक्षरों को भी सम्मिलित कर के टीका की है (इसका एक कारण यह भी है कि पुराने टीकाकार शब्दार्थ या अक्षरार्थ की ओर अधिक ध्यान न देकर सिद्धान्त का प्रतिपादन करते थे। स्वयं पूरन साहेब ने 'कबीर' का अर्थ 'जीव' किया है।) जो पुराने क्रम के विपरीत है। उन्होंने 'ह' के बाद 'क्ष' का उल्लेख इस प्रकार किया है—'क्ष क्षा क्षण में परलय सब मिटि जाई, छेव परे तब को समुझाई।' इसी का अनुकरण संत भिह्रौंदास और संत अभिलाषदास आदि टीकाकारों ने भी किया है। एकाक्षरी कोष में सभी अक्षरों का कुछ न कुछ अर्थ अवश्य दिया गया है परन्तु हिन्दी में इन अक्षरों का वैसा प्रयोग नहीं होता। यहाँ तक कि प्राचीन ब्रजभाषा काव्य में भी दग्धाक्षरों का प्रयोग निषिद्ध था। प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों में इन अक्षरों के संस्कृत रूप नहीं मिलते—इस विषय में श्री विचार साहब (अब प्रकाशमणि नाम साहब) ने लिखा है—"प्राचीन हिन्दी में य के स्थान पर ज, श की जगह स और ष के स्थान में ख लिखते थे, एवं क्ष, त्र, ज्ञ ये व्यंजन नहीं लिखे जाते थे किन्तु 'छ' ग्य, आदिक लिखे जाते थे, अतएव इस चौंतीसा में 'क्ष' नहीं है। ॐ अक्षर को लेकर ह तक ३४ अक्षर हैं। यह

प्राचीन पाठ है।"[1]

बीजक के पुराने टीकाकार श्री प्रयागदास जी 'ओंकार आदि सो जानै' की टीका में लिखते हैं—ॐकार का बयान वेद ने बहुत सा किया है सो सुनो! ओंकार कहिये पिंडांड, ॐकार कहिये ब्रह्मांड कैसे कि मस्तक ही बिंदु, निर्विकार नाभी सो ही विकार, अर्ध मात्रा हृदय, सो ही मकार कुंडली, कंठ सो ही ॐकार दंडक, त्रिकुटी सो ही अकार तारक इस प्रकार से पांच मात्रा ॐकार को जीव ने अनुमान किया, पिंडांड में सो सब नाशवान है, और जीव सत्य है, अब सूक्ष्म मात्रा को सुनो! प्रथम जब शून्य स्वभाव रहता है तब शब्द बिंदु रूप स्थान ब्रह्मांड में रहता है तिसको निर्विकल्प, निरामय ब्रह्म बोलते हैं। फिर वहाँ से स्फुरण होता है। सो ही सह विकल्प अर्धमात्रा, तुरीया अव्याकृत सबल ब्रह्म कहते हैं। तब शब्द नाभी स्थान में विकार रूप होता है। तब चतुष्टय का उदय होता है और चित्त से अनुसाधन उठता है और बुद्धि निश्चय करती है, तब बुद्धि बोध का यह स्वरूप महातत्व कहलाता है और उसी को कोई कूटस्थ कहते हैं, तब शब्द कुंडली शून्य स्वरूप मकार होकर हृदय में आता है तब मन के उद्योग से संकल्प होता है तब शब्द कंठ स्थान में ॐकार रूप रहता है, दंडक होता है तहाँ पाँच काल निर्माण होती हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, आकाश सूक्ष्म देह बनता है और बहुत संकल्प होता है, फिर त्रिकुटी पर आकर आकार रूपी शब्द बनता है फिर अहंकार लेकर फूटता है, सो वैखरी में आकर चोला धारण करता है, ओंकार सो ही ब्रह्म और चौंतीस अक्षर सोही माया और ॐकार सो कारण और चौंतीस अक्षर कार्य को जीव करता है।[2]

अक्षरों को आधार बनाकर अपने विचारों—उपदेशों का प्रसार करना जनसाधारण के लिए अधिक सुविधाजनक एव बोध गम्य था। वैसे व्याकरण आदि शास्त्रों में शब्द को ब्रह्म मान कर तथा अक्षर को अविनश्वर रूप में बहुत कुछ कहा गया है। तंत्र एवं मंत्र शास्त्र में भी ॐकार सहित प्रत्येक अक्षर की स्थिति अलग-अलग बताई गई है। वहाँ उन अक्षरों के अर्थ और उनके अभिप्राय भी अपने अभीष्ट के साथ स्थिर किये गये हैं। अक्षरों से संख्यावाचक अर्थ भी ग्रहण किया जाता है। फारसी वर्णमाला के कुछ अक्षरों को रूढ़ अर्थ प्रदान करके संख्याओं का काम लिया जाता हैं वहाँ इस प्रणाली को 'अब्जद' कहते हैं जिसका तात्पर्य 'अलिफ़, वे, जीम, दाल आदि वर्णों के समूह से लिया जाता है। ज्योतिष आदि में भी अक्षरों से अंकों का काम लेने की परंपरा है। किसी वर्णमाला की संख्या का निर्धारण भाषा की आवश्यकता के अनुसार किया जाता है। किसी वर्णमाला में घ, झ, ढ, ध, भ के लिए स्वतंत्र रूप हैं किसी में नहीं है। इन संयुक्ताक्षरों के अतिरिक्त पंचमाक्षरों को भी, कहीं-कहीं अनुस्वार से ही व्यक्त किया जाता है—कई भाषाओं में इनके लिए स्वतंत्र रूप नहीं हैं। परन्तु ३४ को ३६ करने की प्रक्रिया नहीं है। पुरानी लिखावट में और विशेष रूप से 'बीजक' के पुराने हस्त लेखों में—क्ष, त्र, ज्ञ और ष, श, ङ, ञ के प्रयोग कम देखने में आते हैं। इनमें ष को ख से, क्ष को छ से तथा श को स से लिखने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। तो भी कुछ लोगों ने इसका अतिक्रमण भी किया है।[3] सदाफल देव ने अपनी टीका के अंतिम ५ बंदों ३०,३१,३२,३३,३४ में श, ष, स, ह, और क्ष का प्रयोग किया है। कविता में अक्षरों का यह क्रम परंपरा संगत नहीं है।

स्वामी हनुमानदास जी ने (जिनकी बीजक की टीका के कई संस्करण हिंदी और संस्कृत में अनुवाद और मूल रूप में प्रकाशित हो चुके हैं) इस प्रकरण की टीका करते समय वर्णमाला के प्रसंग में लिखा है—ओ ॐकार के स्थान में, वो ॐकार, ॐकार इत्यादि पाठ भेद हैं। ओ ॐकार इत्यादि प्रथम बचन उपक्रम रूप हैं, ज्ञानोपदेश कक्का इत्यादि वचनों से ही दिया गया है, इससे इस प्रकरण को चौंतीसा, ज्ञान चौंतीसी आदि कहते हैं और 'हा हा करत जीव सब जाई, छेव परे कहु कहाँ समाई। छेत्र परे काहू अन्त न पाया, कहहिं कबीर अगमन गोह-

१—बीजक विचारदास शास्त्री, पृ० २५२, रामनरायन लाल, प्रयाग, तृ० सं०, सं० १९५४।
२—बीजक-प्रयागदास, भाग २, पृ० ११, पुरुषोत्तम विश्राममावजी, बंबई सन् १९११ ई.
३—बीजक भाष्य-सदाफलदेव, पृष्ठ २८८-९; प्र० सं०, मुक्ति पुस्तकालय बलिया, सं० २०१३ वि०।

राया ॥' इसी प्रकार अन्तिम वचन किसी-किसी पुस्तक में है। क्ष क्षा इत्यादि वचन नहीं हैं तब स्पष्ट ही चौंतीस वचन ( अक्षर ) मात्र इस प्रकरण में नहीं हैं। किसी-किसी पुस्तक में ङ ङ् ङा, ञ ञ् ञा, ण ण् णा के स्थान में भी न ना पाठ है तब चौथे न न् ना से चतुर्थ नकार का ही बोध हो सकता है।[1]

इस चौंतीसा प्रकरण में उन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन है जो बीजक के अन्य प्रकरणों में है—उदाहरण के लिए—

ग गा गुरु के बचनहिं मान,
दूसर शब्द करै नहिं कान।
तहाँ विहंगम कबहुं न जाई,
औगह गहि के गँगन रहाई ॥

में उसी विहंगम मार्ग की चर्चा है जिसे अन्यत्र 'शब्द विहंगम चाल हमारी, कहहिं कबीर सतगुर दई तारी' के द्वारा व्यक्त किया गया है। एक स्थान पर कहा गया है—

पंछी का खोज मीन का मारग कहैं कबीर दोऊ भारी,
अपरंपार पार पुरुषोत्तम मूरति की बलिहारी ॥' में भी यही चर्चा है—वराहोपनिषद् में इस—विहंगम (पंक्षी) और मीन मार्ग की व्याख्या इस प्रकार की गई है। साधन मार्ग में शुकदेव का विहंगम मार्ग है और वामदेव का पिपीलिका या मीन मार्ग है—

शुकश्च वामदेवश्च द्वे सृती देव निर्मिते।
शुको विहंगमः प्रोक्तो वामदेवः पिपीलिका ॥
विदित्वा स्वात्मनो रूपं सम्प्रज्ञात समाधितः ॥
शुकमार्गेण विरजाः प्रयान्ति परमं पदम् ॥

साधना के क्षेत्र में दोनों मार्ग श्लाघ्य हैं। इन दोनों में से मीन मार्ग तो क्रमशः मुक्ति देनेवाला है अर्थात् अनेक प्रकार के साधन करने के उपरान्त साधक अपने लक्ष्य ( मुक्ति ) तक पहुंचता है, परन्तु शुक ( विहंगम ) मार्ग से तत्काल मुक्ति की प्राप्ति होती है ( यह यहाँ अन्तर्निहित है कि आरंभिक अवस्था की उन सीढ़ियों को पार करना ही होगा ) और उसके परिणाम स्वरूप—

खुलि गए नयन कपाट हृदय उजियारा है।
कर नैनों दीदार महल में प्यारा है ॥

की स्थिति होती हैं।

चौंतीस अक्षरों के माध्यम से कबीर साहब ने जो उपदेश दिए हैं, उनमें संसार की असारता और जीव अर्थात् चैतन्य का स्वरूप, माया का विराट विस्तार और अज्ञान के कारण मिथ्या एवं नाशवान पदार्थों को सत्य समझने वाले लोगों को तथा अनेक मतमतान्तरों की [ अपने-अपने विचारों का पोषण करके अपनी ओर आकृष्ट करने के प्रयासों में संलग्न ) असारता दिखाकर उनसे विरत होने ( दूसर शब्द करो नहिं कान ) की शिक्षा दी है। साथ ही साथ "दसहुं दुवारे तारी लावै, तब दयाल के दर्शन पावै" उक्त मार्ग का निर्देश भी किया है, उनका उद्देश्य मुख्य रूप से सूत्र को छोड़ कर सूत्रधार का चिंतन-मनन एवं उपासना करने की प्रेरणा देनी थी। यह च अक्षर से जाहिर होता है—

च चा चित्र रचो बड़ भारी,
चित्रहिं छोड़ि चेतु चित्रकारी।
जिन यह चित्र विचित्र उकेरा,
चित्र छाँड़ि तैं चेतु चितेरा ॥ कि

साधक को संसार की चित्त को लुभानेवाली असार वस्तुओं के प्रलोभन में न फँस कर उसके निर्माता की खोज, साधना करनी चाहिए—अन्यत्र भी इसको स्पष्ट किया है कि 'जिन यह चित्र बनाइया साँचा सो सूत्र धार'। जिसने इस चित्र ( संसार ) को बनाया उसी सूत्रधार ( चित्रकर्त्ता या चित्रकार ) की खोज करनी चाहिए।

सारांश यह कि इस छोटे से प्रकरण में कबीर साहब ने अपने उन तमाम विचारों, उपदेशों और चेतावनियों का समावेश कर दिया है जिन्हें उन्होंने अपने उपदेशपूर्ण शब्दों ( पदों ) में व्यक्त किया है। उनके विचारों के तीन मुख्य रूप; चेतावनी, ज्ञानचर्चा और उपदेश जिनके द्वारा संसार में रहते हुए भी अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का मार्ग बताया है। इन चौंतीसो अक्षरों के माध्यम से सभी स्थितियों का परिचय करा दिया है यहाँ तक कि अन्तिम अक्षर 'ह' से उस स्थिति को स्पष्ट किया है जब मनुष्य सब ओर से निराश होकर पश्चात्ताप करता है, उसे कोई मार्ग नहीं सूझता—

---

१—बीजक शिशुबोधिनी टीका—स्वामी हनुमानदास सा०, प्र० सं०, खंड ३—पृ० १२३-बनारस।

हो हा करत जोव सभ जाई,
छेव परे तब को समुझाई।
छेव परे कहुं अंव न पावा,
कहँहि कबीर अगमन गोहरावा ॥

प्राणी अन्त समय में हाहाकार करते हुये जब शरीर छोड़ते हैं। उस समय कोई ज्ञान तो क्या सान्त्वना भी नहीं दे सकता। इस कारण कबीर साहब पहले से ही पुकार कर कह रहे हैं—

जियत आपु लखु जियव ठौर करु मुये कहाँ घर तेरा।
यहि अवसर नहि चेवहु प्रानी अंव कोई नहि तेरा ॥

यही अक्षर (कभी नाश न होने वाला) उपदेश है जो सद्गुरु ने इन अक्षरों के माध्यम से दिया है।

———

# कबीर-बीजक

( म० सुकृतदास बरारी )

कबीर पन्थ की प्रायः सभी शाखाओं में 'बीजक' एक मुख्य ग्रन्थ माना जाता है। साहित्यिक दृष्टि से विश्लेषण करने पर स्पष्ट प्रतीत होगा, कि वह कोई विषय-क्रम-बद्ध ग्रंथ नहीं है, अपितु सद्गुरु कबीर की अलौकिक प्रतिभा से उद्भूत उनके कुछ अनुयायिओं द्वारा संगृहीत एक पाठ्य सामग्री मात्र है। पठन-पाठन की सुभीता के लिए संग्रह-कारों ने 'बीजक' का क्रम गीति के अनुरूप रखा है। यथा :—

(१) रमैनी (चौपाई और चौपाई नामक मात्रिक छन्दोबद्ध काव्य)

(२) शब्द (नाना रागरागिनिओं में गेय सामग्री)

(३) कहरा (एक भारतीय लोक रागिनी में प्रचलित गीत)

(४, ५) बसन्त और चाचर (बसन्त तथा फाग के राग में निबद्ध गीत)

(६) बेलि (रागिनी विशेष)

(७) बिरहुली (प्रतीकात्मक काव्य विशेष एवं सपेरों का गीत)

(८) हिंडोला (श्रावण मासीय झूला सम्बन्धी गीत)

(९) साखी (दोहा जातीय-दोहरा, दोही, हरिपद, सार आदि मात्रिक छन्दों में रहस्य पूर्ण वर्णन)

(१०) चौंतीसा (हिंदी वर्ण माला में वर्णित विज्ञान) ॐ तथा नागरी के प्रत्येक व्यंजन से आरंभ होने वाले पद्य

(११) विप्रमतीसी (ब्राह्मणों में प्रचलित कर्मशैली की मीमांसा) सारतः 'बीजक' सद्गुरु कबीर के आध्यात्मिक कविताओं का संग्रह है।

[ परम विचारक सन्त नाभादासजी के कथनानुसार तो सद्गुरु कबीर की वाणी के रमैनी, शब्द एवं साखी तीन ही प्रकरण यथार्थ हैं, यद्यपि बीजक संग्रहकारों ने 'बीजक' में रागरागिनिओं के रूप में बढ़ाकर ११ प्रकरण कर दिये हैं; परन्तु उन सबका समावेश उक्त तीन ही प्रकरणों में हो सकता है, यथा —चौपाई रूप होने से चौंतीसा और विप्रमतीसी का अन्तर्भाव 'रमैनी' में ही हो जाता हैं तथा कहरा, बसन्त, चाचर, बेली, हिंडोला और बिरहुली छहों के गेय पद्य होने से उन सबका अन्तर्भाव 'शब्द' प्रकरण में ही उचित है। ]

हाँ! बीजक स्थित मनोविज्ञान अवश्य ही पूर्ण रूपेण पांडित्य का द्योतक है। कबीर साहब के शाब्दिक प्रयोगों को यथार्थ रूप से बुद्धि ग्राह्य करने हेतु—संस्कृत व्याकरण, कोश शास्त्रीय परिभाषा एवं पौराणिक इतिहास आदि से परि-चित होना परम आवश्यक है। देखिए:—बीजक में आए पौराणिक इतिहास से सम्बन्धित एक सावारण सा वर्णन— 'कहें कबिर हरि के गुण गाया, कुन्ती करण कुआँरिहि जाया' इन पंक्ति में 'हरि' शब्द के प्रयोग को वर्ण्य विषय से सम्बन्धित करने के लिए क्या, कोश सम्बन्धी ज्ञान की आवश्यकता नहीं है? अन्यथा यहाँ 'हरि' शब्द का प्रच-लित अर्थ विष्णु या भगवान लेने से तो शंका का अवश्य

ही प्रादुर्भाव हो जायगा, कि क्या, केवल भगवान् या विष्णु का गुणगान ही किसी कुआंरी कन्या को गर्भवती बनाने में समर्थ हो सकता है ? तब तो कोई महिला भगवान् का स्मरण ही क्यों करेगी ? एतादृश वर्णन एक महान् ज्ञानिवर्य के काव्य में।

उक्त आक्षेप का समाधानः—कोषों में 'हरि' शब्द कई अर्थों का द्योतक है। यहां उसका पर्याय सूर्यदेव ले लेने से उक्त आपत्ति ही उपस्थित नहीं हो सकती। किशोरी राजकन्या का व्यक्ति विशेष के ऐकान्तिक यौन सम्पर्क से गर्भधारण में कोइ संदेह नहीं। उक्त पंक्ति का भाव बिलकुल स्पष्ट है। कुन्तल देश की राजपुत्री ने ( जो अभी अविवाहिता ही थी ) सूर्यदेव के दर्शनार्थ उनकी एकान्त स्थल में स्तुति की थी। इस प्रकार आकर्षण-प्रयोग से प्रसन्न हो सूर्यदेव उस कन्या के समीप पहुंच गये। राज कुमारी कुन्ती का रूप अत्यन्त ही आकर्षक था; जिसे देख उक्त देव जातीय व्यक्ति का मन काम विकार से व्याप्त हो गया और "कामातुराणां न भयं न लज्जा" के अनुसार उस कुंआरी किशोरी को भावी वश गर्भ धारण हो गया। गर्भ पूर्ण होने पर एक सुन्दर पुत्र प्रसूत हुआ। वही कुन्ती पुत्र आगे चलकर कर्ण नाम से ख्यात हुआ। यह है पौराणिक घटना जिसका सद्गुरु कबीर ने उत्कृष्ट देव जाति के आचरण का उपहास रूप में वर्णन किया—

देव चरित्र सुनहु रे भाई।
सो ब्रह्मा जो धिये नसाई॥
+ + +
कहैं कबिर हरि के गुन गाया।
कुन्ती करन कुआँरिहि जाया॥"

सद्गुरु कबीर पौराणिक इतिहास एवं निघंटु आदि की मर्मता सम्पन्न प्रतिभा के धनी थे।

कबीर साहब को अपढ़ एवं अशिक्षित बताने वाले सज्जन अपनी बुद्धि रूपी आँख पर जरा विवेक का चश्मा लगा कर तो देखें ! क्या, किसी अशिक्षित व्यक्ति के मुख स्रोत से एतादृशी मंदाकिनी प्रवाहित हो सकती है कभी ? यथाः—

जम के वाहन बांधेनि जनी। बांधी सिस्टि कहाँ लो गनी।
जन्म जुगन जुग बीतिया, रवि सुत धरिया ध्यान।
काहे रि नलिनी तूं कुम्हिलानी। तेरे हि नाल सरोवर पानी

रेखांकित अंश संस्कृत साहित्य के कितने उच्च शब्द हैं !

"जम के वाहन" ( जम=यमराज ( का ) वाहन= सवारो=भैंसा अर्थात् पशु। सद्गुरु कबीर अज्ञजनो को पशु से उपमित कर रहे हैं।

रवि सुत रवि=सूर्य देव ( का ) पुत्र=यमराज= कष्ट प्रद काल। सद्गुरु फरमाते हैं:—लोग युगों युगों से दयाल को छोड़ कर काल के ही ध्यान में मग्न हैं।

... ... ... ... ... ...

'बीजक' शब्द के अर्थः—

( १ ) बीजक=संकेत में गुप्त धन का पता देने-वाला लेख।

( आत्म रूप धन की परिचायिका वाणी ) यथाः—
बीजक बतावे वित्त को, जो वित्त गुप्ता होय।
( ऐसे ) शब्द बतावें जीव को, बूझे बिरला कोय।
वित्त=धन

( २ ) बीजक=वस्तुओं की सूची।

( आत्म ज्ञानोपयोगी भक्ति, क्षमा, सन्तोष, विवेक आदि। सद्गुणों का व्याख्यापक लेख ) यथाः—
भक्ति पियारी राम की, जैसि पियारी आगि।
सारा पाटन जरि गया, फिरि फिरि लावै मांगि॥
पाटन=नगर
जो तूं सांचा बानिया; सांची हाट लगाव।
अन्दर झारु देइ के, कूरा दूरि बहाव॥
( कूरा=दुर्गुण )

( ३ ) बीजक=बीज ( मूल कारण=पंचतत्व )

क ( 'कः प्रकाश उदाहृतः' के अनुसार प्रकाशक अर्थात् सृष्टि के मूल कारण का निदर्शक।

यथा—बीज सूक्ष्म कारण जिहिं, गावत हैं बुध वेद।
तिहिं जानन की युक्ति सो, बीजक नाम अखेद॥
अखेद=सुख कर

# युगप्रवर्तक संत कबीर

गंगाशरण दास, सद्गुरु कबीर मंदिर, कबीरचौरा, वाराणसी

संवेदनशील मनुष्य ही आगे बढ़ता है और अनेक पहलुओं पर व्यापकता से विचार करता है। जब-जब मानव में बिखराव फैलता है तब-तब कोई न कोई महापुरुष अवतरित होता है।

संसार के इतिहास में इस प्रकार की अनेक घटनायें घटी हैं जो महापुरुषों को जन्म देती हैं। सद्गुरु कबीर का भी काल इसी प्रकार का था जिसने इन्हें क्रान्ति के पथ पर अग्रसारित कर दिया और आज वे युगद्रष्टा के रूप में विख्यात हैं। संसार का प्रत्येक संवेदनशील मानव कबीर साहब को अपना मार्गदर्शक मानता है, चाहे वह हिन्दू हो चाहे अन्य किसी धर्म का अनुयायी हो। मानने के कारण हैं न्याय, सत्यप्रियता, दूरदृष्टि, अभेद भाव, सत्यकथन, कथनी एवं करनी में साम्य, निष्पक्ष वक्तव्य आदि। उनके सद्गुण जो सभी को आकृष्ट किये जा रहे हैं। वे वेद ऋचाओं की भाँति सदा सामयिक बने हुए हैं। आज के परिवेश में कबीर साहब जितने सामयिक हैं उतने हिन्दी के अन्य कवि नहीं।

सद्गुरु कबीर एक सच्चे समाज सुधारक और धार्मिक नेता थे, साथ ही क्रांतिकारी भी। आज की नयी पीढ़ी उन्हें विशिष्ट क्रांतिकारी के रूप में बड़े श्रद्धाभाव से देखती है। तत्कालीन विषम परिस्थितियों के विकट बने रहने पर भी उन्होंने अपने विचार बड़े स्पष्ट शब्दों में एवं अत्यंत निर्भीकता के साथ प्रकट किये, जिसके कारण उनके द्वारा एक महत् आन्दोलन को दिशा निर्देश मिला। किसी जाति विशेष को उन्होंने कोई छूट नहीं दी। परम्परा से चिपके रहनेवालों को उन्होंने अत्यंत कटु शब्दों में फटकार बतलाई और आगे के लिए सजग किया।

यहाँ आवश्यकता इस बात की है कि हमें यह स्पष्ट हो जाए कि उनके क्रांतिकारीपन का स्वरूप कैसा था। यह तो निर्विवाद ही है कि कबीर साहब क्रान्तिकारियों की उस श्रेणी में नहीं आ सकते जिसमें हम चन्द्रशेखर 'आजाद', भगत सिंह, खुदीराम बोस प्रभृति को रखते हैं। कबीर साहब इन सबसे भिन्न क्रांतिकारी थे। वस्तुतः वे एक ऐसे धार्मिक पुरुष के रूप में दीख पड़ते हैं, जिन्हें अपने युग की किसी मान्य परम्परा या व्यवस्था में तब तक आस्था रखने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती, जब तक उसका वस्तु-स्थिति के परिप्रेक्ष्य में पुनः मूल्यांकन न कर लिया जाय और उसे भली भांति अपनी अनुभूति की कसौटी पर परख न लिया जाय। कबीर साहब ने स्पष्टतः कहा था कि 'वेद' अथवा 'कितेब' जैसे स्वीकृत ग्रंथों की बातों को सहसा 'मिथ्या' बतलाते हुए उसकी अवहेलना करने लगना कदापि समीचीन नहीं कहा जा सकता। वास्तव में वैसा करनेवाला व्यक्ति स्वयं मिथ्यावादी है, जो उन पर विचार करके अमल करना नहीं जानता। वास्तव में जो क्रांतिकारी होता है, वह अनिवार्यतः जीवन और जगत् के सभी पक्षों एवं क्षेत्रों में क्रांति लाने का उत्कट अभिलाषी होता है। किसी अंग विशेष में ही परिवर्तन ला कर उसे कदापि संतोष नहीं होता। इस प्रकार उसका क्रांतिकारीपन एकांगी न होकर सर्वांगीण होता है।

जो लोग कबीर साहब को हिन्दू-मुस्लिम धर्मों का समन्वयकारी सुधारक मानते हैं, उनके वक्तव्यों को असंदिग्धता की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। फिर भी कबीर साहब की दृष्टि स्पष्ट थी। वे इन दोनों धर्मों को समूल स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे। वस्तुतः वे समस्त बाह्याचारों के जंजालों और संस्कारों को विध्वंस करनेवाले युग-पुरुष थे। समझौता उनका रास्ता नहीं था। समन्वय केवल मूलतत्त्व में था।

कबीर साहब एक ऐसे विचारक थे जिन्होंने सत्यता पर ही अग्रसर होने के लिए परामर्श देना उचित समझा, इसके साथ इतना और भी बतला दिया कि जो कुछ भी किया जाय, उसे समझ कर ही किया जाय। इस प्रकार उन्होंने कथनी और करनी में सामंजस्य स्थापित करने की बात कही, स्वावलंबन और आत्मविश्वास की हमें सीख दी।

उन्होंने अपनी परिस्थितियों को परिवर्तित करने की अपेक्षा, अपने दृष्टिकोण में ही आमूल परिवर्तन लाने पर विशेष बल दिया। किसी प्रचलित सामाजिक परम्परा को

दूर करने का उपदेश देते समय, वे केवल उसकी बाहरी बातों को ही हमारे सामने रखते नहीं जान पड़ते। इस प्रकार कबीर साहब किसी भी अग्राह्य विषय की हेयता सिद्ध करते समय भरसक उसके मूल पर अधिक विचार करते थे। वे इसे अधिक तर्कसंगत समझते थे और इसके आधार पर हम कह सकते हैं कि उनके क्रांतिकारीपन में केवल कोई सामयिक परिवर्तन मात्र ला देने की अपेक्षा न्यूनाधिक स्थायित्व की दशा उत्पन्न कर देने की चेष्टा काम करती लक्षित होती है।

सद्गुरु कबीर ने धार्मिक सिद्धान्तों के साथ-साथ उनकी पुष्टि के लिये अनेक स्थानों पर लौकिक आचरण अथवा व्यवहारों का वर्णन किया है। यदि उनकी वाणी का पूरा-पूरा विवेचन किया आप तो यह स्पष्ट हो जायगा कि उनकी साखियों का विशेष सम्बन्ध लौकिक आचरणों से है तथा पदों का संबंध विशेषकर धार्मिक सिद्धान्तों और अंशतः लौकिक आचरणों से है। उनके युग में धार्मिक भावनाओं का ही जन-जीवन पर विशेष प्रभाव था और धर्मेतर बातों की ओर लोगों का ध्यान बहुत कम जाता था। यही कारण है कि उनके क्रांतिकारीपन के अधिकांश उदाहरण स्वभावतः ऐसे क्षेत्रों से ही लेकर प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिनका सम्बन्ध या तो समाजगत नैतिक आचरण से हो अथवा जो उस व्यक्तिगत आस्था का कोई आधार निर्मित कर सकते हों, जो किसी न किसी वैसी अलौकिक सत्ता में केन्द्रित भी बन जाया करती है। सद्गुरु कबीर के अपने विचार इस सम्बन्ध में भी कम क्रांतिकारी नहीं ठहराये जा सकते।

सद्गुरु कबीर स्वतंत्र प्रकृति के व्यक्ति थे। उनके चारों ओर शारीरिक दासता का घेरा पड़ा हुआ था। वे यह बात भली प्रकार जानते थे कि शारीरिक स्वतंत्रता के पहले विचार-स्वातंत्र्य आवश्यक है। जिसका मन ही दासता की वेड़ियों से जकड़ा हो, वह पावों की जंजीरें कैसे तोड़ सकता है ? उन्होंने देखा कि लोग नाना प्रकार के अंधविश्वासों में फँसकर हीन जीवन व्यतीत कर रहे हैं। लोगों को इसी से मुक्त करने का प्रयत्न उन्होंने किया। मुसलमानों के रोजा, नमाज, हज, ताजिएदारी और हिंदुओं के श्राद्ध, एकादशी, तीर्थ, व्रत, मंदिर आदि सबका उन्होंने एक स्वर से उल्लेख किया है। कर्मकाण्ड को तो उन्होंने अवश्य निन्दनीय माना है। बाहरी क्रिया कलाप एवं पाखंड के लिए उन्होंने हिन्दू-मुसलमान दोनों की खूब खबर ली है। धर्म को वे आडंबर से विलग मात्र एक सत्य-सत्ता मानते थे जिसके हिंदू-इस्लाम, आदि विभाग नहीं हो सकते। वस्तुतः कबीरसाहब ने किसी नामधारी धर्म के शिकंजे में मनुष्य को नहीं डाला और स्पष्टतः कहा कि मनुष्य न हिन्दू है, न मुसलमान। वह केवल मानव है। यदि मानवता के विरुद्ध आचरण करता है तो वह निरा पशु से भी गया गुजरा प्राणी है। मानव के लक्षण करते हुए उन्होंने कहा—मानव तेरा गुण ही श्रेष्ठ हो सकता है। दया तुम्हारा परम गुण है। यदि तुम में दया आ जाती है तो सारे सद्गुण अकस्मात् तुम्हारे पास आ जायेंगे। तुम्हारे और भी लक्षण हैं—माता-पिता, गुरुजन का आदर करना, प्रत्येक प्राणी के हित के लिए सोचना; देशसेवा कम महत्व की नहीं है। इस प्रकार जो भी कार्य प्राणी के कल्याण के लिए होते हैं उन सभी को करना कबीर साहब के मत में मानवता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि कबीर साहब की गणना उन इने-गिने महापुरुषों में की जा सकती है, जिन्होंने अपने समसामयिक समाज की गतिविधि को भली भांति परखा एवं उसे आवश्यक मोड़ दिया। कबीर साहब ने ऐसा करते समय किसी से सहायता नहीं ली, किसी दिव्य पुरुष के द्वार पर फेरे नहीं लगाये। उनके पास अपना आत्मबल, असीम साहस और अपार धैर्य था, जिसके कारण उन्होंने विपक्षगामियों को, चाहे वे कितने ही उच्च-स्तरीय क्यों न हो, अपनी भूलों पर एक बार दृष्टिपात करने के लिए सजग कर देना चाहा। ऐसा करते समय उन्होंने किसी का पक्ष नहीं लिया और न तो कोई पक्षपातपूर्ण प्रहार ही किया।

आज समाज असमंजस की स्थिति में जी रहा है। उसके सम्मुख कबीर साहब जैसा निष्पक्ष क्रांतिकारी पथ-प्रदर्शक नहीं है जो कड़े शब्दों में उसे उसकी निर्बलताओं और कमजोरियों से परिचित कराये एवं समय के इस बदलते हुए तेवर में सही दिशा का निर्देश करे। आवश्यकता है कि आज हम कबीर साहब के क्रांतिकारी रूप को

समझें और उस महान् क्रान्तिकारी से प्रेरणा ग्रहण करें और आज के मनुष्यों की भाँति कथनी-करनी में अन्तर न करें। आज लोग प्रत्येक कार्य को राजनीति के रंग में डुबोकर करना चाहते हैं। यही कारण है कि आज के नये धर्मपंथी लोग सफल नहीं हो पा रहे हैं। इन लोगों के क्रियाकलापों को देखकर विकसित मस्तिष्कवाला मानव उक्त लोगों से दूर होता जा रहा है। पुनः लोग उसी पुराने धर्म की ओर दृष्टि-पात करने लगे हैं। अंधविश्वासियों को छोड़िये। उनके लिए संसार भरा-पूरा है। आज के नूतन पंथियों को देखकर कुछ मनबढ़ लोग उन्हीं का अन्धानुकरण करने को सोचते दिखाई देते हैं। नहीं कुछ कर पा रहे हैं तो दैनिक पत्रों के द्वारा ही सही, समाज के बीच उतरना चाहते हैं। ऐसे लोग प्रत्येक समाज में घुसे हुए हैं, चाहे वे धार्मिक संस्थायें हों या सामाजिक या राजनैतिक। सभी में कमाने-खाने के लिए लोग समाये हुए हैं। आज की धार्मिक सस्थायें बहुत सस्ती हो गयी हैं जिनमें लोग क्रय-विक्रय भी करने लग गये हैं। सम्प्रति महत्वाकांक्षा इतनी तीव्र हो गई है कि लोग प्रत्येक ऊँच नीच कर्म को करके समाज में पुजाना चाहते हैं। आज का समाज भी उसी प्रकार का हो गया है। बिना सोचे समझे अंधानुकरण करने लग जाता है। विशेष कर भारत का स्तर अधिक गिरा है। धर्मप्राण देश होने के कारण बुराइयाँ अधिक पनप रही हैं। देवमंदिर से लेकर गिरजाघरों तक राजनीति छा गयी है। आज भारत अपनी परंपरा को विस्मृत करता जा रहा है। वह पुराने आदर्शों को स्मरण नहीं रख पा रहा है। आज का धार्मिक गुरु व्यक्ति-वाद को अधिक प्रश्रय व महत्व दे रहा है, उसकी उदार भावनायें समाप्त हो चुकी हैं। जिन दोषों पर कबीर साहब ने कुठाराघात किया था, आज वे ही दोष पुनः घर कर रहे हैं। इसके कई कारण हैं। प्रथम तो देश परतंत्र था जिसके कारण मेधा कुण्ठित हो गई थी। स्वतंत्र होने के पश्चात् देश सहसा विमुक्त हो गया। सँभलने के लिए उसकी निज की बुद्धि नहीं थी। कुछ अपनी कुछ अन्य की, जिसके कारण सांकर संस्कृति का जन्म हुआ जो भारतीय परंपरा का समापक हुआ। गीता में अर्जुन द्वारा सांकरता का अच्छा उल्लेख किया गया है जिसके द्वारा सर्वतो विनाश भी बतलाया है। अधुना वही बात घर कर रही है। समाज में स्वेच्छाचार अधिक बढ़ रहा है। परिणामस्वरूप लोग अधिक परेशान हैं। किसी भी समाज का नेता चैन की जिन्दगी नहीं गुजार रहा है। यह सब मानव मस्तिष्क के विकार का फल है। जब तक अध्यात्मजगत् में पदार्पण नहीं होगा तब तक शान्ति की आशा नहीं की जा सकती। भौतिक सुख दिखावा मात्र है, उसमें चिरंतन शान्ति नहीं है। इसलिए कबीर साहब अपने बीजक के द्वारा कहते हैं कि 'संकट सोच पौच बहु कलिमा बहुतक व्याधि शरीरा, जहाँ धीर गंभीर अति निश्चल तहँ उठि मिलहु कबीरा।' यह उद्घोष सद्गुरु कबीर साहब ने किया है। यदि मानव इस पर आचरण करता है तो उसको अवश्य शांति मिलेगी। बीजक का सारा प्रकरण इस प्रकार के उपदेशों से भरा पड़ा है। गहन अवगाहन की आवश्यकता है। श्री श्यामदास जी साहब शास्त्री बीजक को प्रकाशित कर महान् मानवसेवा कर रहे हैं। उनसे मुझे अत्यधिक आशा है कि अपना जीवन सद्गुरु कबीर के विचारों को समाज में बिखेरने, फैलाने में लगा देंगे। आप कर्मठ और अनुशासित संत हैं। सद्गुरु कबीर साहब ने अनुशासन को बड़ा महत्व दिया है। उन्होंने बार-बार गुरु की आज्ञा मानने के लिए कहा है। 'गुरु विचारा क्या करे शिष्यहिं माहीं चूक। भावे त्यों परमोधियों बाँस बजावे फूँक' इत्यादि साखियों के द्वारा वे बार-बार गुरु के अनुशासन की बात करते हैं। आइये, हमलोग सद्गुरु कबीर साहब की वाणियों का अध्ययन करें और संसार सागर से पार हो चलें। साहब बंदगी।

● "राम के बराबरी करने वाला संसार में कोई धन नहीं है।"

—सद्गुरु कबीर साहब

# श्री बीजक-एक अनुपम कृति

चन्द्रकान्त मणिलाल महेता, एल् एल्, बी० ( जज, लेवर कोर्ट, वडोदरा )

भारतीय धर्म साधना में तत्त्वज्ञान की आध्यात्मिक चेतना के सर्वोच्च शिखर पर आरोहण करने के लिए एक परम उत्कृष्ट साहित्य साधन मध्ययुग के आध्यात्मिक तत्त्व का अपरोक्षानुभूति के प्रेरक, संत मत के आद्य प्रणेता श्री सद्गुरु कबीर साहेब कृत बीजक ग्रन्थ आम जनता के लिए हिन्दी भाषा में आधुनिक उपनिषद् है। इसमें एक-अनुपम सौंदर्य है। उसकी अभिव्यक्ति हृदय की गहनतम गहराई में से सीधी आत्मप्रेरित है। उसमें आत्मा की कला है। उसमें अध्यात्म शुद्ध तत्त्व की स्पष्ट अपरोक्ष अनुभूति है। उसमें आत्मा का दिव्य सन्देश तथा स्वरूपानन्द का रस भरपूर है। उस अमृत के पान से जड़ भी चेतनता प्राप्त कर के चेतन में तन्मय हो जाता है। वह राम रसायन से ओत-प्रोत है। उसके पान से समस्त भावनाएँ, कामनाएँ, वासनाएँ आदि तृप्त होकर शांत हो जाती है। और मनुष्य निर्वाणपद-जीवनमुक्ति का आनन्द प्राप्त करता है।

श्री बीजक ग्रन्थ, श्री सद्गुरु कबीर साहब का विशिष्ट विचारशैली युक्त एक अनुपम रहस्य दर्शन है। इन दार्शनिक विचारों में एक अलौकिक प्रकार की सहजभावना की, ज्ञान स्वरूप की भूमिका है। यह दर्शन वास्तविकता में सभी पक्षों के विचारों का समन्वित रूप, एक सारग्राही निचोड़ है। उसमें हम साहित्य सागर की ऊर्मियाँ, मुक्त जनभावना की मधुर ध्वनि की पुकार तथा सांस्कृतिक मनीषा का गुंजार पाते हैं। उसमें हम रूढ़िगत वर्णाश्रम धर्म की कठोर भावना का विद्रोह, वाह्याडंबर, बाह्याचार तथा कर्मकांड का तीव्र उच्छेद तथा अंधविश्वास का तीव्र खंडन पाते हैं। उसके साथ ही उसमें वेद प्रतिपादित रहस्यमय सत्य चेतन आत्मतत्त्व की अपरोक्ष अनुभूति, पुराणवर्णित नैतिक आचारों की स्पष्ट अभिव्यक्ति, योग साधना के उपयोगी अंग तथा सर्वात्म स्वरूप निजात्मरूप प्रभु के प्रति भक्तिभाव भी अभिप्रेरित है।

इस रहस्य दर्शन में माण्डूक्य उपनिषद् के विचार, प्रतिबिम्बवाद तथा अन्य उपनिषदों के विचार अति सरल शैली में विशिष्ट रूप से वर्णित हैं। माण्डूक्य उपनिषद् में आत्म स्वरूप का चार पाद से वर्णन किया गया है। उसीका उल्लेख बीजक साखी १३५ (फतुहा पाठ) में है कि—

चौगोडा के देखते, व्याधा भागा जाय।
एक अचम्भा देखिया, मुवा कालको खाय॥

सर्वं ह्येतद् ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म, सो अयमात्मा चतुष्पाद्। चौगोडा को यहाँ आत्मस्वरूप का प्रतीक कहा गया है। जो कोई आत्मस्वरूप जो चारपाद–विश्व, तैजस, प्राज्ञ, साक्षी रूप से वर्णित हैं जिसका वास्तविक पारमार्थिक स्वरूप अमात्र तुर्यावस्था है उसकी अनुभूति जिसको होती है, उसके आगे व्याधारूप काम, क्रोध, लोभादि जो आत्मस्वरूप का शिकार करते हैं उसके ज्ञान की प्राप्ति नहीं करने देते हैं, वे भाग जाते हैं। अर्थात् आत्मज्ञानी के पास उनकी उपस्थिति की शक्यता ही नहीं है। जिसका मन मृतक हो गया हो उसका काल क्या कर सकता है। वह तो निर्भय, निर्विकार, शाश्वत, निजात्म तत्त्व में स्थिर रहता है।

बीजक साखी ६३ में कहा है कि—

ज्यों दर्पण प्रतिबिम्ब देखिये, आपु दुनों महँ सोय।
या तत्त्वही से वा तत्त्व है, पुनि याही है सोय॥

जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, ऐसे देही द्रष्टा-दर्पण में तथा बाहर भी प्रतीत होता है, अर्थात् एक ही आत्म तत्त्व में कल्पित बिम्बत्व तथा प्रतिबिम्बत्व दो धर्म भासित होते हैं। औपाधिक होने से दोनो मिथ्या है। दर्पण-रूप उपाधि के सम्बन्ध के अभावकाल में आत्मतत्त्व एक ही रहता है। वैसे ही या तत्त्व ही से अर्थात् सर्वात्मस्वरूप अपरोक्ष साक्षी चेतन से ही वा तत्त्व है, विषय रूप उपाधि में आनन्द है। सर्वात्म स्वरूप आत्माराम से ही अनेक देव, राम, विषयादि में भी आनन्द भासित होता है, जैसे दर्पणादि के अभाव से मुखादि के प्रतिबिम्बों का अभाव हो जाता है वैसे ही विषय अन्तःकरणादि रूप उपाधियों के अभाव से अन्य आनन्दादिका अभाव हो जाता है। इससे वे सब मिथ्या हैं। जो या तत्त्व से वा तत्त्व हुए हैं वे सब पुनि

याही स्वरूप हैं, अर्थात् ज्ञानकाल में सब आत्मस्वरूपही भासित होते हैं। उस प्रकार उक्त साखी में प्रतिबिम्बवाद का विश्लेषण किया गया है।

बीजक शब्द ७२ में आशा वासनादि की निवृत्ति के लिये ज्ञानाधिकारी के प्रति उपदेश है कि यद्यपि वेद-उपनिषद् में ब्रह्म, आत्मा का, सावज तुल्य लक्ष्य पक्षी-सुपर्णादि शब्दों से वर्णन किया गया है, तथापि वह अचल, अखंड, ब्रह्मात्मा कभी सावज तुल्य साकार नहीं होता है, क्योंकि यदि वह साकार हो तो कहीं एक देश में उसका निवास स्थान होना चाहिए। उसके मांसको-ममता विषयक सुन्दर आनन्दको सर्व प्राणी भोगते हैं। इससे वह एक निरवयव अद्वैत सावज लक्ष्य संसार में व्यापक है।

इससे कहा है कि—

सावज न होय भाई, सावज न होये,
वाके मास भखे सब कोई।
सावज एक सकल संसारा,
अविगति बाकी बाता।

× × ×

शिर सींग कछुवो नहिं वाको, पूंछ कहाँ वह पावै।

तैत्तिरीय उपनिषद् में वर्णन है कि—

तस्य प्रियमेव शिरः। मोदो दक्षिणः पक्षः।
प्रमोद उत्तरः पक्षः। आनन्द आत्मा।
ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा।

ऋग्वेद अ. ७ वर्ग १० अनु० ५-सू. ५८ का मंत्र है कि—

चत्वारि शृङ्गाः, त्रयो अस्य पादा, द्वे शीर्षे,
सप्त हस्तासो अस्य, त्रिधा बद्धो, वृषभो रोरवीति।
महो देवो मर्त्यामाविवेश।

उसका ही विश्लेषण उपरोक्त शब्द ७२ में किया गया है।

कठ उपनिषद् में कहा है कि—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति, तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति, तत्तेपदं संग्रहेण ब्रवीमि।

श्री कबीर साहेब भी कहते हैं कि—

जाको मुनिवर तप करे, वेद थके गुण गाय।
सोई देऊँ शिखापना, कहि न कोई पतियाय॥
बी० साखी १३१

श्वेताश्वतर में कहा है कि—

यदातमस्तन्न दिवा न रात्रि,
न सन्नचासच्छिव एव केवलः।
तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं,
प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी॥

श्री कबीर साहब श्री बीजक के हिंडोला प्रकरण में कहते हैं कि—

जहां रैन दिवस नहिं चन्द सूरज तत्व पल्लव नाहि।
काल अकाल प्रलय नहिं तहँ सन्त विरले जाहि॥

ऐसे कई वचन इस ग्रन्थ में वेदादि वचनों के साथ रहस्यैकता दर्शाते हुए वर्णित हैं। ऐसे अगाधरहस्यमय ग्रन्थ के रचयिता को अपढ़ कहना केवल कल्पित असत्य मान्यता के सिवा और क्या कहा जा सकता है। प्रायः लोग मानते हैं कि यह ग्रन्थ श्री कबीर साहब ने स्वाक्षर में नहीं लिखा है; परन्तु उनके शिष्यों ने इस ग्रन्थ के वचनों को संगृहीत किया है। यह मान्यता श्री उनकी एक महान् भूल-सूचक है, क्योंकि इस ग्रन्थको श्री कबीर साहब ने स्वयं लिखा है इसके समर्थन में कई वास्तविक तर्कबद्ध दलीलें दी जा सकती हैं।

इस ग्रन्थ की शुरूआत वस्तुनिर्देशरूप मंगल से की गई है। प्रथम रमैनी में ही जीव के स्वरूप का निर्देश होने से वह जीव शिव स्वरूप है। शिवस्वरूप कल्याणकारी होने से उसका निरूपण वस्तुनिर्देश रूप मंगल है। पाठ भेद में दानापुर पाठ में 'अन्तर्ज्योति' से प्रथम रमैनी शुरू होती है। वहाँ भी अंतर्ज्योति पाठ आत्मस्वरूप के उल्लेख से वस्तु-निर्देशरूपी मंगल है। संगृहीत ग्रन्थ में ऐसी शिस्तबद्ध क्रम-बद्ध रचना होना शक्य नहीं हो सकता।

ग्रन्थ का नामकरण भी 'बीजक' रमैनी ३८ की साखी में किया गया है। उसमें स्पष्ट बताया है कि—

बीजक बतावे वित्त को, जो वित्त गुप्तहि होय।
शब्द बतावे जीव को, बूझे विरला होय॥

सत्य कारणादिका वाचक शब्द 'बीज' है। बीजं कायति, कथयति स बीजकः। जो सत्य कारण को बताता है वह बीजक है। प्रचलित अर्थ में गुप्त धनादि को जो बताता हो उसको बीजक ( Invoice ) कहते हैं। उसी प्रकार पंच कोशादि के आवरण में छिपे हुए गुप्त जीव के स्वरूप को

जो ग्रन्थ वताता है वह बीजक है। उस 'बीजक' नाम का श्री कबीर साहेब ने ही स्वयं निर्देश किया है। इस ग्रन्थ में निरूपित रहस्य यथार्थ प्रामाणिक वास्तविक ज्ञान है ऐसा निर्देश उन्होंने एक पद में किया है।

सन्तो बीजक मत परमाना।
कैयक खोजो खोज थके हैं विरला जन पहिचाना।

× × ×

कहहि कबीर कर्तामें सब है, कर्ता सकल समाना।
भेद बिना सब भरम परे हैं, बूझत सन्त सुजाना॥

साखी प्रकरण में ( बीजक साखी १८४ में ) इन्होंने ग्रन्थ पूर्ण कर के चारों युगों के माहात्म्यरूप आत्मस्वरूप की मुख्य रहस्यमय बात के इस ग्रन्थ में आलिखित होने से प्रतिज्ञा की है कि अब वे कागद और स्याही का स्पर्श नहिं करेंगे क्योंकि कहने योग्य मुख्य यथार्थ बात का उन्होंने इस ग्रन्थ में निर्देश किया है।

मसि कागज छूवों नहीं, कलम धरों नहि हाथ।
चारिहु युग के महातम, मुखहि जनाई बाथ॥

प्राय: लोग इस साखी का अर्थ करते हैं कि श्री कबीर साहेब ने कागज और स्याही का स्पर्श किये बिनाही चारों युगों का माहात्म्य स्वमुख से ही सुनाया है। अर्थात् वे अपढ़, निरक्षर होने से लिखने के लिए अशक्त होने से स्वमुख से ही जो बात कही, उसे उनके शिष्यों ने संग्रह कर लिया, परन्तु ऐसा अर्थ करने पर उस साखी के लिखने का कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। यदि कोई व्यक्ति लिखना न जानता हो तो ऐसी साखी से अपनी महत्ता बताने में कोई विशिष्टता नहीं है। आत्म स्वरूप कागज और स्याही की मदद से शब्द में नहीं लिखा जाता और वह केवल अनुभूत हो सकता है, ऐसा अर्थ इस साखी में निरूपित किया गया है, आत्मस्वरूप कागज और स्याही की मदद से लिखने में नहीं आता इस भाव को बीजक में कई अन्य स्थानों पर निरूपित किया है।

मसि बिनु द्वात, कलम बिनु कागज,
बिनु अक्षर सुधि होई।
सुधि बिनु सहज ज्ञान बिनु ज्ञाता,
कहहि कबिर जन सोई॥
( बी. शब्द १० )

पौ बिनु पत्र, करह बिनु तुम्बा,
बिनु जिह्वा गुण गावे।
गावनहारक रेख रूप नहिं,
सतगुरु होय लखावे॥
( बी. शब्द १७ )

बरनहुँ कौन रूप औ रेखा,
दूसर कौन आहि जो देखा।
( बी० रमैनी ६ )

आत्म स्वरूप लिखा नहीं जाता। उसका अनुभव हो सकता है। इससे उस अर्थ में इस साखी का भाव नहीं प्रतीत होता है। कुछ लोग 'मसि कागज छूयो नहीं 'ऐसा पाठ भेद मानते हैं, परन्तु ऐसा अर्थ में लिखने का प्रयोजन तो अपनी महत्ता बताने के सिवा और क्या हो सकता है। श्री कबीर साहब को ऐसी महत्ता बताने का क्या प्रयोजन हो सकता है। जो पद-पद में अभिमानादि के त्याग का निर्देश करते हैं वे स्वयं अपनी आत्मश्लाघा रूप अभिमान प्रदर्शित करें यह सर्वथा असंभव है। इससे इस साखी का अर्थ गांभीर्य भी विचारणीय है।

इस ग्रन्थ के मुख्य तीनों प्रकरणों रमैनी, शब्द, तथा साखी—में उन्होंने शुरुआत में आत्मस्वरूप का निर्देश तथा अन्त में संसार के मिथ्यात्व का निर्देश किया है और छोटे-छोटे अन्य आठ प्रकरणों में संसार में दुःखरूपता उसकी असारता तथा पाखंड का निर्देश किया है।

प्राचीन काल में तथा मध्ययुग में पुस्तक के अंत में उपसहार के रूप में प्रश्न रखकर उसका उत्तर भी निर्दिष्ट करने की प्रथा प्रचलित थी। ऐसी प्रथा कई प्राचीन ग्रन्थों में पाई जाती है। ऐसी ही प्रथा का श्री कबीर साहेब ने भी अनुशीलन किया है, और साखी प्रकरण के अंत में प्रश्न रूप में ३८४ वें साखी में आई है कि—

तीन लोक लोटी भया, गीध लिये मडराय।
मैं तोहि पूछो पण्डिता, कौन वृक्ष चढि खाय॥

इस ग्रन्थ के अध्ययन के बाद उसमें निर्दिष्ट रहस्य को शिष्य ने यथार्थ रूप में समझा है कि नहीं इसको जानने के के लिये परीक्षा के रूप में प्रश्न है कि तीनों लोक रूपी रोटी ( खाद्य पदार्थ ) को लेकर अशुद्ध मन रूपी गीध चक्कर लगाता हुआ उड़ता है, अर्थात् लोक देहादि को

वासना से मन भटकता है और उसके अधीन जीव चक्कर लगाता है। हे पण्डित शिष्यों, वह गीध कौन से वृक्ष पर चढ़कर उसको वासनानुसार खायेगा। तीनों लोक के भोगों को किसके आश्रित रहकर वह भोगेगा। भोक्ता, भोग्य और भोग का आधार कौन है। उसके उत्तर के रूप में साखी ३८५ है कि—

आँगन बेलि अकाश फल, अनब्यानी के दूध।
शाशा सींग के धनुष करि, खेले बाँझक पूत॥

उत्तर है कि हृदयरूप आँगन में मन, माया बुद्धि-रूप बेली-लगी है, और चिदाकाश में अर्थादि रूप, सुख दुख रूप फल लगे हैं ऐसा प्रतीत होता है। वह फल बाँझ गौ के दूध के समान मिथ्या कल्पित है, तो भी उसके लिये बाँझनी माया के पुत्र रूप मन-जीव सर्व शशश्रृङ्ग, तुल्य शास्त्रादि, कर्मादिका धनुष बनाकर शिकार खेल रहे हैं। अर्थात् चिदाकाश में ही माया से भोक्ता, भोग्य, भोगादि सब सिद्धि होते हैं। इससे चिदात्मा ही मिथ्या सर्वत्रिपुटिओं का आधार अर्थात् अधिष्ठान है, अन्य कोई नहीं। वही सर्व साक्षी सर्वात्मा है।

ऐसे प्रश्नोत्तर रूप में ग्रन्थ की समाप्ति पर भी इस ग्रन्थ में श्री कबीर साहेब ने स्वयं लिखा है ऐसा प्रतीत होता है।

भारत के महान सन्त परमपूज्य श्री नाभादासजी कृत भक्तमाल में भी श्री कबीर साहेब विषयक छप्पय में इस ग्रन्थ के तीन मुख्य प्रकरणों का उल्लेख है।

हिन्दु तुरक प्रमान, रमैनी शब्दी, साखी।
पक्षपात नहीं वचन, सबहीके हितकी भाखी॥

इस प्रकार इस ग्रन्थ को श्री कबीर साहेब कृत प्रमाणिक ग्रन्थ श्री नभादास जी महाराज ने भी बताया है।

कोई लोग रमैनी १४ 'सत्य कबीर सत्य है वक्ता। तथा शब्द ८४—

हिन्दु कहै हमें ले जारब, तुरुक कहै मोर पीर।
दोनों आय दीन महँ झगरहिं, देखहिं हस कबीर॥

के आधार पर कहते हैं कि यह ग्रन्थ संग्रह ग्रन्थ है। परन्तु यह मान्यता भी भ्रामक है। क्योंकि रमैनी १४ में पंक्ति ७ तथा ८ में उल्लिखित है कि—

एक से पूजा जैनि विचारा,
एक से निहुरि निमाज गुजारा।
कोउ काहुको हटा न माना,
झूठा खसम कबीरन जाना॥

ब्राह्मणादि उपदेशकों ने अनेक ग्रन्थादि की रचना करके अनेक पन्थ चलाये। जैनिओंने भी तीर्थंकरों की पूजा का प्रतिपादन किया। इस्लाम धर्म में निजाम को सिद्ध किया। ऐसे 'कबीर' अर्थात् अनेक उपदेशक कवियों ने अनेक रास्ते-पन्थ-चलाये और कोई भी असत् मार्ग से निवारणरूप अन्य का उपदेश नहीं मानते हैं। इससे हे भक्तों 'तन मन' का निग्रह कर के असत् वस्तु विषयक प्रवृत्ति से दूर हो और 'सत्य कबीर' अर्थात् सत्य खसम स्वामी के उपदेशक आचार्य—अविगत, अविनाशी, सर्वात्म स्वरूप चेतन वस्तु के उपदेशक गुरु ही सत्य वक्ता हैं, इससे उनकी शरण प्राप्त करो। वहाँ 'सत्य कबीर' शब्द से सत्य वस्तु दर्शक-आचार्य गुरु का उल्लेख है। वह उल्लेख श्री कबीर साहेब ने अपने लिये किया है ऐसा पूर्वापर सम्बन्ध से नहीं प्रतीत होता वह उल्लेख उनके लिये है, ऐसा मानने पर था इस ग्रन्थ को संग्रह ग्रन्थ कहना उचित नहीं है। क्योंकि उनके विचारों में अविनाशी, अविगत, सर्वात्म स्वरूप चेतन वस्तु के उपदेशक ही सच्चे गुरु हैं। शब्द ८४ में भी त्रिगुण से परतत्व में जिज्ञासुओं को स्थिर होने का उपदेश है। त्रिगुण के पूरे मर्म को जाने बिना योगी, ज्ञानी महात्मा भी त्रिगुणको ही रामादि मानने लगे। इससे वे काल पाश से रहित नहीं। स्थूल शरीर की अंतिम क्रिया के लिये निरर्थक झगड़े का उल्लेख करके हंस रूपी विवेकीजन की दृष्टि का दिग्दर्शन कराया है। माता पिता आदि की मृत्यु पर हिन्दू कहते हैं कि हम मृत शरीर का अग्निदाह करेंगे और मुसलमान कहते हैं कि हम दफन करेंगे जिससे उनकी सद्‌गति हो। ऐसे दोनों धर्मावलंबी अग्निदाह और दफन करने के लिये अर्थ झगड़ा करते हैं परस्पर वैरभाव रखते हैं, परन्तु हंस रूपी विवेकी जन उदासीन होकर तटस्थ हो कर ऐसे झगड़े से दूर रहते हैं, क्योंकि ऐसा झगड़ा अविवेकमूलक है। शरीर को अग्निदाह या दफन करने से सद्‌गति होने की मान्यता ही भ्रांतिमूलक है। शरीर जीव या आत्मा नहीं है। मृत्यु के बाद शरीर का जीव के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता, क्योंकि शरीर मायिक भूतों का कार्य है। वहाँ 'हंस कबीर' शब्द से

विवेकी हंसजनों को उल्लेख है। इससे यह भी अनुमान हो सकता है कि श्री कबीर साहेब ने अपने भावी वृतान्त को भी पहले ही सूचित कर दिया है। मगहर में श्री कबीर साहेब के शरीर त्याग की घटना इतिहास सिद्ध सत्य घटना है। उनके शिष्य, उनके काल पाश से रहित स्वरूप को न समझ पाने से उनके मृत शरीर के लिये झगड़ते थे। वहाँ उनका मृत स्थूल शरीर नहीं मिला, और फूलों में रूपांतरित हो गया उसे लेकर शिष्यों ने समाधि और मकबरा बनाया। वे स्थान आज भी उस घटना की याद दिलाते हैं। इसके बाद अनेक संत, महात्माओं और भक्तों को उनके प्रत्यक्ष दर्शन का संतवाणी में उल्लेख है। सत श्री रैदास जी की बानी नाम का एक संग्रह बेल्वेडीयर प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हुआ है, उसके पृष्ठ ३३ पर उल्लेख है कि 'निरगुन का गुन देखा भाई, देही सहित कबीर सिधाई"। इस प्रकार श्री बीजक ग्रन्थ के अन्त साक्ष्य से भी वह ग्रन्थ श्री कबीर साहेब ने स्वहस्त से नहीं लिखा है ऐसा मानना उचित नहीं है।

श्री कबीर साहेब ने बीजक ग्रन्थ में 'कबीर' शब्द का प्रयोग, अन्य जीवों के लिये भी किया है। जहाँ-जहाँ 'कबीरा' 'कबीरन' पद का उल्लेख है वहाँ सामान्य जीव या अज्ञ जीव के अर्थ में उनका प्रयोग है।

कबीरन भक्ति बिगारिया, कंकर पत्थर धोय।
अंतर में विष डारि के, अमृत डारिन खोय॥
(बी० साखी २५६)

तीर्थ भई विस वेलरी, रही युगहुँ युग छाँय।
कबीरन मूल नि न्दिया, क्यों न हलाहल खाय॥
(बी० साखी २२२)

जो वन सायर मूझते रसिया लाल करांहि।
अब कबीर पाँजी परीं, पन्थी आवहिं जाहिं॥
(बी० साखी ६४)

वहाँ कबीरन' शब्द अज्ञ जीवों के लिये प्रयुक्त हुआ है। वहाँ 'कबीरन' ऐसा उनका व्यक्तिपरक योग मानने पर चौथे चरण में डारिन शब्द का बहुवचन में उपयोग हुआ है वह निरर्थक होगा। 'दास कबीर' प्रयोग श्री ज्ञानी भक्त के लिये हुआ है। 'दास कबीर जतन से ओढिन' वहाँ भी 'दास कबीर' प्रयोग ज्ञानी भक्त के लिये हैं। कबीर साहेब कहते हैं कि जो दास हुए उन्होंने युक्तिपूर्वक यह शरीर रूपी चादर ओढी। वहाँ ओढिन शब्द बहुवचन होने से उसको श्री कबीर साहेब के लिए व्यक्तिपरक मानना व्याकरण के अनुसार उचित नहीं है। दास शब्द की व्याख्या उन्होंने की है कि—

ह्वै रहे जब दास यह, तब सुख पावै अन्त।
देखो रीति प्रह्लाद को, निरख्यो सब में कन्त॥
(तीसायन्त्र)

जो दास हो कर रहता है, वह अंतिम चरम सुख को पाता है। प्रह्लाद ने सब में प्रभु के दर्शन किये तो खम्भ में स नृसिंह का अवतार हुआ।

बीजक साखी ५७ में कहा है कि—

ये कबीर, तैं उतरि रहु सम्मल परो न साथ।
संमल घटे और पगु थकं, जीव बिराने हाथ॥

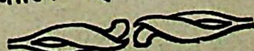
श्री कबीर साहेब कहते हैं कि हे जीवो जिज्ञासुओ, मुमुक्षुओ, तुम स्वर्गादि की आशा को त्याग करके निष्काम कर्म, आत्म विचारादि पूर्वक भक्ति करो, उसमें उतर कर रहो। उसके बिना तुम्हारे पास उत्तम, अक्षय, वैराग्य, ज्ञानरूप बाट खर्च नहीं रहेगा, इससे परवश हो जाओगे।

बीजक साखी ४७ में भी कहा है कि—

कबीर भरम न भाजिया, बहुविधि धरिया वेष।
साईं के परिचावता, अन्तर रहि गौ रेख॥

श्री कबीर साहब कहते हैं कि विवेकादि बिना जीवों ने अनेक प्रकार के वेष धारण किये हैं, परन्तु उनका भ्रम छूटता नहीं है। 'कहैं कबीर' प्रयोग कवि आदि के लिये और 'कहहिं कबीर' उनका उपदेश बोधपरक है। ऐसे इस ग्रन्थ को यथार्थ रूप में समझने के लिये यह सांकेतिक भाव भी लक्ष्य में रखने की आवश्यकता है।

इस प्रकार यह ग्रन्थ सद्गुरु श्री कबीर साहेब की एक अलौकिक, अनुपम कृति है। यहाँ मुमुक्षु के लिये अध्यात्म तत्वकी अपरोक्ष अनुभूति के लिये महान् प्रेरणा रूप है। मुमुक्षु इसके अध्ययन से जीवनमुक्ति के आनन्द को प्राप्त कर सकता है।



# श्री सत्कबीर साहब के जीवन-दर्शन की एक झलक

कु० हंसाची झंझूवाडिया ( वेदान्ताचार्य ) जामनगर

भारत की पावन धरा पर युगधर्म के अनुसार परमात्मा के विविध रूपों का अवतरण हुआ, जिसमें एक ऐसी परमतोजोपुज विभूति सन्तरूप में अवतरित हुई, जिसके पुनीत दर्शन से यह सारा भूलोक आलोकित हो उठा। उनके ज्ञानालोक से कलमषता का शीघ्र विध्वंस हुआ। उस समय जनजीवन में पूर्णतया अज्ञानता एवं नैराश्य का गहन अन्धकार छा गया था, क्योंक इतिहास से मालूम पड़ता है कि देवत्व की इस पुण्यभूमि पर दानवता का साम्राज्य छा चुका था भारत की आर्य हिन्दू जाति विक्रम की पन्द्रहवीं सदी में अनार्यों के घोर अत्याचार का दुःखानुभव कर रही थी। क्रूरता, नृशंसता एवं अनीति भारतीय रंगमंच पर क्रीडा करने लगी थीं, अतः दुःखित, पीड़ित मानवता के आर्तक्रन्दन में सुख और आनन्द सर्वथा विलुप्त हो गया था। तभी एकाएक उस मध्ययुग के भारत को पृथ्वीतल पर तेजोपुंज की इस ज्योतिर्मयी किरण ने सृष्टि को स्वर्गमय बनाने के हेतु सुख और शान्ति का सन्देश लेकर व्याप्त निराशा की कालिमा का भेदन कर सत्यधर्म और भक्ति की दीप शिखा प्रज्वलित की। 'संभवामि युगे-युगे' की प्रतीति कराकर उन्होंने जनजीवन की परमचेतना में पूर्णतया जागृति भर दी और जागृति के साथ परम आश्रय दिया, जिससे मानव ने सच्ची अभयता पायी, जिसके फलस्वरूप जनजीवन में नयासंचार हुआ और सुखानुभवके दर्शन हुए।

धर्मान्तर प्रवृत्ति होने से श्रद्धा, विश्वास और निष्ठा की जो नींव हिलने लगी थी उसने श्रद्धाविश्वास के मूर्तिमन्तप्रतीक रूप में भक्ति का सुदृढ आश्रय लेकर निराश्रित और भ्रमित जनसमूह को आश्रय दिया। ऐसे परमाश्रयदाता तेजो पुञ्जविभूति से भला कौन अनभिज्ञ होगा? वे थे हमारे परमश्रद्धेय गोसाईं धर्मदासजी के परमाराध्य देव सद्गुरु कबीर साहब। सर्वप्रथम उन्होंने कबीर साहब को गुरु के रूपमें और स्वानुभूति के बाद ईष्टदेव के रूप में जाना। वास्तव में गुरु और परमेश्वर में कोई अन्तर है ही नहीं। सन्तमत के आदि प्रणेता सद्गुरु कबीर भगवान् ने इस राष्ट्र को सत्य, अहिंसा, एकता, एकेश्वरवाद और विश्वबंधुत्व जैसे विश्वव्यापी पञ्चशील का उपदेश दिया और उन्होंने कुचक्र सामाजिक विडम्बनाओं एवं बाह्याडम्बरों से परे सुख और शान्ति का संदेश दिया। सत्यधर्म के तो वे प्रतीक थे, अतएव धर्मदासजी ने उन्हें जो सत्कबीर की संज्ञा दी वह योग्य ही है। कबीर शब्द ब्रह्मांक है, त्रिअक्षरीय शब्द कबीर की विशेषता का वर्णन राम कृष्ण की तरह लिया जाय तो अंकद्वय का योग १ होता है। क से क १ ला स्थान, क से ब २३ वाँ स्थान, अ से ई ४ था स्थान और क से र २७ वाँ स्थान। योग फल—५५ और अंकद्वय का योग ५+५=१० और १+०=१ हुआ। इसका अर्थ यह है कि घटाने-बढ़ाने पर दोनों स्थिति में यह १ अपनी स्थिति पर निर्बाध रूप से विद्यमान रहता है। इस ब्रह्मांक से यह सूचित हुआ कि सम चाहे विषम जैसा भी रहे, परंतु ईश्वर तीनों काल में सम एवं एक रस सर्वत्र व्याप्त रहता है। अतएव 'कबीर' 'ब्रह्मांक' सिद्ध हुआ। कबीर साहब नेअपना 'कबीर' नाम स्वयं बताया है। कबीर साहब की बाल्यावस्था के विषय का यह प्रसङ्ग है। पण्डित लोग नामाविधान करने आये और साहब ने कहा कि आपमिथ्या सोच रहे हैं। मेरा नाम कबीर है। कबीर शब्द की सिद्धि वेदों उपनिषदों और शास्त्रों में स्पष्टदर्शित है। अथर्ववेद-ब्राह्मणभाग में अजरत्वं कबीरममरत्वं कबीरं बृहत्वं ब्रह्मवर्धतेहरि कबीरम्। इन सब कारणों से स्पष्ट है कि उनका अवतरण सत्पथप्रदर्शन कराना और मध्यकालीनविषम परिस्थिति का निवारण करके राष्ट्रनिर्माण एवं जनहित करना था। सद्गुरु कबीर भगवान् का जीवन बड़ा ही मार्मिक है। उन्होंने केवल उपदेश ही नहीं, अपितु हिन्दू मुस्लिम धर्म के सारग्राही तत्वों का सुमेल कर के धार्मिक और सांस्कृतिक एकता भी स्थापित की, अतएव उदात्त दृष्टिकोणवादी साहब को हिन्दू मुसलमान और अनेक जाति के लोगों ने, राजा महाराजाओं ने बड़े आदर और सम्मान के साथ देखा और उनसे प्रभावित होकर दोनों ने शिष्यत्व भी स्वीकृत किया। भारतीय इतिहास ऐसे असंख्य दृष्टान्तों से भरा है।

प्रादुर्भाव से लेकर अन्तर्हित होने तक उनके सभी दिव्य चरित्र सहज रूप में चमत्कारों से व्याप्त मिलते हैं। यह किसी व्यक्ति के लिए संभव भी नहीं, परमात्मा के लिए ही संभव हो सकता है। व्यासजी ने भविष्यपुराण में कहा है कि कलियुग में कबीर नाम के सन्त के रूप में हरिका जन्म होगा। गर्गसंहिता, भृगुसंहिता इत्यादि में इतर असंख्य प्रमाणों से भी सद्‌गुरु ईश्वरावतार सिद्ध होते हैं और हमारा तो परम विश्वास है कि वे स्वयं सिद्ध परम पुरुष परमात्मा ही थे। इतर प्रमाणापेक्षयास्वयं श्री मुख के प्रमाण से ही सिद्ध है फिर अन्य प्रमाणों की आवश्यकता ही नहीं, परंतु हठाग्रहवादियों को भविष्यपुराण खोलकर अवश्य देख लेना चाहिए। बीजक रमैनी४ में 'कहियत मोहि भयल-युगचारी' तथा 'कहहिं कबीर हम जुग-जुग कहीं' एवं 'अब हम अविगत से चलि आये, मेरा भेद मरम नहीं पाये।' इत्यादि वचन हैं। केनोपनिषद् में भी परमात्मा तेजोपुञ्ज के रूप में प्रगट होते हैं, यह कथा प्रसिद्ध है। जो बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' करुणा के अवतार प्रभु स्वधाम से तेजोपुञ्ज के रूप में श्री काशी के लहरतारा नाम के पवित्र तालाब में कमल पत्र पर १४५५ में ज्येष्ठ पूर्णिमा के सुरम्य प्रभात के समय बालक के रूप में प्रकट हुए। जहाँ से नीरु और नीमा नामक दम्पती उनको अपने घर ले आये थे। यद्यपि अवतारी पुरुष के सर्वव्यवहार लौकिक जीवों की तरह दिखते हैं परंतु वे लौकिक नहीं, अलौकिक है। रामकृष्ण की लीलाओं की तरह सद्‌गुरु की भी लीला थी, जैसे जगनाथपुरी में जलते हुए पंडेको दूर-देशान्तर में होते हुए बचाना, और समुद्र को हटाना, मगहर में शुष्क आमी नदी को प्रवाहित करना, जल में जल होना, मुर्देको सजीव करना, कहीं अकस्मात् प्रकट हो जाना, तो कहीं अन्तर्द्धान हो जाना, सूखी वृक्ष की डाली पर पानी की अंजली देकर वटवृक्ष को अंकुरित करना, (हाल में आजकल वह वटवृक्ष विशाल होकर कबीर वट के नाम से भडौंच में नर्मदा नदी के पास ऐतिहासिक वृक्ष की गणना में सुप्रसिद्ध है।) दिल्ली के सुलतान को उपदेश कर राज महल में सूक्ष्म रूप में प्रवेश करना, अग्निपरीक्षा तथा शास्त्र परीक्षा से पार उतरना, बलख शहर में शाही महल में प्रवेश करके जेल के बंदी खाने से सर्व सन्तों को मुक्त करना, धर्मदासजी को सन्त के विविध स्वरूपों में दर्शन देना बावनकसनी में तलवार आदि शस्त्रों से काटने पर भी वे जैसे के तैसे ही रहे और ऐसे ही असंख्य उदाहरण हमें उनके धर्मदास जी के साथ संवाद रूप ग्रन्थों में समुपलब्ध होते हैं। वे पाँचभौतिक शरीर से परे थे, अतएव ऐसा हुआ। इससे सिद्ध तो यही हुआ कि वे अविनाशी पुरुष थे। शंका हो सकती है कि ऐसा व्यवहार योगी भी कर सकते हैं; तो इसका उत्तर यह है कि योगी साधन सिद्ध जरूर होते हैं, स्वयं सिद्ध नहीं, परंतु सद्‌गुरु तो स्वयं-सिद्ध थे। वे कहीं साधन सीखने नहीं गये थे। स्वयं सिद्ध होने से प्रगट होते ही उनकी अलौकिक दिव्य लीलायें देखने में आई थीं। अतः वे अवश्यमेव ईश्वर के सन्त अवतार थे, इसमें कोई शका का स्थान नहीं है। अन्तर्धान के समय भी उन्होंने मगहर जाकर एक कुटिया में द्वार बंद करके तेजोपुञ्ज के रूप में गमन किया। अनेक हिन्दू और मुस्लिम राजाओं के सामने यह घटना हुई। जब द्वार खोला गया तब अवशिष्ट रहे केवल चादर और फूलों का ढेर। परम-धाम जाने के बाद भी सद्‌गुरु कबीर साहब का समय-समय पर प्राकट्य हुआ है। उदाहरणार्थ वे गरीबदासजी को अट्ठारहवीं शताब्दी में दर्शन देकर अन्तर्धान हो गये। यह एक सच्चा इतिहास है, कल्पित कथा नहीं। रेडियो पर जब हम कबीर साहब की यह प्राचीन रचना सुनते हैं तो सर्वथा पुलकित हो उठते हैं, क्योंकि वे केवल एक युग में ही नहीं, अपितु चारो युग में वे मानव कल्याण के लिए परम कृपा कर के आये हैं। एक बार नहीं अनेक बार कृपा की वर्षा की है। चारो युग में होने के नाते वेद में जो उल्लेख किया गया है वह सत्य ही है। क्योंकि साहब के कथनानुसार—

> वेद हमारा भेद है, हम वेदों के माहिं।
> जिन वेदो में मैं रहा, वेदहु जानत नाहिं॥

उक्त शब्द रचना से वे सर्व के अभाव में भी थे, दूर से तो यह सिद्ध हो ही गया कि ईश्वर के सिवा दूसरा सबके अभाव में हो ही नहीं सकता है। किसी भक्त ने पूछा कि बाबा आप कब से वैरागी बने? तब उसका प्रत्युत्तर प्रश्नोत्तर रूप में निर्भीक सत्यवादी बाबा जी ने स्पष्ट रूप में प्रस्तुत कर दिया कि—

कबीरा कबका भया है वैरागी आद अन्त लहे लागी
अंध भी नाहीं धुंध भी नाहीं, नाहीं गुरू और चेला,
जिस दिन महादेव जन्मा नाहीं, तिसदिन का फिरू अकेला
जननी नहीं जहाँ जन्म रेलेऊ, नीर नहीं तहाँ नहाऊ,
धरती नहीं जहां पाऊज धारू, खण्ड नहीं तहाँ आऊँ,
चंदा भो नाहीं सूरज भी नाहीं, न होते नवलख तारा,
जिस दिन ब्रह्मा जन्मा नाहीं, तिस दिन का मेल हमारा,
धरती बनी तब टोपी पहेरी, राम भये तब टीका,
जिस दिनको मैं मुड मुंडाई तिस दिन का झोली डंडा।
सतयुग में सत पावडीलीना, द्वापर में लिया डडा,
त्रेतायुग में आडबंध बांधे, कलियुग में नव खंडा।
सहेजे सहेजे सतगुरुमिलिया, मिलिया रामानंदा,
कहें कबीर सुनो भाई साधो, अब हम भये आनन्दा ।।

इस पद्यानुसार चारो युग में आने का कारण स्पष्ट है और कार्य की भी सूचना है। मानव हित के लिए उन्होंने साखी, शब्द पद-इत्यादि अनेक प्रकार की लोक भाषा में लोक हृदय तक बानी पहुँचायी, "ऐसी बानी हम कही जैसे बालुरेत" भाषा पर ध्यान नहीं दिया। जन जागृति उनका मुख्य ध्येय था। इस पुनीत वाग्धारा में धर्म, राष्ट्र, मानवता के सभी प्रकार के प्रश्नों का रहस्य स्फोट है। प्रश्न से लेकर समाधान तक पूर्ण विराम हैं, अतएव राष्ट्रोत्थान के लिए इसका पठन पाठन अवश्य होना चाहिए क्योंकि इस अमृतमय वानी में राष्ट्रनिर्माण की ओजस्वी झलक मिलती है, और यह परमतत्व की ओर ले जाने में सहायक है। उनकी अमरवाणी चिरकाल तक भारत के कण कण में ध्वनित होती रहेगी और युग-युग तक जिज्ञासुजनों की पथ निर्देशिका बनकर ज्ञान तृषा को तृप्त करती रहेगी। इस अमर-बानी के प्रदाता अमर पुरुष को कोटि कोटि वन्दन।



॥ सत्यनाम ॥

## शोक-पत्र

प्रथम वंशाचार्य समर्थ मुक्तामणि नाम साहब कुदुरमाल गद्दी के आचार्य श्री १००८ पूज्यपाद श्री ज्ञानदास जी साहब का सत्यलोकवास दिनांक २३-२-८३ दिन बुधवार को हो गया। आपकी अवस्था ७१ वर्ष की थी आप कर्मठ और पंथ के कट्टर महापुरुष थे। आपने एक मिडिल स्कूल खोलकर कई साल अपने आश्रम के खर्च से उसको सुचारु रूप से चलाया था। तत्पश्चात् २५ एकड़ भूमि प्रदान कर आदिम जाति कल्याण विभाग को समर्पण कर दिया था। जो अभी भी सुचारु रूप से चल रहा है। आप समाज सेवी तो थे ही। आपने एक तालाब का निर्माण किया है जो आपके नाम से सम्बन्धित "ज्ञान सागर" से प्रसिद्ध है। आप एक बहुत बड़े आत्म ज्ञानी और तपस्वी थे। आपने अपने जीवन को कुछ काल तक गाँधी जी के साथ सेवार्थ लगाया था जिससे आपका सादा जीवन और उच्च विचार अन्तिम क्षण तक रहा है ऐसे महापुरुष के सम्बन्ध में जितना लिखा जाय कम ही है।

आचार्य श्री का चरण रज
म० ज्योतिर्दास शास्त्री
जय श्री कबीर धर्मस्थान आचार्यगद्दी कुदुरमाल

# संत कबीर साहब की प्रेमाभक्ति

विजेन्द्र पाण्डेय, काशी विद्यापीठ

प्रेम की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न मत स्थिर किये हैं। डॉ० भोलानाथ तिवारी ने 'प्री' धातु से 'श्मन्' प्रत्यय के संयोग से प्रेमन्-प्रेम की उत्पत्ति बतलाई है जो इसके धात्वर्थ में ही आनन्द के रूप में प्रतिष्ठित है। इसके भाव के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रिय का भाव ही प्रेम है। प्रेम की व्युत्पत्ति 'प्री' धातु में 'मनिन्' के संयोग से भी की जा सकती है। इन व्युत्पत्तियों के अर्थ में कोई मौलिक अतर नहीं आता। इस प्रकार इसका अर्थ हुआ जो प्रीति दे, तृप्ति दे वही प्रेम है। तृप्ति देने की क्रिया प्रिय से सम्बद्ध होकर ही सम्पन्न की जा सकती है।

प्रम वह माध्यम है, जो प्रेमी और प्रिय को संयोग की स्थिति में लाता है। यदि प्रेम न हो तो प्रिय और प्रेमी का अस्तित्व ही क्या? डॉ० रामकुमार खण्डेलवाल ने 'प्रेम' के पर्यायवाची के रूप में 'प्रणय' को महत्वपूर्ण माना है। उन्होंने इसकी व्युत्पत्ति 'नी' धातु से मानी है। 'नी' धातु से 'नेता' 'नीति' शब्द भी व्युत्पन्न हुए है जिनका अर्थ होता है जो आगे ले जायें। आरम्भ में यही अर्थ प्रचलित रहा। पीछे यह शब्द प्रम वाची बन गया तथा साहित्य में इसी अर्थ में प्रयुक्त होता रहा। फिर इसके अर्थ में संकोच हुआ और यह केवल दाम्पत्य प्रेम के अर्थ में ही सीमित हो गया। वैसे प्रेम वह है जो प्रेमी को प्रेमास्पद की ओर ले जाय। इसी से प्रेम का साधना-पक्ष भी द्योतित होता है।

मानव जब से इस धरती पर अवतरित हुआ है, तब से वह प्रेम को लेकर उदित हुआ है। मनु को सृष्टिकर्ता मानकर चलें तो मनु और श्रद्धा के प्रेम से ही इस सृष्टि का निर्माण हुआ। इसकी ऐतिहासिकता के बारे में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने बताया है कि प्रेम एक सहज मानवीय प्रवृत्ति है और इस मानव समाज की आदिम अवस्था से ही काम करती आ रही है। प्रेम का भाव मानवीय हृदय में स्वभावतः उदित होता है। अरबी शब्द 'इंसान' 'उंस' धातु से व्युत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है 'प्रेम'। जिसमें मुहब्बत नहीं वह इंसान कहलाने का अधिकारी नहीं है।

चतुर्वेदी जी के अनुसार प्रेम की व्याख्या की जाय तो प्रेम किया नहीं जाता है, वह हो जाता है। प्रेम क्यों होता है यदि इसका विचार करें तो ज्ञात होगा कि प्रेमपात्र में कुछ ऐसे गुण होते हैं जो प्रेमी को आकर्षित कर लेते हैं। पहले कोई परिचय नहीं होता, व्यक्ति रूप से आकर्षित होता है। आकर्षण दिल में समा जाता है। ऐसा क्यों होता है? इसलिए कि प्रेमी के मन में उस तरह के विचार या भाव पहले से विद्यमान रहते हैं जो समय आने पर अपना रंग जमा देते हैं। उदाहरण के तौर पर किसी नाटक के द्रष्टा को ले लें, नाटक देखने वाला उसके प्रदर्शन में पात्रों के साथ कभी हँसता है फिर वहीं वह रो भी देता है, ऐसा क्यों? इसलिए कि वह उनके साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है और उसके भाव में विह्वल होकर रोने-हँसने लगता है। ये उसके भीतर के उद्गार हैं। ठीक वैसे ही प्रेम की बात है। उसके यही भाव कभी-कभी अमिट रेखा खींच देते हैं, पर यह रेखा एक बार में नहीं खींची जाती, इसमें तारतम्यता होती है। प्रेमी ने उसे कई बार देखा, उसके बारे में सुना, कभी मौके से बात भी कर ली, या यों कहें कि अपने दिल के कुछ उद्गार भी कह दिये, इस तरह से प्रेम में और परिपक्वता आती गई, धीरे-धीरे एक स्थिति आई कि वे दोनों एक दूसरे के दुःख को अपना दुःख और सुख को अपना सुख मानने लगे, जो प्रेम की चरम अवस्था है। इसको देखकर डा० रामकुमार खण्डेलवाल कहते हैं कि 'प्रेम के साथ जो आनन्द का तत्व है, उसका भी विकास हुआ है। प्रेमी को प्रिय और प्रेम दोनों से सुख मिलता है। इसे सामान्य स्थिति कही जा सकती है। प्रेम की अद्भुत अवस्था वह है जहाँ प्रेमी अपने सुख के लिए प्रेम नहीं करता, प्रेमास्पद के सुख के लिए करता है। वह प्रम की शुद्धतम स्थिति है जो कृष्ण भक्ति शाखा की मधुरोपासना में मिलती है।

प्रेम का विकास भी हुआ है। वह व्यक्ति से व्यक्ति का प्रेम, व्यष्टि से समष्टि की ओर उन्मुख है। इसको देश-प्रेम, मानव-प्रेम, विश्वप्रेम जैसे जीवन-मूल्यों की संज्ञा दी जा सकती है।

प्रेम को किस प्रकार से व्याख्यात किया जाय ? उसकी संकुचितता और विस्तृतता पर ध्यान देते हुए उसे किसी एक रूप में नहीं कहा जा सकता। एक व्यक्ति अपनी माँ से प्रेम करता है, बहन से प्रेम करता है, भाई से प्रेम करता है, गुरुजनों से प्रेम करता है। उसकी पत्नी भी है, उससे भी प्रेम करता है, परन्तु सबके भिन्न-भिन्न आयाम हैं और सबसे प्रेम प्रदर्शित करने के भिन्न-भिन्न तरीके हैं। यही प्रेम का समग्र रूप है जिसे पारिभाषित एवं व्याख्यात नहीं किया जा सकता।

साहित्य और प्रेम का बड़ा घनिष्ठ सम्बंध है। साहित्य या काव्य का मूल स्रोत प्रेम ही है। वही साहित्य सर्जना की प्रेरणा देता है। पंतजी की पक्तियों पर विचार करें—

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान।
उमड़ कर आँखों से चुप चाप
वही होगी कविता अनजान॥

तो निश्चित रूप से आदि कवि वाल्मीकि तक जाना होगा। ऋषि के मन में काव्य के स्फुरण का स्रोत करुणा ही बनी, जो प्रेम का ही रक्षात्मक रूप है। प्रणयातुर क्रौंच को बाण विद्ध होते देखकर और क्रौंची का करुण क्रंदन सुनकर कवि के हृदय में जो भाव उद्भूत हुए वे ही प्रथम काव्य के प्रेरणा स्रोत बने।

भारतीय संस्कृति में पशु-प्रवृत्ति पर आधारित प्रेम की सर्वत्र विगर्हणा की गई। प्रेम का क्षेत्र जितना ही विस्तृत होता जाता है प्रेम उतना ही श्लाघ्य होता है। सच्ची मानवता तभी है, और मनुष्य, मनुष्य कहलाने का अधिकारी भी तभी हैं जब वह मानवमात्र के लिए बलिदान करने को तैयार रहे, 'वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे' हमारी संस्कृति एक देश में ही नहीं प्रत्युत सम्पूर्ण विश्व में फैलने को कहती है, वह विश्व प्रेम की भावना रखती है। इसीसे प्रभावित होकर गांधीजी ने कहा था कि 'प्रेम की परिधि हमें इतनी बढ़ानी चाहिए कि उसमें गाँव आ जाय, गाँव से नगर, नगर, से प्रान्त-यों हमारे प्रेम का विस्तार सम्पूर्ण संसार तक होना चाहिए। काव्य के गीतों का उद्गार क्यों होता है या कवि क्या है? इसके बारे में प्रसिद्ध अस्तित्ववादी कीर्केगार्ड का कहना है कि 'कवि एक दुःखी प्राणी है, जिसका हृदय किसी रहस्यमय प्रताड़ना से तार-तार हो गया है किन्तु उसके होठ कुछ ऐसी विचित्रता से बने हुए हैं कि जब उनसे रोदन और प्रच्छवास निःसृत होते हैं तब वे संगीत के माधुर्य से अनुगुंजित हो उठते हैं।'

संत कबीर साहब प्रेम को प्रतिपादित करके, अपनी पूर्वपरंपरा से अलग हो गए। उन्होंने देखा कि नाथयोग में साधना तो है पर उसमें हठवादिता भी है, उसमें 'प्रेम' नामक कोई चीज नहीं है। वे अपने सिद्धान्त में 'प्रेम' को लेकर आये, जिससे नाथयोग से कुछ अलग हो गए। कबीर साहब के बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बतलाया है कि इनकी साधना के तीन अवयव हैं—कर्म, ज्ञान और भक्ति। इस दृष्टि से यदि देखें तो कबीर साहब का ज्ञानपक्ष तो रहस्यमय और गुह्य की भावना से अनुरंजित मिलेगा पर, सूफियों से जो प्रेम तत्व लिया है वह सूफियों के यहाँ चाहे कामवासना ग्रस्त रहा हो पर निर्गुण पंथ में अविकृत रहा। यह निःसंदेह प्रशंसा की बात है। आचार्य शुक्ल ने ही अपने 'श्रद्धा और भक्ति' नामक निबन्ध में बताया है कि श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। अर्थात् भक्ति भी प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। प्रेम में ऐकांतिकता होती है, पर कबीर साहब के प्रेम में ऐकान्तिकता होते हुए भी वह लौकिक ऐकांतिकता से भिन्न है। यह सच है कि कबीर साहब का प्रेमी एक है, पर वे यह नहीं चाहते कि कोई उससे प्रेम न करे। वे चाहते हैं कि सभी प्राणी, सभी मानव, सभी धर्म सभी सम्प्रदाय के लोग उससे प्रेम करें। इसीलिए वे हिन्दू और मुसलमान दोनों को समान रूप से ललकारते हैं, कि ये आपस में अपने-अपने प्रेमास्पद के लिए लड़ते हैं, हिन्दू का प्रेमास्पद राम और मुसलमान का रहीम या अल्लाह है, जब कि दोनो एक ही हैं—

संतो देखत जग बौराना
हिन्दू कहै मोहि राम पियारा तुरुक कहे रहिमाना।
आपस में दोउ लरि लरि मूवें, मरम न काहू जाना॥

वे सबको उससे प्रेम करने के लिए ललकारते हैं। पर उससे प्रेम करना इतना सरल नहीं है अपितु कठिन है। वे कहते हैं कि उससे प्रेम करने के लिए 'स्व' को समाप्त करना पड़ेगा। वहाँ पर 'सर' को अलग करना पड़ेगा तब

प्रेम की प्राप्ति हो सकती है—

कबीर यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सोस उतारे भुई धरे, सो पैठे घर माहिं॥

सच भी है जहाँ 'अहम्' भाव होना है, या प्रेमी के सामने अपने बड़प्पन का ध्यान रहता है या यों कहें कि यह धारणा रहती है कि मैं बड़ा हूँ वहाँ प्रेम के लिए कोई स्थान नहीं है यदि है तो निश्चित रूप से वह प्रेम नहीं हो सकता। संत कबीर साहब भी प्रेम में अहम् को त्यागने की बात करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि प्रेम हृदय का सौदा है। इसमें एक ही रह सकता है, या तो मैं रहूं या मेरा प्रियतम। यदि मेरा ही मेरे भीतर साम्राज्य फैला है तो प्रिय किस प्रकार से रहेगा।

इसीलिए कबीर साहब कहते हैं कि—

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, जामें द्वै न समाहिं॥

प्रेमी को प्रियतम को प्राप्त करने में महान् कष्ट उठाना पड़ता है। क्योंकि प्रियतम तक जाने का रास्ता बड़ा कठिन है। वहाँ तक पहुंचने में नाना प्रकार की बाधाएँ हैं। कुछ ऐसे पहरेदार हैं जो बड़े ही सजग हैं, उनको भी समाप्त करना है। कहीं ऐसा न हो कि प्रहरी ही बलवान् हो तो उससे युद्ध करते हुए अपनी भी जान की कुर्बानी करनी पड़ेगी, इसलिए अपने प्रियतम को प्राप्त करने के पूर्व यह मानलें कि भले ही सिर कलम हो जाय उसको प्राप्त करेंगे। कबीर साहब भी इसी प्रकार के दृढ़ व्रती हैं। वे कहते हैं—

कबीर निज घर प्रेम का, मारग अगम अगाध।
सीस उतारि पग तलि धरे, तब निकरि प्रेमका स्वाद

संत कबीर साहब का प्रेम अनन्य हैं, वे अनेक में विश्वास नहीं करते; क्योंकि प्रेम अनेक से हो ही नहीं सकता, उनका प्रेम एक 'राम' से है और किसी से नहीं—

आसा एक जु राम की दूजी आस निरास।
पाँणी माहे घर करे ते भी मरे पियास॥

उनको विश्वास भी है कि एक की ही साधना से उनका कल्याण हो सकता है। उनका दूसरा कोई है नहीं। दूसरे के पास वह सामर्थ्य नहीं है जो उनके मन की प्यास को बुझा सके। वे कहते हैं कि जिनको राम जैसा प्रेमी मिल गया है, उनको अन्य प्रेमियों के पास जाने की क्या जरूरत है—

अब मोहि एक भरोसा तेरा,
और कौन का करौं निहोरा।
राम सरीखा साहिब भाई,
सो क्यों अनत प्रकासन जाई॥

जब प्रेम में निश्छलता आ जाती है, तो साधक तन मन से प्रेमी पर अपने आपको छोड़ देता है, या यों कहे कि अपना सर्वस्व प्रेमी को लुटा देता है, तब निश्चित रूप से उसको परमपद प्राप्त हो जाता है। साधक अपने प्रिय के लिए अपने को होम कर देता हैं, और जब निश्चल प्रेम प्राप्त कर लेता है तब परमपद या परम गति को प्राप्त करता है। संत कबीर साहब भी इसी परम पद को प्राप्त करने की ओर संकेत करते हैं—

प्रेम लगन लै लीन मन, सो बहुरि न आया।
कहै कबीर निहचल भया, निरभै पद पाया॥

प्रेम में क्या होता है, कितनी परेशानी होती है, इसको कहा नहीं जा सकता। किस प्रकार से कहा जाय? कौन सा मापक रखा जाय? यह समझ से परे हैं। घनानंद की एक पंक्ति से इसको जाना जा सकता है, 'जाने वेई दिन रात बखाने ते जाय, परे दिन राति को अंतर'। ये दिन और रात की सूनी घड़ियाँ ही बता सकती हैं जिनमें बैठकर प्रेमी अपने प्रेमास्पद के लिए क्रिया कलाप करता है। परन्तु उसको व्याख्यात करें तो दिन और रात का अंतर हो जायेगा। संत कबीर साहब भी, प्रेम के बारे में अपनी यही मान्यता देते हैं। उनके भी प्रेम की कहानी अकथनीय है। वह किसी भी प्रकार से कही नहीं जा सकती, गूँगा किस प्रकार से गुड़ के बारे में बतायेगा। वह तो अनुभव-जन्य है। प्रेम आत्मा की वस्तु है इसका भीतर ही भीतर समझ कर रसास्वादन किया जा सकता है। यदि फिर घनानंद की उक्ति 'विरही पुकारन में मौन की पुकार है' से लें तो कबीर साहब भी उसी बात को कहते हैं—

अकथ कहानी प्रेम की, कछू कही न जाइ।
गूँगे केरी सरकरा, बैठे ही मुसकाइ॥

प्रेमी, प्रियतम को प्राप्त करने के लिए, कष्ट उठाता है। वह राह को देख रहा है, इतना ही नहीं राह को देखते

देखते उसकी आँखों में झांई पड़ गई है, राम की रटन करते करते जिह्वा में छाला पड़ गया है—

अंखड़ियाँ झाँई पड़ी पन्थ निहारि-निहारि।
जीभड़िया छाला पड़्या, राम पुकारि-पुकारि॥

जब विरह की स्थिति होती है, तो प्रेमी रोता भी है। उसको कष्ट तो होता ही है, पर उसका कष्ट अभावग्रस्त नहीं होता। प्रायः सांसारिक लोग किसी को रोते हुए देखकर, इसको किसी सांसारिक वस्तु के अभाव का दुख मान लेते हैं और उसकी तुलना सामान्य प्रेमी से करते हैं। परन्तु प्रेमी का दुःख ऐसा नहीं हैं क्योंकि उसका जो रोग है वही दवा भी है। सांसारिक वस्तुओं में रोग कुछ और होता है और दवा कुछ और। मीरा भी प्रेम के वशीभूत होकर, कृष्ण के लिए कष्ट सह रही है। उसके कष्ट के कारण हैं कृष्ण। उसके रोग भी कृष्ण ही हैं और दवा भी कृष्ण ही हैं—मीरा का प्रभु पीर मिटै जब वैद सँवरिया होय। इस स्थिति में प्रेमी का आकलन सांसारिक चक्षुओं से नहीं किया जा सकता। उसके लिए प्रेमी हृदय बनना पड़ता है—

अंखड़ि प्रेम-कसाइयाँ लोग जाणे दुःखड़ियाँ।
साँई अपणे कारणे, रोई-रोई रत्तड़ियाँ॥

यदि प्रियतम को प्राप्त करने में किसी प्रेमी को कष्ट होता है तो कोई नई बात नहीं है, क्योंकि वह जिस किसी को प्राप्त हुआ है कष्ट से ही प्राप्त हुआ है। हँसी खेल में प्रियतम को प्राप्त किया ही नहीं जा सकता। इसका सम्बन्ध लौकिक और पारलौकिक धरातल पर देखा जाय तो दोनों ही रूपों में सत्य है। लौकिक धरातल पर प्रेमी या प्रिय को, एक दूसरे को प्राप्त करने के लिए कष्ट उठाना पड़ता है। बिना कष्ट के मिलन नहीं होता। पारलौकिक या आध्यात्मिक धरातल पर भी अनेक साधनाओं के बाद ही उसे प्राप्त किया जा सकता है। संत कबीर साहब भी कहते हैं कि उस प्रियतम को हँसकर नहीं प्राप्त किया जा सकता। जिस किसी ने प्राप्त किया है सबने रोकर अर्थात् कष्ट सहकर प्राप्त किया है। यदि हँसी खेल में ही प्रियतम मिल जाय तो यह दुखागिन की ज्वाला क्यों सहनी पड़े—

हँसि हँसि कंव न पाइये, जिन पाया तिन रोय।
हाँसी खेले पिय मिले तो कौन दुहागिन होय।

संत कबीर साहब की एक विशेषता है कि वे लौकिक धरातल पर उतर कर, पारलौकिक की ओर संकेत करते हैं। इसका कारण भी है, वे जन सामान्य के बीच में जीते हुए जन सामान्य को उनकी बातों के माध्यम से उस अलौकिक सत्ता को समझाने का प्रयत्न करते है। एक सुन्दरी को चुनरी तभी मिल सकती है जब उसको प्रियतम लेकर आता है। वह प्रियतम की कृपा से मिलती है। पहली बार जब शादी होती है तब यह उसे लेकर आता है। कबीर साहब अपने को पत्नी के रूप में, एवं ईश्वर या परमसत्ता को पति के रूप में मानते हैं। वे कहते हैं—

दुलहिन गावहु मंगल चार
आज घर आये हो राजा राम भरतार।

शादी के वक्त चुनरी लेकर आये हैं। वह चुनरी भी वही पहन सकती है जो प्रियतम की प्यारी होगी। वे इसी में अलौकिकता का संकेत छोड़ देते हैं। वह चुनरी भी साधारण चुनरी नहीं है। वह अष्ट कमल रूपी आठ हाथों की बनी हुई है, तथा पंचतत्व रूपी पाँच रंगों से रँगी हुई है, उसका आँचल चाँद और सूर्य का है जो जगमग कर रहे हैं। यह चुनरी बिना ताने बाने की बुनी हुई है। वे यहाँ पर एक और आध्यात्मिक संकेत दे देते हैं, लौकिक धरातल पर ऐसी कोई चुनरी है ही नहीं, वह ऐसी चुनरी है, जिसको किसी ने आजतक ताने-बाने से बुना ही नहीं है—

चुनरिया हमरी पिया ने सवाँरी
कोइ पहिरे पिय की पियारी।
आठ हाथ की बनी चुनरिया
पंचरँग पतिया पारी।
चाँद सुरुज जामें आँचल लागे
जगमग जोति उजारी।
बिनु ताने यह बनी चुनरिया
दास कबीर बलिहारी॥

कबीर साहब की भक्त रूपी नायिका प्रियतम से मिलने के लिए व्याकुल होकर निकल पड़ी है। उसकी चुनरी प्रेम-रस से सराबोर है। वह प्रियतम की आरती करने के लिए थाल सजाकर चली है—

भीजे चुनरिया प्रेम रस-बूँदन
आरती साज के चली है सुहागिन

प्रिय अपने को ढूंढ़न।

पर वह किस प्रकार से जाये ? कैसे उनको ढूढे ? फिर भी वह, मेरे घर आया हुआ है, अपने सारे पारिवारिक संबंधो की लज्जा भी है। यदि इसको लौकिक धरातल पर ही देखें तो नायिका शादी के वाद प्रियतम से मिलने जा रही है पर वह किस प्रकार से मिले। प्रथम मिलन है, नैहर में खचाखच मजमा है पर इसी में कबीर साहब यहाँ अलौकिकता की ओर संकेत करते हैं। वह प्रियतम को ढूढ रही है, ऊपर जाने के बाद अर्थात्, चक्रों को पार करके, रसपान कर ही रही है। अभी पूर्ण तृप्ति नहीं हुई है। अर्थात् प्रियतम के समागम या संयोग की अवस्था नहीं आ पाई है। एक बड़ी बात यह है कि कबीर साहब इस संसार को नैहर मानते हैं। प्राणी नैहर में है और उसके भीतर ईश्वर अर्थात् प्रियतम का वास है, इसलिए नैहर में समागम की बात आई है। एक बात और; लौकिक धरातल पर प्रियतम से मिलाने का काम उसकी सखी या दूती करती है। कबीर साहब ने अलौकिक सत्ता में भी ठीक इसी दूती के रूप में 'गुरु' को प्रयुक्त किया है। क्योंकि अलौकिक प्रेम में भी प्रियतम के पास जाने में प्रियतमा को जो संकोच एवं कठिनाई होती है वह गुरु के द्वारा बताये ज्ञान से, दूर हो जाती है, और प्रियतम से मिलन हो जाता है तथा प्रियतम उसे अपने कंठ लगा लेता है—

मिलना कठिन है, कैसे मिलोगो प्रिय जाय।
समझि-सोचि पग धरौ जतन से, बार-बार डिग जाँय।
ऊँची गैल राह रपटोली, पाँव नहीं ठहराय।
लोक लाज कुल की मर जादा, देखत मन सकुचाय॥
नैहर वास वसौ पीहर में, लाज तजो नहि जाय।
अधर भूमि जहाँ महल पिया का, हम पे चढ्यौ न जाय
धन भई वारी पुरुष भये भोला, सुरत झकोरा खाय।
दूवो सतगुरु मिले बीच में दीन्हा भेद बताय।
साहब कबीर पिया सो भेंटयो, सीतल कठ लगाय॥

जिसको प्रियतम का एक बार दर्शन हो जाता है वह बार-बार उसको देखना चाहती है। कबीर साहब की प्रियतमा भी अब दर्शन कर चुकी है इसलिये वह प्रियतम के पास अर्थात् ससुराल में रहना चाहती है। नैहर में रहना उसको अच्छा नहीं लगता उसका एक मात्र कारण है।

जे हंसा मोती चुगे कांकर क्यों पति आइ।
कांकर मांथा ना नवे, मोती मिले त खाइ॥

इसलिए वह उसी परम रस को पान करने के लिए बार-बार परेशान होती है। उसको नैहर में अच्छा नहीं लगता है। वह उस परमात्ममिलन रूपी प्रमरस को प्राप्त कर चुकी है जो नैहर में संभव नहीं है। इसलिए—

नइहरवां हमका नाहि भावे।
सांई को नगरी परम अति सुदर,
जहाँ कोइ जाइ न आवे।
चाँद-सुरुज जहँ पवन न पानी,
को संदेस पहुंचावे?
दरद यह सांई, को सुनावे?

संत कबीर साहब लिखने-पढ़ने पर जोर नहीं देते क्योंकि सामान्य लौकिक स्तर पर गौने के पहले पत्र व्यवहार से प्रिय और प्रियतम एक दूसरे की बात को जान लेते हैं पर कबीर साहब कहते हैं कि मिलन इस तरह से न हो एक दम आमने सामने से हो अर्थात् वे प्रियतम के साक्षात दर्शन पर बल देते हैं—

लिखा लिखी को है नहीं देखा देखी को बात।
दुलहा-दुलहिन मिल गये, फीकी पड़ी बरात।

प्रियतम से परिचय कब होता है जब उससे हिलमिल जाय अर्थात् उससे मिलकर अपने भीतर अपने वास्तविक रूप का साक्षात्कार कर लिया जाय—

पिउ परिचय तब जानिये, पिउ से हिलमिल होय।
पिउ की लाली मुख पड़े परगट दीसे सोय॥

जब यही लाली प्राप्त हो जाती है तब प्रियतमा लालीमय हो जाती है। उसको हरतरफ लाली ही दिखाई देती है, अर्थात् उस प्रेम रस में इस तरह से रससिक्त हो जाती है कि अपने को उससे अलग पाती ही नहीं—

लाली मेरे लाल की जित देखौ तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल॥

इस प्रकार संत कबीर साहब अपने प्रेम को लौकिक धरातल से अलौकिकता की ओर उठा देते हैं जो उनकी महत्ता का परिचायक है। वे चाहते हैं कि सभी प्राणी आपस में प्रेम करें, यहाँ तक कि वे जीव जंतु मात्र से भी

प्रेम करते हैं। उनका प्रेम बकरी से भी है, वे चाहते हैं कि बकरी की भी रक्षा करके बकरी से प्रेम किया जाय, क्योंकि ईश्वर का उसमें भी वास है। यदि कबीर साहब को इस समय की भाव भूमि पर देखें तो वे हमें आज भी पग-पग पर सचेत करते हुए ले जाते हैं। आज भी उनके गीतों को गाकर लोग उनकी वाणी के द्वारा प्रेम का संदेश सुनाते हैं। यदि उनकी बातों में प्रेम भाव को ही अपना लिया जाय तो आज जितने भी साम्प्रदायिक तनाव और दंगे हो रहे हैं वे सबके सब एक साथ दूर हो जायेंगे और प्राणियों में सद्भावना उत्पन्न हो जायेगी। यह सच है कि कबीर साहब के अनुयायियों ने बाद में 'कबीरपंथ' का नामकरण करके उनकी बातों का प्रचार किया पर कबीर साहब इस पंथ पर विश्वास नहीं रखते थे; वे सभी धर्मों एवं सभी सम्प्रदायों का समान रूप से आदर करते थे। यदि आज भी इस तरह की भावना आ जावे तभी कल्याण हो सकता है। अंत में मैं यह कहना चाहूँगा कि आज भी कबीर साहब की प्रासंगिकता है। वे युगद्रष्टा के रूप में स्थित हैं और वे युग-चेतना को समान रूप से प्रभावित करते हैं जो उनकी सार्वभौमिकता का परिचायक है।



---

## आज दिनांक ५ मार्च १९८३ को
## श्री कबीर शान्ति संदेश हिन्दी मासिक के स्वामित्व सम्बन्धी अन्य विवरण

फ़ार्म ४

[ देखें नियम ८ ]

१. प्रकाशन स्थान—श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था, द्वारा श्यामदास शास्त्री। राष्ट्रीयता—भारतीय।

२. प्रकाशन अवधि—मासिक।

३. मुद्रक का नाम—आर्यावर्त प्रेस, जालपादेवी रोड, वाराणसी। राष्ट्रीयता—भारतीय।

४. प्रकाशक का नाम—श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था, सी. २६।१ संत कबीर रोड, वाराणसी।
पता—श्री कबीर कीर्ति मन्दिर, सी. २६।१ संत कबीर रोड, वाराणसी।

५. सम्पादक का नाम—श्री श्यामदास शास्त्री। राष्ट्रीयता—भारतीय।
पता—श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था, सी. २६।१ संत कबीर रोड, वाराणसी।

६. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो इस मासिक पत्रिका के मालिक, साझेदार हैं या इनकी सारी पूँजी के १% प्रतिशत से अधिक के साझीदार हैं—

पूज्यपाद १००८ महन्त श्री शान्तिदास जी महाराज साहब गुरु श्री पुरुषोत्तमदास जी महाराज साहब
श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था, सी. २६।१ संत कबीर रोड, वाराणसी।

मैं श्यामदास शास्त्री यह घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी पूरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही है।

—श्यामदास शास्त्री



# पढ़ै गुने का कीजिए अंत बिलैया खाय

नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, हिंदी विभाग, का. हिं. वि. वि.

कबीर साहब की यह उक्ति उनके विस्तृत विचारों का सार है। वे पूर्णतया भक्ति के पक्षधर थे। इसलिए उन्होंने अपने विचार भी उसी के अनुकूल व्यक्त किए हैं। उनकी भक्तिकी पक्षधरता केवल कथनी वाली नहीं थी। भक्त का जीवन ही उनका सर्वस्व था। मैंने अनेक स्थलों पर यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि कबीर साहब नारदीया भक्ति के प्रशंसक, समर्थक और अनुयायी थे। अपनी उक्तियों में उन्होंने कथनी पर जोर न देकर, करनी पर जोर दिया है। संसार में फैले हुए अनेक भ्रमों का विध्वंस करने में उन्हें शांति मिलती थी। वाह्याडंबर में उलझे, भेष को सर्वस्व मानकर मानवीय गुणों और कर्तव्यों का परित्याग कर सांसारिक प्रपंचों में फँसे लोगों को उन्होंने खूब फटकारा। यहाँ तक कि केवल साखी—सबदी गानेवाले और आत्मतत्व की चिंता न करनेवालों की भी खबर ली—

संतों देखत जग बौराना।
बहुतक देखा पीर औलिया।
पढ़ें कितेब कुराना॥
कै मुरीद तत्बीर बतावें।
उनउं में उहे गियाना॥
माला पहिरे टोपी पहिरे।
छाप तिलक अनुमाना॥
साखी सबदे गावत भूले।
आतम खबरि न जाना॥

बीजक, कबीरचौरा पाठ, शब्द ४

अतः धार्मिक ग्रंथों, कुरान आदि का पढ़ना व्यर्थ है जब तक उनका तत्व हृदय में न बसे और उनका आचरण न हो। भेषपरिवर्तन से हृदय परिवर्तन नहीं होता। ऊपर की बातें थोथी हैं। ज्ञान और विवेक के सूप से पछोरने पर ये सब उड़ जाती हैं। आवश्यकता तो सार को ग्रहण करने की है। यह सार रहनी है। यही जीवन का तत्व है। मानव जीवन की दुर्लभता की कोई चिंता नहीं करता। क्षण-क्षण करके यह हीरा जैसा जीवन नष्ट होता जा रहा है, संसार की कौड़ी के समान मूल्यहीन वस्तुओं के बदले मनुष्य इसे व्यर्थ किए जा रहा है। इसीलिए कबीर साहब ने माला, छापा, तिलक, पोथी-पाठ, वाह्याचार, कृच्छाचार आदि के प्रति लोगों को सावधान किया था। जब वे साखी—सबदी के पाठ की बात करते हैं तो वे अपने अनुयायियों को भी केवल बीजक-पाठ के प्रति सावधान करते हैं।

साक्षात्कृत ज्ञानानुभूति कथन-पठन-पाठन से प्राप्य नहीं है। उन्होंने बार-बार अपनी रचनाओं में सूक्ष्म वेद सूक्ष्म ज्ञान की चर्चा की है। बार-बार वे प्रणव की, सूक्ष्म मूल नाद की, ओंकार की चर्चा करते हैं। यह संकेत करते हैं जैसे उस एक से इस समस्त सृष्टि का विस्तार हुआ है, जैसे एक से अनेक का प्रसार हुआ है उसी तरह उस मूल नाद प्रणव से सारी वर्णमयी सृष्टि का भी विस्तार हुआ है। मनुष्य सृष्टि में भूल जाता है और मूल तत्व तक नहीं पहुंच पाता। ओंकार ही सूक्ष्म वेद है, स्वसंवेद्य, स्वानुभूति का मूल तत्व है। वेद-पुराण आदि सब स्थूल हैं, प्रपंच हैं, प्रापंचिक विस्तार हैं। उनमें भूलकर आदमी उस मूल तत्व तक नहीं पहुंच पाता। अमृत तत्व तो स्वयं अमर है और उसके संपर्क में आनेवाली प्रत्येक वस्तु भी अमर हो जाती है। अतः उस मूल तत्व ईश्वर अथवा ओंकार तत्व को पानेवाले, उसे जीवन में उतार लेनेवाले व्यक्ति का 'काल बिलैया' कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती।

गुरु का साक्षीकृत ज्ञान ही इस रहस्य को समझाता है। स्थूल वेद अथवा त्वचा वेद की प्रामाणिकता की झंझट में वे नहीं पड़ना चाहते। उसके पौरुषेय-अपौरुषेय होने का विचार कर अपना समय व्यर्थ नहीं गँवाना चाहते। पंचभूतों के चक्कर में कौन नहीं पड़ा। राम, रावण वशिष्ठ सब आए और गए। नित्य और शाश्वत कोई नहीं रहा। जो आता जाता है, सारवान् नहीं है। अनंत को जीवन में आचरित करने के लिए उसीमें रमने के लिए, प्रति क्षण समर्पित होना चाहिए। इसके लिए भक्ति सर्वोत्तम मार्ग

है जिसके सिद्ध होने पर लौकिक–वैदिक व्यापारों की आवश्यकता नहीं रहती, कोई आकांक्षा नहीं रहती, कोई भय नहीं रहता, सदा मस्ती रहती है और फिर काल का भय तो सबसे बड़ा भय है। इस बीतनेवाले काल का प्रत्येक क्षण काल है यदि वह भगवान् को समर्पित नहीं है। वेद, कुरान, पुराण, तीर्थस्नान, जप, व्रत, उपवास आदि को समर्पित क्षण व्यर्थ हैं यदि उस परम तत्व को, उस सतत्व को, उस मूल तत्व को जीवन में उतारने में समर्थ नहीं हैं।

इन सारी बातों पर विचार कर कबीर साहब सबद और सार सबद पर बल देते हैं। गुरु और सबद को अलग नहीं किया जा सकता। निज तत्व, आत्म तत्व को प्राप्त करने के लिए सबद की परख अनिवार्य है। बिना सबद के सुरति इधर-उधर भटकती रहती है। गुरु के सबद स्वानुभूत सबद हैं, जीवन में उतरे हुए सबद हैं, जीवन्त हैं, इसीलिये जीवन प्रदान करने में सक्षम हैं। काल से वे ही बचा सकते हैं। सबद तो बहुत से हैं किन्तु सार सबद वे ही हैं जो सार तत्व को ग्रहण किए हुए हैं, जो जीवन में उतरे हुए हैं और जो उज्जीवन कर सकते हैं। उनके बिना जीवन जड़ है, व्यर्थ है। इसकी पहचान अलग-अलग है। एक ही सार सबद सबके लिए नहीं है। इसमें भी व्यक्ति के विवेक से पहचान होनी चाहिए कि कौन सा सबद व्यक्ति के लिए सारवान् है। इस प्रकार पढ़ने-गुनने के स्थान पर कबीर साहब सबद की महिमा को स्थापित करते हैं—

१. जो चाहो निज वतु को,<br>
तो सबदहि लेहु परखि ॥ २ ॥

२. सबद विना सुरति आंधरी,<br>
कहाँ-कहाँ को जाय।<br>
द्वार न पावै सबद का,<br>
फिर-फिर भटका खाय ॥ ४ ॥

३. सबद सबद बहु अंतरे,<br>
सार सबद मथि लीजै।<br>
कहै कबीर जहँ सार सबद नहि,<br>
धिग जीवन सो जीजै ॥ ५ ॥

—बीजक कबीरचौरा पाठ, साखी

कबीर साहब बहुत बार तत्व को अनिर्वचनीय कहते हैं। उस तत्व की अनुभूति भी अनिर्वचनीय है। नारद भी भक्ति को 'मूकास्वादनवत्' कहते हैं। तत्व पाने के बाद, स्वसंवेद्य ज्ञान पाने के बाद, वही हो जाने के बाद फिर तो बोलने की ताकत नहीं रह जाती और वह तत्व बोलने के योग्य है भी नहीं। वह तो एक ऐसा माणिक्य है, जो गोपनीय ही है, इसलिए नहीं कि कोई उसे चुरा लेगा प्रत्युत् इसलिए कि उसे बार-बार खोलने, कहने, सुनाने पर भी उस पर कोई विश्वास नहीं करेगा। संसार में रत्नों के पारखी बिरले ही होते हैं। फिर, मन मस्त हो जाने पर क्यों बोले, क्या बोलें और कैसे बोले क्योंकि यहाँ तो सर्वत्र अनंतता है। अनंत की कथा कोई क्या कहेगा। वह तो केवल अनुभव की वस्तु है, मस्ती की वस्तु है, आनंद की वस्तु है और मौन की वस्तु है। वहाँ काल की गति नहीं है।

---

☐ मनुष्य कहलाने वाले सभी हैं किन्तु मानवीय बुद्धि प्राप्त करनेवाले कोई विरले हैं।

—सद्गुरु कबीर

☐ जीव फूल के बाग में भौंरे के समान विषय में आसक्त हो जाता है। अन्त में उसे कुछ हाथ नहीं लगता।

—सद्गुरु कबीर

# भाषा बहता नीर

डा० लक्ष्मीशङ्कर गुप्त; हिंदी विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी

कबीर साहब की रचनाओं का अध्ययन करते समय साहित्य का सामान्य अध्येता भी इस तथ्य का अनुभव कर लेता है कि उनमें भाषा की एकरूपता नहीं है। इस देश और देशांतर में भी विविध भाषाओं में रचना करने वाले कवियों की कमी नहीं है। गोस्वामी तुलसीदास ने अवधी और ब्रजी दोनो ही भाषाओं में लिखा है। आधुनिक काल में रवींद्रनाथ ठाकुर ने भी बंगला, ब्रजबुलि तथा अँगरेजी तीन-तीन भाषाओं में लिखा है। यह तो कवि का पांडित्य है कि वह कितनी भाषाओं में सफलतापूर्वक लिख लेता है। विविध भाषाओं का प्रयोग भी कवियों द्वारा कई ढंग से हुआ है। कुछ कवि लिखते तो कई भाषाओं में हैं, पर उनका व्यवहार पृथक-पृथक् करते हैं, जैसे तुलसीदास ने अपने मंगलकाव्यों, रामलल्लानहछू आदि में तो शुद्ध अवधी का व्यवहार किया, पर श्रीकृष्णगीतावली में ब्रजी का। कभी-कभी कवि लोग एक ही रचना में एकाधिक भाषाओं का भी व्यवहार कर देते हैं। रामचरित-मानस में क्या ब्रजी के प्रयोग कम हैं; या बिहारीलाल की ब्रजी-रचित सतसई में अवधी या बुंदेली के प्रयोग नहीं हैं? निरे साहित्य-पाठक को चाहे यह रंजना न दिखाई पड़े; पर भाषाविद को तो उनकी झलक मिल ही जाती है। कवि लोग विविध भाषाओं का व्यंजन क्यों प्रस्तुत करते हैं इसका विमर्श यहाँ अभीष्ट नहीं, पर इतना कह देना आवश्यक है कि कविगण प्राचीनकाल से ऐसा करते आ रहे हैं। अनेक कवियों ने भाषा का आपानक प्रस्तुत किया है और यदि उन्होंने सजगता से ऐसा किया है, तो वे निंदा के पात्र नहीं हुए हैं।

चंद बरदाई ने बड़े गर्व के साथ लिखा है—

> संस्कृतं प्राकृतं चैव राजनीतिं नवं रसम्।
> षड्भाषा पुराणं च कुरानं कथितं मया॥

आचार्य भिखारीदास की उक्ति—

> तुलसी गंग दुवौ भए, सुकविन के सरदार।
> इनके काव्यन में मिली, भाषा बिविध प्रकार॥

में निंदा नहीं है, प्रत्युत समर्थन है कि बड़े कवियों की भाषा में भी मिश्रण मिलता है। विविध भाषा-मिश्रित रचना में भी एक चमत्कार होता है, यदि उसमें भी व्यवस्था का ध्यान रखा जाए। 'भाषा-समक' नामक शब्दालंकार इसी व्यवस्थित भाषा-वैविध्य पर ही आधृत है जिसमें एक ही छंद में एकाधिक भाषा का प्रयोग है। देखिए, दो-एक बानगी—

> ( १ ) द्रष्टुं तत्र विचित्रतां सुमनसां,
> मैं था गया बाग में।
> काचित्तत्र कुरङ्गशावनयना,
> गुल तोड़ती थी खड़ी।
> उन्नद्भ्रूधनुषा कटाक्षविशिखैः,
> घायल किया था मुझे।
> तत्सीदामि सदैव मोहजलधौ,
> हैदर गुज़ारे शुकर॥
> ( कविवर रहीम )

> ( २ ) साँझ समै घर से निकली लिए
> संग सखी वह साँवरी मूरत।
> नाज़ो नियाज नमूद बसे,
> अज़ ताब शुदम मफ़्क़ूद क़दूरत।
> मो तन ताकि दियो हँसि के
> अभिमान भरो कहु भौंह मरूरत।
> होशम रफ्त, न माँद बदस्त,
> शुदा दिल मस्त जे दीदने सूरत॥
> ( गंग कवि )

नाज़ो = नाज़ + व। नाज़ = हाव-भाव, नख़रा। व = तथा, और, एवं। नियाज़ = ( प्रेमी की ) प्रार्थना। नमूद = दिख पड़े। अज़ = से। ताब = आभा, कांति। शुदम = हो गया। मफ़्क़ूद = लुप्त, समाप्त। क़दूरत = मैल, कालापन। अज़...क़दूरत = ( उसकी ) कांति से ( मेरे मन का ) मैल समाप्त हो गया। होशम = मेरा, होश, मेरी संज्ञा। रफ्त = चला गया। माँद = शेष, अवशिष्ट। बदस्त = ब + दस्त। ब = में। दस्त = हाथ। न माँद बदस्त = ( मेरा होश ) हाथ में शेष न ( रहा )। शुदा = हो गया।

शुदा···मस्त = मन मस्त हो गया। दीदने सूरत = सूरत ( रूप ) देखने से।

अधिकांश कविजन प्रचलित परिपाटी से कुछ न कुछ ग्रहण करते ही हैं। कबीर साहब ने भी ग्रहण किया है। परंपरा का विचार करने से ज्ञात होता है कि दोहे पश्चिमी अपभ्रंश की देन हैं, यद्यपि पूर्व के वज्रयानी सिद्धों की रचनाएँ भी उनमें प्राप्त हैं। यदि अपभ्रंश साहित्य को ध्यान में रख कर विचार किया जाए, तो निस्संकोच कहना पड़ेगा कि अधिकांश दोहा-साहित्य पश्चिमी भाषा में निबद्ध है। कबीर साहब ने भी इस परंपरा का पालन किया है और उनके दोहों में पश्चिमी भाषा का ही प्रयोग अधिक है। तुलसी, रहीम आदि ने अवधी में दोहों की रचना की है और बड़ी कुशलता से, यह दूसरी बात है। गीति-रचना पूर्व की शैली है। गीत-गोविंद, चर्यागीत, विद्यापति और उमापति के गीतों की परंपरा पूर्व में ही मिलती है। गीत-गोविंद तो संस्कृत-रचना है, पर शेष गीतियों में पूर्वी भाषा का ही प्रयोग है। कबीर साहब की, 'सबदी' और 'रमैनी' गीति-शैली पर लिखित हैं, अतः इनमें पूर्वी भाषाओं का ही प्रयोग हुआ होगा। साखियों में खड़ी बोली का प्रयोग देख कर कतिपय भाषाविद् यह धारणा रखते हैं कि कबीर साहब का जन्म किसी पश्चिमी जिले में हुआ था और उनके गीति-साहित्य में जो पूरबी प्रयोग मिलते हैं, वे लोकमुख के परिवर्तन के परिणाम हैं, पर तथ्य इसके विपरीत जान पड़ता है। आभ्यंतर और बाह्य दोनो प्रमाणों से सिद्ध होता है कि वे काशी के ही थे।

वे स्वयं कहते हैं—

> तू ब्राह्मण मैं कासी का जुलाहा,
> चीन्हि न मोर गियाना। ( २५० )
> मेरा गुरु बनारसी, चेला समंदर तीर।
> बोली मेरी पूरबी, मोंहि लखे नहिं कोय।
> मोको तो सोई लखे जो धुर पूरब का होय॥
> ( बीजक, साखी १९४ )

पुरबिया ही कहेगा कि मुझे पुरबिया पहचानेगा। परंपरा एक मत से मानती है कि उनका जन्म काशी में हुआ था। स्वामी रामानंद से उनकी दीक्षा और सिकंदर लोदी के बनारस आने पर तत्कालीन मुसलमानों द्वारा उससे कबीर साहब की निंदा और उसके द्वारा उन्हें गंगा जी में डुबाए जाने की घटना काशी में ही घटित मानी जाती है। इससे सिद्ध होता है कि उनका कर्मक्षेत्र भी बनारस ही था। ऐसी स्थिति में उन्हें पश्चिम का मानना उचित नहीं प्रतीत होता। कबीर साहब सुशिक्षित थे या अपढ़, यह विषय विवादास्पद है, पर इतना तो सभी मानते हैं कि वे बहुश्रुत और सत्संगी थे तथा सत्संग के लिए पर्यटन करते रहते थे। ऐसी दशा में साहित्य की स्थूल परंपराओं का ज्ञान उनके लिए कठिन नहीं था। दोहे पश्चिमी भाषा में लिखे जाते हैं, इस परिपाटी का विचार कर के उन्होंने उनकी रचना पश्चिमी बोली में की होगी और गीतों की पूरबी में। वर्तमान काल में काशी क्षेत्र की बोली पश्चिमी भोजपुरी है। संभावना है कि कबीर साहब के समय (पंदरहवीं-सोलहवीं शती ) में भी काशी की बोली भोजपुरी ही रही होगी और उसीमें उन्होंने अपने गीतों की रचना की होगी। बारहवीं शती में विद्यमान काशी के दामोदर पंडित ने अपने 'उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण' में जिस भाषा का व्याकरण लिखा है, उसे डा० चटर्जी ने 'प्राचीन कोसली' की संज्ञा दी है।[1] दामोदर पंडित की रचना से द्विधा अनुमान लगाया जा सकता है। एक तो यह कि उस समय काशी की जनभाषा कोसली थी और दूसरे यह कि भोजपुरी को उनके समय में काशी में कोई महत्त्व नहीं था, प्रामुख्य अवधी को ही था। कबीर साहब की अनेक रचनाएँ भोजपुरी में मिलती हैं जिनमें अवधी का भी मेल है। इससे अनुमान लगाना पड़ता है कि कबीर साहब की मातृभाषा भोजपुरी-मिश्रित अवधी रही होगी। अन्य बोली-क्षेत्रों के जुलाहा-परिवारों में अब भी प्रायः अवधी ही चलती है। जो लोग कबीर साहब की जन्मभूमि पश्चिमी क्षेत्र में मानते हैं, उनकी धारणा है कि उनके पुरबिया भक्तों ने उनके गीतों को पूरबी रूप दे दिया है। ऐसे लोगों की धारणा ऐसी ही प्रतीत होती है जैसे रवींद्रनाथ ठाकुर की अँगरेज़ी रचनाओं को देख कर कोई कहने लगे कि वे इंगलैंड के रहे होंगे और उनकी कुछ रचनाओं का बंगलाकरण कर लिया गया होगा।

---

१. उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण, स्टडी, पृष्ठ २।

वास्तविकता यह प्रतीत होती है कि पश्चिम के भक्तों ने ही पूरबी के स्थान पर पश्चिमी बोली कर दी है। जो भी हो, पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि कबीर साहब की रचनाओं में मुख्य रूप से दो बोलियाँ अपेक्षाकृत व्यवस्थित रूप में मिलती हैं—पूर्वी और पश्चिमी। कबीर पंथ या किसी भी संतमत का प्रचार उनकी स्थापना की प्रारंभिक शताब्दियों में सुशिक्षित लोगों में प्रायः नहीं रहा। सुशिक्षित जनों के पास शास्त्रीय ग्रंथों का ठोस आधार था। वे उनका पालन करते थे या नहीं, उनके मर्म को समझते थे या नहीं, पर उस आधार का गर्व तो उन्हें था ही। उस धरोहर के अधिकारी होने के दंभ में वे किसी तथाकथित नवसिखुए, शास्त्र-विरोधी और हेय जाति के संत की बात क्यों सुनते? परिणामस्वरूप संतमत का प्रचार अपेक्षाकृत अशिक्षित और निम्नवर्गीय जनता में ही हुआ जो संतों की बानियों को उस प्रकार सुरक्षित न रख सकी जिस प्रकार ब्राह्मणों ने श्रुति का पाठ सुरक्षित रखा। संतों की बानियों पर भक्तों की निजी बोलियों का प्रभाव पड़ता रहा और वे अपना रूप बदलती रहीं। अपने समय के मान्य भाषावैज्ञानिक, हिंदी के निष्ठावान् सेवक डा० श्यामसुंदर दास ने जिन दो प्राचीनतम पांडुलिपियों के आधार पर कबीर-ग्रंथावली का संपादन किया है, उनमें से पहली प्रति संवत् १५६१ वि० की है और उसके लेखक हैं मलूकदास साहब जिन्होंने उसका संपादन खेमचंद के पढ़ने के लिए काशी में किया था। ये मलूकदास और खेमचंद कौन थे, इस विषय की निश्चित जानकारी नहीं है, पर ये दोनों नाम पश्चिमी हैं। यह सर्वविदित है कि प्रसिद्ध संत मलूकदास खत्री थे जो पश्चिमी जाति है। 'मलूक' शब्द 'सुंदर' के अर्थ में दिल्ली, राजस्थान आदि की ओर ही चलता है। किसी का सलोना चेहरा देख कर उधर के लोग कह देते हैं—'इसका चेहरा बड़ा मलूक है।' उधर के लोग ही प्यार से अपने बच्चों का नाम 'मलूक-दास', 'मलूकचंद' रख देते हैं। 'खेमचंद', 'खेमकरन', 'खेमराज' जैसे नाम भी पश्चिम, विशेषरूप से राजस्थान, की ओर चलते हैं। बंबई के प्रसिद्ध संस्कृत प्रकाशक 'खेमराज श्रीकृष्णदास' राजस्थानी ही हैं। नामकरण की भी एक प्रवृत्ति होती है जो भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में पृथक्-पृथक् होती है। कुछ नाम आज भी किसी विशेष क्षेत्र में चलते हैं। वर्तमानकाल में तो क्षेत्रीय आदान-प्रदान और यमनागमन की सुविधाओं के कारण बहुत कुछ मिश्रण होता जा रहा है, पर मध्यकाल में ये विशेषताएं अधिक स्पष्ट थीं। यह बहुत संभव है कि पश्चिमी पाठक के लिए पश्चिमी लेखक ने उसकी सुबोधता का विचार कर के कबीर साहब की रचनाओं पर यथासंभव पश्चिमी बोलियों का रंग चढ़ा दिया हो।

कबीर साहब की रचनाओं में प्रमुख रूप से पूर्वी और पश्चिमी हिंदी तो मिलती है, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि वह शुद्ध है, अथवा केवल इन्हीं दोनों बोलियों में सीमित है। उनमें अन्य भाषाएं और बोलियाँ भी मिलती हैं। कवियों की रचनाओं में अनेक भाषाओं के शब्द मिल सकते हैं, क्या मिलते ही हैं, पर इस कारण किसी कवि की रचना अनेक भाषाओं की नहीं कही जाती। तुलसी, सूर और बिहारीलाल की भाषा में फ़ारसी के अनेक शब्दों का व्यवहार हुआ है, पर इस कारण उनकी रचना न तो फ़ारसी की कही जाती है, न उस पर कोई दोषारोप ही किया जाता है। वस्तुतः किसी विशिष्ट भाषा के शब्दों के प्रयोग के कारण कोई रचना उस भाषा की नहीं हो जाती, जब तक उस भाषा के क्रियापदों, कारक-विभक्तियों और अव्ययों का प्रयोग न हो। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से उर्दू इसीलिए हिंदी से स्वतंत्र भाषा नहीं है, क्योंकि उसके क्रियापदादि हिंदी के ही हैं। कबीर साहब की भाषा में पूर्वी और पश्चिमी हिंदी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के क्रियापद और कारक-विभक्तियों का भी अनेकत्र प्रयोग है, अतः स्पष्टतः उसमें अनेक भाषाओं का मिश्रण है। इस मिश्रण का कारण है कबीर साहब की पर्यटनशीलता। पर्यटनशील होने के कारण वे विविध भाषाभाषियों के संपर्क में आए और भाषा की शुद्धता की चिंता न करते हुए मनमाने प्रयोग कर दिए। यह उनकी प्रकृति के पूर्ण अनुकूल था क्योंकि उनका उद्देश्य ही था विभेद में अभेद की स्थापना, अतः वे भाषाभेद भी क्यों करते? उनकी भाषा का यही रूप देख कर 'कबीर-ग्रंथावली' के संपादक डा० श्यामसुंदरदास को लिखना पड़ा कि 'कबीर की भाषा का निर्णय करना टेढ़ा

और है, क्योंकि वह खिचड़ी है'।[2] आचार्य शुक्ल जी ने अपने इतिहास में कुछ चिढ़ कर लिखा है कि 'इसकी (साखी की) भाषा सधुक्कड़ी अर्थात् राजस्थानी पंजाबी मिली खड़ी बोली है, पर रमैनी और सबद में गाने के पद हैं जिनमें काव्य की व्रजभाषा और कहीं-कहीं पूरबी बोली का व्यवहार है।'[3] कबीर साहब की इस गड्ड-मड्ड भाषा को दूषण मानें या भूषण यह अलग विषय है, पर इतना विश्चित है कि जो बहुभाषाविद् नहीं हैं, उन्हें स्थान-स्थान पर कठिनाई होती है। फिर भी, उनकी भाषा से उतनी कठिनाई नहीं होती, जितनी उनके प्रतीकों से।

अब हम उनकी भाषा का दिग्दर्शन कर लें। उनकी रचनाओं में अनेक भाषाएँ तो मिलती ही हैं, पर कहीं-कहीं कारक-विभक्ति और अनुस्वार की सहायता से संस्कृत का आभास देने का भी प्रयत्न किया गया है जैसा पृथ्वीराज रासो में है। देखिए—

प्रथमे प्राण कि प्यंड प्रथमे प्रभू, प्रथमे रकत कि रेतं।
प्रथमे पुरिष कि नारि प्रथमे प्रभू, प्रथम बीज कि खेतं॥
आदि (१६४)

जे थे सचल अचल ह्वै थाके करते बाद बिबाद।
कहै कबीर मैं पूरा पाया, भया राम परसाद॥
(२८१)

जब नहि होते सबद न स्वाद,
तब नहि होते बिद्या न बादं।
(रमैनी ५, नवीं पंक्ति)

उन्होंने एक ही पद मे अनेकत्र भिन्न-भिन्न भाषाओं का व्यवहार किया है, पर चमत्कार उत्पन्न करने की दृष्टि से नहीं। यह उनका मनमौजीपन था कि कहीं भी किसी भाषा का प्रयोग कर दिया। इस प्रकार एक ही दोहे या पद में अनेक भाषाओं का पुट मिल जाता है। उनके भाषा-वैविध्य के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

अपभ्रंश—

मुनियर पीर डिगबर मारे जतन करंता जोगी।
× × ×
वेद पढंतां ब्राह्मण मारा सेवा करतां स्वामी।
(१८७)

इसमें आगत 'करंता', 'पढंतां' विद्यापति-कृत कीर्तिलता के

अवे बे भणंता, कलीमा कहंता,
कसोदा कढ़ंवा तुरुक्का अनंता।

का स्मरण दिला देते हैं।

व्रजभाषा—

पांडे कौन कुमति तोहि लागी,
तूँ राम न जपहि अभागी।
वेद पुरांन पढ़त अस पांड़े,
खर चंदन जैसें भारा।
राम नाम तत समझत नाँही,
अंति पड़ै मुखि छारा॥ (३९)

रांम मोहि तारि कहाँ लै जैहो।
सो बैकुंठ कहौ धूँ कैसा,
करि पसाव मोहि दैहो॥ (पद ५२)

छूटी फौज आँनि गढ़ घेर्‍यौ,
उड़ि गयौ गूड़र छाड़ि तनीं।
पकर्‍यौ हंस जम ले चाल्यौ,
मंदिर रोवै नारी घनीं॥
कहै कबीर रांम किन सुमिरत,
चीन्हत नांहिन एक चिनीं।
जब जाइ आइ पड़ोसी घेर्‍यौ
छाड़ि चल्यौ तजि पुरिषपनीं॥ (९६)

यहाँ प्रायः शुद्ध व्रजभाषा है।

राजस्थानी—राजस्थानी में अंत्य न के स्थान पर प्रायः ण हो जाता है, डो, डा, डी, डियाँ आदि स्वार्थक प्रत्यय होते हैं, 'याँ' करण तथा 'थें' और 'सूँ' करण-अपादान की विभक्तियाँ होती हैं, भविष्यत्काल 'सी' अंतयुक्त होता है। ये सब विशेषताएँ भी कबीर साहब के यहाँ देख लीजिए—

जांणौं (१५८), सींचताड़ीं कुम्हलाणीं (१६३), कथणीं बदणीं (२०१), आसण, रहण, कहण (२०६), आंणौं, आंणैं (२११), पाहुनडो (३१३), अंषड़ियाँ, जीभड़ियाँ (साखी, विरह कौ अंग, २२), रतड़ियाँ (वहीं, २५)।

---

२—'कबीर-ग्रंथावली' की भूमिका, पृ० ७१।

३—पृष्ठ ८२।

रांम कह्यां दुनियां गति पावै,
खांड़ कह्यां मुख मोठा। ( ४० )
कोली घाल्यां बीडरि चाले। ( १५२ )।
जहाँ थैं आया ( २७ ), वहूँ थैं न्यारा ( १२५ ),
तायैं ( २४६,२६५ ), जायैं ( २९१ )।
बाँध्यौ जमपुरि जासी ( ४० ),
तिनकी माया कदे न नासी ( १४६ )।
राजस्थानी से प्रभावित एक पद ही देख लीजिए—
कौंण कौंण गवा रांम कौंण कौंण न जासी।
पड़सी काया गढ़ माटी थासी ।।
इंद्र सरीखे नर गए कोड़ी,
पांचो पांडो सरिषो जोड़ो।
धू अबिचल नहि रहसी तारा,
चंद सूर की आइसी बारा ।।
कहै कबीर जग देखि संसारा,
पड़सो घट रहसी निराकारा ।। ( २४७ )

पंजाबी—

नीचे की पंक्तियों में पंजाबी के क्रियापदों और भेदक का भी प्रयोग देख लीजिए—

सरजो आनं देह बिनासै माटी बिसमल कीता।
जोति सरूपी हाथ न आया कहौ हलाल क्या कीता ।।

× × ×

दिल नहीं पाक पाक नहीं चीन्हां
उसदा षोज न जांनां। ( ६२ )

कीता = किया। उसदा = उसका।

खड़ी बोली—कबीर साहब की रचनाओं में खड़ी बोली के प्रयोग तो भरे पड़े हैं, विशेष रूप से साखियों में। इनमें क्रियापद तो बहुत हैं। कहीं-कहीं पुरे वाक्य भी हैं। पदावली से कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं—

फूलिए, भूलिए (२९) जाऊँगा,
आऊँगा, मिलाऊँगा (३१),
मन रे तन कागद का पुतला (९२),
तन जरता है (९४);
जनम अनेक गया अरु आया।
की बेगारि न भाड़ा पाया। (११०)
हड़ हड़ हड़ हड़ हसती है, दिवानपना क्या करती है।
आड़ो तिरछी फिरती है,
क्या च्यौं च्यौं म्यों म्यों करती है। (१०६)
हरि मेरा पीव माई, हरि मेरा पीव ( ११७ )।
कब जागेगा, किसके लागेगा, फिरोगे (२१४)।

इसमें 'मेरा' भी खड़ी बोली का ही रूप है।

अब तक तो पश्चिमी भाषाओं का विचार हुआ। इसमें कितने प्रयोग कबीर साहब के हैं और कितने अन्य व्यक्तियों द्वारा बदल दिए गए हैं, इस विषय में निश्चय-पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। फिर भी पूरबी बोलियों के उदाहरण भरे पड़े हैं जिनमें अवधी और भोजपुरी प्रमुख हैं।

अवधी—अवधी के कुछ प्रयोग अधोलिखित हैं।

सर्वनाम—मोर तोर जब लग मैं कीन्हाँ (१४६)।

क्रियापद—कुमिलांनीं (६४), कीन (७३), कीन्हीं (७४) बिकानौं (८६), पछितानौं (९६), बौरानूं (१४७), एई खेत सबनि का चरिगा (२५३) आदि।

परसर्ग—जंगल केर पजीना (१०६), कोई नहीं किस केरा ( २३८ ), जोर खुदाइ मसीति बसत हैं, और मुलिक किस केरा ( २५९ ), अधे कूप क दिया बताई (१४३)।

क्षेत्रीय शब्द—बकरी बिघार खायो (१६०)।

मुहावरा—बजर परो इहि मथुरा नगरी (७६) आदि।

भोजपुरी—

भोजपुरी में आ, वा, या प्रत्यय लगा कर संज्ञाओं के दीर्घ रूप बनाए जाते हैं, जैसे बादर (= बादल) से 'बदरा' चोर से 'चोरवा', बकरी से 'बकरिया' आदि। अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी में भी ये रूप बनते हैं। उक्त तीनों बोलियों में उना, वना, उनी, वनी जोड़ कर भी दीर्घ रूप बनते हैं, जैसे 'घोड़ा' से 'घोड़वना', 'घोड़ी' से 'घोड़उनी' आदि। ये रूप भोजपुरी में नहीं बनते। कबीर साहब ने इन भोजपुरी रूपों का प्रयोग बहुत किया है। उन्होंने कहीं-कहीं अपने नाम की छाप 'कबिरा' दी है—

हाड़ जरै जस लाकड़ी, बार जरै जस घास।
कबिरा जरै राम रस, जस कोठी जरैक पास ।।
बीजक ( मूल ), साखी—१७४
कबिरा धूर सकेल कै, पुरिया बाँधो देह।
दिवस चारि को पेखना, अंत खेह को खेह ।।

यह कबीर-ग्रंथावली के परिशिष्टांश ( जो गुरु ग्रंथ साहब में मिला है ) का १७८ वाँ दोहा है। उक्त संकलन में १७७ से १७९ तक तीनो दोहों में 'कबीरा' पाठ है, पर इससे दोहे के प्रथम चरण में एक मात्रा बढ़ जाती है। ऐसा पाठ गुरुमुखी लिपि में दीर्घ ईकार के बहुलप्रयोग अथवा लिखक के प्रमाद के कारण हो गया है अथवा किसी ने 'कबिरा' को तिरस्कारसूचक समझ कर 'कबीरा' कर दिया है, अस्तु। यह 'कबिरा' भोजपुरी अथवा पूरबी का ही है। ऐसे दीर्घ रूपों का प्रयोग कबीर साहब ने बहुत किया है—

'पनियाँ' ( ७६, १४० ), बिलवा ( १०१ ) कुँभरा ( १०५ ), रसरिया ( १३४ ), बटाऊवा ( २८० ), घरवा ( ३११ ) आदि। 'बटाऊवा' को नियमतः 'बटउवा' होना चाहिए।

भोजपुरी के अनेक क्रियापद भी मिलते हैं।

खसम निपूती आँगणि सूतो' ( ८१ )। 'सूत' धातु का प्रयोग भोजपुरी में ही होता है।

जुलहै वनि बुनि पाँन न पावल,
फारि बुनी दस ठाई हो।
त्रिगुण रहित फल रमि हम राखल ( ५० )

ऊपर लकारांत क्रियाएँ भोजपुरी की ही हैं। 'खैबू', 'मनैबू' ( ३७६ ) भी भोजपुरी के भविष्यत्कालिक स्त्रीलिंग रूप हैं।

बंगाली विद्वान् आचार्य क्षितिमोहन सेन द्वारा संपादित वंगाक्षर संकलन से कबीर साहब की शुद्ध भोजपुरी के अधोलिखित उद्धरण द्रष्टव्य हैं:—

कनवाँ फड़ाय जोगी जटवा बढ़ौले,
दाढ़ी बढ़ाय जोगी होइ गेले बकरा।
कहहि कबीर सुनो भाइ साधो,
जम दरवजवा बाँधल जैबे पकरा॥
( भाग ४, पृष्ठ ७०-७१ )

इन पंक्तियों के लेखक ने अपने गावँ (जलालपुर माफी, पोस्ट—चुनार, जिला—मीरजापुर) में भोजपुरी के कुछ पद गाए जाते हुए भी सुने हैं—

( १ ) रमैया तोरी दुलहिन,
लुटलिन बजार हो रमैया तोरी दुलहिन,
ब्रम्हा के लुटलिन महादेव के लुटलिन " आदि।

( २ ) कौनो ठगवा नगरिया लूटल हो।
चंनन काठ क बनल खटोलना,
ओपर दुलहिन सूतल हो॥
उठा हो सखी मोर माँग सवाँरऽ,
दुलहा मोंसे रूसल हो।
चार जने मिल खाट उठउलन,
चहुँदिस धू धू ऊठल हो।
कहैं कबीर सुना भाइ साधो,
जग से नाता टूटल हो॥

इन पंक्तियों में 'मोर' ( =हमार ) तथा 'मोंसे' ( =हमसे ) भर अवधी हैं, शेष उक्त गावँ की शुद्ध भोजपुरी है।

बँगला—डा० श्यामसुंदरदास ने कबीर-ग्रंथावली की भूमिका ( पृ० ७२-७३ ) में इनकी भाषा में बँगला-प्रयोग भी दिखलाए हैं। ये शब्द हैं 'आछिलो' ( वर्तमान बंगला में 'छिलो'=था ) और 'पारना' ( =सकना )—

कहत कबीर कछु आछिलो जहिया।
गाँइ क ठाकुर खेत कु नेपै, काइथ खरच न पारै।

फारसी—अधोलिखित पद में फ़ारसी के भी प्रयोग देख लीजिए—

खालिक हरि कहीं दर हाल।
पंजर जसि करद दुसमन, मुरद करि पैमाल॥
भिस्त हुसकां दोजगाँ, दुंदर दराज दिवाल।
पहनाम परदा ईत आवस, जहर जंगम जाल॥
हम रफत रहबरहु समाँ, मैं खुर्दा सुमाँ बिसियार।
हम जिमीं असमान खालिक गुंद मुसकिल कार॥
असमाँन म्यानैं लहंग दरिया वहाँ गुसल करदा बूद।
करि फिकर रह सालक जसम, जहाँ स तहाँ मौजूद॥
हम चु बूँदनि बूँद खालिक, गरक हम तुम पेस।
कबीर पनह खुदाइ की रह दिगर दावानेस॥
( २५८ )

इसमें 'गुसल करदा बूद' ( =गुस्ल करदः बूद=स्नान किए था ) शुद्ध फ़ारसी है। 'बूँदनि बूँद' पाठ ग़लत लगता है।

इस प्रकार पूरी ग्रंथावली विविध भाषा और बोलियों की रंगीनी से परिव्याप्त है। इन पंक्तियों के लेखक ने तो

सरसरी दृष्टि से देखने पर भी कबीर साहब की रचनाओं में इतनी भाषाओं और बोलियों का तमाशा देखा, यदि कोई भाषाविद् इनका सम्यक् रीति से अध्ययन करे, तो निस्संदेह इनमें और बोलियों के प्रयोग मिलेंगे। वस्तुतः कबीर साहब की रचना भानमती का पिटारा है जिसमें भाषा-प्रयोग के विलक्षण खिलौने भरे पड़े हैं अथवा देवनदी की धारा है जिसमें पचासों सरिताएँ मिल कर बहती चलती हैं।

[ जहाँ संख्याओं के साथ अन्य कोई उल्लेख नहीं है, वहाँ उन्हें कबीर-ग्रंथावली की पदावली की क्रम-संख्या समझनी चाहिए। ]

---

## मासिक पत्र

म० सुकृतदास बरारी

है यह वत्सर षष्ठ का,
बीजक मय निःशंक।
कबीर कीर्ति संदेश का,
विशेष मासिक अङ्क॥
शान्तिपूर्ण सन्देश अनोखा,
ले प्रतिमास चले सर्वत्र।
शान्ति दूत सा शान्त रूप से,
फिरता भू पर मासिक पत्र॥
सूत्रधार हैं श्याम सलोने,
शास्त्री दर्शन चर्चा नित्य।
देश विदेशों में फैलाते,
जन सामान्य हेतु औचित्य॥
हो 'सुकृत' सुकृति का दावा'
मासिक वत्सर षष्ठ प्रवेश।
ज्ञानलोक की षष्ठ भूमिका,
अर्थभाविनि का सन्देश॥
सद्गुरु श्री कबीर को वाणी,
मेटे अज्ञ जनन - अन्देश।
कौन जगत में सक्षम जैसा,
पत्र कबीर शान्ति सन्देश॥
करे अलौकिक ज्ञान का, जन-जन में विस्तार।
हर्षित सज्जन प्राप्त कर 'सुकृत' सा उपकार॥

## आद्य उद्भावक

धन्य आद्य उद्भावक स्वामी,
मासिक पत्र शान्ति सन्देश।
शान्ति प्रेरणा देने वाले,
यतिवर सा था जिनका वेश॥
स्थान अनूठा कबीर आश्रम,
जामनगर सौराष्ट्र प्रदेश।
नित नव उन्नति स्थान पन्थ की,
करते आये आप हमेश॥
हुए गुप्त साकार देह से,
कर दुखित अनुयायिन को।
विक्रमि बीस शताब्दी ऊपर,
अड़तिस के दखियायन को॥
भादो शुक्ल पक्ष तिथि सप्तमि,
पाँच सितम्बर इसवी मास।
ब्राह्म मुहूरत ब्रह्म रूप में,
सुस्थिर कीन्हो स्वयं निवास॥
रहे आपकी कीर्ति निरन्तर,
मासिक पत्र रूपिणो खास।
करत प्रचार शान्त जनता में,
आत्मज्ञान का शान्त विलास॥
शत शत वन्दन है चरणों में,
करो पूर्ण जनता की आश।
मित्र पुराना सतत आपका,
विनवत नित प्रति सुकृतदास॥

# ज्यों की त्यों धरि दीनों चदरिया

## रामप्रवेश शास्त्री

जीवन की संध्या गहराने लगी तब तक भेद अभेद्य ही बना रहा। गांव वालों की जिज्ञासा शान्त तो नहीं हुई परन्तु थक कर सो चुकी थी। दस-बीस-पचास कोस में कोई भी ऐसा न मिला जो कुछ भी संकेत दे सके। कुल इतना ही परिचय था कि ये पछाँह के रहने वाले हैं। उधर ही की बोली बोलते हैं। जब यहाँ आए थे तब बीस-पचीस वर्ष के रहे होंगे—अब पचहत्तर वर्ष पार कर चुके हैं। पचास-पचपन वर्षों का लम्बा समय अज्ञात परतों को कुछ भी प्रकाश में न ला सका।

सोहांव गांव के बड़े-बूढ़े बतलाते हैं कि डेहरतीर की ओर से आए और महंत जी के चरणों में गिर पड़े। माँ-बाप का रखा हुआ नाम भगवान। गांव-ठिकाना-पूछने पर एक ही वाक्य में बता दिया था कि मेरा न तो कोई घर है और न कोई गांव। महंत जी ने समझ लिया कि घर-द्वार से इनको वैराग्य हो गया है। आखिर मठ पर वही न आएगा जो दुनिया के अपने सारे ठिकानों को खत्म कर दे। कौन इनको खजाना सौंपना है कि दुनिया भर की तहकीकात की जाय। वह भी उस कबीर मठ पर-जहाँ "रहना नहिं देस बिराना है"—का स्थायी बोर्ड लगा है। यहाँ तो रोज ही दो-चार आते रहते हैं। न किसी के आने की खशी न किसी के जाने का गम।

धर्म से बड़ा बंधन दूसरा हो ही क्या सकता है। अतः कंठी पहनाकर चेला बना लिया। भगवान से भगवानदास हो गए। खेती-बारी के इंचार्ज और जानवरों के रखवार। मठ के नौकर-चाकर हों अथवा गांव के छोटे-बड़े सब पर साधु की धाक संस्कारगत जमी हुई है। इसीलिए भगवान दास के लिए सब के दिल में आदर। दूसरे ही दिन से साहब बंदगी के अधिकारी हो गए और आखिर तक बने रहे।

कभी गांव के किसी को जाति-गोत्र जानने की जिज्ञासा पैदा भी हुई तो दूसरे ने समाधान कर दिया-भाई साधु की जाति कैसी? पहले जो भी रही हो अब तो ईश्वर से नाता जोड़ लिया तो उसी जाति के हो गए।

कई वर्षों में लोगों पर भगवान दास के चरित्र और इमानदारी का असर पड़ा। भगवान दास से भगवान बाबा प्रचलित हो गये। पढ़े-लिखे थे नहीं, इसलिए जो कुछ थे साफ और सच्चे बनावट नाम की भी नहीं। महन्त जी के लिए तो जैसे पारस पत्थर। देखभाल न होने से खेती का नुकसान होता है। नौकर चाकर मनमानी करते हैं। अब भगवान बाबा के रहते क्या मजाल कि कोई काम बिगड़ जाय। एक मजदूर के बराबर खुद भी खटते। मठ की आमदनी एकदम से बढ़ गई।

एक दिन भगवान बाबा के महन्त बनने का अवसर आ गया। महंत जी का शरीर छूटा तब इनका ही नम्बर था। बहुत से लोग इस राय के थे कि महंत की चादर भगवान बाबा को दी जाय। लेकिन इस विचार ने जोर पकड़ा कि किसी पढ़े-लिखे आदमी को—वह भी अगर ब्राह्मण हो तो उसे ही इस गद्दी पर बैठाया जाय। कबीर मठ होने से गांव वाले अपने घरौंदों को थोड़े ही तोड़ देते हैं। हिन्दुस्तान में भला जाति-पाँति का विचार कैसे छोड़ा जाय? लोगों ने कबीर की जाति का भी तो पता लगा ही लिया। दुनिया कहती रहे कि लहरतारा तालाब पर पड़े मिले, लेकिन जिसको मिले उसकी क्या जाति थी? बस यही जाति उनकी भी हुई। बीच का रास्ता अपनाया गया निश्चय हुआ कि भगवान बाबा पूरब के महंत बना दिए जायँ और पश्चिम मठ के लिए किसी कुलीन योग्य व्यक्ति की तलाश की जाय। कभी गांव के पूरब तरफ भी मठ था अब उस मठ की थोड़ी-सी जमीन रह गई थी। वह जमीन भगवान बाबा के नाम हो गई। बाकी जैसे वे पहले थे वैसे के वैसे रहे।

ऊपर से कुछ प्रकट नहीं हुआ; लेकिन भगवान बाबा के अंतर में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया। सारी जिन्दगी सधुवायी करके भी अपने वांछित पद पर आसीन न हो सके। लोग जानते हैं कि कबीर मठ के साधु प्रायः छोटी जाति के लोग ही होते हैं। फिर जिसकी जाति छिपी हुई है वह ब्राह्मण थोड़े ही होगा। अगर पढ़े-लिखे होते तब भी

काम बन जाता। सधुवायी से गाँव का क्या रिश्ता ?

संभवतः, अपने खोए हुए अतीत को ढूढ़ने में भगवान बाबा को कई वर्ष लग गए। जिस संसार को छोड़कर यहाँ आए थे; उसकी चिन्ता बलवती हो उठी। न जाने इतने वर्षों में कितना बदला होगा ? जाने पर कोई वहाँ पहचानने वाला भी होगा क्या ! जिस छोटे बच्चे को छोड़कर आए थे अब तो उसके भी बाल पकने लगे होंगे। पत्नी अगर जिन्दा होगी तो अवश्य पहचान लेगी। टोल-पड़ोस में कोई हमउमर अभी जीवित होगा तो ४५-५० वर्षों के परिवर्तन को उसकी मन्दज्योति आँखें कैसे भाँप सकती हैं ? इन सारी आशंकाओं को स्वजनों के प्रति उत्पन्न अनुराग ने धराशायी कर दिया। अब भगवान बाबा को वहाँ जाने से कौन रोक सकता है जहाँ का नाम उन्होंने अर्द्धशताब्दी तक सपने में भी नहीं लिया।

× × ×

बनारस जिले में मुगलसराय के पास का एक छोटा सा गाँव। गाँव के बाहर पान की दुकान पर बैठे पानवाले से एक आदमी बात कर रहा है। साधुवेषधारी उस आदमी को नौजवान पानवाला सहज ही बाबा कहकर संबोधित कर रहा है।

आप इसी गाँव के रहने वाले हैं—साधु ने पूछा। हाँ बाबा ! मेरा घर इसी गाँव में है—पानवाले ने उत्तर दिया।

इस गाँव में पचासों वर्ष पहले भगवान नाम के एक आदमी थे—उनके खानदान में कौन-कौन हैं—साधु ने दूसरा प्रश्न किया।

इस प्रश्न ने पानवाले का कुतूहल सहसा बढ़ा दिया। प्रश्न का उत्तर उसने प्रश्न से दिया।

क्या आप उनको जानते हैं ? लोग कहते हैं कि वे कहीं साधू हो गए। पता नहीं बाबा तब तो मैं पैदा भी नहीं हुआ था। लेकिन आप उनको कैसे जानते हैं ?

साधु ने एक टालने वाला उत्तर देकर पानवाले का ध्यान अपने दूसरे प्रश्न की ओर खींचा।

पान वाले का समाधान नहीं हुआ। फिर भी साधु-महात्मा से बढ़-बढ़ कर बोलना ठीक नहीं होता—इतना वह जानता था। अतः भगवान के बाल-बच्चों का हिसाब देने लगा :—

बाबा, तीन-चार साल पहले उनकी पत्नी का गंगालाभ हो गया। अब उनके लड़के केदार तथा पतोहू और तीन-चार पोते-पोतियाँ हैं।

परिवार का गुजारा कैसे होता है ? लड़का कोई काम-धंधा करता है क्या ? साधु ने अगला प्रश्न किया। किसी तरह से गुजारा तो हो ही रहा है। कुछ मेहनत-मजदूरी करते और बटाई पर दूसरों का खेत जोत-बोकर अपना काम चला लेते हैं। बाप का सुख तो उन्होंने कुछ जाना नहीं—फिर भी बराबर उनका पता लगाते रहते हैं। मेले में जाते हैं तो वहाँ भी साधुओं के गिरोह में पूछते चलते हैं। कहीं किसी साधु-संत का पता पाते हैं तो उसकी जानकारी लेते हैं। बाबा, क्या बतलावें जमाना बड़ा खराब हो गया है। दुनियाँ भर के ठग साधु बन कर खाने कमाने का धन्धा निकाल बैठे हैं। माफ कीजिएगा बाबा, मैं वैसे ही नहीं कह रहा हूँ। अभी पाँच-छह वर्ष पहले की बात है। हमारे गाँव में एक साधु आया था। साधु क्या था—पक्का धोखेबाज !

ऐसा कौन-सा धोखा उसने किया था कि इतना चिढ़े हुए हो—साधु ने बात आगे बढ़ाते हुए पूछा।

कुछ न पूछिए बाबा। केदार बेचारे उसका नाम सुनकर सबसे पहले दौड़े हुए आए थे। अपने पिता जी के विषय में सारी बातें बताकर उनसे मिलने की लालसा प्रकट की। बस, उसने उनकी कमजोरी पकड़ ली और कह दिया कि मैं वही हूँ। उसके सिर पर बड़ी-बड़ी जटाएँ थीं और लम्बी दाढ़ी। पूरे गाँव में तथा आस-पास भी बिजली की तरह खबर फैल गई कि केदार के पिता जी आए हैं। बड़े पहुँचे हुए साधु हैं। लोगों ने खूब भक्तिभाव पूर्वक उसका सम्मान किया। केदार बेचारा अपनी गरीबी भूल गया। गाँव के लोग तो बढ़िया-बढ़िया भोजन कराते ही थे, वह अपने बाल-बच्चों का पेट काट कर रोज घी-दूध जुटाए रहता था।

फिर क्या हुआ—साधु ने बड़ी व्यग्रता से पूछा।

फिर तो गजब हो गया। उनकी पत्नी यानी केदार की माँ भी दर्शन करने आती थीं। बेचारी लाज के मारे सामने नहीं होती थीं, लेकिन पति का प्रेम तो था ही, सो

एक दिन बहुत ध्यान से देखा और घर जाकर अपने लड़के से कहा—यह कोई दूसरा आदमी है। तुम्हारे पिताजी नहीं हैं।

केदार को तो पूरा विश्वास हो गया था कि ये मेरे पिता ही हैं। उनको ही क्या पूरे गाँव वालों को यही विश्वास था। उनके पिता की उम्र का कोई आदमी होता तो उससे पहचान कराई जाती। ऐसा कोई आदमी नहीं था। इसलिए माँ के संदेह पर उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया। उस ढोंगी साधु में अपने पिता के दर्शन कर वे आनंद में डूबे रहते थे।

माँ ने बार-बार कहा कि ये तुम्हारे पिता नहीं हैं, परन्तु वे अपनी सिधाई बस यह कहकर टाल देते थे कि साधु होकर कोई झूठ बोल सकता है। अपनी यह खुशी भी प्रकट कर दी कि चलो अब पितृपक्ष में दाढ़ी-बाल रखाने की झंझट तो समाप्त हुई।

उनको तो खुशी थी, परन्तु किसी की खुशी के लिए कोई भी स्त्री जिस-तिस को पति थोड़े ही मान लेगी! इसलिए एक दिन माँ ने सरोष अपनी बात दृढ़ता से कहा। केदार ने स्थिति की गंभीरता पर ध्यान दिया और साधु रूपी अपने पिता की परीक्षा लेने का निश्चय किया।

पानवाला कहता गया—ऐसा हुआ बाबा, कि केदार ने ५० वर्ष पहले की दो बातें पूछी। पहली बात यह कि पिताजी! (केदार उस साधु को पिता जी कहते थे) जिस लालटेन से आप अपनी ड्युटी करते थे वह कैसी थी? और दूसरी यह कि घर छोड़ने के पहले आप कौन-सा कार्य कर गए थे—वह आप ही जानते हैं। उस साधु ने क्या उत्तर दिया?—अपनी उत्सुकता को न रोक पाने की वजह से बाबा पानवाले से बीच में ही पूछ बैठे।

जवाब क्या देता वह तो नकली था ही। सो उसकी कलई खुल गई। दोनों प्रश्नों में से एक का भी जवाब न दे सका। रोज लोग रुपए-पैसे रखकर उसका पाँव छूते थे—बड़ी इज्जत हुई थी उसकी। सो सब धूल में मिल गई। जान लेकर भागने की नौबत आ गई। बच्चू, मारे नहीं गए यही गनीमत हुई! बेचारे केदार की आशा पर पानी फिर गया और उन्होंने साफ-साफ कह दिया कि खैर इसी में है कि अब आप अपना मुँह काला कर के भाग जाइए, नहीं तो मुझ से कुछ अनर्थ हो जाएगा।

असल में उसकी वेश-भूषा का ही ख्याल कर के लोगों ने उसे छोड़ दिया; नहीं तो छठी का दूध याद आ गया होता। सबने दुत्कारते हुए गाँव से बाहर भगाकर ही दम लिया।

पान वाले से यह कहानी सुनकर बाबा के ऊपर गहरी प्रतिक्रिया हुई। हृदय की करुणा आँखों में बरबस उमड़ पड़ी। सब कुछ सुनकर गम्भीर और स्तब्ध-से हो गए। वात्सल्य साकार हो उठा। फिर भी अपने को सँम्हालते हुए-पान वाले से आग्रह किया कि किसी को भेज कर केदार को बुलवा दे तो कुशल-समाचर जान कर यहां से जाऊँ।

पानवाले ने अपने लड़के को भेज दिया। केदार घर पर नहीं थे—खेत में काम कर रहे थे। लड़का खेत में पहुँचा और एक बाबा के आगमन की सूचना दी। तथा यह भी बताया कि वे केदार से मिलना चाहते हैं।

केदार ने एक क्षण के लिए काम रोक दिया। फिर लापरवाही मिश्रित गम्भीरता से कहा—चलो अभी आता हूँ। यह भी कोई बाप ही बनकर आया होगा। अब तो जो ही आता है बाप से नीचे होता ही नहीं। लड़का चलने लगा तो फिर रोककर कहा—हाँ! जरा मेरे घर होते हुए जाना और मुन्ना की अम्मा से कह देना कि एक आदमी का और खाना बना दे।

थोड़ा-सा काम बाकी था—उसे पूरा करके केदार पान की दुकान पर पहुँचे। बाबा का सादर अभिवादन किया—चरण-स्पर्श करके धूल माथे पर चढ़ा ली। बाबा ने माथे पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। उनको अपना ही रूप केदार में दिखाई पड़ा। देखकर हृदय गद्‌गद् हो उठा। लेकिन सावधानी रखी कि कहीं आसक्ति के चिह्न प्रकट न हो जायें। पान वाले से सुनी कहानी का गहरा प्रभाव मन पर पड़ा था।

केदार का मुँह एक बार दूध से जल चुका था। फिर तो वह छाछ भी फूँक-फूँक कर पीएगा और पिलाता है उसे खौलता हुआ दूध। इसलिए बाबा ने सोचा बात दबी रह जाय तो अच्छा है।

सेवक को क्या आज्ञा है बाबा—केदार ने कहना

आरंभ किया—मुझ पर आपकी बड़ी कृपा हुई कि सेवा का अवसर दिया। आपको देखकर ऐसा लगता है जैसे ईश्वर साक्षात् आ गए हैं। आप अपने बारे में कुछ बतलाने की कृपा करें तो मुझे तसल्ली होगी। मेरे हृदय से एक आवाज आ रही है। मैं खूब अच्छी तरह जानता हूँ और मेरी अंतरात्मा कह रही है कि पचासों साल से दर-दर जिसकी तलाश करते आ रहे हो वह घर बैठे तुम्हें मिल गया है। अंतरात्मा की आवाज तो झूठी होती नहीं बाबा! आप भी कह दीजिए कि मेरे अंतः की आवाज सच्ची है। इतना कहते-कहते केदार का गला रुँध आया। वह भाव विह्वल होकर बाबा के चरणों से लिपट गया। बाबा भी फूट पड़े। आँखे सजल हो उठीं। धैर्य का बांध टूटते-टूटते किसी प्रकार रुका। केदार का हाथ पकड़ कर उठाते हुए अपनी सफाई दी—

बहुत दूर का रहने वाला हूँ बेटा! साधुओं का क्या ठिकाना? जहाँ चले गए वहीं घर है। तुम्हारे पिता से मेरी जानपहचान रही है। काशी आया था; सोचा हाल चाल लेता चलूँ इसलिए आ गया।

बाबा! आज जैसा अनुग्रह आपने पहले कभी नहीं किया, केदार बोल उठे—मेरे पिता जी को गए ५०-५५ वर्ष हो गए। मुझे तो कुछ याद नहीं। मुश्किल से चार-पाँच वर्ष की उम्र रही होगी। जब से होश सँभाला तब से उनके दर्शन के लिए बराबर तरस रहा हूं। आज तक कहीं कोई सुराग नहीं मिला। इसी बीच माँ का भी स्वर्गवास हो गया। माँ जब जीवित थी तब एक महात्मा आए थे। मैं सब जान चुका हूं—बीच में ही बात काटते हुए बाबा ने कहा। पानवाले ने सारी कहानी सुना दी है। इसीलिए मेरा मन दुखी हो उठा है। साधु होकर ऐसा प्रपंच उसने क्यों रचा? भगवान उसका भला करें।

केदार को सहानुभूति भरी इन बातों को सुनने का धैर्य नहीं था। वे बाबा से इतना ही सुनना चाहते थे कि तुम्हारा पिता मैं ही हूं। उन्होंने कहा—बाबा! मैंने तो उस प्रपंच को भी सच मान लिया था। उस झूठे पिता को भी पाकर मन सुखी हो गया था। माँ के बार-बार संदेह प्रकट करने पर भी मैंने यकीन नहीं किया। लेकिन जब देखा कि माँ अपनी बात पर दृढ़ है, तब बहुत दिनों के बाद मैंने परीक्षा ली। माँ की बात सच निकली। मैं फिर से टूअर हो गया। लेकिन अब तो माँ भी नहीं रही। मन कहता है कि कोई झूठा ही आकर कह दे कि मैं तुम्हारा पिता हूँ तो फिर से सनाथ हो जाता। बाबा! क्या आप से मेरी साध पूरी नहीं हो सकती?

मैं कैसे कह दूँ बेटा कि मैं तुम्हारा······थोड़ा रुककर बाबा ने पुनः कहना शुरू किया भगवान जो कुछ करता है अच्छा ही करता है बेटा! इसलिए अब तुम उसकी चिन्ता छोड़ दो। मैं तुम्हारे किस काम आ सकता हूं? फिर भी अगर मुझ से कुछ······।

केदार बीच में बोल उठे—मुझे और कुछ भी नहीं चाहिए। आप मिल गए तो लगता है सब कुछ मिल गया है। आप मेरे पिता जी के जानी-पहचानी हैं और आपको उनके परिवार से हमदर्दी है तभी तो यहाँ तक आए हैं। इसलिए आप भी मेरे लिए पिता के समान हैं। मैं ऐसा अभागा हूँ कि सारी जिन्दगी बीत गयी और अपने जन्मदाता की सेवा का मौका ही नहीं मिला। इस लिए आप जबर-दस्ती भले ही चले जायें मैं तो······।

बाबा ने केदार को थोड़ा अलग ले जा कर पूछा—बेटा! अब तक किसी से बिना कुछ लिए-दिए काम चल गया है या किसी के देनदार भी हो?

केदार भाव-विह्वल हो उठे—जैसे अब तक दुख-सुख सहकर जिन्दा हूं, आपके आशीर्वाद से आगे भी निर्वाह हो जाएगा। दुनियाँ में बिना लिए-दिए काम कहाँ चलता है बाबा! लेकिन अपने दुख का रोना रोकर आपको दुखी नहीं करना चाहता। इस समय मेरी खुशी का ठिकाना नहीं है। यदि आप निराश करेंगे तो उतना बड़ा दुख भी मेरे लिए कोई और नहीं हो सकता।

अजीब बात है। थोड़ी देर पहले जब बाबा के आने की सूचना केदार को दी गई थी तो बड़ी उदासीनता से कहा था—चलो आते हैं, यह भी मेरे कोई बाप ही होंगे। और जब बाबा ने बाप होने से इन्कार किया तो पीछे पड़ गए कि आप ही मेरे पिता हैं।

बड़ी कोशिश के बाद भी बाबा को केदार की वास्तविक स्थिति का पता नहीं चला तब उन्होंने एक सीधा सवाल किया—बेटा! घर छोड़ने से पहले तुम्हारे पिता

जिस खेत को रेहन रख गए थे वह अब तक छुड़ाया जा सका या नहीं ? पहले वाले साधु की परीक्षा में केदार का प्रश्न इसी से संबंधित था।

इस प्रश्न ने केदार की शंका को निमूंल कर दिया। वह चिल्ला उठे—निश्चय ही आप मेरे पिता हैं—असली पिता जन्मदाता। क्योंकि यह रहस्य सिवाय मेरे पिता जी के और किसी को मालूम न था। मेरी माँ को भी नहीं। मैं बड़ा हुआ तो मुझे रेहनदार ने बताया कि यह खेत तुम्हारा है। थोड़े से पैसों में मेरे यहाँ गिरवी रखा हुआ है। तुम जब चाहे छुड़ा लेना। मैंने सोच लिया था कि पिता जी के छोड़े हुए इस कार्य को कर के ही मरूंगा। लेकिन उस खेत को छुड़ा सकूंगा या नहीं पर आप को कदापि नहीं छोड़ूंगा। आपको आपके गुरु की कसम है सच-सच बतला दीजिए। चौपाया बाँधा जाता है दोपाया नहीं। अतः जैसे इतने दिनों तक आपको किसी ने नहीं बाँधा तो मैं भी यह शपथ लेता हूं कि आपके रास्ते में रोड़ा नहीं बनूंगा। लेकिन कम से कम नकली बापों से छुटकारा तो मिल जाएगा।

भावना में केदार इतने बह गए कि बाबा संबोधन छोड़ कर पिताजी कहने लग गए। बाबा भी अपने को छिपाने में असमर्थ रहे।

पान की दूकान पर धीरे-धीरे बहुत लोग इकट्ठे हो गए। गाँव में लोग जगह-जगह पर तरह-तरह की बातें कर रहे थे। औरतों में और अधिक उत्सुकता थी। पहले वाले साधु की धूर्तता और केदार के हृदय की तीव्रता के संदर्भ में आज आए हुए साधु के संबंध में एक से एक कल्पनाएँ की जा रही थीं। पहचान होते ही बाप-बेटा एक दूसरे से लिपट गए दोनों की आखों से आनन्द के आँसू बरसने लगे। एक क्षण के लिए देखने वाले अवाक् रह गए। किसी तरह दोनों अलग हुए तो गाँव वालों की श्रद्धा का समुद्र उमड़ पड़ा। साधु और अपने ही गाँव का ! चरण-रज लेकर कृतार्थ होने वालों का ताँता लग गया। फिर तो केदार के घर तक बाबा के पीछे पूरा एक जुलूस आया।

केदार का घर क्या था—किसी प्रकार गुजारा कर लेने भर की जगह में मामूली सी झोपड़ी। मिट्टी के दो सामान्य कमरे और दोनों के बीच में छोटा-सा फर्श। लेकिन आज तो पूरे गाँव का पुण्य यहीं जमा हो गया है। बाबा के आने से तीर्थ बन गया है। लोग पुण्य लूटने की होड़ लगाए हुए हैं। इधर केदार के पाँव धरती पर नहीं। उनके स्त्री-बच्चों ने बाबा का चरणामृत पान किया। शाम को पूरे गाँव में घी के दिए जलाए गए। बाबा की एक बात को सुनने के लिए सैकड़ों कान हर समय उधर लगे हुए हैं।

श्रद्धा-भक्ति और मान-सम्मान के इस वातावरण ने बाबा का वैराग्य अग्नि में घी का काम किया। वैराग्य से जो थोड़ी बहुत विरक्ति हुई थी वह काफूर हो गई। बाबा ने सोचा ज्वार के बाद भाटा आयेगा ही। अतः पहले ही गाँव छोड़ देना उचित होगा। बड़ी रात तक लोगों की भीड़ जमी रही। भजन-भाव में बाधा न पड़े; इसलिए झोपड़ी में अकेले ही बाबा का आसन एक चौकी पर लगाया गया।

आज केदार की आँखें संयोगिनी बनी हैं। नींद को उसने छुट्टी दे दी है। अपने कमरे में पत्नी के साथ भावी योजना बनाने में सारी रात बिता दी। भोर होने से पहले ही बाबा की झोपड़ी के पास आकर आहट ली। बाबा को चौकी पर न देखकर सोचा गाँव के बाहर नित्य क्रिया से निवृत्त होने गए होंगे। लेकिन भोर हो गया तब तक वापस नहीं आए। केदार व्यग्र हो उठे। गाँव के बाहर जाकर चारो ओर ढूंढ़ा। कहीं पता नहीं। पूरे गाँव में खबर फैल गई—बाबा रात में ही कहीं चले गए।

लोग दुखी हुए; परन्तु श्रद्धा और भी बलवती हो उठी। जगह-जगह बाबा की साधुता की सराहना होने लगी। केदार का मन भारी हो गया। लेकिन पहले की तरह अथाह में डूबने-उतराने की नौबत नहीं रही। सोने से पहले बाबा ने अपना ठिकाना बतला दिया था। बक्सर स्टेशन उतर कर गंगा पार होते ही उजियार में बस, एक्का या रिक्शे का अड्डा है। वहाँ से तीन-चार मील पर सोहाँव गाँव में पश्चिम की मठिया—कबीर मठ पर बाबा रहते हैं।

केदार अकेले ही घर से चल पड़े। मुगलसराय जाकर गाड़ी पकड़ी। शाम तक सोहाँव पहुँच गए। आज ही

भगवान बाबा भी कई दिनों के बाद वापस आए हैं। केदार को देखकर गाँव में बड़े-बूढ़ों को लगा जैसे भगवान बाबा की जवानी लौट आई है। केदार ने अपना परिचय दिया। लेकिन वे चाह कर भी यह न कह सके कि वे भगवान बाबा के आत्मज हैं। लोग उन्हें मठ के अन्दर ले गए। भगवान बाबा और महंत जी के चरण-स्पर्श करके महन्त जी की चौकी के पास बैठ गए।

महंत जी ने परिचय पूछा—आने का उद्देश्य पूछा। अपना पता-ठिकाना बतला कर केदार भगवान बाबा की ओर ऐसे देखने लगे जैसे सफाई के गवाह के रूप में उनसे उसकी अपेक्षा हो। वह लौट आएगा। परन्तु अपने मुँह से कदापि नहीं कहेगा कि भगवान बाबा उसके पिता हैं। कहीं बाबा की इससे अप्रतिष्ठा हुई तो उसे नरक में भी जगह नहीं मिलेगी। इन्हीं भाव-तरंगों ने केदार के मुँह पर ताला लगा दिया।

भगवान बाबा अपनी जगह से उठकर महंत जी के पास आ गए। केदार के परिचय में इतना और जोड़ दिया कि मेरे घर छोड़ते समय यह चार साल का बच्चा था। आँखों से मोती जैसे दो-चार आँसू धरती पर चू पड़े। थोड़ी ही देर में पास-पड़ोस के बीसों लोग आ पहुंचे। तेजी से गाँव भर में खबर फैल गई कि भगवान बाबा का लड़का आया है। आधी शताब्दी के बाद आज भगवान बाबा के अज्ञात अतीत का छोर पकड़ में आया है। सबको प्रसन्नता हुई।

केदार भगवान बाबा को अपने साथ ले जाने का आग्रह करने लगे। लेकिन भगवान बाबा ने सोचा—'अब लौं निभानी अब क्यों नसैहौं।' गाँव वालों की मध्यस्थता केदार भी राजी हो गए कि भगवान बाबा यहीं रहें।

केदार जब चाहे आ सकते हैं। सारा गाँव उनका अपना है। भगवान बाबा तो कुछ निर्णय लेने में मौन ही रहे; किन्तु महंत जी के साथ गाँव के प्रबुद्ध लोगों ने तय किया कि केदार की आर्थिक दशा सुधारने के लिए भगवान बाबा के नाम की सम्पत्ति केदार को दे दी जाय।

गाँव वापस आकर सबसे पहले केदार ने गिरवी रखी जमीन छुड़ा ली। जब तक भगवान बाबा का पार्थिव शरीर था—केदार और उनके स्त्री-बच्चे प्रायः उनके दर्शन करने आते रहते थे। दो-तीन साल के बाद भगवान बाबा की आँखें सदा के लिए बंद हो गईं। उन्हें समाधि दे दी गई। उनकी साधुता बेदाग रही। उनकी सारी जिन्दगी एक खुली हुई किताब की तरह सबके सामने है—एक-एक पन्ना साफ और सुन्दर। कबीर साहब की राह पर चलते हुए उन्होंने निश्चय ही जीवन की चादर को जतन से ओढ़ी। लोग उनके बारे में आज भी कहते हैं—

ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया।



## सद्गुरु कबीर व्याख्यानमाला

श्री कबीर शांति-संदेश के पाठकों को यह जान कर हर्ष होगा कि पूज्यपाद सद्गुरुदेव श्री १००८ महंत रामस्वरूपदास जी, गुरु श्री १००८ शांतिदास जी महाराज साहब के संरक्षण में सद्गुरु कबीर व्याख्यान-माला का प्रवर्तन किया गया है। इसका शुभारंभ प्रसिद्ध गाँधीवादी एवं कबीर-दर्शन के मर्मज्ञ श्री रामप्रवेश शास्त्री द्वारा दिनांक १६ मार्च, '८३ को संपन्न हुआ। व्याख्यानमाला का द्वितीय प्रवचन विख्यात चिंतक श्री रोहित मेहता एवं श्रीमती श्री देवी मेहता द्वारा दिनांक ६ अप्रेल, १९८३ को संपादित हुआ। इस प्रकार के व्याख्यान का प्रत्येक मास में समायोजन होता रहेगा। पाठकों के लाभार्थ आगामी अंकों में उनके प्रकाशन की भी योजना कार्यान्वित की जाएगी।

—संपादक

# समाज उद्धारक सद्गुरु कबीर

भारतीय वचनवंशाचार्य महन्त श्री विद्यानन्द शास्त्री, कबीर आश्रम महादेवमठ; रोसड़ा

जब-जब पापाचार अत्याचार का साम्राज्य अपनी चरम सीमा पर पहुँचता है, तब-तब समाज में ही किसी ऐसे समाज सुधारक लोकात्मा का प्रादुर्भाव होता है जो नई रोशनी प्रज्वलित कर नई दिशा का उद्‌घोष करता है। उसे ही हम अवतार-पुरुष मान लेते हैं और उसकी बहुमुखी प्रतिभा युग युगान्तर की अमरवाणी बन जाती है। हम वैसे समय पर ध्यान दें। आज से ५८२ वर्ष पूर्व भारत में यवनों का शासन था। धर्मान्धता के कारण एक तरफ हिन्दू धर्म के ठेकेदार ब्राह्मण समाज में वर्णवाद की सृष्टि करके और उसको विकृत करके प्रत्येक वर्ण में बीसों जातियाँ बनाकर और उनमें छुआछूत भरकर मानवता पर कुठाराघात कर रहे थे। हेगेल के समाजवाद की परिभाषा की तरह समाज में जहाँ सिर का स्थान होना चाहिए वहाँ पैर था। सेवा और श्रम करने वाले शूद्र को नीचा एवं कामचोर और ठग जैसे ब्राह्मण को शीर्ष का स्थान दिया गया।

दूसरी तरफ यवनों ने अपने मजहब के प्रसार के लिए समाज में नये कर लगा कर ही संतोष नहीं किया बल्कि कितने क्षत्रियों को पदादि का लोभ देकर यवन बना लिया। इतने पर भी संतोष नहीं हुआ तब मंदिरों को तोड़कर मस्जिद बनाना शुरू किया। समाज में हायतोबा मच गया। जान माल खतरे में पड़ गया या यों कहिए कि मानव सभ्यता पर घोर अंधकार छा गया।

ऐसे समय युग पुरुष संत कबीर क्या चुप बैठते? उन्होंने समाज की सारी परिस्थितियों का अध्ययन किया एवं युग की पुकार हुंकार का उद्‌घोष करते हुए घोर तम को चीर कर एक नया विहान लाते हुए कहा—मूर्ख-धर्म कभी हिंसा में विश्वास नहीं करता। मानव में मानवता ही सबसे बड़ा गुण है। हिन्दू एवं मुसलमान दोनों ने इनकी भावमयी वाणी परखी एवं संकीर्णतावश संत कबीर को अपने-अपने पक्ष में करना चाहा। कबीर ने उस मार-काट के बीच मध्यस्था करते हुए कहा—

अरे मूर्ख!

"हिंदू कहा तो मैं नही मुसलमान भी नाहिं।
पाँच तत्व के पूतला गैवी खेले माहिं॥

मानव की केवल एक जाति है मानव और उसमें मनुष्यता ही सबसे बड़ा गुण है। अरे जरा विचार तो करो। इतनी हत्या कर रहे हो, तेरे शरीर का क्या ठिकाना है। अपने पर तो विचार करो—

मानुष तेरा गुण बड़ा मोस न आवे काज।
हाड़ न होता आमरण, त्वचा न वाजन वाज॥

आज जो मुल्ला यवनों को पाठ पढ़ाते हैं—"अल्ला को प्यारी है कुर्बानी" अरे कुर्बानी नहीं सत्यवाणी की आवश्यकता है। पांड़े जिस भगवान को मंदिर में खोजते हो मुल्ला जिस अल्ला के नाम पर खून करते हो वह अन्यत्र नहीं है, खुदा तो खुद में है—

मोको कहाँ ढूढे बंदे मैं तो तेरे पास में।
दिल मा खोज दिलहि मा खोजो इहै करीमा रामा।

हिन्दू धर्म के ठेकेदार पंडितों को डांटा, मूर्ख! मनुष्यता का क्यों हनन करते हो? ब्राह्मण-शूद्र सभ्यता संस्कृति पर कलंक है—"तुम कत ब्राह्मण हम कत शूद्र" जरा ठहरो पांड़े जी अरे सुनो तो—

पांड़े बुझि पियहु तुम पानी।
जा मटिया के घर में बैठे ता में सृष्टि समानी॥

समाजवाद एवं साम्यवाद के आधार वर्गविहीन, जाति विहीन समाज की आवश्यकता पर बल दिया। मानव में भ्रम ही नशा है कर्त्ता धर्त्ता के चक्कर में मानव बौखला रहा है। सुनो तो—कर्त्ता का कोई रूप था उसकी कोई जाति नहीं—

कर्त्ता का कछु रूप न देखा
कर्त्ता का कछु वर्ग न देखा
ताके जात गोत कुछ नाही
रूप-अरूप नहीं तेही ठाऊँ
वर्न अवर्न नहीं तेही ठाऊँ
कहे कबीर विचार के ताके वर्न न गाँव
निराकार और निर्गुण है पुरन सब ठाऊँ॥

कबीर साहब भारत के ही नहीं विश्व के विचारकों में श्रेष्ठ हैं। रूसो भी कबीर दर्शन के निकट नहीं ठहर सकते। कार्लमार्क्स, लेनिन, ऐंजिल्स के दर्शन में कबीर दर्शन का परोक्ष रूप कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

बौद्ध और जैन धर्म ने भी मानवता वाद को आधार बनाया। आज विश्व कीजो माँग है 'भेद भाव मिटाओ।' इसका शताब्दियों पूर्व कबीर ने उद्घोष कर दिया है—

काहे कूँ भीत बनाऊँ टाटी
का जाणू कह परिहै माटी
काहे कूँ मन्दिर महल चिनाऊँ
मूवा पीछे घड़ी एक रहन न जाऊँ

आज पूँजीपति वर्ग पूँजी के विकास के होड़ में जो प्रतिस्पंधा रखते हैं उससे शांति नहीं मिल सकती क्योंकि "आवश्यकतायें अनन्त हैं" संतोष की भावना मानव में अत्यंत आवश्यक हैं—

साईं इतना दीजिए जामे कुटुम समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाय॥

महान् समाज शास्त्री युगनायक कबीर ने भौतिक और आध्यात्मिक भावनाओं को कैसा पिरोया है—

काहे कूं छाऊँ ऊँच उचेरा
साढ़े तीन हाथ घर मेरा
कहै कबीर गर्व नहिं कीजे
जेता तन तेई भुइँ लीजे॥

मानव मानव के भेद का उन्मूलन करते हुए अपने दर्शन का उद्घोष करते हुए कहा है—

काहे को कीजे पाडे छोती विचारा।
छोतिहि ते उपजा संसारा

हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध
तुम कैसे ब्राह्मण हम कैसे शूद

भाई मेरे आप जरा जातिवाद एवं संकीर्णतावाद से ऊपर उठकर सोचें। हमारी सभ्यता संस्कृति कहाँ जा रही है? आये दिन इसी के नाम पर सैकड़ो हत्यायें हो रही हैं आगजनी हो रही है। इसको सद्गुरु कबीर ने कहा—

अरे जरा सोचो—

संन्तो राह दोनों हम दीठा
हिन्दू तुरूक कहा नहि माने, स्वाद सबही को मीठा
हिन्दू बरते एकादशी, दूध सिंघारा सेती।
अन्न को त्यागे मनको न हटके पारन करे सगोती।
तुरूक रोजा नमाज गुजारे विस्मिल्ल बाग पुकारे।
इनकी भिस्त कहाँते होइहे साझे मुरगी मारे॥
हिन्दू की दया मेहर तुरूकन की दोनों घट सो त्यागी
ये हलाल वे झटका मारे आगि दोनो घर लागी
हिन्दू तुरूक की राह एक है सतगुरु है बताई
कहहि कबीर सुनहु हो संतो राम ने कहे खुदाई॥

कबीर साहब जैसे समाज उद्धारक एवं महापुरुष का अमृत वाणी समाज विज्ञान के कसौटी पर खड़ी उतरती है। जब तक मानव में इनके दर्शन का प्रचार प्रसार नहीं होगा, उनके विचारों में प्रेय और श्रेय नहीं होगा तब तक समाज की यही स्थिति बनी रहेगी; क्योंकि शोषक वर्ग धर्मान्धता के कारण समाज में वर्ग विभेद पैदा करता है एवं शोषित पीड़ित जन मानस को भ्रम में डालकर निसन्देह अपनी कुर्सी बरकरार रखना चाहता हैं। अतः भाई मेरे, ठंढे दिल से महान् पुरुष की वाणी का प्रचार प्रसार करें एवं स्वयं भी उसका आचरण करें।

मन माया तो एक है, माया मनहिं समाय।
तीनि लोक संशय परी; काहि कहौं समुझाय॥

# सद्गुरु कबीर साहिब के राम

महन्त बंसूदास कबीर पंथी मादक निषेध प्रचारक, परमट, कानपुर।

एक राम घट-घट में बोले,
एक राम दसरथ घर डोले।
एक राम का सकल पसारा,
एक राम सबहिन से न्यारा॥
जीव आत्मा घट-घट बोले,
रामचन्द्र दसरथ घर डोले।
निरंजन का सकल पसारा,
आदि पुरुष सबहिन से न्यारा॥

प्रत्येक राम के गुण पृथक—पृथक हैं, जैसे—

राम गुन न्यारो न्यारो न्यारो।
अबुझा लोग कहां लौं बूझैं, बूझन हार बिचारो ॥टेक॥
केतिक रामचन्द्र तपसी सों, जिन यह जग बिटमाया।
केतिक कान्ह भये मुरलीधर, तिन भी अन्त न पाया॥
मच्छ कच्छ औ बराह सरूपी, बावन नाम धरायो।
केतिक बौध भये निहकलंकी, तिन भी अन्त न पाया॥
केतिक सिध साधक संन्यासी,
जिन बन बास बसाया॥
केतिक मुनिजन गोरख कहिये,
तिन भी अन्त न पाया॥
जाको गति ब्रह्मौ नहिं जाना, सिव सनकादिक हारे।
ताके गुन नर कैसे पइहौ, कहँहि कबीर पुकारे॥

सद्गुरु कबीर साहिब ने उपरोक्त चारों रामों का वर्णन, प्रकारान्तर से इस प्रकार किया है—

आदि पुरुष यक वृक्ष है, निरंजन डारा हो।
त्रिदेवा साखा भये, जिव पत्ता संसारा हो॥

जीव अविद्या विशिष्ट है और रामचन्द्र—निरंजन माया विशिष्ट हैं। ये तीनों राम अविद्या और माया के प्रभाव के कारण सोपाधिक हैं। आदि पुरुष अविद्या और माया से रहित शुद्ध निरुपाधिक सर्वोपरि न्यारा है।

आदि पुरुष के दो रूप हैं—(१) विशेष और (२) सामान्य। विशेष रूप से अमरलोक अथवा सत्यलोक में रहता है और सामान्य रूप से सर्वत्र घट-घट में रहता है, जैसे—

ज्ञान अमर पद बाहिरे, नियरे ते है दूरि।
जो जाने तेहि निकट है, रहा सकल घट पूरि॥

ऊपर की आधी साखी विशेष रूप का वर्णन कर रही है और नीचे की आधी साखी सामान्य रूप का वर्णन कर रही है।

आदि पुरुष सामान्य रूप से सर्वत्र रहता है। उसका वर्णन सद्गुरु कबीर साहिब ने जल रूप से और जीव को पपीहा के रूप से, उपमा अलंकार में वर्णन किया है, जैसे—

चात्रिक कहाँ पुकारौ दूरी,
सो जल जगत रहा भरि पूरी।
जेहि जल नाद बिन्द का भेदा,
षट कर्म सहित उपाने बेदा॥
जेहि जल जीव सीव का बासा,
सो जल धरती अंबर प्रकासा।
जेहि जल उपजल सकल सरीरा,
सो जल भेदन जानु कबीरा॥

कबीरा = अज्ञानी जीव।

वह निरुपाधिक आदि पुरुष अचल-स्थिर रहने वाला है, जैसे—

सन्तो! आवै जाय सो माया।
है प्रतिपाल काल नहिं वाको,
ना कहुँ गया न आया॥ टेक॥
क्या मकसूद मच्छ कच्छ होना, संखासुर न संहारा।
है दयाल द्रोह नहिं वाके, कहहु कौन को मारा॥
वे करता नहिं बराह कहाये, धरनि धरो न भारा।
ई सब काम साहेब के नाहीं, झूठ कहै संसारा॥
खंभ फारि जो बाहर होई, ताहि पतीजे सब कोई।
हरिनाकुस नख वोद्र बिदारो, सो नहिं करता होई॥
बावन रूप न बलिको जाँचो, जो जाँचे सो माया।
बिना बिबेक सकल जग भरमैं, माये जग भरमाया॥
परसराम छत्री नहिं मारा, ई छल माये कीन्हा।
सतगुरु भक्ति भेद नहिं पावो, जीवन मिथ्या दीन्हा॥

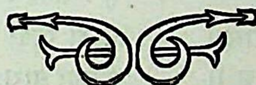
सिरजनहार न ब्याही सीता, जल षषान नहिं बांधा।
वे रघुनाथ एक करि सुमिरे, जो सुमिरे सो अन्धा॥
गोपी ग्वाल न गोकुल आया, करता कंस न मारा।
मेहरवान सबहिन को साहेब, नहिं जीता नहिं हारा॥
वेकरता नहिं बौध कहायो नहीं असुर संहारा।
ज्ञानहीन करता कहि भरमैं, माये जग भरमाया॥
वेकरता नहिं भयेकलंकी, नहीं कलिहि गहि मारा।
ई छलबल सब माये कीन्हा, जती सती सब टारा॥
दस औतार ईसरी माया, करता करि जिन पूजा।
कहँहिं कबीर सुनहु हो सन्तो, उपजे खपे सो दूजा॥

पहिले ब्रह्मसृष्टि के आदिकाल में तीनो सोपाधिक राम, अविद्या और माया प्रभाव के कारण नाम—रूप को प्राप्त हुए, इसलिये तीन काल के अन्तर्गत हैं। निरूपाधिक आदि पुरुष अविद्या और माया उपाधिक नाम—रूप से रहित त्रिकालाबाध्य है। जो त्रिकालाबाध्य (तीन काल से रहित) होता है, उसे सत्य कहते हैं। सत्य का नाम ही, सत्यनाम होता है। उसी त्रिकालाबाध्य निरुपाधिक आदि पुरुष का सुमिरन करना, सद्गुरु कबीर साहिब ने बतलाया है जैसे—

सन्त महन्तो सुमिरहु सोई,
काल फाँस जो बाँचा होई।
तेहि साहिब के लागहु साथा,
दुइ दुख मेटि के होउ सनाथा॥

यही निरुपाधिक आदि पुरुष निर्गुण-सगुण ईश्वरों के परे, सद्गुरु कबीर साहिब का राम है।

टिप्पणी—कबीर साहित्य में तीन प्रकार की सृष्टि का वर्णन है—( १ ) ब्रह्म सृष्टि, ( २ ) माया सृष्टि और ( ३ ) जीव सृष्टि। ब्रह्म सृष्टि भूत काल में किसी समय हुई थी।



## शोक-सूचना

श्री कबीर-मंदिर, सोहाँव, जनपद बलिया के महंत एवं सामाजिक कार्यकर्ता श्री राधाकृष्ण जी गोस्वामी साहब २१ मार्च १९८३ को हृदय की गति अवरुद्ध हो जाने से सत्यलोकवासी हो गये। आपके निधन से कबीर-पंथ ने एक सच्चा सेवक खो दिया। आप आजीवन श्री कबीर आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, काशी के कोषाध्यक्ष पद पर आसीन रहकर निरन्तर सेवा करते रहे। अपने क्षेत्र में भी आपने जन-कल्याण का अभूतपूर्व कार्य किया है। उस क्षेत्र की जनता आपके आकस्मिक निधन से अत्यन्त दुखी है। श्री कबीर शान्ति सन्देश परिवार परमात्मा से प्रार्थना करता है कि आपकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे तथा समाज के व्यक्ति को आपके वियोग का कष्ट सहन करने की शक्ति दे।

—सम्पादक

# ई संसार असार को धन्धा

जे० आर० मौर्य

लता-पल्लव-वृक्षों की मनहर छटा एवं हरीतिमा से सुसज्जित, पुष्पों से सुवासित, रंग-विरंगें पशु-पक्षियों से गुंजित—वसुन्धरा; और कौस्तुभ मणि, लक्ष्मी, एरावत हाथी, सुधा एवं सुधाकर जैसे अनमोल निधि का भंडार रत्नाकर, चांद तारों से भरा ज्योतिर्मय आकाश, जीवन रक्षक प्रकाशपुंज सूर्य—ये सब पसारा जिसने किया वह स्वयं अगोचर बन बैठा। अतः दृश्यमान सृष्टि में भूमंडल का सर्वशक्तिशाली एवं सर्वाधिक सुखाभ्यासी प्राणी मनुष्य ही दिखता है, क्योंकि समस्त प्राणियों में उसे ही सर्वश्रेष्ठ एवं विवेकयुक्त होने का सौभाग्य मिला है, परन्तु सर्वाधिक मायाकृत समस्त पसारा में वह भी वैसे ही लुभाया हुआ है जैसे सेमर वृक्ष के अनुपम लाल फूल को देख कर शुक उसे सरस फल समझ कर लुभाता है; परन्तु कुछ भी सार हाथ नहीं आता।

सेमर सुगना सेइया, दुइ ढेढ़ी के आस।
ढेढ़ी फूटी चिनाक दे, सुगना चला निरास॥

आदिम जंगली युग से आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति तक पारस्परिक सहयोग एवं सामाजिकता के माध्यम से बढ़ता हुआ मनुष्य राष्ट्र से भी ऊपर अब विश्व परिवार के सम्बन्ध को मजबूत करने में लगा हुआ है। असीम प्रगति हुयी है, लेकिन इन समस्त प्रगति के मूल में मनुष्य की इन्द्रियों, मन और बुद्धि को सुखी बनाने एवं शान्ति प्रदान करने की ही व्यवस्था होती चली आयी है। उस अगोचर 'आतमराम' के लिये प्रबुद्ध वैज्ञानिकों ने कुछ भी नहीं किया। नेत्रों की तृप्ति, रसना की तृप्ति, कर्ण की तृप्ति और मन को लुभाने वाले एवं तन को सुख पहुंचाने वाले साधन जिधर देखिये दृष्टिगोचर होंगे, जिसके कारण मनुष्य अप्राकृतिक अथवा सभ्य होता गया है। जल-थल नभ सर्वत्र उसकी गति है, तथापि उसे शान्ति नहीं है, क्यों- कि यदि सांसारिक समस्त सुख व्यक्ति द्वारा चर्मवत् लपेट लिये जाय तब भी शान्ति नहीं मिल सकती।

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति॥

सुख शान्ति तो उसे ही प्राप्त हो सकती है जो उस अगोचर तत्त्व का साक्षात्कार कर लेता है। ऐसे, कबीर साहब जैसे विरले ही लोग हैं पर 'जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ' क्योंकि उसे पाकर ही संतोष मिलता है। संतोष के बिना शान्ति नहीं मिलती। सांसारिक लिप्सा में पड़ा प्राणी तो संसार भावना को ही दृढ़ करेगा।

जन्म से मृत्यु पर्यन्त अपने संस्कार, पर्यावरण एवं विवेक के अनुसार मनुष्य सांसारिक सुखों को ही पाने के लिये उद्यत होता है, परन्तु जो कुछ पाता है वह उसके संस्कार और उसके पुरुषार्थ का प्रतिफल ही होता है। शैशवावस्था में विविध खेल खिलौनों, किशोरावस्था में पठन-पाठन की सामग्री, युवावस्था में कंचन और कामिनी का सुख लेता हुआ वह जीवन यात्रा पर गतिशील रहता है। रागद्वेष के सहारे संसार को जोड़ता-तोड़ता आगे बढ़ता रहता है, लेकिन श्वांस निकलते ही उसका किया कराया सारा पसारा उसके लिये व्यर्थ सा हुआ रहता है।

जब लगि श्वांस रहे घट भीतर,
तब लगि कुशल परी हैं गे।
कहहिं कबीर जब श्वांस निसरिगो,
मन्दर अनल जरी हैं गे॥

लेकिन संसार बनाने वाले का पसारा पूर्ववत निरन्तर प्रवाह मान रहता है। जो मनुष्य तन पाकर भी गेंद की तरह लुढ़कते हुए जीवन जीते हैं उनमें और अन्य जीवों में कोई अन्तर नहीं दिखता, परन्तु जिसकी तीसरी दृष्टि कुछ भी खुल गयी मानों उसके लिये परमार्थ का द्वार खुल गया। वह संसार के रहस्य को समझने की ओर उद्यत हो जाता है और तब पाता है कि शरीर-इन्द्रियाँ, रिश्ता-नाता, घर-द्वार-महल, बाग-बगीचा, नौकर-चाकर सभी यहीं रह जाते हैं, मरणोपरान्त किसी को कोई काम नहीं आता। यह अनुभूति दुःख एवं परिस्थिति विशेष में भी जीते जी भी बहुधा सबको होती है, लेकिन अत्यधिक माया से ग्रसित मनुष्य के लिये ये रहस्योद्घाटन क्षणिक ही होते हैं। 'ठगनि माया' उनकी बुद्धि को अपहृत कर पुनः गेंद की

तरह लुढ़काती रहती है। लेकिन जिसने अपनी इस समझ को स्थायित्व दिया वह परमार्थ पर चलने लगता है और माया से विमुख होता जाता है। संसार नियन्ता अगोचर तत्त्व उसकी अनुभव की पकड़ में आ जाता है और उस मायावी से सम्बन्ध जुड़ते ही संसार के एक-एक रहस्य उसके लिये खुल जाते हैं और वह तत्त्वदर्शी इन्द्रियों को विमुख कर विषयों से मुक्त हो जाता है, जन्म-मरण के चक्र से छूट कर संसार के आवागमन से रहित हो जाता है। उस तत्त्वदर्शी को संसार के समस्त व्यापार असार नजर आते हैं। मनुष्य कृत राग-द्वेष से वंचित होने के कारण वह ईश्वर कृत संसार को मात्र लीलामय देखता हुआ आनन्दित होता है। परमेश्वर के अतिरिक्त उसे इस संसार में कुछ भी सार नहीं दिखता और तभी वह कबीर साहब की वाणी में बोल उठता है—

सन्तो सहज समाधि भली है।
जब सो दया भई सतगुरु की, सुरत न अंत चली है॥
जहँ जहँ जाउँ सोई परिकरमा, जो कछु करों सो पूजा
गृह उद्यान एक सम लेखों, भाव मिटाउँ दूजा॥

× × ×

आँख न मूदों कान न रूधों, काया कष्ट न धारों।
उघरे नयन में साहेब देखों, सुन्दर बदन निहारों॥

× × ×

लेकिन जो संसार में पूर्णतः आसक्त हैं उन्हें कबीर साहब का सहज व्यापार कैसे समझ में आयेगा, क्योंकि—

कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूढ़ बन माँहि।
ऐसे घट घट राम हैं, दुनियाँ जाने नाँहि॥

गोस्वामी तुलसीदास जी ने ऐसे संसारी को मोतियाबिन्द से ग्रसित बतलाते हुए कहा है—

घर में है सूझत नहीं, लानत ऐसी जिन्द।
तुलसी या ससार को, भयो मोतियाबिन्द॥

यही नहीं शैशवावस्था में खिलौने से खेलने वाला उन खिलौनों से युवावस्था में नहीं खेलता, उसमें उसे सार नजर नहीं आता तथापि वह उसे असार समझते हुये भी अपने बच्चों के लिये उपयोगी एवं लुभाने वाला समझ कर देता रहता है। वृद्धावस्था को भी प्राप्त जो अपनी रूचि और सामर्थ्य के अनुसार शैशवावस्था की ही भाँति लिप्त हैं, वे इस भुलावे में वृद्धावस्था में भी पहुँच कर शिशु जैसे ही हैं। उन्हें संसार की अद्भुत रचना लुभावनी दिखेगी ही, भले ही वह उनकी पहुँच से परे होने के कारण दुःखदायी ही क्यों न हों। काम-क्रोध-मद-लोभ का घूँघरू बाँध कर वे नाचने से बाज नहीं आयेगें।

अकल विहूना अन्धरा, गज पर फन्दे आय।
ऐसे सब जग बन्धिया, कहा कहूँ समझाय॥

कुछ तो इतने आसक्त हैं कि उन्हें सन्मार्ग दिखाने पर भी असर नहीं होता क्योंकि उनकी विवेक दृष्टि कुण्ठित हो गयी रहती है। यदि लोहा कीचड़ से आवृत हो गया हो तो पारस का स्पर्श पाकर भी वह सोना नहीं हो सकता; उसी प्रकार काम, क्रोध, लोभ, मोह रूपी कीचड़ की तह उसके अन्तःकरण पर ऐसी चढ़ी होती है कि सदुपदेश भी प्रभावकारी नहीं होते और वे असार को ही धारण करते रहते हैं।

कबीर कीट सुगन्ध तजि, नरक गहै दिन रात।
असार ग्राही मानवा, गहै असार हि बात॥
आटा तज भूसी गहै, चलनी देखु निहार।
कबीर सारहि छाड़िके, गहै असार असार॥

और यही कारण है कि—

जा दिन ते जिव जनमिया, कबहुं न पाया सूख।
डाले डाले मैं फिरा, पाते पाते दुख॥

इस संसार में ऐसा कोई नहीं है जो दुःख विहीन सुख भोग रहा हो। किसी को धन का अभाव दुःख दे रहा है, किसी अमीर को पुत्र का अभाव दुःख दे रहा है, किसी को जमीन का अभाव दुःख दे रहा है, कोई रिश्तेदार या मित्र से धोखा खाकर दुःखी हैं, कोई कंचन और कामिनी के होते हुये भी असाध्य बीमारी के कारण दुःखी है।

ऐसा कोई ना मिले, जा सों रहिये लागि।
सब जग जलता देखिये, अपनी अपनी आगि॥

इसलिये कबीर साहब ने संसार की असारता को बतलाते हुये धन-दौलत, रिश्ते-नाते सबकी ओर आकृष्ट होने को मृग तृष्णा कहा है।

जहँ लग सब संसार है, मिरग सबन को मोह।
सुर नर नाग पताल अरु, ऋषि मुनिवर सबको जोह॥

धन-दौलत के लिये मार-पीट, फौजदारी, चोरी-हत्या,

मुकदमे, झूठ छल ये सब धन्धे चलते हैं, लेकिन—

धन संपद संग्रह करे, वह दिन जाने नाहिं।
सहस बरष का सौज कर, मरे मुहरत माँहि॥

पारिवारिक एवं प्रेम प्रपंच का धन्धा तो सबको प्रत्यक्ष ही है। कैकेयी की जरा सी मति दूषित होते ही राजा दशरथ की मृत्यु, रानियों का वैधव्य, सुकुमारी सीता सहित राम लक्ष्मण का वन के क्लेश सहना आदि सर्व विदित है। राजा भर्तृहरि के वैराग्य का कारण बतलाने की आवश्यकता नहीं है ये सब धन्धे स्थायित्व नहीं रखते। इनमें सार नहीं होता तथापि कनक और कामिनी में ही मनुष्य अनुरक्त हो नाना दुःख झेलता रहता है, जब कि ये दोनों समस्त दुखों के मूल हैं और विष के समान दुःखदायी हैं।

एक कनक और कामिनी, विष फल लिया उपाय।
देखत ही ते विष चढ़ं, चाखत ही मरि जाय॥

रिश्ता-नाता, बेटी-बेटे जिनको बहुत मन देकर सँवारते हैं उनके साथ के ये व्यावहारिक धन्धे भी काम नहीं आते।

जा दिन मन पंछी उड़ जेहैं।
+ + +
जिन लोगन ते नेह करत है, तेई देखि घिनेहैं।
घर के कहत सबेरे काढ़ो, भूत होंय घरि खेहैं॥
जिन पूतन को बहु प्रति पाल्यो देवी देव मनेहैं
तेई बाँस दियो खोपरि पे सीस फोरि बिखरे हैं॥
× × ×

इसीलिये कबीर साहेब कहते हैं—

कबीर सब जग देखिया, मेलेउ कन्ध चढ़ाय।
कोई किसी का नहीं, देखा ठोक बजाय॥

इस नाशवान देह में मोह मानने वालों के लिये देह की स्थिति समझाते हुये वे कहते हैं—

ऐसा देह निरापन बौरे,
मुये छुवे नहिं कोई हो।
डंडवक डोरवा तोरि लड़वलन,
जो कोटिन धन होई हो॥
+ + +
चंदन चरचि चतुर सब लेपिन,
गले गज मुक्ता हारा हो।
चहुं दिशि गीध मुये तन लूटे,
जम्बुकन उदर फारा हो॥

कुछ लोग उपरोक्त राग द्वेष के साथ दैनिक व्यवहार में पूजा-पाठ को मिलाकर अपने धन्धे को उत्तम मानते हैं, पर उनके ये धन्धे भी बन्धनकारक ही होते हैं।

मन ही में फूला फिरैं, करता हूँ मैं धर्म।
कोटि कर्म सिर पर चढ़े, चेति न देखे मर्म॥

आचरण विहीन उपदेश का धन्धा करने वाले तो कबीर साहब की दृष्टि में हास्यास्पद हैं। उपदेशक, सन्यासी, तपस्वी इन सबकी मिथ्याचारिता उनके इस पद में भली भाँति अभिव्यक्त है—

संतो देखत जग बौराना।
साँच कहौं तो मारन धावे, झूठे जग पतियाना॥
नेमी देखा धर्मी देखा, प्रात करै असनाना।
आतम मारि पषानहि पूजै, उसमें किछुउ न ज्ञाना।
बहुतक देखा पीर औलिया, पढ़े कितेब कुराना।
कै मुरीद तदबीर बतावैं, उनमें उहै जो ज्ञाना॥
आसन मारि डिंभ धरि बैठे, मन महँ बहुत गुमाना।
पीतर पाथर पूजन लागे, तीरथ गरब भुलाना॥
+ + +

केवल राम नाम से स्वर्ग मोक्षादि की प्राप्ति मानने वालों को तो कबीर साहब ने राम नाम का व्यापारी कह कर सम्बोधित किया है—'राम नाम धनवणिज किय हो रमैया राम'। हिन्दुओं में विविध पन्थ, मत-मताबलम्बी, मुसलमानों में शिया-सुन्नी, ईसाइयों में रोमन कैथोलिक एवं प्रोटेस्टेन्ट सभी में मतभेद और परस्पर विरोध व्याप्त है। ऐसे कलहपूर्ण धन्धे को कैसे सराहा जाय? हिन्दुन की हिन्दुआयी और तुर्कों की तुरकाई के ढोंग को लक्ष्य करते हुये खरी-खोटी भाषा में कबीर साहब द्वारा की गयी फटःकार तो प्रचलित ही है।

तीर्थ करने को लोग पुण्य समझते हैं लेकिन इस धन्धे में भी लाभ नहीं अपितु हानि ही है—

तीरथ चले नहावने, मन मैला चित चोर।
एको पाप न उतरे, लादे मन दस और॥

भक्ति भी यदि निष्काम भाव से न किया जाय तब वह भी

निष्फल हो जाती है—

जब लगि भक्ति सकामता, तब लगि निष्फल सेव।
कहै कबीर कैसे मिले, निष्कामी निज देव॥

इस तरह हम देखते हैं कि जिन्हें लोग अच्छा धन्धा समझते हैं उनमें भी कोई सार नहीं है। सभी माया से मोहित है। दीप शिखा पर जिस प्रकार पतंगें लालायित हो अपना प्राण नष्ट कर देते हैं उसी प्रकार मनुष्य भी अर्थ-काम के पीछे लुभाये फिरते हैं परन्तु अपनी मृत्यु नहीं देखते। माया ने किसी को भी नहीं छोड़ा है। 'किसी को दिला के दुःख किसी को दिला के सुख सबको है भरमाया' इसलिये 'कहैं कबीर सुनो भाई साधो, इस ठगिनी से रह हुशियार' क्योंकि मनुष्य को विवेकयुक्त बनाकर उसे सामर्थ भी प्रदान किया गया है। वह चाहे तो पुनः अपने को पूर्णतः मुक्त करा ले, चाहे तो पुनः चौरासी लाख योनियों में जन्म-जरा मृत्यु के थपेड़े खाता रहे। इसलिए प्रेय को क्षणिक और श्रेय को सारवान समझ कर मनुष्य जीवन को सार्थक करना योग्य है अन्यथा जिस प्रकार कुँआ खोदने के बाद पानी न निकलने पर सारा किया हुआ व्यर्थ हो जाता है उसी प्रकार मानव जन्म भी व्यर्थ ही समझना चाहिये।

मानुष देही पाय के, जिन न लियो हरि नाम।
जैसे कूँवा जल बिना, खना त कवने काम॥

मन को जिधर लगायेगें इन्द्रियादि उधर ही गतिशील होंगे। मन एक है जिधर चाहे लगा दें। संसार में लगाने पर वह कभी तृप्त नहीं होगा। एक इच्छा पूरी होते ही मन अन्य इच्छाओं को जन्म दे देगा। उसकी भूख बढ़ती ही जाती है।

तन की भूख सहज अहै, तीन पाव की सेर।
मन की भूख अनन्त है, निगले मेरु सुमेर॥

माया से मन को हटाने पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है, इसलिये "जैसे माया मन रमै तैसे राम रमाय'। संसार भावना के साथ-साथ स्वत्व भावना का भी त्याग करना होगा तभी सच्ची लगन लग सकेगी।

सुमिरन सो मन लाइये, जैसे कीट भिरंग।
कबीर बिसारे आपको, होय जाय बिहिरंग॥

स्त्री आदि स्थूल रूपी माया का त्याग करके लोग संसार से विरत होते हैं, परन्तु आशा आदि सूक्ष्म रूप माया विरक्तों तक को नहीं छोड़ती।

मोटी माया सब तजे, झीनी तजी न जाय।
पीर पैगम्बर औलिया, झीनी सबको खाय॥

संसार का धन्धा बहुत बड़ा धन्धा है। ऐसा धन्धा देखने सुनने में आने वाला नहीं है। पर संसार के सभी धन्धे सारहीन हैं। बीज से वृक्ष, वृक्ष से बीज बनता रहता है। एक वृक्ष नष्ट होता है, दूसरा तैयार होता है। एक बालक युवा होकर दूसरे शिशु के जन्म का निमित्त बनता है। कालान्तर में स्वयं नष्ट हो जाता है। इस संसार की समस्त वस्तुयें—हाथी-घोड़ा, धन-दौलत, रूप-रग, देहादि सभी नाशवान हैं। जिस सुमुखी सीता के लिये सोने की लंका जली वह भी नहीं रही। जिस राज्य के लिये महाभारत जैसा युद्ध हुआ वह राज्य और वे राजा भी नहीं रहे। लेकिन धन्धा चलता रहा।

भरम करम की जेवरी, बल बाँधा संसार।
वे क्यों छूटे बापुरे, जो बाँधे करतार॥

नाम रूप बदलते रहे पर धन्धा चलता रहा, कभी बन्द नहीं हुआ। संसार का धन्धा सतत प्रवाहमान रहा—

तरुवर पावन सों कहै, सुनो पाव इक बात।
या घर याहो रीति है, इक आवत इक जात॥

स्वार्थ और परमार्थ दोनो का हेतु संसार ही है। राग भी संसार के ही कारण है और वैराग्य का भी कारण संसार ही है। इस धन्धे में माया के रूप बदलते रहते हैं पर फँसाहट नहीं बदलती। पंडे-पुजारी, साधु-असाधु, भक्त और शैतान सभी फँसे हैं। जो इस रहस्य को समझे बिना परिस्थिति विशेष में संसार को त्यागते हैं वे कच्चे घड़े के समान माया की चपेट खाते ही च्युत या विनष्ट हो जाते हैं इन पर कटाक्ष करते हुये कबीर साहब ने कहा है—

माला पहरया कुछ नहीं, भगति न आई हाथि।
माथौ मूँछ मुंड़ाई करि, चल्या जगत के साथि॥

यदि कच्चापन रख कर अर्थात् बिना विवेक वैराग्य के घर से टूटा है तो कहीं न कहीं जुटेगा। घर छोड़ेगा तो आश्रम संभालेगा। चूँकि विवेक-वैराग्य दृढ़ कर मोह दूर नहीं किया था इसलिये अपने चतुर्दिक मोह फैलायेगा ही। यदि एक पत्नी को बिना विवेक-वैराग्य के छोड़ दिया तो दूसरा कहीं न कहीं मिल ही जायेगी। इसलिये सब कुछ समझ

पूर्वक करना अभीष्ट है। इसीलिये कहा—

साधू ऐसा चाहिये, पक्का होइके खेल।
कच्चा सरसों पेरि के, खरी भई नहीं तेल॥

उपदेशक भले ही विद्वान् हो पर तत्वदर्शी नहीं है तो उसे भी माया नष्ट कर देती है। उनका भी धन्धा सारहीन ही है। क्योंकि—

पंडित और मसालची, इनको सूझे नाहीं।
औरों को करे चाँदना, आप अंधेरे माहीं॥

कर्मों का फल स्वयं भोगना पड़ता है। डाकू बाल्मीकि जब नारद को वृक्ष से बाँध कर घर पूछने गया कि उसके द्वारा अपहृत धन का सभी सुख भोग करते हैं लेकिन जब इस कृत्य के लिये सजा मिलेगी तो क्या सभी मिल कर भोगेगें? तब परिवार का एक भी सदस्य दण्ड का भागी होने को तैयार नहीं हुआ यह बात सबको, विदित ही है। अर्थात् सुख में सभी साथ देने को तैयार होते हैं दुःख में कोई नहीं। दुष्कर्म ही नहीं सत्कर्म भी कष्टमय हो सकते हैं। होम करते हाथ जल सकता है। प्रतिदिन निष्पृह भाव से गौवें दान करने वाले राजा नृग को भी गिरगिट योनि में जाना पड़ा। तब आज के पूँजीपति यदि प्रतिष्ठा के लिये या आयकर छिपाने के लिये कुछ धर्म का धन्धा करते हैं तो उनकी क्या गति होगी?

इस शरीर में रहते हुये ही मोहादि को त्यागने पर ही कुशल है, क्योंकि—

पानी केरा बुद बुदा, अस मानुष की जाति।
देखत ही छिपि जायेंगे, ज्यों तारे परभाति॥

'मोहनिशा सब सोवनहारा'। जो सोया ही रह गया, मरण पर्यन्त विवेक आदि द्वारा मोह कामादि को नहीं त्यागा वह मानों शमदमादि रूप सुख संपत्ति को संग्रह कर चोरों से लुटवा कर गया और जो जागा वह अभिमान रहित होकर भागा (जो जागल सो भागल) अर्थात् कामादि से रहित हुआ। ऐसा देहाभिमान रहित पुरुष सुख शान्तियुक्त जीवन्मुक्त हो जाता है। मोह निशा में सोना ही माया है और उससे ऊपर उठ कर जागना ही माया से रहित होना है। जागने पर ही ब्रह्म की प्राप्ति होगी, अगोचर का साक्षात्कार होगा, और जो जागा अर्थात् ब्रह्म में लग गया वह सार को छोड़ असार के धन्धे में क्यों फँसे? उसके लिए घर और बन में कोई भेद नहीं रह जाता।

कबहुक मन्दिर मेलिया, कबहुक जंगल बास।
सब ही ठौर सुहावना, जो हरि होवे पास॥

माया के प्रति तर्क-वितर्क में उसी प्रकार नहीं फँसना चाहिये जिस प्रकार वृक्ष के नीचे बैठे हुये पुरुष की गोद में सर्प गिरते ही वह उठाकर उसे दूर झटकार देता है अथवा फेंक देता है। वह यह नहीं सोचता कि सर्प कहाँ से आया, किसी ने फेंका है अथवा पेड़ से गिरा है? यदि उसने सोचने में समय व्यर्थ किया तो वह सर्प उसे डसे बिना नहीं रहेगा इसलिये माया को प्रबल जान नमस्कार करना चाहिये और संसार के धन्धे को असार समझ 'सार' में निमग्न होना ही श्रेयस्कर है।

सामर्थ्यवान बुद्ध ने संसार का त्याग क्यों किया? महलों में पली मीराबाई प्रेम की दीवानी होकर क्यों नाचती फिरी? बड़े-बड़े जज आदि अपनी धन-दौलत, परिवार-प्रतिष्ठा छोड़कर क्यों संन्यास लेते हैं? इसके मूल में यह ज्ञान ही तो प्रेरक है कि यह संसार असार है इसलिए सारतत्व में ही उन लोगों ने अपने को तल्लीन कर लिया। संसार की तुच्छता को कबीर साहेब ने इस प्रकार मुखरित किया है—

रहना नहिं देश बिराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया, बुन्द पड़े घुल जाना है।
यह संसार कांटे की बाड़ी, उलझ-उलझ मर जाना है।
यह संसार झाड़ और झांखर, आग लगे जरि जाना है
कहंहि कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है

इसी संसार में रहकर सामान्य जीवन में जब इस संसार की असारता दिख जाती है तो संसार के प्रति हेय दृष्टि हो जाती है और यही विचारवान के लिये वैराग्य का कारण हो जाता है। संसार की आसक्ति उसे उसी तरह बाँध नहीं पाती जिस प्रकार सीपी का बोध हो जाने पर उसमें मोती होने का भ्रम नहीं हो पाता और तभी वह कबीर साहब की तरह माया को फटकार सकता है—

ठगनी का नैना झमकावे।
कबीरा तोरे हाथ न आवे॥

संसार के धन्धे जहाँ ऐसे भक्त के लिये असार हो जाते हैं वहाँ उनके लिये समस्त अस्तित्व ही मन्दिर हो जाता है

और सर्वत्र वह अगोचर परम तत्व ही उसे दृष्टिगोचर होने लगता है। आशा तृष्णा से रहित उसका शून्यमहल दिव्य ज्योति से जगमग हो उठता है जो इसके पहले अगोचर तत्व (आतमराम) के रहते हुये भी मोहनिशा में अंधेरे के कारण दिखता नहीं था।

सब बन तो तुलसी भई, परवत शालिग्राम।
सब नदिया गंगा भई, जाना आतमराम॥

× × ×

सबही भूमि बनारसी, सब जल गंगा तोय।
ज्ञानी आतम राम है, जो निर्मल घट होय॥

मोहतिमिर की समाप्ति से ज्योतिर्मय हो उठने के बाद उसे न तीरथ-व्रत करने जाना है, न मुण्डन शोधन करना है, न कोई साधन-प्रयास करना है। कस्तूरी मृग की तरह उसे भटकना नहीं रहता। संसार के समस्त, धन्धे सारहीन हैं, इसलिये वह भक्त सहज समाधि में निमग्न हो रहस्य में विलीन हो जाता है। क्योंकि—

ई संसार असार को धन्धा,
जिनके ई भुईं भांड़े हो।
उपजत बिनशत बार न लागे,
जस बादर की छाहीं हो॥

जिस विवेकशील प्राणी को कबीर साहब की उक्त वाणी हृदयंगम हो जाती है वह असार को त्याग सार की ओर उन्मुख हो जाता है।

कबीर पूछे राम को, सकल भुवनपति राम।
सबही करि न्यारा रहे, सो विधि देहु बताय॥

और सब कुछ पसारा करके उससे न्यारा रहने का ज्ञान होते ही अगम अगोचर भी सुगम हो जाता है।

देही माँहि विदेह है, साहब सूरति सरूप।
अनन्त लोक में रमि रहा, जाको रंग न रूप॥



## शोक-समाचार

सद्गुरु कबीर-पंथ के अग्रणी भक्त, बड़ोदा निवासी श्री जयंतीलाल मणिलाल जी मेहता दिनांक ७-४-८३ गुरुवार को सत्यलोकवासी हो गये। वे अपने पीछे भरा-पूरा परिवार छोड़ गये हैं। श्री कबीर शान्ति सन्देश परिवार की परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि उनके शोक-संतप्त परिवार को इस महान आपदा को सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

श्री मेहता आजीवन कबीर-साहित्य की सेवा करते रहे और इसी संदर्भ में वे काशी आये भी थे। किन्तु विधि का विधान उनके विपरीत था, उन्हें यहाँ एकाएक हृदय का दौरा पड़ गया अतः अस्वस्थतावश यहाँ से चले गये और उनकी श्री कबीर साहित्य के प्रकाशन की अभिलाषा पूर्ण न हो सकी। आपके अनुज श्रीमान् चन्द्रकान्तमणि लाल जी मेहता इस अपूर्ण कार्य को पूर्ण करने में सन्नद्ध हैं।

—सम्पादक

# आज और सद्गुरु कबीर

डा० स्वामी सदानन्द शास्त्री

सांचा शब्द कबीर का प्रगट कहे जग मांहि।
जैसा को तैसा कहे, यह तो निन्दा नाहि॥

मध्ययुग के भक्तिकालीन रूढ़िवादियों के कट्टर विरोधी स्पष्ट वक्ता सतपथ प्रदर्शक सद्गुरु कबीर साहब को चाहे उस युग की जनता न जानती रही हो, परन्तु आज तो विश्व में सभी को श्री कबीर साहब की याद आती है।

श्री कबीरवाणी की ज्ञानगरिमा से विश्व में जो प्रकाश हो रहा है, एकता, राष्ट्रहित, आत्मसंयम, अहिंसा और अपरिग्रह का मार्ग प्रशस्त हो रहा है वैसा किसी भी पूर्वाचार्य के मत में नहीं मिलता। सदगुरु के कहे मार्ग पर चल कर गांधी जी ने चरितार्थ कर दिखाया है कि अहिंसा और 'राम' नाम में क्या शक्ति है। अपनी कमाई पर जीवन यात्रा के लिए अथवा अपने स्वरूप ज्ञान के लिए यह साखी पुनः पुनः याद आती है:—

कर बहियाँ बल आपनी, छाड़ि विरानी आस।
जिहि आँगन नदिया बहे, सो क्यों मरे पियास॥

वास्तव में मध्ययुग की ही भांति आज के युग में भी श्री कबीर साहब की परम आवश्यकता है। सद्गुरु कबीर तो सशरीर हैं नहीं, किन्तु उनकी उपदेशरूपवाणी सर्वत्र प्रत्यक्षरूप से प्रकाशमान है। आज वही समय दिख रहा है जो श्री कबीर साहब के समय में था:—

राजसत्ता और शासन व्यवस्था में मध्ययुगीन हिन्दू मुसलिम की भांति आज जातिवाद और पद लोलुपता का बोलबाला है। देवत्व, मूर्तिपूजा, ईश्वरीय आस्था, अपने अपने धर्माचार्यों की ख्याति, जातिवाद, योग शक्ति, मन्त्रशक्ति, ज्योतिष आदि पर विश्वास न रह गया। मानवता का हनन कर स्वार्थ के लिए देश, धर्म, चरित्र आदि का विनाश उसी प्रकार चल रहा है जैसे श्री कबीर साहब के समय में था। मुसलिम शासक उस समय लूट खसोट, बहू बेटियों की इज्जत लेने में जो अत्याचार कर रहे थे, आज उससे कहीं अधिक जघन्य अत्याचार हो रहा है। केवल उसका रूप बदल गया है। मुसलिम शासक तलवार की नोक पर जबर्दस्ती लूटते थे, बहू बेटियों को उठाले जाते थे, धर्म परिवर्तन करके गुलाम बना लेते थे, कहना न मानने पर मृत्यु के घाट उतार देते थे। आज लोग जीविका, नौकरी, पद, धन आदि के लोभ में देश, धर्म और इज्जत को बेच देने पर तुले हुए हैं।

शिक्षा पद्धति तत्कालीन पद्धति से भी इतनी बिगड़ गई है कि स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय आदि कदाचार के अड्डे बन गये हैं। विश्वविद्यालयों से निकल कर छात्र हर प्रकार से लूट खसोट में लग जाते हैं। देश सेवा और जन कल्याण की भावना कपूरवत् उड़ गई। अर्थोपार्जन ही एक मात्र उद्देश्य रह गया है। इज्जत आबरू बेचकर भी रुपये कमाने में लोग संकोच नहीं करते। बाप दादों के, तथा गुरुपम्परागत आचार, धर्म, इज्जत, प्रतिष्ठा, लोक-परलोक, पाप पुण्य आदि सब पैसे के सामने नगण्य हैं। यदि नौकरी, नेतागिरी, व्यापार, ठीकेदारी आदि में घूस, लूट, चोरी बेईमानी से रुपया नहीं मिला, तो सुसभ्य समाज के धनीमानी कहाने वाले लोग कालेजों से पढ़े नवयुवक आदि डकैती, करने धार्मिक स्थानों पर कब्जा करने या बाप दादों के दिये दान की सम्पत्ति हड़पने में तनिक भी हिचक नहीं रखते। आज की शिक्षा की यह विशेषता पचास प्रतिशत लोगों में देखने को मिलती है। राजकीय सुविधा रहित होने पर भी भारतीय संस्कृति की जितनी रक्षा श्री कबीर कालीनयुग में दिखती है उतनी आज सुविधा प्राप्त होने पर भी नहीं हो पाती।

यदि कुछ माता बहिने अध्ययन, अध्यापन, कला कौशल, मजदूरी करके या घरेलू उद्योगों द्वारा कमा कर अपनी जीविका उपार्जन करना चाहती है तो भी दुष्ट प्रकृति के लोग उसमें बाधक बन जाते हैं। चारित्रिक पतन तो कबीर कालीनयुग से भी बदतर हो गया है।

धर्मध्वजी[1] ढोंगी पोंगापंथी पण्डितों और बड़े-बड़े उपाधिधारी सन्तवेष में उपदेशक, महन्तों की बुद्धि भी दो नम्बर की कमाई का धन खाकर भ्रष्ट हो गई है। जब वे स्वयं ही सही रास्ते पर नहीं हैं, तब उपदेश किसको दे सकते हैं। दें भी तो दूसरे क्यों कर मानने लगे। गुरु जी स्वयं वही कर्म कर रहे हैं, जिसका निषेध हमारे लिए करते हैं। आज श्री कबीर साहब जैसे मनसा वाचा कर्मणा एक वाले उपदेशक की आवश्यकता है। इसीलिए संत 'कबीर' की याद आती है और बुद्धिजीवी, विवेकी, लोक परलोक में उत्थान चाहने वाले श्री सद्गुरु कबीर के बताये मार्ग का अनुसरण करना चाहते हैं और कर रहे हैं। आज की दुर्व्यवस्था, अत्याचार और अधःपतन को देखते हुए अनुभव होता है कि श्री कबीर साहब की आज नितान्त आवश्यकता है। ऐसी ही विषम परिस्थिति और अभिमान पर श्री कबीर साहब कहते हैं कि—

सबहिं मद माँते कोई न जाग।
संगहि चोर घर मुसन लाग।
पण्डित माँते पढ़ी पुरान।
योगी माँते योग ध्यान॥
तपसी माँते तप के भेव।
सन्यासी माँते करि हमेव॥
मौलना माँते पढ़ि मोसाफ।
काजी माँते देइ निसाफ॥
संसारी माँते मायक धार।
राजा माँते करि हंकार॥

अर्थात् अपने पद, जाति, धन आदि के अभिमान में आकर मानव मानवता को भूल कर दानवता का ताण्डव कर रहा है। किसी पर किसी को विश्वास नहीं रह गया।

मन्दिरों में चोरी, बैंकों में डाका, लूट, आये दिन निर्मम हत्या, डकैती और धर्माचार्यों द्वारा खोखलापन का उपदेश योग प्रचार के नाम पर धोखा देना आदि ने क्या उस युग की भाँति आज ईश्वर, संत और राजसत्ता में तनिक भी विश्वास रहने दिया है? साथ ही विज्ञान की कसौटी पर आज कबीर साहब की वाणी को छोड़ कर क्या किसी के उपदेश टिक सकते हैं? ढोल का पोल तब तक चलेगा जब तक मानव सचेत न हो जाय। आज कबीर साहब जैसे निर्भय, साहसी, स्पष्ट वक्ता संयमी और संतोषी पथप्रदर्शक की आवश्यकता है। उनकी वाणी है—

कहंता तो बहुते मिला, गहंता मिला न कोय।
सो कहंता बहि जान दे, जो न गहन्ता होय॥
बीजक सा० ८६

आज हम सभा सोसाइटी सम्मेलन सत्संग में भाषण कुछ और देते हैं और हमारी करनी कुछ और ही होती है। फल स्वरूप जनता पर उसका प्रभाव नहीं पड़ता। नेता वक्ताओं की निन्दा सर्वत्र सुनने को मिलती है।

विज्ञान की कसौटी पर आज ईश्वर प्राप्ति, धर्म परिवर्तन स्वर्ग नरक, पापपुण्य, बाहरी पूजा द्वारा मरने पर मुक्ति, स्वर्ग परलोक, गुरु कृपा मात्र से ही स्वर्ग, बैकुण्ठ, आदि लोक की प्राप्ति मिथ्या सिद्ध हो रही है। इसी प्रकार मध्ययुग में भी अनेक आडम्बर थे, जिनका खण्डन श्री कबीर वाणी में प्रत्यक्ष दिखता है। यथा—

गुरुआ तो सस्ता भया, कौड़ी केर पचास।
अपने तन की सुधि नहीं, सिष करने की आस॥
बन्धे को बन्धा मिला, छूटे कौन उपाय।
कर सेवा निरबन्ध की, पल में लेव छुड़ाय॥
जाका गुरु है गीरही, गिरही चेला होय।
कीच कीच के धोवते, दाग न छूटे कोय॥
साखी ग्रन्थ

पक्षा पक्षिक कारणे, जगतो जाव भुलान।
निर्पक्षी ह्वै हरि भजे, सोई सन्त सुजान॥
बी० सा० १९७

आज हम स्वार्थवश जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि के बेड़ी में इतना जकड़ गये हैं कि अपने-अपने धर्मध्वजी उपदेशकों के अवगुणों को जानते हुए भी उन्हें त्याग नहीं सकते। उनके विरुद्ध प्रचार नहीं कर पाते, उलटा अनेक झूठ प्रपञ्चों द्वारा इनके दोष छिपाना चाहते हैं। श्री कबीर साहब ने आज से कठिन शासनकाल में भी डंके की चोट पर इन

(१) सत्यं नास्ति तपः शौचं दया दानं न विद्यते। उदरम्भरिणो जीवा वराकाः कूट भाषिणः॥ श्रीमद् भा०महा० ९।१।७५
पण्डितास्तु कलत्रेण रमन्ते महिषा इव। पुत्रस्योत्पादने दक्षा अदक्षा मुक्ति साधने॥

सबों का पर्दाफाश किया था। सद्गुरु कबीर की वाणी आज भी लक्ष्यपूर्ति में सहयोगी सिद्ध होती यदि हम उसे अपना लेते। उनके विचार से जीवन के उत्थान ( मोक्ष ) शान्ति, आत्मज्ञान आदि के लिए सम्प्रदाय आदि के विश्वास का सहारा खोजना अपने आत्मबल को कमजोर बनाना है। केवल विश्वास के बल पर मानव आत्मनिर्णय के गुण, धर्म और अधिकार को भूल जाता है। मानव अपनी आत्मशक्ति को भूल कर ही भयभीत होकर लोकोत्तर देवादि का आश्रय लेता है। वह आँख मूँद कर आप्त वाक्य, गुरुओं और अपने से श्रेष्ठ जनों के शब्द को प्रमाण मान लेता है। वहीं व्यक्ति मानवता खोकर अनुयायी या गुलाम बन जाता है। इस पर सद्गुरु का उपदेश है—

तेरा मेरा मनवाँ कैसे एक होय रे
तूँ कहता है कागद लेखी।
मैं कहता हूँ आँखिन देखी॥ इत्यादि

श्री कबीर समकालीन युग में वेद, पुराण, कुरान, सांख्ययोग आदि के आदेश, उपदेश शब्द प्रमाण को 'कागद लेखी' के आधार पर पढ़ा सुना जा सकता है और अनुभव-गम्य ज्ञान परीक्षण की कसौटी पर आँखिन देखी को जाना जाता है। आज वैज्ञानिक कसौटी पर कस कर परीक्षण किया जाय तो आँखिन देखी पर ही विश्वास किया जायेगा। कहाँ स्वर्ग है, कहाँ नरक है, मरने पर मुक्ति होती है या नहीं होती है, या यह भुलावा मात्र है। इस पर सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं:—

पंडित सोधि कहहु समुझाई।
जाते आवागवन नसाई।
अर्थ धर्म औ काम मोक्ष कहु,
कौन दिशा बस भाई॥
उत्तर कि दक्षिण पूरब कि पश्चिम,
स्वर्गपताल कि माहीं।
बिना गोपाल ठौर नहि कतहूं,
नरक जात दहुं काहीं॥
अनजाने को स्वर्ग नरक है,
हरि जाने को नाहीं।
जे डर के सब लोग डरतु हैं,
सो डर हम न डराहीं॥
पाप पुण्य को शंका नाहीं,
स्वर्ग नरक नहि जाहो।
कहहि कबीर सुनहु हो सन्तो,
जहँ पद तहँइ समाही॥

बीजक शब्द १४

वास्तव में स्वस्वरूप का ज्ञान होने पर शंका रहित ज्ञानी को शुभ अशुभादि का संदेह नहीं रहता है क्योंकि वह ज्ञानी जीव भाव छोड़ कर तत्त्वज्ञ, सर्वज्ञ हो जाता है। श्रुति का भी यही कथन है—"तस्य प्राणा न उत्क्रामन्ति, तत्रैव प्रवीलीयते"। यही कबीर साहब का कथन है "जहँ पद तहँइ समाही"।

आत्म पुराण में भी इसकी पुष्टि की गई है—
न मोक्षो नभसः पृष्ठे न पताले न भूतले।
सर्वाशासंक्षये चेतः क्षयो मोक्ष इति स्मृतः॥

बी० श० १४ टीका से।

जब जीवात्मा अजन्मा, निर्विकार, साक्षी चेता व्यापक विभु, शुद्ध स्वरूप ( सत् चित् आनन्द ) ही है, तो मुझे मात्र व्यावहारिक जीवन, आसक्ति, मोह, लोभ आदि को सुधार कर मानवता, एकात्मता पर आरूढ कर अपने को यथार्थ रूप से जानना है। माया अपने मायिक पदार्थ का प्रलोभन देकर उक्त अन्दर स्थित स्वस्वरूप आत्मशक्ति को जानने नहीं देती। अपने को भूल कर हम मानवता से दानवता का पाठ पढ़ने लगते हैं। यहीं पर श्री कबीर की वाणी हमें सही मार्ग का उपदेश देकर पाखण्ड से दूर हटाती है। वर्तमान राजकीय शासन में भी श्री कबीर सिद्धान्त के आधार पर ही 'मानवता' को खड़ा किया गया है। किन्तु पुनः जातिवाद, स्वार्थपरता, पद और अधिकार की आसक्ति ने उसे रूँध दिया। आज आवश्यक है कि गोष्ठी, प्रचार कैम्प, प्रदर्शनी और अभ्यास द्वारा श्री कबीर साहब की वाणी एवं सिद्धान्त को जन जन के मानस पटल पर स्थापित कर देश विदेश में शान्ति सुख और उपकार का मार्ग प्रशस्त किया जाय। यह कार्य मन और इन्द्रियों पर संयम रखने वाला अपरिग्रही, त्यागी, सत्यवादी, प्रेम और अहिंसायुक्त श्री गाँधी जी जैसे मानव द्वारा हो सकता है।

जो सन्त, भक्त जातिवाद, शासन सत्ता और सम्प्रदाय से दूर रहकर मानव कल्याण की भावना का प्रचार चाहता

है वह गाँधी जी जैसे कष्ट सह कर सामने आये। ऐसा निष्कामकर्मी, सत्य की कमाई की जीविका वाला व्यक्ति ही देश का उद्धार कर सकता है. आज कबीर साहब जैसे निष्ठावान्, सत्यवादी, स्पष्ट वक्ता की जरूरत है।

आज मरने के बाद परलोक में मुक्ति बताने वाले गुरु, वर्तमान स्थिति को सुधार नहीं सकते। सभी प्राणी सुख शान्ति चाहते हैं किन्तु वे सुख और शान्ति के मार्ग को छोड़ कर अशान्ति और विनाश का मार्ग अपनाते जाते हैं जैसे मध्ययुगीन श्री कबीर के समय में था। तब सद्गुरु का उपदेश दिख पड़ता है—

भँवर जाल मँह आसन माड़ा।
चाहत सुख दुःख संग न छाड़ा ॥
दुख के मर्म न काहू पाया।
बहुत भांति के जग बौराया ॥
बी० रमैनी ४१

आज के धर्म उपदेशक भी उसी प्रकार भूल में हैं, जैसे मध्ययुग में थे। उनके लिए श्री कबीर साहब कहे हैं—

उनइ बदरिया परिगौ संझा।
अगुवा भूले बन खण्ड मंझा ॥ रमैनी १५

वास्तव में आज ये अगुवा संसार रूपी वन में सही मार्ग भूल गये हैं। आज सद्गुरु कबीर का उपदेश ही मार्ग दिखा सकता है अन्य कोई मार्ग नहीं सुझता। अतः आज श्री कबीर सिद्धान्त का अनुकरण करने पर ही राष्ट्र और मानव को सुख शान्ति मिल सकती है।

सद्गुरु कबीर साहब इस दुनिया को दुरंगी देखकर कहते हैं कि—

दुनियाँ अजब दिवानी।
मोरी कही एक न मानी ॥
तजि प्रत्यक्ष सतगुरु परमेश्वर।
इत उत फिरत भुलानी ॥
तीरथ मूरत पूजत डोले।
कंकड़ पत्थर पानी ॥
विषय वासना के फन्दे परि,
मोह - जाल उरझानी।
सुख को दुःख, दुख को सुख माने।
हित अनहित नहि जानी।
औरन को मूरख ठहरावत।
आपे बनत सयानी ॥
सांच कहो तो मारन धावे।
झूठे को पतियानी ॥
कहैं कबीर कहाँ लगि बरणौं
अदभुत खेल बखानी ॥



जैसे कोचड़ को कीचड़ से धोने से दाग साफ नहीं होता उसी प्रकार बन्धन से स्वयं बंधे हुए गुरु से शिष्य का बन्धन छूट नहीं सकता।

—सद्गुरु कबीर

## आचार्य रामनगीना त्रिपाठी का संदेश—

श्रद्धेय संत श्री श्यामदास जी शास्त्री,

श्री कबीर शान्ति सन्देश "बीजक ज्ञानचौंतिसादि खण्ड विशेषांक" का प्रकाशन समाज के लिये एक बहुमूल्य देन है। श्री कबीर कीर्ति मन्दिर, वाराणसी के तत्वावधान में इस मासिक पत्रिका के द्वारा बहुत उपयोगी सेवा हो रही है।

वर्तमान समय में सद्गुरु कबीर साहब के प्रकाश में समाज का दिशा निर्देशन अनिवार्य हो गया है। हम सभी भ्रान्त होकर विनाश की ओर तेज़ गति से बढ़ते जा रहे हैं। विज्ञान भी इसमें मदद कर रहा है। वस्तुतः विज्ञान अपने आपमें शुभ अशुभ से मुक्त है। यह हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम उसका उपयोग किस प्रकार कर रहे हैं।

ऐसी स्थिति में हम अपने आपको ठीक से पहचान सकें और विनाश के पथ से अलग हटकर विश्वास और विकास के पथ पर अग्रसर हो सकें—यह तभी सम्भव है जब सद्गुरु की तारक वाणी को आत्मसात् करके समाज को उसके अनुसार चलने को प्रेरणा दे सकें। तभी विज्ञान हमारे लिए वरदान बन सकेगा।

श्री कबीर शान्ति सन्देश के माध्यम से सुख शान्ति को निश्चय ही प्रतिष्ठित किया जा सकेगा। अस्तु मैं आपके अभिनन्दनीय प्रयास के लिए आपको हार्दिक बधाई और साधुवाद प्रेषित कर रहा हूं।

इसके साथ ही श्री कबीर कीर्ति मन्दिर, काशी ने सद्गुरु कबीर व्याख्यानमाला प्रारम्भ करके सोने में सुगन्ध पैदा किया है। देश प्रसिद्ध विद्वानों और विचारकों का योगदान इसको सफल बनाने में आपको सुलभ है—इसके लिए भी आप हमारे आदर के पात्र हैं।

हमारा विश्वास है कि आपके सुयोग्य निर्देशन में इस संस्था द्वारा भविष्य में और अधिक मूल्यवान सेवा सुलभ हो सकेगी।

योग्य सेवाओं के लिए निःसंकोच लिखने का कष्ट कीजिए।

मंगलकामनाओं सहित।

आपका—
(आचार्य) रामनगीना त्रिपाठी
सोहाँव, बलिया

# PHILOSOPHY OF SATGURU KABIR

Sri S. Arjun Rao Birje *M. A.*
*Satyanam Adi Kabir Ashram,*
*Bangalore, Karnatak*

Medieval India was swayed by Mystical Philosophy of Kabir. His existence during a period of anarchy, choas and confusion gave him a good chance to propagate his philosophy of love and compassion. The advent of Mohammadans on the soil of India, brought a new religion with monotheism, and democratic principles of equality and its hatred towards idolatry, which were quite contrary to the existing Hindu belief. Hindu society, usually kind in nature with its universal approach, thought, the new wave would also merge into the main stream, as it had happened during other previous invasions of Greeks and Shakas. But the new society, which was more organised kept its entity separate, and began to attack Hinduism. Backed by the political power, Islam started its onslaught to cut at the roots of Hinduism. Hinduism and Hindu Society had to struggle for its very existence. Hindus were looked upon as inferiors, heithens, they were not allowed to assemble, to wear nice clothes, to ride on the horse back, and to keep weapons. Their sacred temples were destroyed. In their homeland they were treated as slaves. Hindu Society, which had lost its political power, divided into numerous petty kingdoms which were disunited and were often at war, failed to face the common enemy. They were an easy prey to the invaders. Muslim forgot the teachings of Islam, ( kindness and equality of all men ) but were determined to bring the whole of Hindusthan to the feet of Islam. Hindus, who had lost their power, without any political power to back their cause, shrinked and coiled round ritualism to save their sacred religion. They were living on mere subsistence after paying half the produce as revenue to the State. They were weak politically, socially, and economically. They had to choose between Islam and sword. When such was the state of affairs, the Hindu society instead of uniting to face the problem, was divided into numereous castes, sub-castes, following religious orders, customs, superstition performing lot of rituals and ceremonies. There was confusion and choas everywhere. The belief in personal God, as creator, supporter of the universe was shattered when their sacred temples were razed to ground.

Kabir, the apostle of peace appeared on the arena, and directed India to the path of spirituality. He realised the problem staring in the eyes of India, the unity of Hindus and Muslims. He was pained to see how the children of God, raised barriers that kept their hearts apart. With the key of mysticism, he sought to break down those barriers and inspired people to raise above the differences of birth and shake the chains of hollow ritualism which makes the mimicry of religion. He saw enarmous waste of

time and energy was involved in this religious bigotry. He felt both Hindus and Muslims have gone wrong, both had failed to find God.*

Kabir strait away attacked superstitious customs, beliefs, which were detrimental for the progress of mankind. He criticised both Hindus and Muslims for their ignorance, and illusion. He attacked fearlessly the Casticism, Varnashrama Dharma, Yajnas, Piligrimage, ritualism, belief in numerous Gods, performance of ceremonies of the Hindus. He equally took to task the Muslim beliefs, five time prayers, Haj pilgrimage, Sunnat and Tomb worshipping etc. He wanted to prepare a common deck for Hindu Muslim amity. He took, those good things which poster amity and supports his philosophy of life, from both religions. He realised the Brahman of the upanishads and Allah of Islam, are same and one. He advocated the worship of Impersonal God, who is the real father of all, so, he questioned :

"From where doth two Gods come?
Tell me who illussioned you
Ornaments of same self gold;
no difference what soever, for saying
there are two ways puja and Namaz; call
him Mahadev, Mohammad, Brahma
or Adam,
who is Hindu, who is Turk, when you all
on the same, each reading Vedas and
Kitab ( Quran ) call yourself Moulvi and
Pandit.

Names are different, but vessels are of the same soil Kabir says : Both have gone astray for they have not realised Rama, further he asked : how can you find your Rama? When you go after brass and stone idols. You say Ram is beloved, Muslim say Rahaman is mine, but neither of you know that Rama is Rahaman. Say Rama, say Khudha, it is all one.

Kabir knew no distinction of race or faith. When kabir met Loi, she asked him at the first instance, who he was ? He answered 'Kabir' ? what his caste was ? 'Kabir', what his order was ? 'Kabir', what his name was ? 'Kabir'. When Loi expressed her surprise at these answers, he said "All others have name and caste, but Kabir has none."

By supreme devotion and truthfulness, he rose above the barriers of name and form. At times he used to be ruthless, in matter of mere external forms of ordinary conventional religion. He ridiculed at the ignorance of Pandits and Mullas.

"If mere ablutions can make a man Holy, frogs should rank among the holiest creatures. If the water of the Ganges can purify men, how is it ? that the fish in the Ganges have the same unpleasant odour, as any other fish from any other place." *

He equally rebelled against the customs of Sunnat and Sacred Thread.

"If God has made you a Muslim;
why you have been uncircumcised ?
If by circumcision one becomes a Muslim,
what about your women ?
A wife, who is half of your body if left
uncircumcised, will remain a Hindu,
By putting a sacred thread, if one;
becomes a Brahmin, what about women ?
who have no sacred thread.
They remain Sudras, says Kabir
O' Pandits ! How do you eat the
food prepared by them." *

Kabir believed that mankind has emerged out of one great divine light. All are equal before the eys of God. No one is high and no one is

* Proffessor Wadia

From Proffessor Wadia's lecture on Kabir

low. Nature has given its gift (body) equally to all. Only one blood is flowing in the veins of all. One skin has covered the bodies. Our body is made out of same flesh and bone as others. Yea ! we are all living on the same earth under the same sun light. We drink water, we breathe the air, which is common to all, then why should there be the difference of high and low from man to man ? How does his differentiation be accepted ?

Love or devotion is the central theme of Kabir's philosophy. Devotion to god was not uncommon in the religious history of India. The Bhakti sutras of Narada, and Bhaghvata, are full of devotional songs of rare quality. We come across such sublime descriptions of God's Leelas in Vedas also. But Satguru Kabir gave a new turn to his philosophy. He set forth simplicity, truthfulness in word, deed and mind, and self sacrifice as the pre-conditions for his Bhaktimarga.

"Jab lag Bhakti Sakamata thab lag nirphal-sev" because Kabir's God was impersonal. He is Omnipotent, Omnisient, All pervading and All blissful. He is without name or form. He resides in the hearts of all living beings, He is like oil in the seed, like ghee in milk, like fragrance in flower. One has to give up the sky and search for him in depths of ones heart intensively, then he will be revealed. But this is not an ordinary task to do. It requires firm, undoubted faith, unquestionable love, undaunted spirit and unexhaustible courage, for it is a matter of life and death to a devotee. He who is ready to die for God, only he finds him. How to find supreme Lord, who is impersonal ? Take a Satguru as Master follow his guidance, is the answer of Kabir.

"He is neither like this nor that;
Then how to describe him ?
If he is inside alone, what about outside world ?
It is but doubting the power of Lord,
If he is Outside, it is false.
Try to find him by the grace of Guru.
He is both inside and outside."

The master or Guru has key role in the philosophy of Kabir. He is like a cloud, who takes water from salty ocean and gives showers of sweet water. He is the man who links the soul with God. It is very difficult to find a satguru. Kabir was a satguru. He had realised the Lord in the heart. He had visited the Thousand Petaled Lotus and had gone for beyond it to the Palace of Lord. He had drunk the nectar. He bathed in the shower of light and heard the incessant Music of Ananta. He surrendered to him, praised him and enjoyed his bliss. Self realisation as it is the only way to salvation, one has to take it seriously. The house of Love is not the house of our aunt where our wishes are fulfilled at easy. He who is ready to cut off his head and place it on the Lotus feet can remain there, sacrifice of egoism and mineness is the pre-requisite of Devotional Path. If once a man gets free from the chain of egoism and mineness, his mental faculties can be directed towards God. He becomes divine by the touch of divinity as the touch of philosophers stone changes iron into gold, which is bereft of rust. Bhakti or devotion is not an article which is sold in the market or a plant grown in the field. Anybody can take it, whether poor or rich, Hindu or muslim, young or old, man or woman. He who gives up his mental and physical egoism, can have it. There is no place for cowards.

Those who lack courage and faith in the power of Lord cannot stand there, Hysteric emotions, argumentation, talkativeness, are of no use, "Start with ability, Lord is before you" says Kabir.

Complete Self surrender and undoubted faith is the key to the path of Love. A devotee should act like a virtuous lady, who always looks at her husband, worships him, adores him, serves him, loves him and fallows him. Bhaktha should behave in the same way with the Lord.

See:

O' Lord ! come and reside in my eyes as I close the lids;
Neither I see anybody, nor I allow you to see.
I have nothing O' Lord, everything is yours;
Yours is being given to you, nothing remains of me.
Oh ! Lord ! come home, without you it has become painful to live here;
Neither I eat food, nor sleep nor stay in home nor in jungle.
Day and night are passing, I cannot wait anymore,
I need you, like a man needs water in the desert,
Any one is there who intimates Lord about me ?

Kabir has reached such a state, he cannot die without Lord's appearance. The devotee is immersed day and night in the Ocean of love like a fish in water, which sheds its life as soon it is separated from water. There is no place or time to think about one's likes or dislikes. No place for lust, anger, miserliness or for egoism. A devotee's heart is overflooded with the divine Song of Lord. He surrenders himself to the Will of God. He is firm in his conviction that if Rama is there to look after him, who else ean trouble him. If Rama decides to trouble him who else can save him. Everything is Rama's. His duty is only to follow the will of Lord. Lord is the mother, devotee is the Child, as mother looks after the baby, forgetting his mistakes, so also Lord looks after the devotee. If the baby is sad the mother is sad. God is sad if the devotee is sad.

The love of devotee takes him to the palace of the Lord. After intense search, he comes in face to face with the Lord. He is stunned at the sight of divine light in the midst of darkness. He is dumb engulfed with the serenity and bliss. He simply stands looking in surprise with humbleness. He cannot tell it by speach or write it on the paper. It is like a dumb fellow tasting sugar. This experience takes him to the world of light, where there are no illussions, births and deaths, no day and night, no creation whatsoever. All his doubts stands cleared, he feels free. Freedom from the bondages as the world. The truth is before him, he is enjoying its bliss always.

Kabir says:-

"The Lantern of Love has litted;
and there is light everywhere,
And the scent has spread through the speech.
In the cave of the sky, there
shines a wonderful moon
days and nights are not there.
In the ocean of love,
Always bliss, no miseries whatsoever,
Lord all blissful is seen, no delusions or illusios,
Kabir says only unstained love remains ever,
The Hamsa ( Jiva ) is swimming in the ocean of knowledge,

Where the thousand petal lotus has bloomed. The Anahatamusic is being played; and the shower of light has brighten the skies says Kabir, only few can enter that place; where Vedas Quran cannot tread.

This God intoxication is possible only for those on whom God has bestowed his grace. It is a different world altogether, from where no boby likes to come back. The soul which becomes one with the Lord, thus looses all illusions, and Vasanas, and becomes one with the Lord as a drop of water becomes a mighty Ocean as soon as falls into it. The cycle of birth and death ceases, and he lives for ever with Lord.



सिद्धयोगी सद्गुरुदेव श्री १००८ महन्त रामस्वरूपदास जी महाराज साहब

संत श्री श्यामदास जी शास्त्री,

जय जय सद्गुरु परमात्म स्मरण।

आपका पत्र मिला। पत्र पढ़ा। अत्यन्त खुशी हुई कि आप श्री कबीर शांति संदेश के छठा वर्ष का 'बीजक ज्ञान चौंतीसादि विशेषांक' प्रकाशित कर रहे हैं। आश्रम के कार्य में व्यस्त होने के कारण मैं इस विशेषांक के लिए शुभकामना ही भेज रहा हूं।

लि. महन्त रामस्वरूपदास
गुरु श्री शान्तिदास जी महाराज साहेब
श्री कबीराश्रम, जामनगर (सौराष्ट्र)

## श्री कबीर शान्ति संदेश के उद्देश्य

१— विवादों से दूर रहकर सत् का प्रचार एवं प्रसार करना।
२—श्री कबीर साहब की वाणी एवं उनके उपदेशों की ओर ले चलने का सत्प्रयत्न करना।
३—प्रेम, दया, सद्भावना, सेवा, एकता, परोपकार एवं सत् चिंतन में प्रवर्तन।

केन्द्रीय पञ्जीकृत संख्या आर० एन० ३३०२३/७७

जिला पं० सं० ७९२/७९

# सद्‌गुरु कबीर की साखी

## गुरु पारख के अंग

घर में घर दिखलाय दे, सो गुरु चतुर सुजान।
पाँच शब्द धुनकार धुन, बाजै शब्द निशान ॥४८॥
छीपा रंगै सुरंग रँग, नीरस रस करि लेय।
ऐसा गुरु पै जो मिलै, सीष मोक्ष पुनि देय ॥४९॥
मैं उपकारी ठेठ का, सतगुरु दिया सुहाग।
दिल दरपन दिखलाय के, दूर किया सब दाग ॥५०॥
ऐसा कोई ना मिला, जासो रहिये लाग।
सब जग जलता देखिया, अपनी अपनी आग ॥५१॥
ऐसे तो सतगुरु मिले, जिनसों रहिये लाग।
सब ही जग सीतल भया, (जब) मिटी आपनी आग ५२
यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान ॥५३॥

ग्राहक-संख्या :

श्री




डाक पञ्जीकृत संख्या : एल० आर० एन० १४६

**श्रीकबीर-शान्तिसंदेश**

मासिक-पत्र

सम्पादक कार्यालय :
श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था
सी० २९/१, सन्त कबीर रोड,
वाराणसी-२२१००१

श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था, वाराणसी के लिए श्यामदास शास्त्री द्वारा संपादित
एवं आर्यावर्त प्रेस, जालपादेवी रोड वाराणसी द्वारा मुद्रित
आवरण मुद्रक : प्रवर प्रिन्टर्स, बड़ी पियरी, वाराणसी।

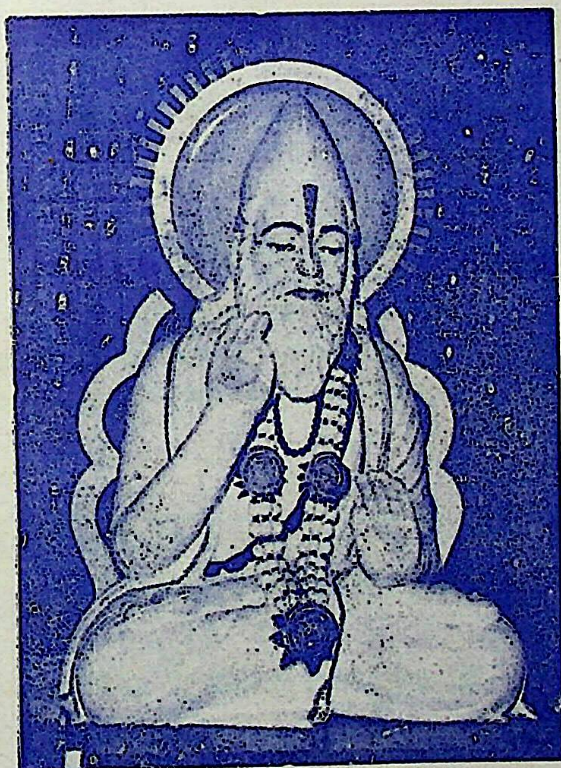



卐 सत् सत् सोऽहं गुरु 卐 सोऽहं हंसः सद्गुरु शरणम् 卐 ॐ श्रीराम सत्यराम सोऽहं गुरु राम 卐

# श्री कबीर-शान्तिसंदेश

मासिक पत्रिका

वर्ष ६ | अंक ४



मोको कहाँ ढूँढ़ै बंदे मैं तो तेरे पास मैं।

सद्गुरु कबीर

श्री कबीर शान्ति-सन्देश के आद्य उद्भावक और श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था के आद्य संस्थापक :—महन्त श्री शांतिदास जी गुरु श्री १०८ श्री पुरुषोत्तम दास जी महाराज साहब, श्री कबीराश्रम, जामनगर [ सौराष्ट्र ]

संवत् २०४० | कबीराब्द ५८३ | अप्रैल १९८३



सिद्ध स्थान श्री कबीर आश्रम जामनगर के आठवें गादीपति त्यागवैराग्य तपोनिष्ठ पू० पा० श्री १००८ महन्त रामस्वरूपदास जी महाराज साहब गुरु श्री १००८ शांतिदास जी महाराज साहब।



卐 सत् सत् सोऽहं गुरु 卐 सोऽहं हंसः सद्गुरु शरणम् 卐 ॐ श्री राम सत्यराम सोहं गुरुराम 卐

# श्रीकबीर - शान्तिसंदेश

वर्ष ६ ] अप्रैल १९८३ कबीराब्द ५८३ [ अंक ४

## भजन

प्रभु वो भक्ति के वश भाई।
जाति वरण कुल रीझत नाहीं, ना रीझे चतुराई॥
करमा कौन आचार कियो है, कब काशी करि आई।
छप्पन भोजन पीछे लागे, पहिले खिचड़ी पाई॥
सेवरी जाति कौन कुल कहिये, जूठ बेर ले आई॥
प्रीति जानि ताके फल खाये, तीनों लोक बड़ाई।
व्याध कब आचार कियो है, कब गीता पढ़ भाई।
तुरत गोपाल पकरि ले आया, घड़ी न दूसर बिताई॥
तिरलोचन नामदेव पीपा, हरि सो हेत लगाई।
सेन रूप ह्वै दर्शन कीन्हा, आप भये हरि नाई॥
सहस अठासि मुनि यज्ञ में जेमें, तबहु न घंटा बाजे।
कहैं कबीर सुपच के जेमें, घण्ट गगन ह्वै गाजे॥

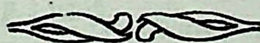
# संपादकीय

शास्त्रों ने संचित एवं क्रियमाण कर्म की समाप्ति ज्ञान से बतायी है। किन्तु प्रारब्ध कर्म ही एक ऐसा कर्म है कि वह बिना भोगे समाप्त नहीं हो सकता। ज्ञानी इस प्रारब्ध कर्म को भोगते हुए भी मुक्तावस्था में रहता है। इस कर्म में जो सुख-दुःखादि हैं उसे ये व्याप्त नहीं होते। मानव में जब ही यह स्थिति आ जाय तब ही से वह ब्रह्मरूप हो जाता है। यही ब्राह्मी स्थिति है।

कर्म के बिना मानव रह ही नहीं सकता। इसका प्रमुख कारण है मन। मन स्वयं बिना कर्म किये रह नहीं सकता। मानसिक निष्क्रियता का ही परिणाम कर्म राहित्य माना गया है। कर्म-राहित्य ही मुक्तता का द्योतक है। सभी बन्धनों का मूल कारण सकाम कर्म है। जब कर्म के आधार पर फल की आशा बंध जाती है तब यही आशा पाश बन जाती है जिससे प्रत्येक प्राणी पाशित है। इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि "कर्मण्येवाधिकारस्ते" केवल कर्म में ही अधिकार रखो। जितने यागादि कर्म किये गये हैं सभी सफल हैं। "स्वर्गकामो यजेत्" इसमें पहले ही स्वर्गरूप फल की कामना की गई है। इसके पश्चात् कर्म करने का विधान बताया गया है। शास्त्र का सिद्धान्त है कि प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते" प्रयोजन के बिना मन्द बुद्धिवाला भी किसी कर्म में प्रवृत्त नहीं होता अर्थात् सामान्य बुद्धि वाला भी फल को आगे रख कर ही किसी कार्य में प्रवृत्त होता है। संसार के प्राणी की यह स्थिति देख कर सद्गुरु कबीर साहब ने "कर्महिं कै कै जग बौराया" कहा है। आत्मा को न जान कर मनुष्य अन्य फलोंकी कामना के लिए ही कर्म में संलग्न रहता है। यह आत्मरूप फल को प्राप्त कर ले तो सभी कर्मों से छुटकारा पा जायगा। जिसको आत्मरूप फल प्राप्त है उसके लिए कोई कर्म नहीं है। भगवान् कृष्ण ने रहित कर्म वाले पुरुष को बताया है कि जो अपनी आत्मा में ही तुष्ट है उसके लिए कोई कार्य नहीं है। "आत्मन्येवात्मना तुष्टः तस्य कार्यं न विद्यते" सद्गुरु कबीर साहब ने आत्मज्ञ को मलरहित बताया है। उनका कथन "जो चीन्हे तेहि निरमल अंगा, अनचीन्हे नर भये पतंगा" जो आत्मतत्त्व को नहीं पहचान पाया वह कामना की अग्नि में फतिंगे के समान जलता रहता है और कामना रूपी अग्नि उसे जलाती रहती है। यदि आत्मतत्त्व को जान जाय तो क्यों स्वयं को जलायेगा। "आत्मानं चेद्विजानीयात् अहमस्मीति पूरुषः। किमिच्छन् कस्य कामाय शरीर मनुञ्ज्वरेत्"। जब आत्मतत्त्व की जानकारी हो जाती है तब देही होते हुए भी अदेही होता है। आत्मतत्त्व के ज्ञान के पश्चात् सदेह जनक विदेह कहलाये। सद्गुरु कबीर साहब का कथन है "वही बात लै जनक दृढ़ाई, देह धरे विदेह कहाई॥" आत्मतत्त्व की जानकारी के बाद देही होते हुए अदेही हो जाता है, ऐसी स्थिति में आत्मतत्त्व की विशेषता रहती है वह आत्मरूप हो जाता है। उसे शारीरिक या मानसिक कष्ट होता ही नहीं। मिथिला के दग्ध होने पर वे कहते हैं—मिथिलां दग्धमानायां मे किंचिन्न दह्यते" मिथिला जल रही है किन्तु मेरा कुछ नहीं जल रहा है। असंगता का यह परिणाम है कि मिथिला के नष्ट होने पर भी जनक का कुछ नष्ट नहीं हुआ। जड़ जड़ है चेतन चेतन है। जड़ और चेतन का कोई सम्बन्ध नहीं है यदि जड़ में चेतन अध्यस्त हो तो उसके नष्ट होने पर उसे दुःखादि का अनुभव होगा। यह भी अनुभूति कल्पित ही है। यथार्थ नहीं है। यदि यह यथार्थ होती तो जड़ के नष्ट होने पर चेतन का नाश होना चाहिये था किन्तु शास्त्रों ने तो जड़ का भी विनाश बताया है और चेतन को अविनाशी। जो भूत, भविष्य एवं वर्तमान में एक सा रहे उसे शास्त्रों ने अविनाशी' कहा है "अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो" वह अजन्मा है, नित्य है, शाश्वत है। सद्गुरु कबीर साहब इससे भी सूक्ष्म का संकेत करते हैं। उन्होंने उसे वाणी का अविषय ही बताया है। उनका कथन है "जाका नाम अकहुआ भाई ताकर कहाँ रमैनी गाई"। वाणी का अविषय होने पर भी उस परमात्मा को अजर, अमर, अखण्ड, एकरस कहा गया है। वह अनेक नहीं एक है किन्तु उसे विभिन्न नाम से कहा जाता है। "एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति'।

हम जानते हैं कि वह परमात्मा एक है। हमें उसे ही प्राप्त करना है। जब तक उसे प्राप्त नहीं कर लेते तब तक

हमारी तृष्णा बढ़ती ही जायगी। जड़ को प्राप्त करने के लिए सदैव संघर्ष में लगा रहना बुद्धिमानी नहीं है। जिसको प्राप्त करने के बाद फिर किसी भी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा न हो उसी की प्राप्ति के लिए संघर्ष करना कुछ अर्थ रखता है। हम धर्म की प्राप्ति के लिए रास्ते पर चल कर उसको प्राप्त करने की इच्छा करें किन्तु रास्ते के लिए संघर्षरत रहना कहाँ तक श्रेयस्कर हो सकता है? जिस जड़ पदार्थ के लिए संघर्ष कर के हम मन को अशांत रखते हैं वह क्या हमारे साथ जा सकता है? सद्गुरु कबीर साहब ने महान् पुरुषों का उदाहरण देते हुए ऐसे प्राणियों को समझाया है। 'अपनी-अपनी कर गये लागी न काहु के साथ, अपनी करि गये रावना अपनी दशरथनाथ" "वसुधा काहु की न भई, बाबा दादा और परवाजा जिनके ये भुंई भांड़े हो।" जिस पृथ्वी को हमने अपना समझ कर इसके लिए संघर्ष किया वह किसी और की थी और हमारे बाद किसी दूसरे की हो जायगी। आज हम कल्याणकारी संतों की वाणी भुला बैठे हैं। इसलिए महान् के लिए प्रयत्न न कर तुच्छ के लिए घोर प्रयत्न में लगे हुए हैं। हमने संतों की वाणी की अवहेलना की है, इसलिए हम अपने को एक दूसरे से भिन्न मानकर भिन्न व्यवहार करते हैं। इस व्यवहार से हम को ही अशान्ति नहीं मिलती अपितु सम्पूर्ण समाज ही अशान्त रहता है। हम सन्तों के अनुयायी बनें और उन्हींकी वाणी की अवहेलना करें तो कहाँ तक युक्ति संगत है? हम अपनी शक्ति छिन्न भिन्न न करें। संघ में शक्ति है विशेष कर इस कलियुग में। सत्पुरुषों ने स्पष्ट कहा है "संघे शक्तिः कलौयुगे" जिस धर्म और अखण्डता के लिए महापुरुषों ने अपना बलिदान किया आज हम उसका मूल्य ही नहीं समझ रहे हैं। किस-किस कार्य की सिद्धि के लिए कैसे कैसे संघ बने हमें विदित हैं। उन संघों का कार्यक्षेत्र व्यापक था। उनके इस कार्यक्षेत्र में असंख्य की भलाई थी। उस यज्ञ में एक की आहुति होती थी तो अनेक को उसका फल प्राप्त होता था। आज हम उन सब बातों को भूले जा रहे हैं। अब हमारा संघर्ष केवल स्वार्थ के लिए हो गया है, एक के लिए हो गया है। इसीलिए एक के साथ सम्पूर्ण समाज अशान्ति के वातावरण में पल रहा है। वह समाज शान्ति का मार्ग ढूंढ़ता है किन्तु स्वार्थरति के कारण उसे भी मार्ग नहीं मिल पा रहा है। हम सदा सुख की अभिलाषा रखकर उसीके प्रापक बने हुए हैं किन्तु दूसरे को कष्ट देकर जो सुख की प्राप्ति होगी वह सच्चा सुख नहीं होगा। उस सुख में क्षणिकता है। इसी पृथिवी के लिए महाभारत हुआ किन्तु महाभारत के बाद इस पृथिवी को भोगने वाला कोई उनमें से शेष न रहा जिन्होने इसके लिए महान् संघर्ष किया। आज हमारी समस्या एक की नहीं अपितु सबकी है। हम सब के साथ रहकर ही सुख प्राप्त कर सकते हैं। सन्तों की असगता प्रदान करने वाली वाणी मे भी एकता का सूक्ष्म अंकुर है उस अकुर को स्वस्थ मन से बोने पर ही वह पल्लवित पुष्पित हो सकता है।



## श्री सद्गुरु कबीर व्याख्यानमाला

### श्री कबीर कीर्ति मंदिर, काशी

प्रातःस्मरणीय परमात्मदेव श्री १००८ शांतिदास जी गुरु श्री पुरुषोत्तमदास जी महाराज साहब की अजस्र प्रेरणा से श्री कबीर शांति-संदेश के पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि पूज्यपाद सद्गुरुदेव १०८ महंत रामस्वरूपदास जी गुरु श्री शांतिदास जी महाराज साहब के संरक्षण में इसके सहभावी कार्यक्रम "सद्गुरु कबीर व्याख्यानमाला" का तृतीय पुष्प-गुम्फक श्री ठाकुर जयदेव सिंह जी थे। विषय "संत कबीर और धर्म का स्वरूप" था। संयोजन-कार्य श्री रामप्रवेश शास्त्री द्वारा सम्पन्न हुआ।

—सम्पादक

# मुक्ताकरण

शंभुनाथ राय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय

## सबद : ११.

संतो पांड़े निपुन कसाई।
बकरा मारि भैंसा पर धावैं,
दिल महँ दरद न आई ॥ १ ॥
करि असनान तिलक दै बैठे,
विधि ते देवि पुजाई।
आतम राम पलक मों बिनसैं,
रुधिर की नदी बहाई ॥ २ ॥
अति पुनीत ऊँचे कुल कहिये,
सभा माँझ अधिकाई।
इनसे दीच्छा सभ कोइ मांगे,
हँसि आवै मोहि भाई ॥ ३ ॥
पाप कटन को कथा सुनावहिं,
करम करावहि नीचे।
हम तो दोउ परस्पर देषा,
जम लाये हैं धोषे ॥ ४ ॥
गाय बधें तेहि तुरुक कहिये,
इनि ते वै का छोटे।
कहहिं कबीर सुनहु हो संतो,
कलि महँ ब्राह्मन खोटे ॥ ५ ॥

चूर्णिकाः—पांड़े=प्रतिष्ठित ब्राह्मण। निपुन=सिद्धहस्त, अनुभवी। कसाई=पशुओं का बध कर और मांस बेच कर जीविकोपार्जन करने वाली निकृष्ट जाति का व्यक्ति। आतमराम-जीवधारी। रुधिर=रुधिर, रक्त। अधिकाई=प्रतिष्ठा, वड़प्पन।

अर्थः—ऐ संतों, पांडे तो सिद्धहस्त कसाई हैं (अर्थात् परम विवेकी महामहिम ब्राह्मण निकृष्टतम कसाई का कार्य करता है)। (देखो न, ये केवल) बकरा मार कर (संतुष्ट नहीं होते, बध हेतु) भैंसे पर भी लपक पड़ते हैं, (इनके) हृदय में दया (नाम की भावना कभी आती, जगती) ही नहीं ॥ १ ॥ (तनिक इनकी करतूत तो देखो, ये) स्नान करके तिलक लगा कर बैठ गए और विधिपूर्वक देवी की पूजा करा लेने के पश्चात् (पशुवलि देकर इन्होंने) रक्त की नदी ही बहा डाली, (वस्तुतः इनके द्वारा) आत्माराम पल भर में विनष्ट हो जाते हैं (अर्थात् सभी जीवों में एक ही परमात्मतत्त्व के निवास की सर्वोपरि भावना ही इनके हृदय में समाप्त हो चुकी है) ॥ २ ॥ (उस पर भी ये शाक्त ब्राह्मण) अति पवित्र और कुलीन कहलाते हैं, सभा में (इनकी) बड़ी प्रतिष्ठा होती है। सब कोई इनसे दीक्षा लेने का आग्रह करते हैं, (जगत के इस व्यवहार पर) भाई, मुझे तो हँसी आती है ॥ ३ ॥ (ये पाखंडी पुरोहित यजमान को) पाप-निवृत्ति हेतु (पुराणों की) कथाएँ सुनाते हैं (किंतु) कर्म निकृष्ट ही करवाते हैं। हमने तो एक दूसरे के साथ दोनो के व्यवहार को देख लिया है, (वस्तुतः दोनो को) यम ने धोखे में डाल रखा है ॥ ४ ॥ जो गाय मारता है उस (मुसलमान) को 'तुरुक' की (अपमानजनक) संज्ञा दी जाती है, किंतु ये (बकरा और भैंसा मारने वाले ब्राह्मण) क्या उन (मुसलमानों) से छोटे (घट कर) हैं। कबीर साहब कहते हैं कि ऐ संतो सुनो (वस्तुतः) कलियुग में ब्राह्मण भी खोटे (निकृष्टकर्मी) हो गए हैं ॥ ५ ॥



हे मानव गर्व न कर तुम्हारे केश को काल पकड़ रखा है। मारते समय वह घर और परदेश नहीं देखेगा।

कबीर गर्व न कीजिये, काल गहे कर केस।
ना जानौ कित मारिहै, क्या घर क्या परदेस ॥ —सद्गुरु कबीर

## भागलपुर जिला सद्धर्म प्रचारक, सद्गुरु कबीर सभा का २६ वाँ वार्षिक सम्मेलन एवं ज्ञानयज्ञ

दिनांक २३, २४ एव २५ अप्रेल, ८३ ई० शनिवार, रविवार, सोमवार, स्थान—बेल्थू (शाहकुण्ड) भागलपुर।

जिला समिति के मंत्री श्री जागेश्वर मंडल कबीर पंथी ने निम्नलिखित स्वागत भाषण एवं प्रतिवेदन प्रस्तुत किया,—

आज यह हमारा परम सौभाग्य है कि इस बेल्थू ग्राम एवं भागलपुर जिले के सत्संगी परिवार को आप जैसे संत-महंत सर्व धर्म प्रेमियो एवं मनीषियों के आतिथ्य का सुअवसर मिला है। हमें ऐसा मालुम होता है कि आपने हमारे श्रद्धापूर्ण आग्रह के कारण ही इस पवित्र भूमि पर आने के लिए हमारा आमंत्रण स्वीकार किया है। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य है जनजन में सद्ज्ञान मानवों में नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, विश्वबन्धुत्व एवं समस्त मानव में एकता की भावना प्रदान करना एवं प्रचार करना। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, इसाई ये सब हैं भाई-भाई" को चरितार्थ करना है। देश विदेश में जो धर्म की विश्रृंखलाएं भरी पड़ी हैं, उन्हें दूर कर मानव धर्म को एक सूत्र में बांधना ही इस सभा का प्रमुख उद्देश्य है।

इस सभा का संबंध अखिल भारतीय कबीर पंथ समाज पंजीकृत दिल्ली तथा बिहार राज्य सद्धर्म प्रचारक सद्गुरु कबीर सभा से है।

भागलपुर जिला के प्रायः सभी थानों के करीब-करीब सभी ग्रामों में संत कबीर सत्संग की स्थापना महान त्यागी संतों महंतो द्वारा की जा चुकी है। प्रत्येक थाने में प्रत्येक केन्द्र में नियमित रूप से मासिक एवं साप्ताहिक सत्संग चल रहा है।

सम्मेलन के उप स्वागताध्यक्ष श्री जयकरण महतो (बेल्थू) ने निम्नलिखित प्रतिवेदन प्रस्तुव किया जो संक्षेप में इस प्रकार है।

यह बेल्थू गाँव विगत कई वर्षों से सुखाड़ क्षेत्र रहा है, अतः स्वागत की कमी के लिए यह गाँव क्षमा प्रार्थी है।

इस गाँव के ऐतिहासिक महत्व के विषय में कहा जाता है कि कहल गाँव के विक्रम शिला विश्वविद्यालय के ज्योतिष शास्त्र का अध्यापन केन्द्र, शाहकुण्ड के विक्रम शिला शाखा का यह छात्रावास था। ब्रह्मचारी विद्यार्थीगण मिट्टी के पात्र में भोजन करते थे और उसे फेंक दिया करते थे। बेल्थू की डीह पर उन पात्रों के टुकड़े अभी भी प्रचूर मात्रा में उपस्थित हैं।

शाह कुण्ड पहाड़ पर पाली भाषा में लिखा शिला लेख से पता चलता है कि यह स्थान बौद्ध काल में उन्नति के शिखर पर था।

आदिकाल से यह क्षेत्र कलिया (धमन) नदी से सिंचित होता आ रहा था। किन्तु जब से बड़ुआ डैम बना तब से दक्षिण के पहाड़ से वर्षा के पानी का आना बन्द हो गया और लोग अब प्रायः हर साल अकाल की स्थिति में रहते हैं।

यह गाँव सामाजिक, राजनैतिक उत्थान में आगे रहा है। १९४९ ई. में यहाँ के जिला हरिजन महिला सम्मेलन के अवसर पर स्व० जगलाल चौधरी जी तत्काल कल्याण मंत्री, बिहार सरकार ने इस गाँव को बिहार के सर्वश्रेष्ठ आदर्श ग्राम की संज्ञा दी थी।

इस सम्मेलन एवं ज्ञानयज्ञ में श्री सत्यदेव दास साहब जो, भजनोपदेशक ने अपने भिन्न-भिन्न प्रकार के भजन एवं उपदेश के द्वारा लोगों को मानवधर्म का दायित्व समझाया और इससे होने वाले आत्मिक शुद्धि की विशेषता बतायी। उन्होंने कबीर साहब की वाणी को गा गाकर समझाया। कबीर साहब ने हिन्दू एवं मुस्लिम दोनों के अशोभनीय कर्म की निन्दा की और उनको एक आदर्श धर्म की ओर प्रवृत किया।

कांकर पाथर जोड़ी के मस्जिद लिये चुनाव।
तापे चढ़ि मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय।
पाथर पूजे हरि मिले तो मैं पूजूं पहार।
ताते यह चक्की भली पीस खाय संसार॥

उपरोक्त उदाहरण देकर उन्होंने उस समय के समाज में सुधारने की प्रवृत्ति जगायी थी। उन्होंने बताया कि कर्म के द्वारा ही लोग बड़े होते हैं।

दुखहरण साहब जी ने कबीर का अर्थ प्रकार बताया क—कलयुग, बी—विशेष र--रक्षा करने वाले। याने कबीर का मतलब हुआ कि कलयुग में विशेष रूप से रक्षा करने वाले। जब लोग मानव धर्म की खोज में भटक रहे थे तो कबीर साहब ने अपनी सरल सहज भाषा में ज्ञान का प्रचार प्रसार किया।

श्री दुखहरण साहब ने कबीर साहब के पद—

नई नारी नेहर से ससुरा जात बा
बड़ी अचरज की बात बा ना।

का मार्मिक विश्लेषण किया। तब कहीं श्रोतागण इस विश्लेषण के द्वारा कबीर साहब के ज्ञान को बूझ सके।

महंत श्री लालेदास जी साहब, गया करहरिया ने अपने प्रवचन में कहा कि सारा संसार असत् है, सत्य केवल अंदर में है। सत्संग में हम जो कुछ सुने उसे समझने की कोशिश करें और मनन करें। उन्होंने अपने महत्वपूर्ण प्रवचन से लोगों का दिल मोह लिया।

महंत श्री ठाकुर साहब (रोसड़ा) ने सद्गुरु कबीर साहब के प्रति अटूट श्रद्धा का भाव प्रदर्शित किया। उन्होंने कबीर साहब के प्राकट्य से अन्तर्धान तक का वृतांत प्रस्तुत किया और उनके द्वारा फैलायी गई अमृतवाणी का रसास्वादन उपस्थित सत्संगियों को कराया। उन्होंने कहा कि कबीर साहब का ध्यान समाज के धार्मिक, आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति की ओर विशेष रूप से गया था। कबीर साहब ने मन के मैल को दूर कर पवित्र स्वच्छ समाज की स्थापना पर जोर दिया था। उच्च विचार के साथ-साथ कबीर साहब ने आध्यात्मिक उन्नति हेतु उपदेश दिया। कबीर साहब के दर्शन में आर्थिक एवं आत्मिक क्रांति का संदेश है।

श्री ठाकुर साहब ने कहा कि दक्षिण भारत में हरिजन मुसलमान बनते जा रहे हैं। हरिजन उच्च जाति के लोग द्वारा सताये गए हैं। एक समय था कि दक्षिण भारत में अछूतों को गले में घंटी बांधकर उन्हें चलने का आदेश था कि कोई उनसे छू न जाय।

ऊँची जाति के लोगों ने कबीर साहब को भुलाने का प्रयत्न किया। हरिजन होटल नहीं खोल सकता मंदिरों में नहीं पैठ सकता। जो सभी मनुष्यों में समता का रूप देखें, उन्नति का समान अवसर प्रदान करें, मानवीय गुणों का आदर करें, वही कबीर साहब का सच्चा अनुयायी है। कबीर साहब के विचार में न कोई ऊँच है और न कोई नीच है।

ठाकुर साहब ने अपने विद्वतापूर्ण प्रवचन से लोगों को विशेष रूप से आकर्षित कर लिया।

डा. कपिल देव साहब (वाराणसी) ने अपने प्रवचन में बताया कि कबीर साहब ने जनजागरण का कार्य किया, आत्मा के विकास के लिए पथ दिखाया। इन्होंने बताया कि कोई जन्म से शूद्र और फिर मृत्यु तक भी शूद्र ही बना रहता है। यह पद्धति गलत है। अपने कर्म के अनुसार मनुष्य अच्छा और खराब बनता है। मनुष्यत्व की रक्षा के लिए, आत्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक उत्थान के लिए, सर्वधर्म समन्वय के लिए सद्गुरु कबीर साहब की आवश्यकता विशेष रूप से है। रामायणकाल में एक भक्त शम्बूक की हत्या की इन्होंने निन्दा की। आज के बच्चे कल के कर्णधार होंगे। उन्हें विकसित करने हेतु हर प्रयत्न होना चाहिए। उन्होंने बताया कि साम्यवादी तो कबीर साहब थे जो सबमें समता देखना चाहते थे। दहेज का बहिष्कार होना चाहिए, इस पर इन्होंने बहुत जोर दिया।

दूसरी पाली में कपिलदेव साहब जी ने अपने सारगर्भित प्रवचन के द्वारा सबों को ओतप्रोत कर दिया। मालूम पड़ता था कि सत्संगी बन्धुओं को वे मानव उत्थान के लिए आवश्यक सभी सामग्री आज ही दे देंगे।

महंत श्री दामोदर साहब (खगड़िया) का प्रवचन—महंत श्री दामोदर साहब कबीर सत्संग समाज में झुनझुनिया बाबा के नाम से प्रसिद्ध हैं क्योंकि ये भजन के द्वारा उपदेश देने के क्रम में तालमेल के साथ झुनझुनी बजाते रहते हैं।

इनका प्रवचन सरजमी का प्रवचन होता है।

समाज में फैली कुरीतियों को दूर करने हेतु इन्होंने तरह-तरह का भजन उपस्थित कर सत्संग में आये लोगों

जागरण का संदेश दिया। खासकर समाज का आधा अंग – महिला समाज की उन्नति के लिए सभी संभव उपाय इन्होंने गान के माध्यम से बताया। अपने मार्मिक गान के द्वारा सामाजिक उत्थान का रास्ता भी बताया। इन्होंने कबीर सत्संग की महत्ता बताते हुए गाया—"गुरु बिनु भवनिधि तरई न कोई।" इनके प्रवचन के समय लोग सर्वाधिक रूप से इनकी ओर आकर्षित दीख पड़े। क्या मजाल कि इनके प्रवचन के क्रम में कोई सोने की बात तो दूर रहे, ऊँघ भी न सके? सभी इनके हास्यपूर्ण प्रवचन में डुबकी लगाते देखे गए।

**श्री मुक्त स्वरूप साहब ( ढोलवज्जा बाजार )**— सत्संग में आने से मनुष्य का मन शुद्ध हो जाता है। जैसे बर्तन को हम साफ करते हैं, वैसे हम अपने मन के मैल को सत्संग एवं ज्ञानयज्ञ के द्वारा ही साफ कर सकते हैं। इनका लोगों से कहना है कि अपने पास ही सब कुछ है केवल खोजने की जरूरत है।

अपने प्रवचन में इन्होंने आगे कहा—गर्भ के कष्ट को सह कर मनुष्य बाहर आता है और फिर उसमें ही पूर्व का कष्ट भोग करने हेतु जाय, इससे कष्ट कर और क्या हो सकता है।

बुद्ध भगवान साधु की संगति करते थे। उनको माया में फँसाने हेतु सुन्दरियों के साथ सुलाया जाता था। एक परम सुन्दरी यशोधरा से उनकी शादी भी कर दी गई थी। एक बच्चा भी पैदा हुआ। फिर बाहर जाने पर उन्हें रोगी तथा मृत व्यक्ति को देखने का मौका लगा। तब फिर जीवन से निराश होकर साधु हो गए और गया के जीवन-वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त किया। उसी प्रकार कबीर साहब ने अपने जीवन को शुद्ध करने के लिए सत्संग में भाग लेने को कहा है। सत्संग से बढ़कर और कोई सुख नहीं। यथा "ज्यों लव सुख सत्संग।"

**महंथ सदानन्द दास साहब जी ( कबीर आश्रम रानी दियार )**

इन्होंने कबीर साहब के ज्ञान यज्ञ के संदर्भ में आर्थिक, सामाजिक धार्मिक नीति को विस्तार से समझाया। इनका प्रवचन बड़ा ही मार्मिक रहा।

**ब्रह्मचारिणी द्रौपदी जी 'भजनोपदेशिका'**

इनका प्रवचन बहुत ही आकर्षक रहा। सत्संग में गान के माध्यम से ही विशेष कर इन्होंने प्रवचन किया। ज्ञान यज्ञ में इनका गान शांति का काम करता रहा। इनका कुछ मार्मिक गान इस प्रकार है:—

( क ) शरण मिले हे गुरु ज्ञान हो
मेरो भाग जगे हैं।
( ख ) आजु के दिन मेले सुदिन
चलु सत्संग सुने ल।

इनके गान का सुर लय तथा मार्मिक प्रवचन के द्वारा लोग झूम गए।

( ग ) सद्‌गुरु चरण सुखदायी ( कोई माने न माने।

**डा. शिवनन्दन दास साहब "ब्रह्मचारी"**— भागलपुर ने कहा कि ईश्वर की सत्ता एवं महत्ता है। सत्य ही ईश्वर है। सर्वव्यापक है।

जब हम कहते हैं कि ईश्वर नहीं तब यह सिद्ध होता है कि ईश्वर का अस्तित्व है। अर्थात् नहीं—स्वीकारात्मक है।

**ईश्वर दास—जो की ( भागलपुर )** ने हिंसा और नशानिवारण हेतु अपना विद्वतापूर्ण प्रवचन प्रस्तुत किया।

इनके अलावे निम्नलिखित उपदेशकों तथा प्रवचन कर्त्ताओं ने अपना मन्तव्य प्रकाशित किया।

श्री रामरूप दास साहब—खजरपुर ( भागलपुर )
श्री सत्य नारायण साहब—परवत्तागादी
श्रीमती सुशीला देवी—स्वरूपचक
श्री माया साहब ( बदलूचक )
,, रामदेव दास साहब ( रोसड़ा )
,, व्यासदेव भास्कर साहब—देलथु
डा० मो० नई मुद्दीन—शाहकुण्ड
श्री नरेश मोहनदास—बेलथु
,, रामदास जी—नेपाल ( नेपाली भाषा में प्रवचनकर्त्ता )
,, बाबू लाल दास—बगडुम्मा ( बाँसी )
( संताली सत्संग गान गायक )
,, वासुदेव दास—जी
,, राजेन्द्र दास जी
,, गोपाल दास जी रेडियो कलाकार—भागलपुर आदि।

**भागलपुर जिला सद्धर्म प्रचारक सद्गुरु सभा की कार्यकारिणी समिति का चुनाव—**

२४-४-८३ को भागलपुर जिला सद्धर्म प्रचारक सद्गुरु सभा की कार्यकारिणी का चुनाव हुआ जिसमें निम्नलिखित पदाधिकारीगण निर्वाचित हुए—

महंत श्री लक्ष्मण दास जी साहब—बल्लीकित्ता गादी —सभापति

भू. पू. मंत्री—श्री ज्ञानेश्वर दास जी पुनः मंत्री चुने गए।

भू. पू. सभापति—श्री सुम्भादास जी साहब संरक्षक

श्री व्यासदेव भास्कर ( वेलथु ) जिला शिक्षा प्रसार मंत्री।

श्री विपिन विहारी दास—सहायक मंत्री,

श्री जयकरण महतो ( वेलथु ) नये सदस्य

**विशेष विवरणः**—२३-१-८३ को अपराह्न में सभा की ओर से एक विशाल जुलूस निकाला गया जिसमें ५ ट्रक, १, टैक्टर, ४ टमटम, २ बैल गाड़ी तथा अनेकों साइकिल की सवारियाँ थी। हजारों लोग पैदल भी चल रहे थे। लाउड स्पीकर पर सत्संग संबंधी तरह-तरह के नारे लगाये जा रहे थे। लगभग एक किलो मीटर लम्बा यह जुलूस बेलथु ग्राम से निकल कर हरपुर ग्राम होकर शाहकुण्ड बाजार तक दो मील तक गया और हर्षध्वनि करता हुआ फिर ३ घण्टे के बाद ज्ञान यज्ञ स्थल पर पहुँच गया। सभा स्थल को चार बड़े-बड़े शामियानों से सजाया गया था जिसमें महिलाओं के बैठने की समुचित व्यवस्था थी। दुरदराज के कोई पाँच हजार लोगों ने सत्संग में भाग लिया।

२५-४-८३ को सत्संगी लोग ज्ञान यज्ञ में विभोर थे कि तभी माननीय लघु सिचाई मंत्री श्री लेचन्दर तीरू का सभा स्थल पर आगमन हुआ और उन्होंने उसी मंच पर १ घंटे का अपना भाषण कार्यक्रम रखा। उन्होंने सत्संग में भाग लेकर अपने को धन्यधन्य माना तथा कबीर साहब के विचार के अनुसार ही अपना जीवन ढालने का आग्रह सभी सत्संगियों से किया। इस कार्यक्रम ने ज्ञानयज्ञ सम्मेलन में चार चाँद लगा दिया। कोई दस हजार की भीड़ ने उनका प्रवचन भाषण सुना। सम्मेलन का कार्यक्रम २५-४-८३ की मध्य रात्रि तक चलता रहा। शेष में सम्मेलन में भाग लेने वाले महंतों एवं संतो को जिस मार्मिक एवं करूण अवस्था में बिदाई दी गई यह दृश्य अवर्णनीय हो गया। लोग एक दूसरे का साथ छोड़ना नहीं चाह रहे थे, मानों मनों में तादात्म्य संबंध हो गया हो। सभी भाव विह्वल हो गए थे। भोर-भोर तक सत्सग समदन, सोहर आदि गानों के साथ खंजरी की गूँज सुनाई पड़ती रही।

तीन दिनों तक बेलथु ग्रामवासी सत्संग ज्ञान यज्ञ में तल्लीन रहे। सभी अपने अन्य काम छोड़कर ज्ञान यज्ञ की सफलता में लगे रहे। खिलाने के क्रम में लगभग पाँच-पाँच सौ व्यक्तियों को एक साथ एक बार बैठाया जाता था। क्या बूढ़ा, क्या बच्चा, क्या बूढ़ी, क्या बच्ची सबने इस ज्ञान यज्ञ में स्नान किया।

ज्ञान यज्ञ सभा स्थल के सामने भिन्न-भिन्न तरह की दूकानें जैसे—मिठाई, बर्फ, खिलौने, फल, पान, चूड़ी, गुपचुप, बाजा, शर्बत, आदि की दूकानें खुल गयी थी मानों एक बाजार ही बस गया था। मुख्य सड़क पर एक बड़ा गेट बनाया गया था तथा सभा स्थल को अच्छी तरह सजाया संवारा गया था।

अंतिम दिन डा० शिवनन्दन दास साहब के सभापतित्व में सम्मेलन का कार्य सम्पन्न हुआ। उन्होंने सभी आगन्तुक सन्त, महन्त विद्वान् एवं भजनोपदेशकों को धन्यवाद दिया। उन्होंने सभा के सयोजक महन्त लक्ष्मण साहब, शर्मा जी, ग्रामीण सत्संगीगण एवं समिति के सदस्यगण को भी धन्यवाद दिया।

सभा समाप्ति के बाद महन्त श्री लक्ष्मणदास साहब के द्वारा गुरु पूजा की गयी जिसमें बहुत से नर-नारियों ने दीक्षा मन्त्र लिया और मुण्डन भी करवाया।

**साधन अनेक होते हुए भी साध्य एक ही है।**

# तीसा जंत्र

डा० किशोरी लाल गुप्त, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०

'तीसा जंत्र' तीस दोहों का एक लघु ग्रंथ है। इन दोहों में ज्ञानोपदेश का कथन है। प्रत्येक दोहे के पहले शीर्षक रूप में एक लघु प्रश्न है, उत्तर रूप में दोहा है। यथा—

प्रश्न—परेखिए का ?

उत्तर—

परेखिए द्वारा सब्द को, जो गुरु कहा बिचारि।
विना सब्द कछु ना मिले, देखो नयन पसारि॥

हमें किस बात को परखना चाहिए ? परीक्षा करके देखना चाहिए ? जांच पड़ताल करनी चाहिए ? चिंतन-मनन करना चाहिए ?

हमें गुरु के विचारपूर्वक कहे गए वचनों को ही सोचना, बिचारना, परखना चाहिए और तदनुकूल आचरण करना चाहिए। बिना गुरु-शब्द के हमें आत्म-ज्ञान नहीं हो सकता। इस बात को आँख खोल कर देख लो, समझ लो।

आदि और अंत में एक-एक सवैये भी हैं।

## खोज में प्राप्त हस्तलेख

'तीसा जंत्र' के दो हस्तलेख काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज में प्राप्त हुए हैं। पहला हस्तलेख १९०९ ई० की खोज रिपोर्ट में '१४३ के¹' संख्या पर विवृत्त है। इस खोज रिपोर्ट में ग्रंथ कबीर साहब की रचना स्वीकार किया गया है। इस रिपोर्ट में कबीर साहब के ४४ ग्रंथों का विवरण दिया गया है। इन्हीं में से एक, यह ग्रंथ है। यह छह पन्ने का ग्रंथ है। प्रतिलिपिकाल नहीं दिया गया है। यह हस्तलेख पंडित भानुप्रताप तिवारी, चुनार के पास था। इस ग्रंथ के आदि अंत के कवित्त ( सवैया ) उद्धृत हैं।

दूसरे हस्तलेख का विवरण खोज रिपोर्ट सं० २००४। १४७ में दिया गया है। हस्तलेख पं० गुरु प्रसाद मिश्र, गाँव—हींगन गौरा, डाकखाना—कादीपुर, जिला—सुलतानपुर के पास था। इसमें कुल चार पन्ने हैं। इसका लिपिकाल सं० १९०३ वि० है। खोजरिपोर्ट में प्रारंभ का सवैया एवं ५ दोहे तथा अंत के दो दोहे ( ३१,३२ ) तथा सवैया उद्धृत हैं। अंत में प्रतिलिपिकाल भी दिया गया है—"संवत् १९०३ पौष सुदी ६।' ग्रंथ किसी तुलसी का माना गया है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा के आर्यभाषा पुस्तकालय में भी तीसा जंत्र की एक प्रति है। हस्तलेख की संख्या १४१६ है। इसमें ७ पत्र हैं। इसमें रचयिता का नामोल्लेख नहीं है।

## ग्रंथकर्ता-निर्णय

ग्रंथ के अंतिम कवित्त ( सवैया ) में ग्रंथकर्ता का नाम है। तीनों हस्तलेखों से आगे अंतिम छंद यथावत् उद्धृत किया जा रहा है—

( क ) खोज रिपोर्ट १९०९।१४३ के¹

कवित्त

भाग जग्यो वेपुवील को॥
जव श्री गुरुदेव दया करि हेरी॥
ग्यान को पाट उवारी दीवो॥
तव मोहनी सादीर गते मवो फेरी॥
थोरे ही में समुझाए हैं ये
और थीर कीवो चंचल मती मेरी॥
बुझी परी सब ही धलमोहव॥
छुटो गई मन भ्रक घनेरी॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो॥
वेद पुरान को मारग टेरो॥
सत नाम सत गुरु जपे॥
धाम मीले सुष सागर केरो॥
इती तीसा जंत्र संपूर्न भवेतु॥

( ख ) खोज रिपोर्ट सं० २००४।१४७

भाग्य जगे जब पुरुब को
दया गुरुदेव क्रुपा करि हेरो।
जोर कपाट उघारि दियो
तब मोह निसा तम जो निते फेरी॥

थोरहिमो समुझाय दियो
तब थीर कियो तुलसी मन मोरी।
बूझि परी सबही घट साहेब
छूटि गई तब तर्क घनेरी॥
सवत् १९०३ पौष सुदी ६॥

( ग ) सभा हस्तलेख का पाठ

भाग जगो है पुरबिल को
जब श्री गुरुदेव दया करि हेरी।
ज्ञान कपाट उघारि दियो
तब मोह निसा ढिग ते मति फेरी॥
थोरहि में समुझाय दियो सब
थीर थीर भयो चंचल मति मेरी॥
बूझ पर्यो सब घाट साहेब
छूटि गयो तब त्रास घनेरो॥
इति श्री तीसा जंत्र समाप्त

१९०९ वाली खोज रिपोर्ट में सवैया ६ चरणों का है। अंतिम दो चरण न तो खोज रिपोर्ट सं० २००४ में है, न सभा वाले हस्तलेख में। पांचवें चरण में 'कहै कबीर सुनो भाई साधो' छाप है।

सं० २००४ वाले हस्तलेख में तृतीय चरण में 'तुलसी' छाप है।

सभा वाले हस्तलेख में कवि छाप है ही नहीं।

चतुर्थ चरण का ठीक पाठ है—

बूझि परी सब ही घट साहेब।

'सब ही घट साहेब' से स्पष्ट है कि यह रचना किसी निर्गुनिया की है। १९०९ वाले हस्तलेख से इसके कर्ता कबीर सिद्ध होते हैं। यह वास्तविक कबीर की रचना है या किसी परवर्ती कबीर की, यह दूसरा प्रश्न है। मुझे तो यह रचना किसी परवर्ती कबीर की जान पड़ती है। यह अनुमान ग्रंथारंभ एवं ग्रथांत के सवैया छंदों के आधार पर किया जा रहा है। कबीर के समय तक सवैया छंद अस्तित्व में ही नहीं आ पाया था।

अस्तु 'तीसा जंत्र' किसी निर्गुनिया संत की रचना है, जिसमें कबीर की छाप भी है। तुलसी छाप ठीक नहीं है। ग्रंथ की भाषा, विचार धारा सभी निर्गुनिया है।

तीसा जंत्र संपादित रूप में

## तीसा जंत्र

### सवैया

सोइ रह्यो नित मोह निसा महँ,
जानि पर्यो नहिं राम पियारो।
जन्म अनेक गयो सपनांतर,
एकहु बार न जाग्रति धारो॥
आदि गुरू जब देखि दया करी,
तीसहि जंत्र को सब्द उचारो॥
चारिव वेद, पुरान अठारह,
सोधि कह्यो यह तत्व - विचारो॥

### दोहा

जीव कृतारथ करन हित, भाषा कह्यो विचार।
'तीसा जंत्रहि' समुझि के, नर उतरै भव-पार॥१॥
कलि मैं जीवन अल्प है, करिए बेगि सँभार।
तप साधन नहिं होइ सकै, केवल नाम अधार॥२॥

जगाइए का ?—प्रेम।
प्रेम जगावै विरह को, विरह जगावे जीव।
जीव जगावै पीव को, वही पीव है जीव॥३॥

पूजा किस की कीजिए ?—गुरु की।
पूजा गुरु की कीजिए, सब पूजा जेहि माँहि।
जब जल सींचा मूल को, साखा पत्र अघाँहि॥४॥

परेखिए का ?—गुरु का सब्द।
परखो द्वारा सब्द का, जो गुरु कह्यो विचारि।
विना सब्द कछू ना मिले, देखो नयन निहारि॥५॥

लीजिए कवन ?—नाम।
नाम मिलावे रूप को, जो जन खोजी होइ।
जो वोह रूप हिये धरे, सुधा रहै नहिं कोइ॥६॥

---

सवैया—पियारो, धारो, उचारो, विचारो=पिआरे, धारे, उचारे, बिचारे ( ह )।

आदि गुरू जब ( खोज २००४ )=आदि गु ( ह )।

तीसहि जंत्र को=तीसा जंत्र ( ह )।

१. तीसा जंत्रहि=तीसा जंत्र ( ह )

४. गुरु की गुरु का ( ह )

६. हिये=हिये मो ( ह )।

करिए का ?—सतसंग।

करिए नित सतसंग को, बाधा सकल मेटाइ।
यह अवसर फिरि ना मिले, दुर्लभ नर तन पाइ ॥७॥

होइए का ?—दास।

होइ रहै जब दास यह, तब सुख लहै अनंत।
देखो रीति प्रह्लाद की, निरख्यो सब का कंत ॥८॥

मानिए का ?—सत।

मानिए सब कछु सत है, जो जाको बेवहार।
जनम मरन दोऊ बना, थिर होइ देखु विहार ॥९॥

बराइए का ?—झगरा।

झगरा नितहि बराइए, झगरा बुरो बलाइ।
दुख उपजै, चिंता बढ़ै, झगरा ते घर जाइ ॥१०॥

खाइए का ?—गम।

गम समान अउषद नही, जो कोइ गम को खाइ।
अमरिष गम को खाइआ, दुरबासा बीलाय ॥११॥

पीजिए का ?—तामस।

तामस पी सीतल भआ, फिरि कछु रही न प्यास।
भृगु मुनि मारयो लात सो, प्रभु पद गहो जिमि दास ॥

राखी कवन ?—अपना धरम।

अपने अपने धरम मो, सब दिढ़ ह्वं सब काल।
निज ध्रम अपने जिव गहो, जहँ जाहु होहु निहाल ।१३।

त्यागिए का ?—मेरा कछु नहीं।

त्यागन ऐसा कीजिए, सब कछु एकै बार।
सब प्रभु का, मेरा नहीं, निरभै किए विचार ॥१४॥

जानिए का ?—सब प्रभु का।

जानिय मन बच क्रम सो, सब प्रभु का विस्तार।
ज्यों राखो तुम राम जी, रहिए तेहि प्रकार ॥१५॥

छ ड़िए का ?—अभिमान।

छोड़ा जब अभिमान को, सुखी भआ तब जीव।
भावै कोऊ कछु क , मेरे हियरे पीव ॥१६॥

९ जनम = जन्म (ह)। ११ अमरीष = अमरीषी (ह)।
१३ ह्वं = है (ह)। ध्रम = धरम (ह)।
अपने = अपनो (ह)। जहँ जाहु = जहाँ जेह (ह)।

पाआ का ?—सुख

पाआ सुख गुरदत्त सो, थीर भआ मन मोर।
निरखेव आप जगत्र मो, केवल नंदकिसोर ॥१७॥

देखिए का ?—आतमराम।

देखिय सब मो राम है, एकै रस भरिपूर।
ज्यों ऊँख ते सब बनो, चीनी, सक्कर, गुर ॥१८॥

मेटाइए का ?—भ्रम।

भ्रम मेटा जब जानिए, अचरज लगे न कोइ।
एह लोला है राम की, बूझव बिरला कोइ ॥१९॥

लखिए का ?—अपना रूप।

लखिअे अपने रूप को, थीर भआ सब अंग।
कहन करन कछु ना रहो, ज्यों का त्यों है प्रांग ।२०।

सुनिए कवन ?—गुन की बारता।

सुनिए गुन को बारता, ऐगुन लीजे नाहिं।
हंस छीर को गहत है, नीरहि त्यागो जाहि ॥२१॥

साधिए कवन ?—इन्द्री।

साधिए इन्द्री प्रबल है, जिन्हते उठी उपाधि।
मन राजा बहकावते, पायो बड़ो असाधि ॥२२॥

मारिए कवन ?—आसा।

मारिय आसा-साँपिनी, जिन्ह डसिया संसार।
ताको अवषध मवन है, इह गुर मत्र विचार ॥२३॥

दीजिए कवन ?—दान।

भूखे को कछु दीजिए, जथासक्ति जो होय।
ता ऊपर सीतल बचन, लखो आतमा सोय ॥२४॥

बड़ा पाप कवन ?—हिंसा।

बड़ा पाप परतच्छ है, हिंसा सम नहिं कोय।
धरमराय लेखा करै, तब सब नउबति होय ॥२५॥

बड़ा कवन ?—पुन्य।

पुन्य बड़ा उपकार है, जीव दया चित राखि।
देखो हृदे बिचारि के, बेद पुरान है साखि ॥२६॥

खुसबोइ कवन ?—जस की।

खुसबोइ जस की विमल, फइलि रही चहुं ओर।
मलाआगिरि सुभ गंध है, प्रगट सबै जग सोर ।२७।

२१. नीरहि = नीर (ह)।

दुरगंध कवन ?—अजस को ।

अपजस में दुरगंध है, नीको लगे न कोय ।
जैसे मल के निकटहि, बैठि सके नहि कोय ।।२८।।

धीर कवन ?—बुध्य ।

धीर बुध्य सोइ जानिए, समुझै सब की रीत ।
उनके ऐगुन आपु में, कबहि न लीजे मीत ।।२९।।

ठहराइए का ?—अपना मन ।

मन ठहरा तब सब मिला, अनसुझ सबै सुझाय ।
ज्यों अँधियारे भवन में, दीपक बारि देखाय ।।३०।।

होनी कवन ?—होनहार ।

होनी होइ सो होइहै, होनिहार सो होय ।
रामचंद्र बन को गए, सुख इच्छित, दुख होय ।।३१।।

जो यह तीसा विचार करि, राखे हिय मों मोय ।
सो प्रानी सुख को लहै, दुख दरसे नहि कोय ।।३२।।

( सवैया )

भाग जग्यो है पुरब्बिल को,
जब श्री गुरदेव दया करि हेरी ।
ज्ञान कपाट उघारि दियो,
तब मोह निसा ढिग ते मति फेरी ।
थोरहि में समुझाय दियो सब,
थीर कियो चंचल मति मेरी ।
बूझि परयो सब हो घट साहेब,
छूटि गई तब तर्क घनेरी ।

[ कहै कबीर सुनो भाई साधो,
वेद पुरान को मारग टेरो ।
सत नाम सत गुरु जपै,
धाम मिलै सुखसागर केरो ।। ]

इति श्री तीसा जंत्र समाप्तः

## संपादन-विचार

प्रस्तुत पाठ काशी नागरी प्रचारिणी सभा के हस्तलेख के आधार पर संपादित है । इस हस्तलेख में जो संशोधन किया गया है, उसका मूल पाठ पाठांतर में दे दिया गया है, जो ( ह ) द्वारा संकेतित है । खोज रिपोर्ट में प्राप्त अंशों से भी पाठ-शोध में सहायता मिली है । १९०९ वाला पाठ बड़ा भ्रष्ट है, पर वह भी शुद्ध पाठ तक पहुँचाने में सहायक सिद्ध हुआ है ।

## छंद-संख्या विचार

ग्रंथ तीन भागों में विभक्त है—प्रस्तावना, मूल ग्रंथ, उपसंहार । प्रस्तावना में एक सवैया और दो दोहे हैं । उपसंहार में एक दोहा और एक सवैया है । मूल ग्रंथ में यहां केवल २९ दोहे ( ३-३१ ) हैं । नाम के अनुसार इस ग्रंथ में ३० दोहे होने चाहिए । लगता है सभा वाले हस्त-लेख में एक दोहा छूट गया है । खोज-रिपोर्ट २००४ वाले हस्तलेख में मूलग्रंथ में कुल तीस दोहे हैं । इसमें 'ठहराइए का' वाले दोहे की संख्या ३१ और 'होनी कवन' वाले दोहे की संख्या ३२ है, जब कि सभा वाले हस्तलेख में उनकी क्रम संख्या ३०,३१ है । हाँ, सभा वाले हस्तलेख में फल-श्रुति वाले दोहे को मिलाकर कुल दोहा संख्या ३२ है; जब कि यह फलश्रुति वाला दोहा २००४ वाले हस्तलेख में नहीं है । अस्तु, सभा वाले हस्तलेख में मूलग्रंथ का एक दोहा छूट गया है ।

## अभिधान-विचार

'तीसा जंत्र' की भाषा सरल है । पर दो चार शब्द अर्थ की अपेक्षा रखते हैं ।

१. द्वारा सब्द का —५.

द्वारा = मार्ग । द्वारा सब्द का = शब्द मार्ग । गोसाईं तुलसीदासजी ने भी इस अर्थ में इस शब्द का यह प्रयोग किया है—साधन धाम मोक्ष कर द्वारा ।

---

२८. अजस की = अजस का ( ह ) ।

२९. रीत = रीति ( ह ) ।

३१. सो होय — सों होय ( ह ) ।

३२. फल श्रुति वाला यह दोहा खोज रिपोर्ट २००४ वाले हस्तलेख में नहीं है ।

सवैया—पुरब्बिल = पुरबिल ( ह ) । थीर कियो ( खोज १९०९ ) = थीर थौर भयो (ह) । सब ही ( खोज १९०९ ) = सब । तर्क ( खोज २००४ ) = त्रास ( ह ) ।

अंतिम दो चरण सभाहस्त-लेख एवं खोज २००४ वाले हस्तलेख में नहीं हैं ।

२. सस—९

सस के तीन अर्थ हैं—( १ ) शशि य शशि—चंद्रमा ( २ ) शश या शशक—खरगोश, ( ३ ) सस या शस्य—फसल खेतीबारी। 'मानिए सब कछु सस है' जन्म और मरण दोनों को खेतीबारी समझो, फसल समझो, जैसा बोओ वैसा काटो।

३. बीलाय—११

बिलाना का अर्थ है नष्ट होना। 'बिलाय' का ठीक पाठ 'बिललाय' प्रतीत होता है। बिललाना का अर्थ होता है—मारा मारा फिरना, कहीं शरण न मिलना।

४. प्रांग—२०

'प्रांग' संस्कृत का शब्द है। इसका अर्थ है एक प्रकार का छोटा ढोल—ढोलकी, पणव। 'प्रांगण' का भी एक अर्थ ढोल है।

लखिये अपने रूप को, थीर भआ सब अग।
कहन करन कछु ना रही, ज्यों का त्यो है प्रांग।२०।

ढोल ज्यों का त्यों है—स्वतः बजा जा रहा है। इसमें कहने करने की कुछ बात नहीं है। यह प्रतीक है—आत्मा का।

५. उपाधि—२२

उपाधि = उत्पात, उपद्रव।

६. मवन = २३

मवन = मौन, चुप रहना, शांत बैठे रहना।

७. नउबति = २५

नउबति फारसी नौबत का तद्भव रूप है। इसका अर्थ है गति, दशा। नउबति होना = दुर्दशा होना। नौबत बजना = बधाई के बाजे बजना। नौबत होना दुखद है; नौबत बजना सुखद।

अलंकार-निरूपण

तीसा जंत्र जैसे ग्रंथ में अलंकार-चर्चा व्यर्थ है, पर यहाँ एक अलंकार समस्त रचना में व्याप्त दीख पड़ता है। यह अलंकार सामान्यतया बहु-प्रयुक्त नहीं है, अत्यल्प-प्रयुक्त है। खोजने पर इसके उदाहरण मिलते हैं। अतः यहाँ यह उल्लेखनीय हो उठता है। यह अलंकार है—परिसंख्या। यह प्रश्नोत्तर रूप में भी होता है। इसमें किसी वस्तु को सर्व स्थानों से वर्जित करके, एक स्थान पर स्थापित किया जाता है। उदाहरण के लिए केशव का 'मूलन ही की जहाँ अधोगति' परम प्रसिद्ध है।

प्रश्न है—खाइए का ?

उत्तर है—गम खाइए। दाल,भात,रोटी न खाइए—इन्हें वर्जित किया गया। केवल गम खाने की बात कही गई। यह प्रश्नोत्तर परिसंख्या का सूचक है।

उपसंहार

'तीसा जंत्र' उपदेश ग्रंथ है, उपयोगी ग्रंथ है। यह हममें सुसंस्कार उत्पन्न कर सकता है। इसकी फलश्रुति ठीक ही है—

जो यह तीसा विचार करि, राखे हिय में मोय।
सो प्रानी सुख को लहै, दुख दरसे नहिं कोय।।३२।।



- मैं कौन हूँ ? का प्रश्न जब तीव्र हो जाता है तो साधक अपने 'मैं' में ही लीन हो जाता है।
- सम्प्रदाय भिन्न-भिन्न होने पर भी धर्म सर्वत्र प्रयाग की तरह एक ही है।
- मन्दिर वह है जो मन को अन्दर ले जाए। जो मन को बहिर्मुख करे, वह मन्दिर नहीं है।

—जे. आर. मौर्य

# समय बड़ा अनमोल

कु० चावली अन्नपूर्णा

स्कूल के वार्षिकोत्सव का दिन था। सांस्कृतिक कार्यक्रम देखकर मैं रात्रि में घर वापस लौटी थी। भोजन कर जब प्रसन्नचित्त विश्राम के लिए गयी एक अनोखा स्वप्न-सा छा गया। एक-एक कर छायाचित्र-सा मानस पटल पर इस प्रकार मनोरम दृश्य अंकित होने लगा—

जयंत नामक एक लड़का है, जिसका मन पढ़ाई में नहीं लगता। स्कूल जाने का समय हो गया है लेकिन अब भी वह सो रहा है। उसकी माँ भीतरी कमरे से आवाज देती है—जयंत! जयंत!! नाम सुनकर लड़का चौंक उठता है, इधर-उधर देखता है और पुनः चादर से मुँह ढक कर लेटा रहता है। कई बार आवाज देने पर भी जब जयंत नहीं बोलता तब उसकी माँ कमरे में आती है और उसे हिलाकर जगाते हुए कहती है—क्या स्कूल नहीं जाना है? आँखें मलते हुए जयंत बोला—मैं अब स्कूल नहीं जाऊँगा। माँ समझाने लगी—देख कल दादी माँ ने कहा था—'पढ़ोगे-लिखोगे होगे नवाब। खेलोगे-कूदोगे होगे खराब।' जल्दी से तैयार होकर स्कूल जाओ। जयंत कहता है—हमें गुरुजी से बहुत डर लगता है वे कक्षा में खड़ा कर देते हैं और कहते हैं अपना पाठ याद करके सुनाओ। माँ बोली—बेटे वे तेरी भलाई के लिए ही तो कहते हैं। जाओ जल्दी मंजन करके तैयार हो जाओ। आज तुम्हारा कोई बहाना नहीं चलेगा।

जयंत बेमन उदास चला जाता है। तब तक उसके पिता जी आ जाते हैं और सारा हाल जानकर उसके गणित का गृह कार्य पूरा करने लगते हैं। माँ इससे असंतुष्टि व्यक्त करते हुए कहती है—ऐसा करके ही आपने उसकी आदत बिगाड़ दी है। जाने दीजिए, जब वह डांट खाकर आएगा तब उसके होश ठिकाने आ जायेंगे। पिता द्वारा भी माँ को समर्थन मिल जाता है और वे वहाँ से चले जाते हैं। माँ जयंत का बाक्स ठीक कर देती है। जयंत के आने पर उसको प्रातःकालीन नाश्ता और स्कूल के लिए टिफिन देती है। नाश्ता करके जाते समय माँ कहती है—तुम बगीचे के रास्ते मत आना, मैं तुम्हें लेने स्कूल आऊँगी। 'अच्छा' कहकर जयंत चुपके से गोली और गेंद बस्ते में रखकर स्कूल के लिए चल पड़ता है। लेकिन मध्यमार्ग में स्थित एक बाग में ही खेलने लगता है।

वह गेंद उछाल कर खेल रहा है लेकिन उसकी आँखें किसी साथी की तलाश में बराबर इधर-उधर देखती रहती हैं। एक लड़का आता हुआ दिखता है। जयंत बोला—दिनेश! आओ दोस्त! हम दोनों मिलकर खेलें। दिनेश—ना बाबा! मेरा तो आज टेस्ट है, मैं नहीं खेलूँगा। दिनेश चला जाता है। कुछ लड़के और इसी मार्ग से गुजरते हैं उन सबसे भी जयंत खेलने का अनुरोध करता है लेकिन कोई भी खेल में पड़कर अपना समय और कार्य नष्ट नहीं करना चाहता। जयंत उदास हो जाता है कि सबको बहुत जरूरी काम से जाना है किसी को भी मेरे साथ थोड़ी देर खेलने का समय नहीं है।

उदास मन अकेले ही वह अब गोली खेलने लगता है। इसी बीच रंग-बिरंगी एक तितली उधर से गुजरती है। जयंत देखकर खुश हो उठता है कि लड़कों ( आदमजात ) के पास खेलने का समय नहीं है, पर मेरा साथ देने के लिए मिल गयी, 'तितली रानी'। अब इसी के संग खेलूँगा। कितनी सुन्दर है! जयंत पुकार उठा—तितली रानी! तितली रानी!! आओ न! हम तुम मिलकर खेल खेलें। तितली ( पास पहुँच कर ) बोली—क्या मुझे बुलाया है? जयंत—नमस्ते तितली रानी। तितली—नमस्ते! जयंत—हाँ तितली रानी, हमने तुम्हें बुलाया है। आओ हम तुम दोनों मिलकर कुछ देर खेल खेलें। तितली—ना बाबा! मुझे तो ढेर सारे फूलों से रस इकट्ठा करना है। मेरे पास अभी समय कहाँ? मैं तो जाती हूं। ऐसा कहकर तितली चली जाती है। जयंत देखता ही रह जाता है।

तब तक एक गिलहरी आती है और पास के एक पेड़ पर चढ़ने लगती है। जयंत खुश हो जाता है कि इसी के साथ खेलूँगा। वह पुकार उठा—गिलहरी! गिलहरी!! आओ न! हम तुम दोनों मिलकर थोड़ी देर खेलें। गिलहरी—ना बाबा! मुझे तो फल इकट्ठे करने हैं, अनाज

खोजने हैं नहीं तो ग्रीष्म बीतते ही बरसात आने वाली है, तब क्या खायेंगे ? जयंत— थोड़ी देर खेल लो फिर फल अनाज खोजो। गिलहरी की असहमतिसे से उदास जयंत की आँखें गिलहरी की पीठ पर स्थित धारियों पर टिक जाती हैं। वह पूछ बैठता है—गिलहरी ! तुम्हारी पीठ पर ये धारियाँ कैसी हैं ? गिलहरी उत्तर देती है—जब सीता जी के वियोग में उन्हें खोजते हुए रामजी वन में दुःखी बैठे थे तो मैं उनके दुःख से दुःखी उन्हीं के पास बैठी थी। मेरी सहानुभूति देखकर भगवान ने मेरी पीठ पर स्नेहवश जो हाथ फेरे, वही सदैव के लिए यादगार बन गयी है। जयंत—अच्छा ऽऽऽ! गिलहरी चली जाती है।

जयंत फिर गेंद के साथ खेलने लगता है। तब तक एक डाल से दूसरे डाल पर उछलता-कूदता एक बन्दर पहुँचता है और खों-खों करते हुए जयंत की ओर देखने लगता है। जयंत बन्दर को देखकर खुश होता है और कहता है—बन्दर मामा नमस्ते ! क्या उछल-कूद कर रहे हो ? अरे आओ मेरे साथ। हम दोनों मिलकर खेल खेलें। खाने के लिए अपना टिफिन भी मैं तुम्हें दे दूँगा। बन्दर—मुझे तो अपनी बीमार माँ के लिए फल ढूँढ़कर ले जाना है। जयन्त—अरे मामा जी ! खेलने से शरीर में और भी स्फूर्ति आती है, थोड़ी देर मेरे साथ खेलो, फिर लगन से माँ की सेवा करना। बदन खुजलाते हुए बन्दर बोला—ना बाबा ! मैं खेल में समय नष्ट नहीं करूँगा। मुझे पहले माँ की सेवा करनी है, और वह भी चला जाता है।

जयंत जेब से बैंजो निकाल कर बजाने लगता है और इधर उधर साथी की तलाश में निगाह भी दौड़ाता रहता है। दूर से कोई जीव ( खरगोश ) आता हुआ उसे दिखाई पड़ता है। जयंत—वह उछलता-कूदता कौन चला आ रहा है भाई ? अच्छा तो खरें दादा। आओ खरें दादा आप कितने अच्छे हैं ? कितना सुन्दर आपका चेहरा है ? कितने सुन्दर आपके कान हैं ? मुझे आप ही जैसे की तलाश थी। आइये, हम दोनों मिलकर कुछ देर खेल खेलें। खरगोश—मेरे पास समय नहीं है। जयंत—क्यों ? खरगोश—अब मैं समय व्यर्थ गँवाना पसन्द नहीं करता। जयंत—क्यों ? खरगोश—आलस्य खराब चीज है। एक बार भोग कर मैंने सीखा है। जयंत—मित्र ! क्यों, किसी मुसीबत में फँस गये थे ? खरगोश—नहीं। शर्त में कछुये ने मुझे हरा दिया था। जयंत—कछुआ ! महामन्द गतिवाला ! वह क्या खाकर तुम्हें हरायेगा ? खरगोश—यही तो सोचने की बात है। एक बार दोनों में एक निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने की होड़ लगी कि देखें कौन पहले पहुँचता है ? जब मैं बहुत दूर निकल गया तब सोचा, कछुआ अभी बहुत पीछे है, थोड़ी देर आराम कर लूँ। नींद आ गई और मैं खर्राटे मारने लगा। नींद खुलने पर जब चला तो देखा कछुआ निरन्तर चलता हुआ लक्ष्य पर पहले ही पहुँच चुका है। जयंत—कोई बात नहीं, आज कोई शर्त तो है नहीं, आओ थोड़ी देर खेल लें फिर चले जाना। खरगोश—ना बाबा ! मैं तो चलता हूँ।

इतने में पिं-का, पिं-का करते हुए मोर उधर से आता है। जयंत—अहाऽऽ कितने सुन्दर पंख हैं ? मोर ! आओ मेरे साथ खेलो न ! मोर—ना बाबा ! मेरे पास समय नहीं है। ( मोर को नाचते हुए देखकर ) जयंत—अरे ! यह अभी नाच रहा है। माँ तो कहती थी कि जब बादलों की काली-काली घटायें छा जाती हैं तब मोर नाचा करते करते हैं। मोर—भाई जब मुझे अच्छा लगता है मैं तभी नाचने लगता हूँ। प्रभात बेला में भी मैं बहुत खुश रहता हूँ। जयंत—मोर ! थोड़ी देर मेरे साथ खेलो। मोर—ना बाबा ! मुझे तो खोडर ढूढ़ना है। जयंत—मोर ! तुम विषधर खा जाते हो ? मोर—हाँ भाई वह तो मेरा भोजन है। जयंत—छिः छिः विषधर ! मोर, तुम्हारे पैर कितने गन्दे हैं ? मोर—मुझे लज्जित न करो। अरे, मैं तो भूल ही गया था, मुझे तो खोडर ढूढ़ना है। मोर भी जयंत के साथ खेल में समय नहीं देता और पंख फैलाते-समेटते, छटा बिखेरते चला जाता है।

जयंत सोचता है जिसको देखो उसी को कोई न कोई काम है। कोई ऐसा नहीं जो थोड़ी देर मेरे साथ खेले। इतने में उसका ध्यान एक अमरूद के पेड़ पर चला जाता है, जहाँ एक तोता अपने चोंच से फल कुतर कर गिराता रहता है। जयंत—कच्चे फलों को क्यों तोड़ रहे हो ? कौन ? मिट्ठू ! आओ मेरे साथ खेलो न। तोता—मुझे तो फलों को इकट्ठा करना है। सबेरे का समय बहुत कीमती होता है। जयंत—आओ न मेरे पास। मैं तुम्हें

अपने साथ घर ले चलूंगा और पिंजरे में रखूंगा। तोता— नहीं मुझे तुम्हारे लोगों के पिंजरे से डर लगता है। तोता भी उड़ कर दूर चला जाता है।

जयंत सोचने लगता है. कितना सुन्दर तोता है, पर सबको काम-काम-काम। कोई भी ऐसा नहीं जो थोड़ी देर के लिए मेरे साथ खेल सके। ऐसा सोचते हुए वह खिन्न हो जाता है। तब तक उस बाग का मालिक जो बगल के झुरमुट में एक कुर्सी डाले पुस्तक पढ़ता हुआ जयंत का तमाशा देख रहा था, जयंत के पास आया और बोला— हाँ बेटा! सूरज की प्रथम किरन यह संदेश लेकर आती है कि सवेरे का समय अत्यन्त मूल्यवान होता है, उसे नष्ट नहीं करना चाहिए, अपितु सबसे उपयोगी काम में लगाना चाहिए।

× × ×

ऐसा था वह छाया चित्र। परन्तु यह छाया चित्र स्वप्न ही नहीं अपितु सांस्कृतिक कार्यक्रम में देखे गये एक एकांगी का पुनरावर्तन था जिसमें समय के मूल्य के प्रति बच्चों को जागरूक किया गया था। मनोरंजन के साथ-साथ उपरोक्त कथानक द्वारा हृदय पर मर्मस्पर्शी छाप छोड़ी गयी थी। मैं सोचने लगी, बच्चे ही क्या कितने ऐसे बड़े लोग भी हैं जो अपना मूल्यवान समय नष्ट करते हैं। जिस प्रकार जयंत गोली, गेंद, बैंजो जैसे खिलौनों से उलझा तो था ही, बाहर से साथी खोजकर उसमें पूरी तरह मसगूल हो जाना चाहता था, उसी प्रकार बड़े लोग भी तो हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोहादि का साज पहले से सँजोये रखते हैं ऊपर से कामना-वासना की सिद्धि के लिए साथ खोजकर मकड़ी की तरह अपने ही द्वारा निर्मित जाल में जकड़ जाते हैं तथा अपना बहुमूल्य समय नष्ट कर देते हैं। तभी तो उस वृद्ध अनुभवी की तरह श्री कबीर साहब ने वर्ष, महीना दिवस, घड़ी ही नहीं अपितु एक-एक श्वांस का मूल्य समझाते हुए जयंत को ही नहीं समस्त संसार को आगाह किया है—

कहता हूँ कहे जात हूँ, कहूँ बजाए ढोल।
स्वांसा खाली जात है, तीन लोक का मोल॥

जो अनमोल समय को नष्ट कर देते हैं और बिना बिचारे कुछ का कुछ कर देते हैं उन्हें बाद में केवल पछतावा ही हाथ आता है।

करना था सो क्यों किया, अब करि क्यों पछताय।
बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ ते खाय॥

शरीर का कोई ठिकाना नहीं है इसलिए आलस्य छोड़कर कर्तव्य में लग जाना चाहिए, और,

काल्ह करन सो आज कर, आज करन सो अब्ब।
पल में परलय होयगी, बहुरि करेगा कब्ब॥

परमार्थ साधकों की ओर संकेत करते हुए भी श्री कबीर साहेब ने कहा है कि एक-एक श्वांस पर भगवान का नाम लेना चाहिए, पता नहीं अगला श्वांस आवे या न आवे। श्वांस रूपी तेल के अभाव में जब जीवन ज्योति बुझ जायगी तब क्या कर सकोगे? तब तो महानिद्रा में दिन-रात सोये ही रहना पड़ेगा, कुछ कर न सकोगे।

स्वांस स्वांस पर नाम ले, वृथा स्वांस मति खोय।
ना जाने इस स्वांस को, आवन होय न होय॥
कबीर निर्भय नाम जप, जब लगि दीवा बाति।
तेल घटे बाती बुझे, सोवोगे दिन राति॥

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि एक-एक क्षण बहुत मूल्यवान है। उसका कुशलतापूर्वक सदुपयोग करना चाहिए। इसीलिए कहा गया है—

क्षणशस्कणशश्चैव विद्यां अर्थं च साधयेत्।
क्षणत्यागे कुतो विद्या कणत्यागे कुतो धनम्॥

---

कृपणेन समो दाता, न भूतो न भविष्यति।
अस्पृशन्नेव वित्तानि, यः परेभ्यः प्रयच्छति॥

कृपण व्यक्ति के समान दाता न हुआ है, न होगा, क्योंकि वह बिना स्पर्श किए ही अपना सारा धन दूसरों को दे देता है।

## श्रद्धाञ्जलि



महामहोपाध्याय पंडित गोपाल शास्त्री 'दर्शनकेशरी'

विश्वप्रतिष्ठित विद्वान् ऋषिकल्प महामहोपाध्याय पंडितराज डा० गोपाल शास्त्री दर्शनकेशरी जी ८ जून १९८३ को ब्रह्मलीन हो गये। वे भारतीय संस्कृति, सभ्यता, भाषा के संरक्षक एवं संवर्धक थे। उन्होंने संस्कृत भाषा एवं समाज के उन्नयन के लिए संस्कृत साहित्य को सरल व्याख्या की और अनेक ग्रंथों का निर्माण किया। वे 'श्री कबीर शान्ति सन्देश' के नियमित लेखक एवं आद्योपान्त पाठक एवं परामर्शदाता थे। उनके ब्रह्मलीन होने से देश और समाज तथा श्री कबीर शान्ति सन्देश की जो क्षति हुई वह अपूरणीय है।

प्रभु से प्रार्थना है कि संतप्त परिवार एवं समाज को उनके अभाव के कष्ट को सहन करने की शक्ति दे। 'श्री कबीर शान्ति सन्देश' परिवार ने उनकी स्मृति में १२-६-८३ को एक 'श्रद्धांजलि सभा' का आयोजन किया जिसमें विभिन्न विद्वानों ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

—सम्पादक

## आवश्यक सूचना

श्री कबीर शान्ति सन्देश हिन्दी मासिक पत्र के सदस्य सन् १९८२ का बकाया शुल्क वं सन् १९८३ का शुल्क मनीआडर द्वारा निम्नलिखित पते पर भेजने का कष्ट करें।

सम्पादक–श्रीकबीर शान्ति सन्देश हिन्दी मासिक पत्र
सी. २६।१ संत कबीर रोड, वाराणसी

केन्द्रीय पञ्जीकृत संख्या आर० एन० ३३०२३/७७ जिला पं० सं० ७९२/७९

# सद्गुरु कबीर की साखी

## गुरु पारख के अंग

गुरु बतावै साध को, साध कहै गुरु पूज।
अरस परस के खेल में, भई अगम की सूझ ॥५४॥

नादी बिंदी बहु मिले, करत कलेजे छेद।
(कोई) तख्त तले का ना मिला, जासो पूछूँ भेद ॥५५॥

तख्त तले की सो कहै, (जो) तख्त तले का होय।
माँझ महल की को कहै, पड़दा गाढा सोय ॥५६॥

माँझ महल की गुरु कहै, देखा जिन घर बार।
कुंजी दीन्हीं हाथ कर, पड़दा दिया उघार ॥५७॥

वस्तु कहिं ढूँढै कहिं, किहि विधि आवै हाथ।
कहैं कबीर तब पाइये, (जब) भेदी लीजै साथ ॥५८॥

भेदी लिया साथ करि, दीन्हीं वस्तु लखाय।
कोटि जन्म का पंथ था, पल में पहुँचा जाय ॥५९॥

घट का पड़दा खोलि करि, सनमुख ले दीदार।
बाल सनेही साँइया, आदि अंत का यार ॥६०॥




ग्राहक-संख्या :
श्री

डाक पञ्जीकृत संख्या : एन० आर० एन० १५६
श्रीकबीर-शान्तिसंदेश
मासिक-पत्र

सम्पादक कार्यालय :
श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था
सी० २६/१, कबीर रोड,
वाराणसी-२२१००१

श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था, वाराणसी के लिए श्यामदास शास्त्री द्वारा संपादित
एवं आर्यावर्त प्रेस, जालपादेवी रोड वाराणसी द्वारा मुद्रित




卐 सत् सत् सोऽहं गुरु 卐 सोऽहं हंसः सद्गुरु शरणम् 卐 ॐ श्रीराम सत्यराम सोऽहं गुरु राम 卐

# श्री कबीर - शान्तिसंदेश

मासिक पत्रिका



वर्ष ६ | अंक ५

मोको कहाँ ढूँढ़ै बंदे मैं तो तेरे पास में।

सद्गुरु कबीर

श्री कबीर शान्ति-सन्देश के आद्य उद्भावक और श्री कबीर कीर्ति मंदिर काशी संस्था के आद्य संस्थापक :—महन्त श्री शांतिदास जी गुरु श्री १०८ श्री पुरुषोत्तम दास जी महाराज साहब, श्री कबीराश्रम, जामनगर [ सौराष्ट्र ]

| संवत् | कबीराब्द | [illegible] |
|---|---|---|
| २०४० | ५८३ | मई १९८३ |

कहता हूं कहि जातहूं, कहूं बजाये ढोल। स्वासा खाली जात है, तीन लोक का मोल ॥






मूल्य : वार्षिक १५) पन्द्रह रुपये  आजीवन २५१) दो सौ इक्यावन  विदेश में १८६) वार्षिक

एक प्रति का मूल्य १)५० मात्र


## श्री कबीर शान्ति संदेश के उद्देश्य

१— विवादों से दूर रहकर सत् का प्रचार एवं प्रसार।

२—श्री कबीर साहब की वाणी एवं उनके उपदेशों की ओर ले चलने का सत्प्रयत्न।

३—प्रेम, दया, सद्भावना, सेवा, एकता, परोपकार एवं सत् चिंतन में प्रवर्तन।


प्रकाशक
श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था
सी. २६/१ सन्त कबीर रोड
वाराणसी – २२१००१

सपादक
श्यामदास शास्त्री



卐 सत् सत् सोऽहं गुरु 卐 सोऽहं हंसः सद्गुरु शरणम् 卐 ॐ श्री राम सत्यराम सोहं गुरुराम

# श्रीकबीर-शान्तिसंदेश

वर्ष ६ ] मई १९८३ कबीराब्द ५८३ [ अंक ५

## चेतावनी

हंसा आप में आप निबेरो।
आपन रूप देख आपहि में, नौ निधि होवे चेरो। टे०॥
जागृत रहे सदा दिलमांही, ज्ञान रसिक ढिग हेरो।
आपा मध्ये आप निहारो, आप मेट सबेरो॥
सुरति आगे निरति कर ले, सिद्धि मिले बहुतेरो।
गृह बन बैठे काम धाम में, राह चलत पग हेरो॥
जागत लागो सोवत सपने, फहम करे फल केरो।
सुषमन के घर फहम करे जब, तुरिया चित्त चितेरो॥
फहम आगे फहम पाछे, फहम दहिने ड़ेरो।
फहम पर जो फहम देखे, सो फहम है मेरो॥
आठो सिधि नवो निधि पावे, सतगुरु फहम निबेरो।
कहैं कबीर भृंगी के कीड़ा, बहुर न कीटहि घेरो॥

# संपादकीय

अण्डज, पिण्डज, स्थावर एवं ऊष्मज इन चार खानियों मे चौरासी लाख योनियाँ हैं। इनकी कर्म और भोग मुख्य धाराएँ हैं। इन्हीं दोनों धाराओं में सम्पूर्ण जीव बहे जा रहे हैं। शास्त्रों ने पिण्डज में मानव योनि को ही कर्म योनि माना है और अन्य को भोग। जो कर्म और भोग से रहित होता है वही इन दोनों के बन्धन से मुक्त होकर परमानन्द प्राप्त कर सकता है।

मानव योनि को प्राप्त जीव शुभाशुभ कर्म करने में सक्षम होता है। इन दोनों कर्मों को करने में यह स्वतन्त्र है। शुभ और अशुभ कर्म के फल भी शुभ=सुखमय एवं अशुभ=दुखमय होते हैं। इन्हीं सुखद और दुःखद कर्मों में यह जीव उलझा रहता है। वह कर्मों के उलझन से छुट-कारा चाहता है। सत् कर्मों के प्रभाव से ही हुए सत्पुरुष का संग प्राप्त होता है। संग में गुण एवं दोष दोनों होते हैं। ये गुण और दोष स्वयं के नहीं अपितु उन्हीं के संसर्ग के हैं। सद्‌गुरु कबीर साहब ने चेतावनी देते हुए कहा है कि—

संगति से सुख ऊपजे, कुसंगति से दुख होय।
कहै कबीर तहाँ जाइये, जहाँ अपनी संगति होय॥

सद्‌गुरु कबीर साहब अपनी संगति जहाँ हो वहीं जाने के लिए कहते हैं। आत्मतत्त्व ही अपना है इसके अतिरिक्त जो भी सांसारिक वस्तुएँ हैं, वे अपनी नहीं हैं। जहाँ आत्मज्ञ की स्थिति है उसी स्थिति पर पहुँचना ही श्रेयस्कर है। जब स्वबोध का भाव होगा तभी दुःख भयंकर मुख फैलाये खड़ा हो जायगा। इसी को दृष्टि में रखकर सद्‌गुरु कबीर साहब ने कहा है कि "अपन पौ आप ही बिसरो॥ जैसे सोनहा कांच मंदिल मंह भरमत भूंकि मरो" कांच के मंदिर में स्थित कुत्ता स्वस्वरूप के ज्ञान के अभाव में भूंक-भूंक कर प्राण दे देता है। वह अपनी ही परछाई को स्व से भिन्न कुत्ता समझ कर ही भूंकता है। जहाँ स्वरूप बोध हैं उसके लिए सद्‌गुरु कबीर ने कहा है कि—

"अपन पौ आप ही में पायो" जब स्वरूप की जान-कारी हो जाती है तब किसी प्रकार का बन्धन या दुःख नहीं रहता। बन्धन और दुःख स्व से भिन्न में होता है। वह भिन्न को देखता है भिन्न को सुनता है और भिन्न को जानता है। वह जो भी कर्म करता है उसका फल उसे प्राप्त होता है। वृक्ष में समान स्वरूप वाले स्थित दो पक्षियों में से एक कुछ नहीं करता केवल देखता भर है किन्तु दूसरा उस वृक्ष के फल खाने में तत्पर है। इसे फल की आशा एवं आवश्यकता ही है। प्रारब्ध-कर्मवश ज्ञानी कर्म करता है किन्तु कर्म के उस फल से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। वह तो जो कर्म करता है वह शरीर-यात्रा के लिए ही। कर्म का सम्बन्ध शरीर और इन्द्रियों से ही है, आत्मा से नहीं। आत्मा तो कमल पत्र के समान कर्म से अलग है। कर्म में लिप्त है तो केवल शरीर और इन्द्रियाँ। यद्यपि ये इन्द्रियाँ एवं शरीर जड़ हैं तथापि चेतन की सत्ता से ये चेतन रूप में दिखाई पड़ते हैं। इस शरीर को चेतन रूप मान कर इस को ही अपना स्वरूप समझ लेते हैं। इसका परिणाम यही होता है कि इसके दुःख से दुःखी एवं सुख से सुखी होना पड़ता है। इसके मरने से या नष्ट होने से मरना और इसके जीने से जीना होता है। स्वरूप ज्ञानाभाव ही दुःख का मूल कारण है। इस अभ्यास से आत्मा का अविनाशी भाव समाप्त हो जाता है। वह स्वयं को (शरीर रूप होने से) विनाशी समझ लेता है। यथार्थ रूप में वह अविनाशी तथा चेतन है।

आज हमारी एकत्व की भावना समाप्त हो चुकी है। हमारा एकत्व ज्ञान विलुप्त हो गया है। हम अपने पूर्वजों की वाणी भूल बैठे हैं जो हमें सही मार्ग का दर्शन करा रही है। हम एक होते हुए भी अपने को भिन्न-भिन्न समझ रहे हैं। यह भेद-दृष्टि ही हमें क्रूर कर्म करने के लिए बाध्य कर रही है। हम अपने स्वरूप को खो बैठे हैं। हमारा स्वरूप क्या है तथा क्या था और हम इसे किस रूप में खड़ा कर रहे हैं? जो रूप हम खड़ा कर रहे हैं वह यथार्थ नहीं है, नकली है और हम इस नकली रूप के लिए परस्पर 'लड़कर आशान्ति का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। न तो यह हमारे पूर्वजों की वाणी है न शास्त्रों का आदेश। सद्‌गुरु कबीर ने सबको समझा कर कहा है—

"को हिन्दू को तुरुक कहावे, एक जिमी पर रहिये।"

# मुक्ताकण

शंभुनाथ राय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय

## सबद ( १२ )

संतो मते मातु जनरंगी।
पियत पियाला प्रेम सुधारस, मतवाले सतसंगी ॥१॥
अरधे उरधे भाठी रोपिन्हि, ले कसाव रस गारी।
मूँदे मदन काटि कर्म कसमल, संतत चुवत अगारी २
गोरष दत्त वसिष्ठ व्यास कपि, नारद सुष मुनि जोरी।
सभा बैठि संभू सनकादिक, तहँ फिरे अधर कटोरी ३
अंबुरीषि औ जाग जनक जड़, सेस सहस मुख पाना।
कहँ लौं गनौं अनंत कोटि लौं, अमहल महल दिवाना४
ध्रुव प्रह्लाद विभीषन माते, मातो सेवरी नारी।
सगुन ब्रह्म माते ब्रिंदावन, अजहूँ लाग षुमारी ॥ ५ ॥
सुर नर मुनि जति पीर अउलिया,
जिन्हि रे पिया तिन्हि जाना।
क़हँहि कबीर गूँगे की सक्कर,
क्यों कर करै बखाना ॥ ६ ॥

चूर्णिका :—मते = मतवाद में। मातु ( संभावित पाठ 'मात' ) = मस्त हो जाते हैं। जनरंगी = अनुरक्त लोग। सतसगी = सच्चे अनुरागी। अरधे उरधे = नीचे और ऊपर स्थित मूलाधार और सहस्रार चक्र। भाठी=भट्ठी। रोपिन्हि= बना ली। कसाव रस = कसैला रस, खमीर, जिससे शराब ओगारी जाती है। मदन = कामना। कसमल = पाप। गोरष = प्रसिद्ध नाथयोगी गोरखनाथ। दत्त = दत्तात्रेय। वसिष्ठ = प्रसिद्ध प्राचीन ऋषि जो कि रघुवंश के गुरु और पुरोहित थे। व्यास = परासर ऋषि के पुत्र जो कि १८ पुराणों के रचयिता कहे जाते हैं। कपि = हनुमान। सुष = शुकदेव जी जो कि वेदव्यास के पुत्र तथा पुराणों के ज्ञाता थे। सनकादिक = ब्रह्मा के चार मानस पुत्र–सनक, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार। अंबुरीषि = अयोध्या के इक्ष्वाकु वंशीय राजा नाभाग के पुत्र अंबरीष। जाग = याज्ञवल्क्य ऋषि जो कि वैशम्पायन के शिष्य थे और राजा जनक के दरवार में रहते थे। जड़ = जड़भरत। सेबरी = राम की भक्त एक नारी जो कि मतंग ऋषि की शिष्या थी।

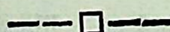
अर्थ:—ऐ संतो, ( विभिन्न मत में ) अनुरक्त जन मतवाद में ही मत्त ( अप्रकृतिस्थ, पागल ) बने रहते हैं, किंतु सत्संगीजन ( सच्चे साधक लोग, सत्संग के माध्यम से ) प्रेम रूपी मधुचषक का ( निरंतर ) पान किया करते हैं और ( सर्वदा ) मत्त ( आनंदविभोर ) बने रहते हैं ॥ १ ॥ ( ये सत्संगी साधक विभिन्न मतमतांतरों के ) रस ( तत्त्व ) को निचोड़ कर कसैला ( अपेय ) रस इकट्ठा कर लेते हैं, फिर ( साधना के क्रम में ) मूलाधार और सहस्रार चक्र की भट्ठी पर चढ़ा देते हैं। पापकर्म ( जागतिक व्यापार ) का परित्याग कर कामनारूपी पात्र को ढँक ( बंद कर ) देते हैं, ( फिर तो वह सुधा रस ) आगे ( भविष्य में ) निरंतर चूने ( स्रवित होने ) लगता है ॥ २ ॥ ( फिर जब ) गोरखनाथ, दत्तात्रेय, वसिष्ठ, व्यास हनूमान, नारद, शुकदेवादि मुनियों को एकत्र कर स्वयंभू मनु और सनकादिकों की सभा बैठती है तो ( उस सभा में सबके ) अधरों पर ( उसी ) मधुचषक का दौर चलने लगता है ॥ ३ ॥ राजा अंबरीष, याज्ञवल्क्य, जनक, जड़-भरत और सहस्र मुखों से पान करने वाले शेष आदि की गणना कहाँ तक करूँ, ( उस मधु चषक के ) दीवाने तो अनंत कोटि तक हैं ( चाहे वे ) अमहल ( गृहविहीन, विरक्त ) हों अथवा महल ( गृहस्थ साधक ) ॥ ४ ॥ (उस प्रेम रस से ) ध्रुव, प्रह्लाद विभीषण ( जैसे पुरुष ) तो मात ही चुके हैं, सेवरी ( नाम की ) नारी भी मात चुकी है। ( इतना ही क्यों ) सगुण ब्रह्म ( कहलाने वाले श्री कृष्ण उसी प्रेम रस से ) वृंदावन में ( ऐसे ) मत्त हुए कि आजतक ( उन्हें ) खुमारी लगी ही है ) ( उनकी प्रेम तंद्रा गई ही नहीं ) ॥ ५ ॥ कबीर साहब कहते हैं कि देवता, मनुष्य, मुनि, यति, पीर तथा औलिया आदि जिसने भी ( उस प्रेम रस को ) पिया है, वही ( उसके स्वाद को ) जान सकता है ( अन्य नहीं )। वस्तुतः उस प्रेम रस का स्वाद वर्णनातीत है ) वह तो गूँगे को खिलाई जाने वाली शक्कर ( के समान ) है जिसका ( जिसके स्वाद का ) बखान वह ( निर्वाक ) करे भी तो कैसे करे ॥ ६ ॥

## १३—सबद

राम तेरो माया दुंद मचावै।
गति मति वाको समुझि परै नहिं,
सुर नर मुनिहिं नचावै ॥ १ ॥
का सेमर के साखा बढ़ये,
फूल अनूपम मानो।
केतिक चात्रिक लागि रहे हैं,
देखत रुवा उड़ानी ॥ २ ॥
काह खजूर बड़ाई तेरी,
फल कोई नहि पावै।
ग्रीषम रितु जब आय तुलानी,
छाया काम न आवै ॥ ३ ॥
अपने चतुर अवर को सिखवै,
कनक कामिनि सयानी।
कहँहि कबीर सुनहु हो संतो,
रामचरन रति मानी ॥ ४ ॥

चूर्णिका :—दुंद = उपद्रव, बखेड़ा। गतिमति = चाल और बुद्धि, बुद्धि की चाल, चालाकी। सेमर = जगत। साखा = वैभव। फूल = पुत्र कलत्रादि जागतिक संबंध। चात्रिक = स्वाति जल की अभिलाषा में जीवन पिपासु चातक की भाँति अभिलाषुक जन। खजूर = मायारूपी खजूर। सयानी = सयानापन, छल-छद्म, चतुराई।

अर्थ :—ऐ राम, ( समस्त जगत को उत्पन्न करने वाली ) तुम्हारी माया ही ( सारा ) उपद्रव मचाए रहती है। उसकी चालाकी ( किसी की ) समझ में आती ही नहीं और वह ( सामान्य जीवों को कौन कहे ) देवता, मनुष्य तथा मुनियों को भी ( अपनी ) चाल से नचाया ( परेशान किया ) करती है ॥ १ ॥ ( बात विचारणीय है कि ) सेमल की साखा ( जागतिक ऐश्वर्य ) की अभिवृद्धि से लाभ क्या ? ( प्रत्यक्ष ही देखा जाता है कि इस सेमल के ) फूल ( पुत्र कलत्रादि ) को अनुपम (परम आह्लादकारी, समझ कर अनेकानेक चातकवृत्ति वाले जन ( उसकी सुरक्षा में ) लगे रहते हैं ( किंतु परिणाम क्या होता है कि ) देखते ही देखते ( उस फल से ) रुई उड़ने लगती है। ( अर्थात् सारा जागतिक ऐश्वर्य नष्ट हो जाता है और जीव को केवल पश्चात्ताप ही करना पड़ता है। ) ॥ २ ॥ ऐ ( माया रूपी ) खजूर, तेरा बड़प्पन है भी तो किस बात में ? ( ऊँचे होने के कारण ) तेरे फल कोई पाता ही नहीं। जब ग्रीष्म ऋतु आ जाती है तो ( क्षीण होने के कारण ) तेरी छाया भी किसी के काम नहीं आती ( अर्थात् अंत समय में सारे जागतिक ऐश्वर्य जीव की रक्षा करने में असमर्थ होते हैं ) ॥ ३ ॥ कबीर साहब कहते हैं कि ( यह माया ) स्वयम् तो ( परम ) चतुरा है, साथ ही अन्य को भी ऐश्वर्य, रूप तथा छल-छद्म-परायणता ही सिखाती है। ( अतः ) ऐ संतों सुनो, ( इस जगत के ऐश्वर्य से पराङ्मुख होकर ) राम के चरणों में अनुरक्त हो जाओ ॥ ४ ॥



( पृष्ठ १११ का शेषांश )

होगी तब तक हम देवता को भी प्राप्त नहीं कर सकते। हमें परमात्मा को प्राप्त करने के लिए सद्गुरु शरणापन्न होना पड़ेगा। अन्त में आपने सभी कार्यकर्ताओं एवं ग्रामवासियों को अनन्त आशीर्वाद तथा इस कार्य के सहयोग के लिए साधुवाद दिया। श्रीमान् बाबू हरिश्चन्द्र जी चौधरी इस सम्मेलन के कार्य क्रम में पं॰ श्री आचार्य साहब का दाहिना हाथ बने रहे। आपने उन्हें अनन्त आशीर्वाद प्रदान किया। ग्रामवासियों ने आपके इस कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की और इस प्रकार संत समागम का कार्यक्रम प्रत्येक वर्ष करने का पं॰ श्री आचार्य साहब से आग्रह किया।

सायं पाँच बजे पं॰ श्री आचार्य साहब के कर कमलों से सात्विक यज्ञ, आरती चौका सम्पन्न हुआ। प्रसाद वितरण केबाद सभी की भाव भीनी बिदाई हुई।

—प्रेषक–महन्त चरणदास शास्त्री

# श्रीमन्त माधवदेव के बड़गीत

डा० लक्ष्मीशंकर गुप्त, काशी विद्यापीठ, वाराणसी

## ४८—राग धनाश्री

ध्रु०—संख चक्र गदा पंकजपानि,
गरुड़ासन वनमाली गोपाल।
पीतांबरधर स्यामसुंदर हरि,
भकतजनर भयहारी दयाल॥
पद—परमानंद परम पुरुसोतम
परम करुन रस-सिंधु गोपाल।
कमलाकांत कमलदललोचन,
भकतजनर निज बंधु दयाल॥
जगदानंद जगत-जन-जीवन,
जदुकुल कुमुदिनि इंदु गोपाल।
माधव दीन मुरुखमति मागय,
भकतिरतिर एकु बिंदु दयाल॥

भकतजनर भयहारी=भक्तजनों का भय हरण करने वाले। निज=अपने, आत्मीय। जदुकुल···इंदु=यदुवंश-रूपी कुमुदिनी को प्रफुल्लित करने के लिए चंद्रमा। भकतिरतिर=भक्ति-रूपी प्रेम का।

## ४६—राग माहुर

ध्रु०—मन मेरो हरि सँग मित बधायो।
ऐसन जतन किए, सब छोड़िए,
सब संगति रति लायो॥
पद—सज्जन साथहि एकु मिलन किए,
अवनिसि हरिगुन गायो।
तेजिए सयल मनोरथ आवरि,
हरिपदे प्रेम मिलायो॥
पुनु-पुनु आयागमन एरायो,
माया भ्रम बहुरायो।
कहय माधव हरिपद करि सेवा
परमानँद सुख पायो॥

मित बंधायो=मित्रता बाँध ली है। ऐसन···छोड़िए=ऐसा यत्न कर के (उद्देश्य बना कर और) सब (सांसारिक प्रपंच) छोड़ कर। एकु···किए=एकांत भाव से मेल कर के। अवनिसि=(अहर्निश) रात दिन। तेजिए=तज कर, छोड़ कर। सयल=सकल, सब। आवरि=अन्य, अपर। आयागमन=(आवागमन) गमनागमन। एरायो=छूट गया। बहुरायो=लौट गया, लौटा दिया, दूर कर दिया।

## ५०—राग भटियाली

ध्रु०—हरि ए करुनामय,
मइ पापी किना काम कैलो।
ए भवसागरे मजि मैलो,
अभय चरन ना सेविलो॥
पद—शव सम तनु आपुनि मानिलो,
तुमि आतमा हरि तोमाक न जानिलो॥
किना मइ छार बर अगियान,
तोमाक तेजिया कैलो धनर धियान॥
मइ बर पापीर पुनु आगे,
द्विज अजामिल केवागुने लागे॥
आवर पापीक कैवा गने।
अधमेर मोर कि हैब मरने॥
आपुनारे मइ नासिलो आपुने।
पतितपावन नाहि तुमि बिने॥
आन किछो मोर नाहिके भारसा।
कहय माधव मूढ़ मतिनासा॥

मइ=मैं। किना···कैलो=क्या क्या कर्म नहीं किया। मजि=मज्जित हो कर, डूब कर। मैलो=मर गया। नासेविलो=सेवित नहीं किया, सेवा नहीं की। शव···मानिलो=(तुम्हारी भक्ति से रहित अपने इस) शव (लाश) के समान शरीर को अपना (आत्मीय) माना (समझा)। तुमि···जानिलो=हे हरि, तुम (मुझ में समाहित) आत्मा हो। (मैंने) तुमको जाना ही नहीं। छार=(क्षार), राख, निस्सार वस्तु। किना···छार=मैं राख के समान तुच्छ हूँ। बर=बड़ा, बहुत। अगियान=

अज्ञान, ज्ञानरहित। तोमाक···धियान=तुमको तज कर धन का ही ध्यान किया। मइ···लागे=फिर (देखता हूँ कि) मुझ महापापी के आगे (प्रख्यात पातकी) अजामिल ब्राह्मण कुछ (भी) नहीं प्रतीत होता (वह तो साधारण पापी था, मैं बहुत बड़ा हूँ)। आवर···गने=' अजामिल के अतिरिक्त) अन्य (साधारण) पापियों को कौन गिने (उनकी क्या गिनती है)? हैव (उच्चारण—होइबो) =होगा। अधमेर···मरने=मुझ अधम का मरने पर क्या होगा? आपुनारे···आपुने=मैंने अपने से अपना नाश कर लिया। भारसा (उच्चारण भारोसा)=भरोसा, आश्रय। आन···भारसा=मेरे लिये और कुछ भरोसा नहीं है, तुमको छोड़ कर मेरा कोई आश्रय (शरण) नहीं है। मतिनासा=नष्टबुद्धि, बुद्धिहीन।

## ५१—राग भटियालो

ध्रु०—दयार ठाकुर हरि, जदुमनि ओ राम,
अधमे तोम्हार नाम डाके।
कृपा करा नारायन, आम्हार चवल मन,
तोम्हार चरने जेन थाके॥

पद—एक विप्र अजामिल, मदमति पापसील,
पुत्रभावे सुमरि तोम्हारे।
कर्मबंध करि नास, बैकुंठे पाइलेक बास,
इटो आति विदित संसारे॥
तातो कोटि-कोटि गुन, पापमति निदारुन,
तोम्हार नामेर कैलो आसा।
परम पतित आमि, पतितपावन तुमि,
इ जानिया करिछो भारसा॥
धन्य धन्य कलिकाल, धन्य नरतन भाल,
धन्य धन्य भारतवरिखे।
तप जप जज्ञ तेजि, तोम्हार चरने भजि,
तुवा नामे घुषियो हरिखे॥
सकल निगमे कय, अतये तोम्हाक पाय,
आक भाले जानि नारायने।
माधव मुरुख मति, तुवा पावे जदुपति,
सत्ये सत्ये पसिलो सरने॥

दयार ठाकुर=करुणा के ठाकुर, परम कारुणिक स्वामी। अधमे=अधम (माधवदेव)। डाके=पुकारता है। तोम्हार···थाके=जिससे तुम्हारे चरणों में रह सके। पुत्रभावे·· तोम्हारे=तुम्हें पुत्रभाव से स्मरण कर के। पाइलेक=पाया। इटो आति=यह भली भाँति। तातो··· गुन=उससे करोड़ों गुना अधिक। पापमति ··आसा= (मुझ) अत्यंत दारुण पापमति ने तुम्हारे नाम की आशा की है। भारसा (उच्चारण—भारोसा)=भरोसा। इ·· भारसा=यह जान कर (तुम्हारा) भरोसा करता हूँ। भाल=भला, उत्तम। तेजि=तज कर। तुवा···हरिखे= तुम्हारा नाम हर्षपूर्वक घोषित करता हूँ। निगमे कय=वेद कहते हैं। अतये=यहाँ, इस संसार में। आक भाले जानि= पुनः भली भाँति जान कर। तुवा पावे=तुम्हारे चरणों में। सत्ये सत्ये=यथार्थतः। पसिलो सरने=शरण में प्रविष्ट हुआ।

## ५२—राग बराड़ी

ध्रु०—हरि कमलाकांत, कमलदल लोचन
चरन सेवित सुर सिवं।
आदि परम कारन परमानद
परम पुरुष जगजीवं॥

पद – माधव मधुर मुरुति मधुसूदन
दनुजदमन बलशाली।
कंकनहार रंजित मनिकुंडल
पीत बसन वनमाली॥
कुवलय कंस केसि मल्ल मोड़ल
अघ बक धेनुकनासी।
हरिपद कमल अमल मकरंदरस
माधव दीन अभिलाषी॥

मुरुति=(मूर्ति) रूप। रंजित=सुशोभित। कुवलय=कुवलयापीड हाथी जिसे कृष्ण-बलराम ने मारा था। केसि=अश्वरूपधारी दैत्य जिसे कृष्ण ने मारा था। मोड़ल=मर्दित किया, नष्ट किया। अघ, बक, धेनुक= अघासुर, बकासुर और धेनुकासुर नामक दैत्य।

# ग्राम बनहल्दी ( राजनाद गाँव ) में बृहद् सत्संग महायज्ञ

ता० २५-४-८३ को ग्राम बनहल्दी के सुरम्य प्रांगण में प्रात: १० बजे अध्यक्ष श्री राम प्रसाद जी ने मुख्य अतिथि श्री कबीर शांति संदेश के सम्पादक श्यामदास जी शास्त्री साहब तथा पं. श्री १०८ आचार्य महेश साहब का माल्यापर्ण कर स्वागत किया। आपने दोनों का भाषण से स्वागत करते हुए ग्रामवासियों को संबोधित कर कहा कि आप सभी सब कार्य रूचिपूर्वक करेंगे तो हम महान् पुरुषों को बार-बार बुला सकते हैं और उनकी वाणी रूपी गंगा में गोता लगाकर आनंद का अनुभव करा सकते हैं। बाबू श्री श्यामसुन्दर जी ने श्रुति सुखावह सस्वर स्वागत भजन गाया। महन्त श्री चरणदास जी शास्त्री साहब ने "नमो बोधमय शांति निकेतन" के सस्वर गान से सबका स्वागत किया। सन्त श्री सुक्खूदास ने "गुरु भक्ति मुक्ति ठिकाना है", श्रीमती कुन्ती देवी ने "गुरु बिन कौन सहाई नरक मे" सुश्री सुनीता एवं प्रेमिन बाई ने—"अन्दर में जोति उसका बाहर करे उजाला" तथा श्रीमती भुवन्तीनबाई ने "संकल्प हो हमारा इन्सान हम बनेंगे" आदि भजन स्वर के सहित गाकर सभी को मंत्रमुग्ध कर दिया। सन्त श्री अन्नूदास साहब ने जिह्वा, एवं भांग, तम्बाकू के त्याग के विषय में 'बांध ले जाही चपरासी', चेतावनी भजन सुनाकर सभी को मंत्र मुग्ध कर दिया। सन्त श्री तपस्वी साहब ने कहा कि गुरुदेव की वानी अनमोल है उनकी वाणी हृदय में दया, क्षमा आदि भाव उत्पन्न कर सकती है।

'श्री कबीर शांति संदेश' के सम्पादक श्री श्यामदास जी शास्त्री साहब वेदान्ताचार्य ने कहा कि प्राणी नाना प्रकार के बन्धनों से बंधा हुआ है। कामना सबसे बड़ा बन्धन है। इसी कामना के द्वारा प्राणी का आवागमन होता है। कामना के बाद मोह बड़ा बंधन है। इससे संपूर्ण संसार किंकर्तव्य विमूढ़ होकर बंधा हुआ है। इस बंधन से जीव स्वयं छूट सकता है या तो गुरु ही छुड़ा सकता है। आपने सद्गुरु कबीर साहब की वाणी "बहुबंधन से बांधिया एक विचारा जीव, की बल छूटे आपना, कि रे छुड़ावै पीव।" का उद्धरण देते हुए अपना प्रवचन पूर्ण किया। सन्त श्री सुकृतदास जी साहब ने सुकरात का उदाहरण देते हुए सन्त के स्वरूप को बताया और "उतिष्ठत जाग्रत···" का उदाहरण देते हुए सभी को मोह निशा से जागने को कहा।

२६-४-८३ के कार्यक्रम में सर्व प्रथम श्रीमती भुवन्तीन बाई तथा हेम कुमारी ने स्वागत भजन स्वर के सहित गाया। श्रीमान् बाबू श्यामसुन्दर जी गुप्त ने "रे मन मूरख जब तक सत्यनाम नहिं गायेगा तो अन्त समय पछतायेगा" गाकर सभी को सचेत कर दिया। गीताबाई ने "घुंघट के पट खोल रे तोहि पिया मिलेंगे" तथा भजन मण्डली बनहल्दी ने "सत्यनाम की जय निजनाम की जय साहब कबीर की जय, जय" को सुन्दर लय, स्वर से सुनाकर सबको आह्लादित कर दिया। सन्त श्री कन्हैया दास जी ने मानव जन्म की सफलता पर प्रवचन किया।

बाबू हरिश्चन्द्र चौधरी ने कहा कि आज कबीर पंथ बिखरता जा रहा है उसे एक सूत्र में बाँधने के लिए अखिल भारतीय कबीर पंथ समाज के प्रचार प्रसार की नितान्त आवश्यकता है। प्रारम्भ से ही आपने सत्संग सभा का संचालन किया। सर्वदर्शनाचार्य श्री श्याम साहब शास्त्री ने कहा कि मानव जीवन की सार्थकता सत्कर्मों को करते हुए सदवस्तु को प्राप्त करने में हैं।

स्थानाधिपति पं. श्री १००८ आचार्य महेश साहब ने 'करले जतन सखि सांई मिलन की" सद्गुरु कबीर साहब के इस पद की विशेष व्याख्या करते हुए कहा कि वज्र-किवाड़ के ताला खोलने की कुञ्जी केवल सद्गुरु के ही पास है, वही उस कुञ्जी को बता सकते हैं जिस ताला के खुलने पर जनम, मरण का मार्ग समाप्त हो जायगा। आपने बताया कि जब तक तन मन समर्पण नहीं करते तब तक यह कुञ्जी नहीं मिल सकती। उसको प्राप्त करने के लिए तन मन अर्पण करना आवश्यक है। आपने "न देवो विद्यते काष्ठे, न पाषाणे न मृण्मये। भावो हि विद्यते देवः तस्मात् भावो हि कारणम्" का उद्धरण देते हुए भाव में ही देव स्थान बताया। जब तक हमारे अन्दर भावना उत्पन्न नहीं

( शेष पृष्ठ १०८ पर देखें। )

# बन्धन : अविवेक

कु० चावली अन्नपूर्णा

रहि सुपंख बन्धन पड़ा, सूवा के बुधि नाहिं।
अकिल बिहूना मानवा, यों बन्धा जग माहिं॥

श्री कबीर साहेब के उक्त उपदेशानुसार विवेक के अभाव में सुन्दर मनहर पंखवान तोता बन्धन में आ जाता है। मनुष्य की भी वही गति है। विवेक के अभाव में जगत का होनहार सर्वश्रेष्ठ प्राणी होते हुए भी संसार-बन्धन में पड़ा रहता है। लेकिन आज हम एक ऐसे तोते की चर्चा करने जा रहे हैं, जो विवेक के सहारे अपने को बन्धन मुक्त करा सका।

एक सौदागर एक तोते को खरीद कर लाया था और अपने यहाँ रंगीन-चमचमाते, सुन्दर व कीमती पिंजड़े में रखे हुए था। एक दिन जब सौदागर उसे चना खिला रहा था, तोता बोला—'मुझे पिंजड़े में रखने से तुम्हें क्या लाभ है? यदि तुम मुझे मुक्त कर दो तो मैं तुझे तीन अनमोल बातें बताऊँगा। पहली बात तब बताऊँगा जब तुम मुझे पिंजड़े से निकाल कर अपनी हथेली पर रखोगे। दूसरी बात तब बताऊँगा जब मुझे अपनेमकान की छत तक जाने की स्वीकृति दोगे और तीसरी बात तब बताऊँगा जब तुम अपने बगीचे के वृक्ष तक जाने की छूट दोगे।'

सौदागर कुछ देर तक सोचता रहा और तदनन्तर पिंजड़े का द्वार खोलकर तोते को अपनी हथेली पर रख लिया और पहली बात सुनाने को कहा। तोता बोला—'कोई भी क्षति हो जाय, चाहे वह प्राणहानि के समान ही क्यों न हो, दुःखी नहीं होना चाहिए।' सौदागर ने विचार करते हुए कहा—'बहुत अच्छी बात है। उसने तोते को छत पर जाने के लिए छोड़ दिया। छत पर बैठकर तोते ने दूसरी बात सुनाई—'जब तक अपनी आँखों से देख न लो तब तक किसी बात पर विश्वास न करो।' सौदागर को यह नीतिपूर्ण सलाह बहुत ही प्यारी लगी और उसने तोते को वृक्ष पर जाने की छूट दे दी। पेड़ पर पहुँच कर तोता बोला—'मेरे पेट में दो अनमोल हीरे हैं, यदि तुम चाहते तो मेरा पेट चीरकर ले सकते थे।' यह बात कान तक पहुँचते देर नहीं मानों सौदागर पर तीर चल गया और उसने पहले अपनी छाती को पीटा फिर मस्तक पकड़ बैठ गया।

सौदागर की दशा देखकर तोता बड़ी तेज ठठाकर हँसा और बोला—'हो न मूर्ख? मैंने अभी-अभी कहा था कि जब तक किसी बात को अपनी आँखों से न देखो तब तक विश्वास न करो लेकिन तुम हीरे की चर्चा सुनते ही विश्वास कर दुःखी हो गये। जब कि यदि मेरे पेट में हीरा (पत्थर) होता तो मैं कब का मर चुका होता।' सौदागर ने राहत की सांस ली और बोला—'अच्छा तीसरी बात बताओ।' तोता बोला—जब दो बातों को संभाल नहीं पाये तो तीसरी बात कहने से भी क्या लाभ? ऐसा कहकर हँसता हुआ तोता नील-गगन में उड़ गया।

आशय यह कि विवेक द्वारा तोता स्वयं को मुक्त करा सका, फिर मनुष्य यदि विवेक से काम ले तो संसार-बन्धन से मुक्त क्यों नहीं हो सकता, परन्तु

अकिल विहूना मानवा, जानै नहीं गंवार।
जैसे कपि परवश परचो, नाचै घर घर बार॥

बन्दर ही कौन कहे बन का राजा सिंह भी अविवेक के कारण अपने को नष्ट कर लेता है।

अकिल विहूना सिंह ज्यों, गयो शशा के संग।
अपनी प्रतिमा देखिके, भयो जु तन को भंग॥

पशु-पक्षी-मनुष्य सबके बन्धन का कारण अविवेक ही है विवेकहीन व्यक्ति नेत्रहीन के समान है उसे परमार्थ तत्व दिखता नहीं, इसलिए वह बन्धन के कारणों को जान नहीं पाता।

अकल विहूना आंधरा, गज पर फन्दे आय।
ऐसे सब जग बन्धिया, कहा कहूँ समुझाय॥

इसलिए मुक्ति के जिज्ञासुओं को विवेक धारण करना चाहिए जिसका मुख्य स्रोत एक मात्र सद्गुरु की कृपा है जो अविवेक रूपी आवरण का निवारण कर विवेक चक्षु देकर प्राणी को निर्बन्ध कर देता है।

# दुःख सुख — जीवन की धारा

अनिरुद्ध त्रिपाठी, एम० ए०

कहते न बने, सहते न बने,
मन ही मन पीर पिरेबो करे।

दुःख की व्यथा बड़ी ही निराली है। मानव जब कभी सोचने, समझने, परखने की कोशिश करता है, तब मन यह कहता है कि वह क्षण दुःख की ऐसी अवस्था है जिसके अन्तर्गत वह अपनत्व, स्वार्थ, छल एवं प्रेम की की सच्ची परख पाता है।

वास्तव में जीवन एक ऐसा स्थल है, जिसके संघर्ष पथ पर चलना ही सार्थकता है। मेरे गुरुदेव कहते हैं—"जीवन के हर अड़ंगे का स्वागत करने के लिए हमेशा तत्पर रहो। जीवन किस पक्षी का नाम है? जब यह बात मानव के स्मृति पट पर अंकित होती है तब विवेकी मन झूम उठता है और यह कहने पर उतारू हो जाता है कि जीवन संघर्ष की प्रतिच्छाया है जन्म और मृत्यु के बीच की लक्ष्मण रेखा है। जिस प्रकार एक सिक्के के दो पहलू होते हैं, उसी प्रकार जीवन के भी दो पहलू होते हैं एक सुख के नाम जाना जाता है तो दूसरा दुःख के नाम से पुकारा जाता है। संयोग-वियोग, सुख-दुःख उसी प्रकार मानव के पीछे लगे रहते हैं जिस प्रकार रात और दिन। इसका बँटवारा भी विधाता उनके कर्मों से करता है। इनके अच्छे और बुरे कर्म ही सुख दुःख के सर्जक होते हैं।

## मन का विकल्प

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि "चंचलं हि मनः कृष्ण" अर्थात् मन जो है वह चंचल है और उसे विवेक रूपी लगाम से बाँधना पड़ता है। मन सदैव गति शील है। अपने को मन के ऊपर नहीं छोड़ना चाहिए। मन हमें रस, रूप, गन्ध, शब्द, स्पर्श की ओर आकृष्ट करना चाहता है लेकिन इसमें अपने को दलित द्राक्षा की भाँति निचोड़ना पतन की ओर ले जाना है। अतः हमें सबसे पहले अपने मन को संसार से अलग कर परमात्म में केन्द्रित करना होगा। संसार में उलझना उचित नहीं। बिहारी ने भी यही चेतावनी दी थी—

ज्यों-ज्यों सुरभि भज्यो चहत, त्यों-त्यों उरझत जात।

तथा तुलसी बाबा ने भी मन को सम्बोधित करते हुए कहा था—

मन पछितेहे अवसर बीते।

## माया का प्रसार

मानव जीवन माया में प्रारंभ से ही आबद्ध हो जाता है। यह अपने त्रिगुणात्मक स्वरूप से मानव को डँसती है, जो भी एक बार इस नागिन के करीब आया वह डस गया। फिर न तो कोई दवा ही काम आती है और न जंत्र-मंत्र ही अपना असर दिखा पाते हैं। इस परिस्थिति को देखते हुए कबीर साहेब को कहना पड़ा था—

माया महा ठगिनी हम जानी।

इस संसार रूपी बाजार में सब कुछ बिक जाता है यह सब माया का ही बाजार है। किसी ने ठीक ही कहा है—

बाजार है वो बाजार जहाँ,
दुनियां के चमन बिक जाते हैं।
ऐसे वैसों का क्या कहना,
मुर्दो के कफन बिक जाते हैं॥

यही माया जब अपने सर्वोच्च शिखर पर होती है। तब मानव की दृष्टि पर पर्दा पड़ जाता है और उसका विवेक शून्य हो जाता है। कुछ भी सुधि-बुधि नहीं रहती। अगर मानव उससे निकलना चाहे तो भी वह अपने को 'भइ गति साँप छछुंदर केरी' की भाँति माया से अलग होने में असमर्थ पाता है। मन को शान्ति नहीं मिलती और वह दुःख की ओर बढ़ता जाता है। उसे कोई भी आलोक-किरण दिखाई नहीं देती। वह डूबता ही चला जाता है। भगवान् मनु; भगवान् राम; भगवान् कृष्ण, भगवान् बुद्ध, भगवान् शंकर, यहाँ तक कि विधाता भी माया के प्रपंचो में आबद्ध हुए। अपने को माया के

प्रकोप से बचा लेना ही जीवन की सार्थकता होगी। कबीर साहेब ने माया के बारे में समाज को बताया है उनका कहना है —

माया दीपक नर पतंग भ्रम-भ्रम इवै पडंत।
सद्गुरु की किरपा भई एक आध उबरंत॥

### स्वार्थ की प्रबलता

स्वार्थ मानव जीवन की बड़ी विचित्र कड़ी है। इसके बिना मानव अपने को अधूरा समझता है। पिता-पुत्र, पति-पत्नी, मित्र, यहाँ तक कि पूरा समाज इसी आधार पर एक-जुट होते हैं। पिता इस स्वार्थ से पुत्र का पालन करता है किवह उसके बुढ़ापे की लकड़ी हो, क्या यह उसे प्राप्त होता है? यह उस पिता के दिल से पूछने पर पता चल सकता है। पत्नी इस स्वार्थ से पति से प्रेम करती है कि उसकी आवश्यकताएँ पूर्ण होती रहें। क्या वह अपने पति के प्रति भी उसी प्रकार वफादार एवं उसकी आवश्यकताओं को समझती है? यह तो पति के दिल से ही पूछने पर पता चल सकता है। और मित्र भी इसीलिए प्रेम करते हैं। जैसा किसी ने कहा है: —

जब लगि पैसा पास यार संगही संग डोले।
पैसा रहा न पास यार मुख से नहिं बोले॥

शिष्य गुरु से भी उसी प्रकार प्रेम करता है। गुरु भी उसकी कठिनाइयों को देखें और शिष्य गुरु के सुख का साथी हो दुःख का नहीं। कबीर साहेब ने तो यहाँ तक कहा था—

सीस उतारे गुरु मिले तो भी सस्ता जान।

स्वार्थ की भावना अपने दिल से निकाल देने से ही मानव कल्याण की ओर जा सकता है। केवल एक ही चरित्र मानव जीवन में देखने को मिलता है वह है 'माँ' का जिसमें स्वार्थ की भावना देखने को नहीं मिलती। स्वार्थ की प्रबलता के कारण ही मानव-जीवन विघटित होता चला जा रहा है। जो लोग अपनत्व का भाव रखते भी हैं, वे भी स्वार्थ वश यह आत्मा को छलना है, अपने को धोखा देना है इसी से साहेब ने कहा था —

करना था सो नहिं किया अब काहे पछिताय।
बोया पेड़ बबूल का आम कहाँ ते खाय॥

### अहम् की प्रबलता

अहम् की भावना मानव को एक दूसरे से विमुक्त करती है। अहं आ जाने पर मानव किसी के सामने झुकने नहीं पाता और जब तक झुकता नहीं तब तक उसे ज्ञान नहीं मिलता। जब तक ज्ञान नहीं मिलता तब तक वह पतन की ओर उन्मुख रहता है। जब ज्ञान प्राप्त कर लेता है तब वह अपने को पूर्णतःपतन की ओर जाने से बचा ता है एवं एक नवजीवन व्यतीत करता है। जीवन में समरसता जब तक नहीं होती तब तक जीवन नर्क बन जाता है। सभी एक ही विधाता की कृति हैं सब में प्रेम, दया, ममता की आवश्यकता है। सभी के दुःख अपने ही दुःख हैं, जब तक यह भावना नहीं आयेगी तब तक अभेद की भावना उद्भूत नहीं होगी। परतत्व को प्राप्त करने के लिए अहं की समाप्ति आवश्यक है।

---

- दर्पण बिम्ब को दिखलाता है, उसे ग्रहण नहीं करता। साधना यही है कि साध बिना ग्रहण किए साक्षी होकर देखे।
- अन्तरिक्ष यान जब पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के बाहर हो जाता है, तो वह बिना प्रयास ही उड़ता रहता है, मनुष्य जब संसार के आकर्षण विकर्षण से बाहर हो जाता है तो बिना प्रयास के ही ईश्वर सृष्टि में सहज और आनन्दमय दिव्य जीवन जीता है।
- नदी तैरकर पार किया जाता है किन्तु भवसागर साक्षी भाव से।

—जे. आर. मौर्य

# मुक्ति-द्वार : बीजक

डा० देवकीनन्दन लाल, भागलपुर ( बिहार )

बीजक वित्त बतावे, जो वित्त गुप्ता होय।
(ऐसे)शब्द बतावे जीव को, बूझे विरला कोय॥

महानुभावो,

आप जानते हैं कि महाजनों, सेठों एवं सौदागरों के गुप्त धन का पता उसके बीजक से ही चल सकता है. क्यों कि बीजक में वे ब्योरेबार अपने गुप्त धन का वर्णन रखते हैं। उसी प्रकार कबीर साहब का बीजक ग्रंथ मनुष्यों को सारतत्व, उनके स्व-स्वरूप का बोध कराता है। परन्तु बीजक के इस रहस्यमय शब्द को कोई विरला ही समझ पाता है, जिस पर से भ्रामक शब्द जालों का फन्दा दूर हो जाता है और स्वयं जीव को चेतन स्वस्वरूप का ज्ञान हो जाता है। तभी वह इस चौरासी के बन्धन से मुक्त भी हो सकता है।

कहहिं कबीर पुकारिके, ई ले ऊ व्यवहार।
राम नाम जाने बिना, भौ बूड़ि मुवा संसार॥

ये जीव जन्म-मरण के भवसागर में बार-बार गोते लगाते हैं ? सद्गुरु श्री कबीर साहब ने इसके तीन कारण बताये हैं। पहला खानी जाल ( ई )—यह जीव स्त्री, पुत्र, भाई, भतीजा, धन-दौलत, जमीन, घर, विषय-भोगों में फंस कर बार-बार जन्म-मरण के चक्कर में पड़ जाता है क्योंकि उनकी कामनायें मृत्यु-पर्यंत दूसरे पर लगी रहती हैं। यही कामना या आसक्ति जन्म-मरण का कारण है। इसी को देहाध्यासी-विषयी कहते हैं।

दूसरा वाणी जाल ( ॐ का अर्थ )—जगत-कर्ता की खोज-कल्पनाओं के चक्कर में वेद, पुराण, कुरान, बाईबिल आदि नाना मत-मतान्तरों की पुस्तकों के वाणी-जाल में अपने को उलझाना तथा अपने से परे परमात्मा की कल्पना कर बैठना ! पर जो खुद में रमण करने वाला राम है, उसको नहीं पहचान पाना।

इसीलिये तीसरा कारण—राम क्या है ? इस मर्म को न जानना, केवल 'रा, म' दोनों अक्षरों के मनन, रटन और जपन में मोक्ष का वास मानना, यही भारी भ्रम है। इस पर कबीर साहब ने कहा है 'हृदया बसे तेहि राम न जाना"। वास्तव में मनुष्य अपने ही हृदय के घट-घट में निवास करने वाले राम को नहीं जान पाया। सद्गुरु कबीर साहेब ने स्पष्ट कहा है—

जग में चारों राम है, तीन राम व्यवहार।
चौथा राम निज सार हैं, ताका करो विचार॥
एक राम दशरथ घर डोले,
एक राम घट-घट में बोले।
एक राम का सकल पसारा,
एक राम है सबते न्यारा॥
सगुण राम दशरथ घर डोले,
निर्गुण राम घट-घट में बोले।
बिन्दु राम का सकल बसारा,
सर्वज्ञ राम सब ते न्यारा॥

सद्गुरु की उपर्युक्त वाणियों में सर्वज्ञ राम, आत्म चैतन्य राम है, जो सबों में रमा हुआ है। जो उत्तम कर्मों द्वारा ही सबों का मोक्ष-दायक है।

उपर्युक्त उदाहरणों में सद्गुरु श्री कबीर साहब ने जो कहा है 'ऐसे शब्द बतावे जीव को' से जीववाद का सिद्धान्त परिलक्षित होता है, न कि ब्रह्मवाद का। यदि यह होता तो सद्गुरु कहते 'ऐसे शब्द बतावे ईश या ब्रह्म को' परन्तु वे कहते हैं 'जीव को' अतः कबीर साहब का सर्वोपरि जीव सिद्धान्त है।

सद्गुरु श्री कबीर साहेब का यह सिद्धान्त, इतना वास्तविक सत्य है कि पौराणिक ऋषि, मुनि, महर्षि भी वेद-वेदान्तादि वाणी जाल का विस्तार करते हुए भी अन्त में सद्गुरु कबीर साहब द्वारा निर्दिष्ठ जीव-सिद्धान्त पर किसी न किसी रूप में आ टिकते हैं—

'तत्त्वमसि' अर्थात् वह तू है। ( सामवेद, छान्दोग्य उपनिषद् ६-८-७ )। 'अयमात्मा ब्रह्म' अर्थात् आत्मा ब्रह्म है ( अथर्ववेद, माण्डूक्य उपनिषद् २ )। अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात् मैं ब्रह्म हूं ( यजुर्वेद, बृहदारण्यक उपनिषद्

१-४-१० )। "प्रज्ञानं ब्रह्म" अर्थात् ज्ञान ही ब्रह्म है। ( ऋग्वेद, ऐतरेय उपनिषद् ३-१-३ )।

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः॥
( गीता १३-२२ )

अर्थात्—इस देह में निवास करने वाला प्रकृति से परे जो चेतन पुरुष है। वही द्रष्टा, अनुमन्ता ( प्रेरक ), भर्ता, भोक्ता, महान् ईश्वर तथा परमात्मा है।

गोस्वामी तुलसीदास जी दशरथ-नन्दन राम को मानते थे जो यह कहते थे कि—'जाके उर न राम वैदेही, 'जो नर निश्चय नरक में परे ही।' उनका यह भ्रम भी टूटता हुआ दिखलायी देता है और कहते हैं 'आत्म अनुभव सुख सुप्रकाशा, तब भव भेद भूल भ्रम नासा"। और फिर कहते हैं—

जो सब के हो ज्ञान एक रस।
ईश्वर जीवहिं, भेद कहहु कस॥

अर्थात्—एक रस का ज्ञान हो जाने पर ईश्वर और जीव में अन्तर नहीं रह जाता। अतः जीव ही ईश्वर-परमात्मा—है। शंकराचार्य—"जीवो ब्रह्मैव नापरः।" श्री रघुनाथ-दास जी राम और लक्ष्मणसंवाद में कहते हैं।

लक्ष्मण—जीव ईस में भेद कि ? इतनो अहै सदी।
राम—बद्धदशा में जीव कहि, मोक्ष दशा में शीव॥
( विश्राम सागर )

हिन्दू धर्मावलम्बी के अलावा भिन्न-भिन्न मतावलम्बी भी यही कहते हैं। मुस्लिम धर्मावलम्बी मीर साहब भी कहते हैं—

सरापा आरजू होने ने बन्दा कर दिया मुझको।
वगर्ना हम खुदा थे, गर दिले वेमुद्दवा होते॥

सिर से पैर तक इच्छाओं से ओत-प्रोत होने की वजह से हम दास हैं, गुलाम हैं, नहीं तो हम खुद खुदा थे।

कहता है खुद खुद से जुदा, जानो अधूरा है।
दिखला दे खुद ही में खुदा, पीर उसे कहते हैं॥

ईसाई धर्मावलम्बी एक प्रसिद्ध अंग्रेज दार्शनिक श्री फ्रेड-रिक साहब कहते हैं, "If you want to see the glimpse of God, you see within you." यदि तुम परमात्मा को देखना चाहते हो तो तुम अपने अन्दर चेतन स्वरूप को ही देखो। "Your's goodness will make you God and Your's devilness will make you devil." तुम्हारे अन्दर जो अच्छाइयाँ हैं, वही तुम्हें ईश्वरत्व की प्राप्ति करा देंगी और तुम्हारे अन्दर की बुराइयाँ तुम्हें शैतान बना देंगी।

अतएव उपर्युक्त भिन्न-भिन्न मत-मतान्तरों के आधार पर भी हम पाते हैं कि वास्तव में ईश्वर का स्थान कहाँ है ? यह स्थान कहीं अन्यत्र नहीं, अन्दर है। जो चिरन्तन सत्य है और शाश्वत है। इससे परे वेद, पुराण, कुरान, बाइबिल आदि नाना मत-मतान्तर के पुस्तकों में वर्णित ब्रह्म, परमात्मा, खुदा गाड आदि जो शब्द हैं वे अपने से परे आकाशी ईश्वर या संसार-रचयिता की कल्पनायें कर बैठे हैं। इन्हीं शब्द-जालों में मानव भ्रम में पड़ गया है और अपने से परे परमात्मा की कल्पना कर बैठा है। ऐसा इसलिये कि उन्हें बीजक का ज्ञान नहीं है। बीजक ज्ञान के पूर्व मानव का मन कैसा था ? सद्गुरु कहते हैं—

"पहले यह मन काग था, करता जीवन घात।"

पूर्व में यह मन नाना कल्पित वाणियों के भ्रम जाल में इतना दिग् भ्रमित हो गया था कि "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" कहकर मानव बलि जैसे हिंसक कर्म को भी धर्म का रूप मान बैठा था। पर बीजक के अध्ययन के बाद जब मानव को ज्ञान प्राप्त हुआ तो अब "यह मन तो हंसा भया, मोती चुनि चुनि खात।" ज्ञान प्राप्ति के बाद यह मन हंस रूप को प्राप्त हुआ और 'मोती चुनि खात' का अर्थ है—अब बीजक-ज्ञानी मानव उत्तम उत्तम कर्म करने लगा, जिससे मानव कल्याण के साथ साथ उसका खुद का कल्याण भी हुआ, अर्थात् मोक्ष प्राप्ति का मार्ग खुल गया। यही तो मुक्ति है, कि मानव अपने को कर्मपाश से मुक्त कर ले। इति

जय सद्गुरु कबीर साहेब

# संतों के विचार में गुरुतत्त्व

हंसराज सिंह, एम० ए० (हिन्दी) शोध छात्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी—५

आज के इस युग में संत मत को समझने के लिए जो भी दृष्टि रखें, पर इतना तो बेहिचक कहा ही जा सकता है कि सन्त अपने युग की सांस्कृतिक आध्यात्मिक आदि उपलब्धियों के उन्नायक थे। सभी संत मूलतः साधक थे। उनके आत्मसाक्षात्कार का धरातल परमतत्त्व का अनुभव था। यह अनुभव उनका 'आखिन देखा' था। पर कबीर साहब ने इसे स्पष्ट रूप से लिखा भी है—

मैं कहता आँखिन की देखी।
तू कहता कागद की लेखी॥

प्रायः सभी संतो ने साधना के पूर्ववर्त्ती परम्परा को स्वीकार किया है। वह उनके प्रयोग की दृष्टि में खरा भी उतरा हैं। इस दृष्टि से संतमत प्राचीन परम्पराओं का अंधानुकरण नहीं, बल्कि उनकी इस क्रिया में एक नया यथार्थ का समावेश भी हुआ है। इस पुनरुत्थान के मूल में संतों के गुरुतत्त्व की मान्यता क्रियाशील थी, उन्होंने अवतारवाद के स्थान पर एक पूर्ण पुरुष को प्रतिष्ठित किया। संतों द्वारा इस पूर्ण पुरुष को गुरु की संज्ञा दी गयी, क्योंकि संतमत तत्त्वज्ञान का मत था। भक्ति, ज्ञान और योग से संतों ने एक ऐसा रसायन तैयार किया जिसका माध्यम बना साक्षात्कार। संतों में आत्मा के प्रति अविश्वास की धारणा भी नहीं थी, उसके साक्षात्कार हेतु अनुभव-सम्पन्न पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता थी। वह पथ-प्रदर्शक था गुरु।

पुनः गुरु के सम्बन्ध में एक सरसरी दृष्टि डालनी होगी—कुछेक सम्प्रदायों की गुरु-सम्बन्धी मान्यताओं पर। सूफी संतों की दृष्टि में गुरु तीन प्रकार के होते हैं—१. पीर इरादी २. पीर तालीमी ३. पीर सुहबती।

इन तीनों गुरुओं के प्रति उनकी मान्यता थी कि—

१. पीर इरादी के उपदेश से मन परमार्थप्रसंगों की ओर उन्मुख होता है।

२. पीर तालीमी शिष्य को साधन-क्षेत्र की ओर उन्मुख करता है।

३. पीर सुहबती के सामीप्य से मनुष्य के संस्कार सुधरते हैं और उसका साधन विकसित होता है।

अन्य संतों का विचार भी सूफी संतों के विचारों से अधिकतर मिलता-जुलता प्रतीत होता है। संतों ने चार प्रकार के गुरुओं का उल्लेख किया है।

१. पारस गुरु का प्रभाव निश्चित रुझान वाले व्यक्ति पर होता है। वह शिष्य को आध्यात्मिक शिक्षा दे सकता है, किन्तु अपनी तरह नहीं बना सकता है। जिस प्रकार पारस पत्थर के स्पर्श मात्र से लोहा स्वर्ण बन जाता है, अन्य धातुओं पर स्पर्श का प्रभाव कुछ भी नहीं होता उसी प्रकार संतों का यह गुरु भी होता है—

दादू की इस गुरु के प्रति मान्यता है—

दादू गुर गरवा मिल्या ताथैं सब गमि होय।
लोहा पारस परसतां, सहज समाना होइ॥

२. दीपक गुरु ज्ञानस्वरूप होता है। जिस व्यक्ति के हृदय में अज्ञानांधकार की स्थिति है, वह उनके सम्पर्क से लाभ उठा सकता है, किन्तु उनसे ज्ञान प्राप्त करने की एक आवश्यक शर्त होती है, दीक्षा के पूर्व शिष्य को एक निश्चित क्षमता पैदा करना। कबीर साहब इस गुरु के सम्बन्ध में यह कहते सुने गये हैं—

पीछे लागा जाइया, लोक वेद के साथि
आगैं थैं सतगुरु मिल्या दीपक दीया हाथि।
दीपक दीया तेल भरि बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहुणा, बहुरि न आवे हट्ट॥

३. मलयागिरि गुरु स्वभाव से कल्याणकारी होता है। उसके शरीर से ज्ञानप्रकाश की लहर निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। जो उसे ग्रहण करने की क्षमता रखता है वह लाभान्वित होता है; और जिसमें वह क्षमता नहीं होती अछूता रह जाता है।

कबीर संगति साध की कदी न निरफल होइ।
चंदन होसी बावना नीब न कहसी सोइ॥

४. भृङ्गी गुरु ध्यान साधन को बताने वाला होता है। वह पूर्ण होता है। उसके पथ पर निरन्तर अग्रसर होने वाला शिष्य भी पूर्ण हो जाता है—

हमारे गुरु बड़े भृंगी हमारे गुरु बड़े भृंगी।

'संत सुन्दर दास जी छोटे' ने अपने सवैया ग्रंथ में इन गुरुओं के विषय में स्पष्ट अभिव्यक्ति की है। वे कहते हैं—

लोह को ज्यों पारस पषाने हूँ पलटि लेत
कंचन छुवत होइ जग में प्रवाँनिये।
द्रुम को ज्यों चंदन हूँ पलटि लगाइ बास
आपु के समान तामें सीतलता आनिये॥
कीट को ज्यों भृंगहुँ बलात के करत भृंग
सोइ उड़ि जाइ ताको आचिरज मानिये।
सुंदर कहत यह सगरे प्रसिद्ध बात
सध सिष्य पलटे सु सत्यगुरु जानिये॥

प्रायः सभी संतों की यही मान्यता है जो उपर्युक्त उदाहरणों में व्यक्त है। सभी पंथों और सम्प्रदायों के संतों ने इन चारों गुरुओं को अपने पंथ में वैसा ही स्थान दिया है जैसा उपर्युक्त कथनों द्वारा स्पष्ट हो जाता है।

कबीर साहब को सतगुरु के समान अन्य कोई उपकारी नजर नहीं आता। यही कारण है कबीर साहेब का अस्तित्व संत-परम्परा में आज भी कायम है। उनके विचार से गुरु अलावा सभी बेगाने हैं। कबीर साहब कहते हैं—

सतगुरु सवांन को सगा सोधी सई न दाति।
हरिजी सवान को हितू हरिजन सई न जाति॥

संत सुन्दर दास छोटे ने भी गुरु को ही उपकार करने वाला माना है। उनका इस सम्बन्ध में कहना है कि इस समग्र संसार में सतगुरु जैसा कोई उपकारी नहीं है। मैंने तीनो लोकों का अवलोकन किया मगर कोई नहीं दीखा—

सुन्दर सतगुरु सरिषा उपकारी नहिं कोइ।
देखे तीनों लोक मैं सरि भरि कछू न होइ॥

संतों का अपना विचार है कि सतगुरु पर जो विश्वास करता है, वह करोड़ो कालों द्वारा झकझोरे जाने पर भी विचलित नहीं होता। इसी विवेचन के संदर्भ में गुरुतत्त्व को समझा जा सकता है—'यथार्थ में गुरुतत्त्व कालातीत विशुद्ध आत्मा है। वह शरीर नहीं है। वह अखण्ड मंडलाकार है। इस तत्त्वका साक्षात्कार चिदाकाश में ज्ञानचक्षु के उन्मीलन पर निर्भर करता है। इसीलिए तो संत साहित्य में गुरु को आत्मसाक्षात्कार का पर्याय माना गया है।

अब हमें इस बात से पूर्ण रूप से अवगत हो जाना है कि संतों ने इस विषय में क्या कहा है। ये संत स्पष्ट रूप में सद्गुरु के महत्व को स्वीकारते हैं और उसके साक्षात्कार का परामर्श देते हैं। कबीर सा० ने स्पष्ट शब्दों में कहा है गुरु-तत्त्व ही गोविन्द-तत्त्व है। कुछेक अर्थों में वे इसे गोविन्द-तत्त्व से श्रेष्ठ मानते हैं। क्योंकि यदि गुरु शिष्य से रूठ जाय तो स्वयं ईश्वर भी उसकी रक्षा नहीं कर सकता है। कबीर साहब ने इसकी अभिव्यक्ति इन शब्दों में की है—

कबीर हरि के रूठते गुरु के सरने जाइ।
कह कबीर गुरु रूठते हरि नहिं होत सहाइ॥

यही कारण है कि वे संसार वालों को चेतावनी देते हैं कि 'ऐ भाई वस्तु कहीं और है, तुम कहीं और ढूंढ़ रहे हो। तुम्हारी उस मृग की स्थिति क्यों हुई है जो स्वयं कस्तूरी धारण करते हुए भी उसे वन-वन ढूढ़ता फिरता है। तुम क्यों नहीं उस भेदी (गुरु) को अपने साथ ले लेते जो उसका भेद जानता है। वैसे वेदों में इसके भेद की ओर संकेत किया गया है फिर भी वह बिना भेदी (गुरु) के पूर्णता असंभव है। सुन्दर दास जी ने लिखा है—

वेद माहिं सब भेद है जाने बिरला कोइ।
सुन्दर सो सतगुरु बिना निरवारा नहिं होइ॥

सच्चा गुरु ही इस भेद की जानकारी रखता है। उसी द्वारा मार्ग के अवलोकन कराने पर तुम्हें आसानी से मंजिल मिल जाएगी क्योंकि ज्ञान का दीप वही जला सकता है। उसने जब तुम्हारे हाथ में ज्ञान का दीपक दिया है जिसमें स्नेह रूपी तेल लबालब भरा है, ज्ञानरूपी मोटी बत्ती से युक्त उस दीपक को जला कर क्यों नहीं आवागमन से मुक्ति पा जा रहे हो। क्यों नहीं इस नश्वर शरीर को त्याग देते जो विष-बेलि है, इस प्रकार का तुम्हारा न्योछावर कोई महँगा सौदा नहीं है; तुम फायदे में ही रहोगे। गुरु की महिमा की ओर कबीर साहेब इस प्रकार संकेत करते हैं—'ऐ भाइयो, क्यों भूलते हो कोई बिरला ही होता है जिसे जीवन का रहस्य ज्ञात है, जो इस शरीर-रूप महल की जानकारी रखने वाला होता है, वह शिष्य के ऊपर पड़े अज्ञानरूप पर्दे को हटाकर

उस परमतत्व का साक्षात्कार करा देता है—

मंझ महल की गुरु कहै देखा जिन घरवार :
कुंजी दीन्ही हाथ की परदा दिया उघार ॥

वे कहते हैं कि 'गुरु' 'शिष्य' को अजर-अमर करने के लिए उसे अमृत पान कराता है, जिससे उसकी दुश्चिन्ताएं समाप्त हो जाय और वह सुचित्त हो जाय। यह उसकी कृपा का ही परिणाम है कि उसकी सारी दुश्चिन्ता समाप्त हो जाती है और वह साधना के रहस्य को जान लेता है। संत कबीर ऐसे सच्चे गुरु को धन्य मानते हैं, जो अनचिन्हार शिष्य को भी चीन्ह जाता है। लौकिक कार्य अतीन्द्रिय लोक में संपादित होने लगता है, तब गुरु शिष्य को प्रेम-रस का प्याला पिलाता है, और अज्ञानान्धकार का परदा हटा देता है। ऐसे में शिष्य ब्रह्म का साक्षात्कार करता है। सत्गुरु के द्वारा सच्चा अद्वैत ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् वह सत्यानन्द में लीन हो जाता है जिससे उसका सारा माया-मोह मिट जाता है।

सद्गुरु शिष्य को 'अलख लखाता' है और सहज समाधि की ओर उन्मुख करता है। इसके लिए वह न षट्कर्म और हठयोग की शिक्षा देता है बल्कि मन की गति को ही बदल देता है, तब वह धीरे धीरे उन्मनी अवस्था प्राप्त करता हुआ हर एक स्थल पर परमतत्व को देखता रहता है।

तौ सतगुरु आया पंथ बताया
ज्ञान गहाया मन भाया।
सब कृत्रिम माया यौं समुझाया
अलख लखाया सच पाया ॥
हौं फिरता धाया उनमुनि लाया
त्रिभुवन राया दत देला।
दाई का चेला चेतन मेला
सुन्दर मारग बूझेला ॥

इसके आगे सुरु शिष्य को निष्काम कर्म करने की प्रेरणा देता हैं और परमात्म के आनन्द में लीन रखता है। भोग में योग के रहस्य का ज्ञान कराता है। वस्तुतः योग में मीन-मार्ग और पपीलिका-मार्ग का उल्लेख मिलता है, पर गुरु अपने शिष्य को विहंगमार्ग से ले चलता है। वह शिष्य की सुरत्ति को पक्षी की तरह उड़ाते हुए उस मूल के (शब्द के) उद्गम स्थल तक पहुँचा देता है। वह उसे उसी स्थल पर उस मूल तत्व (ईश्वर) का दर्शन कराता है। गुरु शिष्य के पिण्ड में ही ब्रह्माण्ड के रहस्य का उद्घाटन करता है। संतों की यह साधना गुरु आश्रित है। शब्द सुरति साधना है—

जो कोई सुने गुरू को बानी,
सो काहे को भरमें प्रानी।
घट भीतरि सब दिखलावे,
बड़ भागी होइ सु पावे।
जौं शब्द माहिं मन राखे,
सो राम रसाइन चाखे ॥

यह शब्द सुरति साधना प्राचीनकाल से ही प्रचलित रही है। संतों की साधना में सुरति-निरति स्थान-स्थान पर प्रयुक्त हुआ है। सुरति से तात्पर्य है दर्शन की तीव्र ललक की और निरति से निर्विकल्प ध्यान की। सुरति निरति की जननी होती है. सुरति साधना का क्रम निरंतर गतिमान है। कबीर साहब ने 'सतगुरु' के परवाना के द्वारा गुरु द्वारा शिष्य में किये गये मंत्र के माध्यम से शक्ति संचार का उल्लेख किया है। संत साधक उस मंत्र को शब्द स्वरूप न मान कर गुरु स्वरूप मानते हैं और उसकी साधना करते हैं। इसी साधना के माध्यम से शिष्य सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभवों को प्राप्त करता है। गुरु की कृपा से उसकी वृत्तियां अन्तर्मुखी हो जाती हैं। सद्गुरु का यह हथियार साधक की साधना के माध्यम से अन्दर ही अन्दर बिधकर वांछित मोड़ प्रदान कर देता है। कबीर साहब इस बात को बार-बार कहते हैं—

सत् गुरु साँचा सूरिमा, सबद जू बाह्या एक।
लागत ही भय मिट गया पड़्या कलेजे छेक ॥

संत कवि नामदेव एक स्थल पर कहते हैं—'गुरु' की कृपा से जब राम नाम हृदय की धड़कन बन जाता है तब साधक को कैसा सुन्दर अनुभव प्राप्त होता है—

जब देखा तब गावा, तद जन धीरजु पावा।
नाद समाइलो रे सतिगुरु मेटिले देवा ॥
× × ×
जहँ अनाहत सूर उजारा तहँ दीपक जले छछारा।
गुरु परसादि जानिआ जनु नामा सह समानिआ ॥

प्रायः प्रत्येक संत ने साधना को वीरता की संज्ञा दी है और 'सूरातन के अंग' जो उनके द्वारा प्रतिपादित हुआ है के

माध्यम से इसकी विशेषता प्रस्तुत की है। उनकी उक्तियों के मर्म से वही परिचित हो सकता है, जो उस मार्ग का कुछ न कुछ अनुभव रखता हो। कोरे शब्द ज्ञानी और शास्त्र ज्ञानी अर्थ का अनर्थ भी कभी कभी कर देते हैं। संतों ने इसीलिए उनका विरोध भी किया है। संतों का गुरु शूरवीर है जो शब्द रूप तीर चलाकर शिष्य में पल रहे अज्ञानान्धकार को दूर करता है। ये शब्द वाण इतने तीव्र और प्रभावी होते हैं कि एक न एक दिन उस स्थल (शिष्य के हृदय) पर एकाधिकार-(आधिपत्य) स्थापित कर लेते हैं। 'सुन्दर दास छोटे' के साहित्य में इसका बड़ा ही सुन्दर उदाहरण है—मनरूप हाथी मदमस्त हो अपने घमण्ड में बढ़ रहा है। काम, क्रोध, लोभ, मोह उसके चारों पैर हैं, प्राणरूप पीलवान है, कभी वह उस पीलवान द्वारा मुक्त होना चाहता है किन्तु उस पर अंकुश का कार्य कर रहा है सतगुरु जो शूरवीर है। उसी के द्वारा वह बंधा है अन्यथा किसी को भी कुछ नहीं समझता है—

महामत्त हाथीमन राख्यौ है पकरिजिनि।
अति ही प्रचण्ड जामैं बहुत गुमान है॥

× × ×

कबहूं को जोर करै सावधान साँझ भोर।
सदा एक हाथ मैं अंकुस गुरु ज्ञान है॥
सुन्दर कहत और कोई के न बसि होय।
ऐसो कौन सूरवीर साधु के समान है॥

इस प्रकार गुरु ने अपना धर्म शिष्य के प्रति पूर्ण किया। ऐसे में साधक को गुरुमुख रहना पड़ा, इसी से वह उस मूल वस्तु का साक्षात्कार कर सका है। महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने इस संदर्भ में लिखा है।

गुरु का चेतन स्वरूप निराकार है। साधक आकृतिसम्पन्न देह विशिष्ट है, किंतु इष्ट आनन्दमय, अजर अमर होते देह हुए विशिष्ट जो गुरु है। वे और शिष्य दोनों ही साकार हैं। साधना के द्वारा जब वे दोनों एक होते हैं तब एकाकार हो निराकार संपादन द्वारा भेद के साथ अभेद प्राप्त करते हैं। इसी कानाम गुरुसाक्षात्कार है। इसी स्थिति में गुरु अपना प्रत्यक्ष रूप शिष्य को दिखा देता है। साधक को तब आत्मदर्शन होता है, इस आत्मदर्शन के सम्पन्न होने पर गुरु अखण्ड रूप में स्वयं अपने को प्रकट करता है। उस समय शिष्य की स्थिति गुरु रूप ही होती है, दोनों के बीच में कुछ भी नहीं रहता है और एकरूप की स्थिति हो जाती है।'

कबीर साहब ने लिखा है—

सत् गुरु धारा निर्मल वाहे, वा में काया धोई रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, तब ही वैसा होई रे॥

अन्ततोगत्वा शिष्य को यह ज्ञान हो जाता है कि उसका आत्मा ही गुरु है, गुरु ही आत्मा है, वह अभेद और अद्वय की स्थिति में है। कविराज जी द्वारा निरूपित गुरु साक्षात्कार के स्वरूप का समावेश हमें संत काव्य में दृष्टिगत होता है। अब आवश्यकता इस बात की आ पड़ती है कि कोरे शब्दजाल के माध्यम से संतों को समझने की अनाधिकार चेष्टा न की जाय। उनके वचनों की अन्तिम तह-तक जाने का प्रयास किया जाय। संतों का यह कहना कि गुरु के बिना बड़ा कष्ट मिला, गुरु के दर्शन ने सारे मनोरथों को पूर्ण किया, गुरुरस अर्थात् रामरस पीने से सारी तृषा जाती रही। आदि उक्तियाँ विचारणीय हैं। इस प्रकार से सभी बातों को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि संतों का गुरुतत्त्व पूजने योग्य है। उनके बताए मार्गों का अवलोकन करते हुए अपना कदम बढ़ाने वाला सफलता अर्जित कर सकता है अन्यथा इस अथाह भवसागर में डूब जाएगा।

---

अन्तरिक्षयान जब पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के बाहर हो जाता है, तो वह बिना प्रयास ही उड़ता रहता है, मनुष्य जब संसार के आकर्षण विकर्षण से बाहर हो जाता है तो बिना प्रयास के ही ईश्वर सृष्टि में सहज और आनन्दमय दिव्य जीवन जीता है।

## अखिल भारतीय कबीर पंथ समाज सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन एवं सत्संग सभा

नरपतगंज, पूर्णिया विहार में ता० २४-२५ एवं २६ मई को अखिल भारतीय कबीर पंथ समाज के १९८३ का वार्षिक अधिवेशन पं० श्री आचार्य महेश साहब को अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ जिसमें लगभग दश हजार भक्त, संत महन्त पधारे थे। श्री शुकदेव नारायण प्रिन्सपल आरा; श्री हरिश्चन्द्र चौधरी जी दिल्ली, पूज्य बौआ साहब भरवारा, महन्त पण्डित दीन दयाल साहब मधुबनी, श्री उपेन्द्र साहब, सम्पादक "सत्य की ओर", श्री लाल बाबा कलकत्ता श्री नन्दबाबा, हरियाणा, श्री वनवारी बाबा जगन्नाथ महंत दीनदास जी सिक्किम, श्री चन्द्रशेखर जी साहब भूटान, श्री सीताराम दास जी नेपाल, म० दुखो बाबा भीमा टोला मध्य प्रदेश के विरक्त सन्त प्रमुख वक्ता रहे। इनके अतिरिक्त सन्तों, महन्तों तथा भजनोपदेशकों ने भी प्रवचन एवं भजनोपदेश श्रवण कराया। श्री परिमाल दास जी ने सहज योग साधना आश्रम के लिए प्रस्ताव पारित किया और सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

प्रेषक—
म० सरयुग दास
स्वागताध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष
अ० भा० कबीर पंथ समाज, दिल्ली



## आत्म निवेदन

लेखकों से:—

१—श्री कबीर साहब और सन्त भक्त सम्बन्धी लेख, कविता, कहानी आदि ही प्रकाशित होंगे।
२—लेख स्पष्ट और एक ही पृष्ठ पर लिख कर सम्पादक के नाम भेजना चाहिये।
३—मुद्रित सामग्री की पाण्डुलिपि वापस न होगी किन्तु लेखों वाला अंक ही लेखकों की सेवा में भेजा जायेगा।
४—जहाँ तक हो सरल, सुबोध भाषा का प्रयोग करें। स्पष्ट बड़े अक्षरों एक तरफ लिखें।
५—विवादग्रस्त लेख छप न सकेंगे। उसके लिये क्षमा करें।
६ लेख को सम्पादक न्यूनाधिक कर सकते हैं।

ग्राहकों से:—

१—ग्राहक महानुभावों को पत्र-व्यवहार करते समय अपना पता स्पष्ट लिखना चाहिए।
२—वार्षिक मूल्य वर्ष समाप्ति के १ माह पूर्व आगामी वर्ष के लिये भेजना चाहिए।
३—पत्रिका हमारे यहाँ से हर मास के ६ या ता० १० को भेजी जाती है। यदि वह समय से आपको न मिले तो १५ ता० के बाद अपने डाक घर से पूछ-ताछ करें तब हमें सूचित करें।
४—वर्ष भर का चन्दा एक साथ आने पर ही ग्राहक बनाये जाते हैं और उसकी रसीद भेजी जाती है।
५—वार्षिक मूल्य १५) रु० श्रीकबीर शान्ति-सन्देश के संपादक के नाम साफ-साफ पता लिखकर भेजें।
६—पत्र-व्यवहार में यदि उत्तर चाहते हैं तो ५५ पैसे का डाक टिकट लगा लिफाफा भेजना न भूलें।
७—पत्रिका न मिलने की शिकायत या अन्य प्रकार की शिकायत श्रीकबीरशान्ति-सन्देश, श्रीकबीर कीर्ति मन्दिर, काशी संस्था, सी. २६/१ संत कबीर रोड, वाराणसी के पते पर भेजें, जामनगर कदापि न भेजें क्योंकि पत्रिका सम्बन्धी शिकायत पत्र का उत्तर यहीं से प्राप्त हो सकता है।

—सम्पादक

केन्द्रीय पञ्जीकृत संख्या आर० एन० ३३०२३/७७ जिला पं० सं० ७१२/७९

# सद्गुरु कबीर की साखी

## गुरु पारख के अंग

गुरु मिला तब जानिये, मिटे मोह तन ताप।
हरष सोक व्यापे नहीं, तब गुरु आपै आप ॥६१॥

सिष साखा बहुतै किया, सतगुरु किया न मीत।
चले थे सतलोक को, बीच हि अटका चीत ॥६२॥

बंधे को बंधा मिला, छूटै कौन उपाय।
कर सेवा निरबंध की, पल में लेत छुड़ाय ॥६३॥

गुरु बेचारा क्या करै, (जो) हिरदा भया कठोर।
नौ नेजा पानी चढा, पथर न भीजी कोर ॥६४॥

गुरु बेचारा क्या करै, सब्द न लागा अंग।
कहैं कबीर मैली गजी, कैसी लागै रंग ॥६५॥

गुरु है पूरा, सिष है सूरा, बाण मोरी रन पैठ।
सतसुकृत को चीन्हि के, एक तख्त चढ़ि बैठ ॥६६॥

कहता हूँ कहि जात हूँ, देता हूँ हेला।
गुरु की करनी गुरु जानैं, चेला की चेला ॥६७॥




ग्राहक-संख्या :

डाक पञ्जीकृत संख्या : एन० आर० एन० १४६
श्रीकबीर-शान्तिसंदेश
मासिक-पत्र

संपादक कार्यालय :
श्रीकबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था
सी० २६/१, कबीर रोड
वा रा ण सी-२२१००१

श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था, वाराणसी के लिए श्यामदास शास्त्री द्वारा संपादित
एवं आर्यावर्त प्रेस, जालपादेवी रोड वाराणसी द्वारा मुद्रित
आवरण मुद्रक ... प्रिन्टर्स, बड़ी पियरी, वाराणसी।




卐 सत् सत् सोऽहं गुरु 卐 सोऽहं हंसः सद्गुरु शरणम् 卐 ॐ श्रीराम सत्यराम सोऽहं गुरु राम 卐

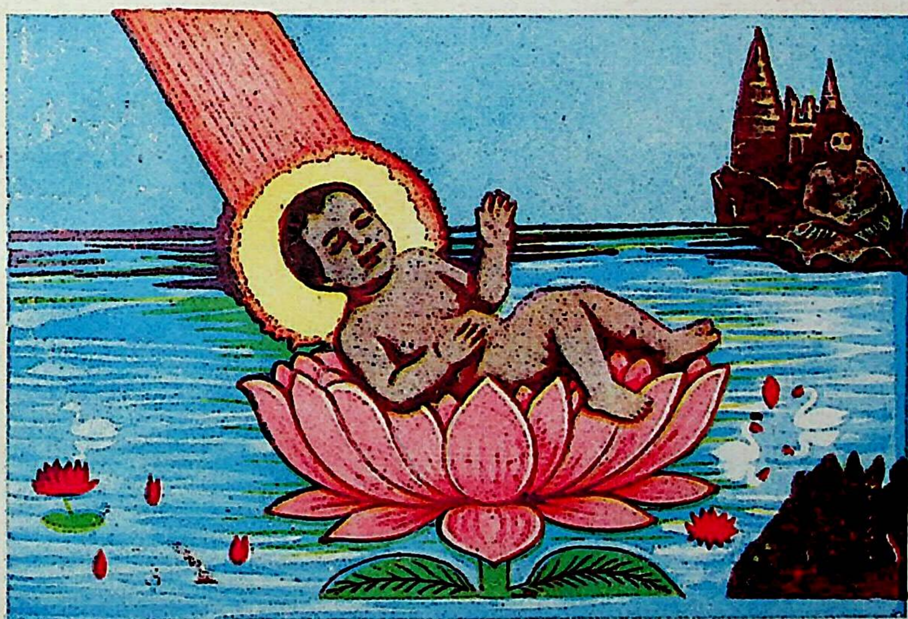
# श्रीकबीर - शान्तिसंदेश

## श्री सद्गुरु कबीर जयन्ती अंक

( हिन्दी मासिक पत्र )

वर्ष ७

अंक ६-७



गगन मंडल से उतरे सद्गुरु सत् कबीर।
जलज माँहि पौढ़न किये दोउ दीन के पीर॥

श्रीकबीर शान्ति संदेश के आद्य उद्भावक और श्रीकबीर कीर्तिमंदिर काशी संस्था के आद्य संस्थापक :—महन्त श्री शांतिदास जी गुरु श्री १०८ श्री पुरुषोत्तम दास जी महाराज साहब, श्रीकबीराश्रम, जामनगर [सौराष्ट्र]

सम्वत् २०४० | कबीराब्द [illegible] | जून, जुलाई १९८३

कहता हूं कहि जातहूं, कहूं बजाये ढोल। स्वासा खाली जात है, तीन लोक का मोल ॥





मूल्य : वार्षिक १५) पन्द्रह रुपये आजीवन २५१) दो सो इक्यावन विदेश में १८६) वार्षिक
एक प्रति का मूल्य १)५० मात्र

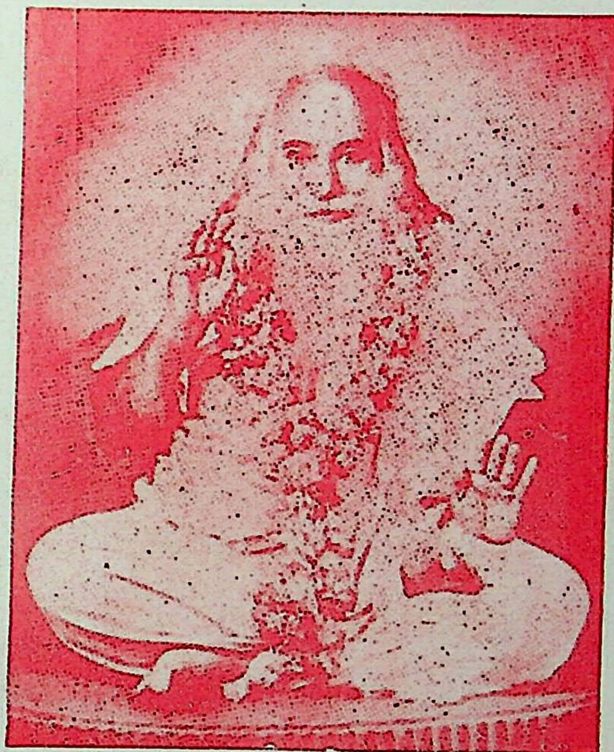
## श्री कबीर शान्ति संदेश के उद्देश्य

१—विवादों से दूर रहकर सत् का प्रचार एवं प्रसार।
२—श्री कबीर साहब की वाणी एवं उनके उपदेशों की ओर ले चलने का सत्प्रयत्न।
३—प्रेम, दया, सद्भावना, सेवा, एकता, परोपकार एवं सत् चिंतन मे प्रवर्तन।

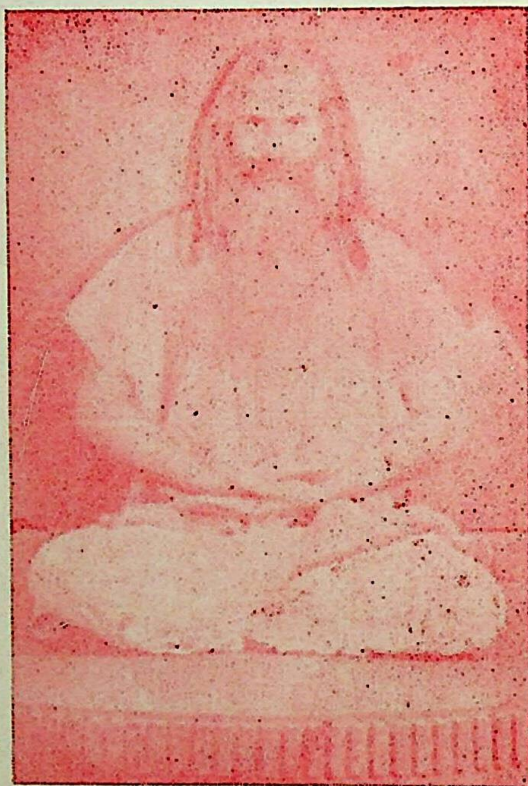

प्रकाशक
श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था
सो. २६/१ सन्त कबीर रोड
वाराणसी – २२१००१

संपादक
श्याम दास शास्त्री

यतीन्द्र वागीशं विगतरजसं शान्तिमनधम् सदानन्दं स्वामिन् ? सुरतपरकल्याणमनिशम् ।
दयागारस्त्रातं कमलदलनिर्लेपमनसम् नमामि श्यामोऽहं शमनभवदुखं निशदिनम् ॥



श्री कबीर शान्ति संदेश के आद्य उद्भावक परमात्मदेव सद्गुरु देव श्री १००८ महन्त शान्तिदास जी महाराज साहब गुरु श्री १००८ श्री पुरुषोत्तमदास जी महाराज साहब ।



सिद्ध स्थान श्री कबीर आश्रम जामनगर के आठव गादीपति त्याग वैराग्य तपोनिष्ठ पू० पा० सद्‌गुरुदेव श्री १००८ महन्त रामस्वरुपदास जी महाराज साहब गुरु श्री १००८ शान्तिदास जी महाराज साहब ।



卐 सत् सत् सोऽहं गुरु 卐 सोऽहं हंसः सद्गुरु शरणम् 卐 ॐ श्री राम सत्यराम सोहं गुर राम 卐

# श्रीकबीर-शान्तिसंदेश

वर्ष ६ ] जून-जूलाई १९८३ कबीराब्द ५८४ [ अंक ६-७

## सद्गुरु कबीर का आगमन

नमो नमो सत्पुरुषको नमस्कार गुरु कोन।
सुर नर मुनि जन साधवा सन्तों सवंश दीन॥
पुरपट्टन सतलोक है अदली सद्गुरु सार।
भगति हेत सो ऊतरे पाया हम दीदार॥
ऐसा सद्गुरु हम मिला, सुन्न विदेशो आप।
रोम रोम परकाश है, दीना अजपा जाप॥
ऐसा सद्गुरु हम मिला सुरत सिंधु के सेन।
उर अन्तर परकाशिया अजब सुनाये बेन॥
ऐसा सद्गुरु हम मिला सुरत सिन्धु के नाल।
गौन किया सतलोक से अनल पंख की चाल॥
ऐसा सद्गुरु हम मिला सुरत सिन्धु के तीर।
सब संतन शिर ताज है, सद्गुरु अटल कबीर॥

—आचार्य गरीब साहब

# संपादकीय

परमात्मा निराकार है फिर भी जाता है, जानता है, देखता है, सुनता है और सम्पूर्ण कर्मों का अध्यक्ष भी है। परमात्मा निराकार होकर यह सब कैसे करता है? इस रहस्य को जानना सरल नहीं है। जो इस रहस्य को जानता है वही परमात्मा के सही स्वरूप को जानता है।

शास्त्रों ने जीवको चेतन तथा अविनाशी बताया है। इसलिये यह जीव बराबर ही शरीर धारण करता है और उसे छोड़ता है। शरीर छोड़ने के बाद यह किस शरीर को धारण करे स्वयं निर्णय नहीं ले सकता। इसे कर्मबन्धन में बाँध रखा है। जैसा कर्म समक्ष उपस्थित होता है उसे वैसा ही शरीर मिलता है। इसीके लिये ही ८४ लाख योनियाँ बनी हैं। कर्म उसे इन्हीं योनियों में घुमाता रहता है। इसे इसका परिज्ञान नहीं होता। इसके लिये सभी योनियाँ सुखदायिनी हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण वह कीट है जिसे गोबर ही अच्छा लगता है। यदि उसे उस गोबर से अलग कर दिया जाय तो वह पुनः उसी में चला जाएगा। उसे स्वयं का शरीर सुखदायक प्रतीत होता है। इसी प्रकार से सभी जीव शरीर धारण करते हैं और और त्यागते हैं। इनके शरीर धारण से किसी का न कोई सम्बन्ध रहता है न इसे कोई जानता है न जानने की इच्छा रखता है। जिज्ञासा रखे भी तो क्यों? इससे इसका कुछ बनता बिगड़ता हो तो जिज्ञासा रखे, इससे उसकी (मानव की) कुछ कार्यों की सिद्धि होती हो, दुःख का निवारण होता हो, और सुख की प्राप्ति होती हो तो, यह गमनागमन की परवाह करे। जिसके गमनागमन से सुख की प्राप्ति और दुःख का निवारण होता है वह साधारण जीव नहीं रह जाता, अपितु परमात्मा का अंशावतार या अवतार ही होता है। यह कथन भगवान श्रीकृष्ण का है। "यद् यद् विभूतिमत् सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा तत्वदेवागच्छत्वं मम तेजोंऽश संभवम्" मानव इस संसार में उसी के आने की अपेक्षा रखता है, उसी का आह्वान करता है, उसे ही पुकारता है जिससे उसके कष्ट का निवारण हो। वही पुकार ईश्वर-अवतार का कारण बन जाती है और परमात्मा का अवतार हो जाता है।

इसी संस्कृति एवं समाज में बहुत से ऐसे भी प्राणी हैं, जो उपर्युक्त तथ्य को नहीं मानते। ईश्वर नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। उसका गमनागमन भी नहीं। उनके लिए इसकी सत्ता और गमनागमन की कोई आवश्यकता ही नहीं। चार्वाक दर्शन तो परमात्मा या जीव को अविनाशी मानता ही नहीं। अविनाशित्व के अभाव में सत्ता का अभाव और सत्ता के अभाव में गमनागमन का अभाव है। यह किसी की अपेक्षा भी नहीं रखता। शरीर नाश के बाद कोई शेष रहता हो तो उसकी अपेक्षा हो। शरीर तो निःशेष भस्मी भूत होता ही है किन्तु उसके बाद कुछ शेष रह नहीं जाता। ऐसी स्थिति में अवतारों का अवतरित होना कठिन ही नहीं, अपितु असंभव है। परमात्मा के अवतारों को कुछ लोग सामान्य जन के सदृश्य ही मानते हैं। सामान्य जन बिना माता-पिता के उत्पन्न नहीं हो सकते। ईश्वर के कुछ अवतारों में ऐसी स्थिति है और कुछ की स्थिति विचित्र है, कल्पनातीत है। अवतार के पहले किसी की कल्पना नहीं थी कि ईश्वर इस प्रकार एकाएक इस रूप में आ सकते हैं। किंतु आते देखा गया है। यद्यपि हमने इस चर्म चक्षु से नहीं देखा है किंतु शास्त्र रूपी नेत्रों से देखा जाता है। इसे शास्त्र में कहा भी है, "सबका लोचन शास्त्र है।" यह लोचन जिसके पास नहीं है, वह अंधा है। "सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्यनास्ति अंध एव सः॥" शास्त्र ज्ञान शास्त्र पढ़कर हो या बिना शास्त्र पढ़े किन्तु शास्त्र-ज्ञान अवश्य होना चाहिये। सद्‌गुरु कबीर ऐसे ही दिव्य विभूति थे, जिन्हें शास्त्र अध्ययन की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। जिसे सब पढ़कर भी जान नहीं सकते, उसे वे बिना पढ़े ही जान गये थे। इसीलिये वे कहते हैं, "मैं कहता आँखन की देखी।" इसका अपलाप कोई भी विचारक नहीं कर सकता। इसलिये सद्‌गुरु की वाणी में अब भी उतनी ही जीवन्तता है जितनी पहले थी। सद्‌गुरु कबीर की वाणी में आज भी वही लोकमंगल की भावना विद्यमान है। आत्मा का साक्षात्कार कराना सभी दर्शनों का मुख्य लक्ष्य है। दर्शनों के निर्माता भी विभूति ही थे। दर्शन में भाषा की दुरूहता अवश्य विद्यमान है। इसीलिये

सद्गुरु कबीर ने लोक भाषा में अपने सभी अभिप्राय व्यक्त किये समाज के सभी अंग रोग ग्रस्त थे। कबीर साहब ने अपनी वाणी से समाज के अंगों के रोगों को सफल चिकित्सक की भाँति दूर किया। उनकी शिक्षा के द्वारा ही अस्वस्थ समाज स्वस्थ हो सका। भगवान का मर्त्यावतार मनुष्य को शिक्षा देने के लिये ही होता है। "मर्त्यावतार स्त्विह मर्त्यशिक्षणम्।" ऐसा श्रीमद्भागवत में भगवान व्यास ने कहा है। सद्गुरु कबीर कैसे अवतरित हुए यह व्यक्त करना कठिन ही नहीं अति कठिन है। सद्गुरु कबीर किस प्रकार अवतरित हुए उसके वर्णन में एक दो संतों की उक्ति उल्लेखनीय है। आचार्य गरीब साहब ने कहा है—

अनंत कोटि ब्रह्मांड में बंदी छोर कहाय।
सो तो पुरुष कबीर हैं जननी जनी न माय॥
गैबी ख्याल विशाल सतगुरु, अचल दिगम्बर थीर है।
भक्त हेतकाया करि आए अविचल सत्य कबीर॥
काशीपुर को कस्द किया, उतरे अधर अधार।
मोमिन का मुजरा हुआ, जंगल में दीदार॥

सद्गुरु कबीर ने स्वयं कहा है "अब हम अविगत से चलि आये, मेरा भेद मरम नहिं पाये।" अस्तु सद्गुरु कबीर के आगमन के प्रकार का अवधारण करना उतना उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। इतना अवश्य है, उनके आगमन से लोक-कल्याण हुआ, उनकी वाणी लोक-मंगल के लिये हुई तथा आत्म प्राप्ति के लिये। उनकी वाणी से संसार के बंधनों से मुक्ति मिल सकती है। भेद का नाश हो सकता है, अभेद की स्थापना हो सकती है। इससे अशान्ति का वातावरण शान्ति में परिणत हो सकता है। मानव ज्ञान की उस भूमिका में पहुँच सकता है जिसमें दुःख का लेश न हो। शरीर निवासी राम को जानना बड़ा कठिन है। आपके आगमन ने शरीर निवासी राम का साक्षात्कार कराया। मानव अपने स्वरूप का पहचान नहीं कर पाता था। आपकी सहज वाणी ने सरल से सरल शैली में इसे व्यक्त किया। मानव तभी सुख शान्ति का अनुभव कर सकता है जब उसे स्वरूप का ज्ञान हो।

आज हम अपने स्वरूप को पहचान नहीं पा रहे हैं, अपने अंग को भी नहीं पहचान पाते। स्वार्थ ने ही इससे हमें अलग कर रखा है। हमें अशान्ति में डाल रखा है। हमारे अन्दर भेद पैदा कर दिया है। इस भेद ने हमें प्रत्येक क्षण त्रस्त कर रखा है। इस अशान्ति ने सम्पूर्ण समाज को अशान्त कर रखा है। इसी का परिणाम है कि हम अपने को भिन्न मान कर अपने ही को कष्ट पहुँचाते हैं। आज सद्गुरु कबीर के, गुरु नानक देव के, वे उपदेश कहाँ है, वे वाणियाँ कहाँ है? उसकी ओर ताकते तक नहीं। इस पर चलना तो दूर रहा। इस पर विचार करना हमारे लिये कठिन हो गया है। आज हम स्वस्थ और सुखी तभी हो सकते हैं और समाज को स्वस्थ और सुखी तभी बना सकते हैं जब उनकी वाणी का आश्रयण करें और उस पर चलें।

## नागपुर में कबीर पंथी संत सम्मेलन

पू० पा० पं० श्री हजूर उदितनाम साहब आचार्य कबीर पंथ सद्गुरु कबीर प्राकट्यधाम लहरतारा वाराणसी (उत्तर प्रदेश) तथा श्री कबीर धर्मस्थान, खरसिया, जिला रायगढ़ (म० प्र०) सद्गुरु की असीम कृपा से ता० १९।११।८३ से ता० २१।११।८३ तक दिन शनिवार, रविवार एवं सोमवार को नागपुर कबीर पंथी समाज के संयोजकत्व एवं व्यवस्थापकत्व में कबीर पंथी सन्त-सम्मेलन का आयोजन होगा। इसमें पू० प० श्री १००८ धर्माधिकारी श्री मनोहर दास जी शास्त्री साहब तथा पंथ के विद्वान् पधारेंगे।

प्रेषक—म० गुरुचरणदास जी साहब
नागपुर कबीर पंथी समाज
कबीर आश्रम, शांतिनगर, नागपुर-२

# मुक्ताकण

शम्भुनाथ राय, काशी विश्वविद्यालय; वाराणसी

## सबद ( १४ )

रामुरा य संसे गाँठि न छूटे;
तातें पकरि पकरि जम लूटे ॥ १ ॥
हो मिसकीन कुलीन कहावो, तुम जोगी संन्यासी ।
ग्यानी गुनी सूर कवि दाता,
ई मति किनहुं न नासी ॥ २ ॥
सुम्रिति वेद पुरान पढ़ैं सभ, अनभौ भाव न दरसे ।
लोह हिरन्य होय धौं कैसे, जो नहिं पारस परसे ॥३॥
जियत न तरेहु मुये का तरिहो, जियतहिं जो न तरे ।
गहि परतीति कीन्ह जिन्ह जासो, सोई तहाँ अमरे ।४।
जो किछु कियहु ग्यान अग्याना, सोई समुझ सयाना ।
कहहिं कबीर तासों का कहिये,
देषत दिस्टि भुलाना ॥ ५ ॥

चूर्णिकाः—रामुराय = राम को राजा ( परमात्मा ) मानने वाला जीव । संसे = संदेह, शरीराध्यास, शरीर के महत्व का मिथ्या ज्ञान । मिसकीन = निर्धन, दरिद्र सुम्रिति = स्मृति । अनभौ = अनुभव । हिरन्य = सोना ॥ पारस = स्पर्श मणि जिसके छूने से लोहा सुवर्ण हो जाता है । परसे = स्पर्श करता है ।

अर्थः—ऐ जीव, ( तुम्हारी ) संशय की गाँठ खुलती ही नहीं; इसीलिए यम ( तुम्हें बारंबार ) पकड़-पकड़ कर लूटता ( यातना देता ) है ॥ १ ॥ तुम हो तो परम दरिद्र, किंतु ( अपने को ) कुलीन, योगी, संन्यासी, ज्ञानी, गुणी शूर, कवि और दाता ( आदि ) कहलवाते हो, ( वस्तुतः ) इस ( अहंकारमयी ) बुद्धि को किसी ने समाप्त किया ही नहीं ॥२॥ सभी लोग स्मृति, वेद और पुराणादि का अध्ययन किया करते हैं किंतु अनुभवात्मक भाव दृष्टिगत ( आत्म-साक्षात्कार ) होता ही नहीं । ( वस्तुतः ) यदि लोहे को स्पर्शमणि का स्पर्श नहीं मिला तो भला वह सुवर्ण किस प्रकार हो सकता है ॥ ३ ॥ ( यदि तुम ) जीते जी नहीं तरे तो मरने पर क्या तरोगे; ( वस्तुतः ) जीते जी जो ( शम, दम, नियम आदि साधनों द्वारा ) नहीं तर जाते हैं ( उनमें से ) जिसने जिसकी प्रतीति ( दृढ़तापूर्वक ) पकड़ ( ली ) वह उसी ( रूप ) में अमर हो जाता है ( अर्थात् अन्ते मतिः सा गतिः के सिद्धांत से वह आवागमन के चक्र में पड़ा रह जाता है ) ॥ ४ ॥ कबीर साहब कहते हैं कि ऐ विवेकीजन, तुमने ज्ञान अथवा अज्ञानवश ( अब तक ) जो कुछ किया है उसी को स्मरण किया कर जो ( प्रत्यक्ष ) देखते हुए भी भूला हुआ है उससे कहा भी जाय तो क्या कहा जाए ॥ ५ ॥

## सबद ( १५ )

रामुराय चली बिनावन माहो,
घर छोड़े जात झुलाहा हो ॥ १ ॥
गज नौ गज दस गज उनइस की, पुरिया एक तनाई ।
सात सूत नौ गंड बहत्तरि, पाट लाग अधिकाई ॥२॥
ता पट तुलना गजन अमाई, पैसन सेर अढ़ाई ।
तामहँ घटे बढ़े रतिवो नहिं, करकच करे घहराई ॥ ॥
नित उठि बैठ षसम सों बरबस, तापर लागु विहाई ।
भींगी पुरिया काम न आवे,
जोलहा चला रिसाई ॥ ४ ॥
कहहिं कबीर सुनहु हो संतो,
जिन्हि यह सिस्टि उपाई ।
छांडु पसार राम भजु बौरे, भौसागर कठिनाई ॥ ५ ॥

चूर्णिकाः—रामुराय = जीव ( राम ही जिसके राजा हों ) । बिनावन = बुनवाने । माहो = (माया + हो) माया । घर = शरीररूपी घर । जुलाहा = जीवरूपी जुलाहा । गज नौ = नौ द्वार रूपी नौ गज । गज दस = दस इंद्रिय रूपी दस गज । गज उनइस = नौ द्वार और दस इंद्रियाँ । पुरिया = ताना । सात सूत = सप्त धातुरूपी सात धागे । नौ गंड = मानव शरीर की नौ प्रकार की गाँठें । बहत्तरि = वस्त्र में । पाट = चौड़ाई, पनहा । लागु अधिकाई = बढ़ने लगा । ता पट = वह वस्त्र । गजन = हाथी । अमाई = अँट जाते हैं, ढँक लेता है । पैसन = प्रसवन, जन्म लेने के समय में । करकच = झगड़ा, बखेड़ा । घहराई = आक्रमण कर के ।

लागु तिहाई = तीन पन बीत गया। भींगी = नम, शिथिल। उपाई = उत्पन्न की।

अर्थः—ऐ राजा राम के आश्रित जीव, (जरा देखो तो) जीवरूपी जुलाहा, शरीररूपी घर को छोड़े जा रहा है और माया ( उससे नूतन शरीररूपी वस्त्र ) बुनवाने चली है ( अर्थात् अज्ञानी जीव एक शरीर छोड़ने पर मुक्त नहीं होता, वह माया के चक्कर में पड़ कर पुनः नूतन शरीर धारण करता है )॥ १ ॥ ( इस नूतन शरीररूपी वस्त्र के निर्माण के लिए इस माया ने ) नव द्वाररूपी नौ गज तथा दस इद्रियरूपी दस गज अर्थात् कुल उन्नीस गज ( का लंबा ) ताना तनवा दिया और ( बाने के लिए ) सप्त धातुरूपी सात सुत एवम् शरीर में नौ प्रकार के जोड़ रूपी नौ गाँठों ( का समायोजन कर दिया है जिस ) से शरीर रूपी वस्त्र में पाट ( पनहा परिमित नहीं रहा वह ) अधिकाधिक बढ़ने लगा ॥ २ ॥ प्रसव के समय ( केवल ) ढाई सेर भार वाले ( शरीररूपी वस्त्र को इतनी महत्ता मिल जाती है (इतना विस्तार प्राप्त हो जाता है कि ) उस वस्त्र से ( बड़े-बड़े ) हाथी ढँक जाते हैं ( अर्थात् मानव शरीर अन्य सभी शरीरों में श्रेष्ठ होता है )। ( पर आगे चल कर ) उस ( शरीर ) में रत्ती भर भी वृद्धि नहीं होती अपितु ह्रास ही होता है, ( फिर तो वह माया ) नित्य सो कर उठते ही ( जीवरूपी ) खसम को बरबस घेर कर ( विषयरूपी वस्त्र के निर्माण के लिए ) बखेड़ा किया करती है; ( किंतु वह करे क्या ) उसका तो तीन पन बीत चुका है, ( सारा ) ताना भींग गया है ( सभी द्वार जर्-जर हो गए हैं और सभी इंद्रियाँ शिथिल हो चली हैं, काम आ ही नहीं सकतीं, ( अंततः ) जीवरूपी जुलाहा खीझ कर चल देता है ( शरीरपात हो जाता है ) ॥३,४॥ कबीर साहब कहते हैं कि ऐ संत-जन, सुनो, भवसागर ( बड़ा ही ) कठिन है ( अतः उससे पार जाने के लिए ) ऐ पगलो, जगड्वाल त्याग दो और जिसने इस सृष्टि की योजना की है उस राम को भजो ॥ ५ ॥



अमर लोक से हम चलि आये, आये जगत मंझारा हो।
सही छाप परवाना लाये, समरथ के कड़िहारा हो।
जीव दुखित देखे भौ सागर, ता कारन पगुधारा हो।
पाप पुण्य की रही न आशा, स्वर्ग नरक नहिं जाई हो।
एकईश एक एक कर जाने, अनभे अभंग जब आई हो।
आतम थाप अध्यातम मेटैं, अंध ज्ञान है भाई हो।
आतम अंश अध्यातम केरा, या मिल वाको गाई हो।
यह वह एक भया जब निहचे, कहन सुनन मिट जाई हो।
नोन के पुतरी जल में पैठी, देखत गई हेराई हो।
वाके खोज चले नहिं कितहुं, जितकित जलहि दिखाई हो।
कहैं कबीर भई जब या गति, फिर नहिं जन्म धराई हो।

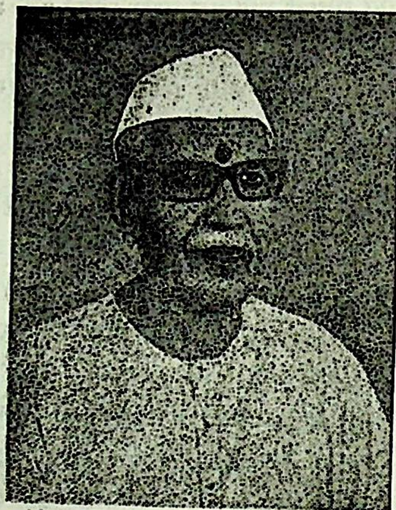
# पूजा और श्रद्धांजलि

शम्भुनाथ राय, काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी

"पापा जी १२ जुलाई आने ही वाली है", नन्हे रजनीश ने कुछ स्मरण सा कराते हुए कहा।

"तो क्या हुआ मुन्ना", मैंने जिज्ञासा के स्वर में कहा।

"अरे, १२ जुलाई को ही तो आपके गुरु जी की पुण्य-तिथि होगी"—कहते हुए रजनीश ने मेरी सुप्त वेदनाओं को कुरेद सा दिया। मैं एकाएक मौन हो गया और मेरे स्मृतिपटल पर अतीत के दृश्य उभरने लगे। मेरी गंभीर मुद्रा को देख कर बालक धीरे से खिसक गया, संभवतः उसे संदेह होने लगा था कि उससे कोई गलती हो गई है। कमरे में अब मैं अकेला रह गया। सोचने लगा कि बालक ने ठीक ही कहा है, गत वर्ष (१९८२ में) १२ जूलाई को ही तो पंडित जी (आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र) का शरीरपात हुआ था। उस दिन विक्रम संवत् २०३९ की श्रावण कृष्ण षष्ठी थी और दिन था सोमवार। इस वर्ष भी १२ जूलाई निकट आ गई है। डायरी खोलकर देखता हूँ तो उसी दिन रथयात्रा भी है और ईद भी किंतु तिथि है आषाढ़ शुक्ल द्वितीया। श्रावण कृष्ण षष्ठी पड़ रही है ३१ जुलाई को। यह विडंबना ही तो है कि दो-दो हजार वर्ष बीत जाने पर भी तिथियाँ और तारीखें सह-गामिनी होते हुए भी समगामिनी नहीं हो सकीं। फिर सोचने लगता हूँ कि पंडित जी की पुण्यतिथि किस दिन मानूँ, १२ जूलाई को या श्रावण कृष्ण षष्ठी को। मैंने निकट रह कर देखा है पंडित जी भीतर-बाहर दोनो से पूर्णतया भारतीय थे। उनकी भारतीयता की सीमा केवल वेश और देश तक नहीं थी, अपितु उनका अंतःकरण भारतीय था। वार्तालाप में प्रायः वे 'भारत' या 'भारत वर्ष' की चर्चा किया करते थे और कभी-कभी 'जगत' भी उनके संचार की सीमा बन जाता था, किंतु 'संसार' और 'विश्व' शब्द से बचना सा चाहते थे। सुनते-सुनते कुछ दिनों बाद कारण स्पष्ट हो गया था कि पंडित जी सामान्य वार्तालाप में भी शब्दों के मूल अर्थ का निरंतर ध्यान रखते थे। बात-बात में जगत की सीमा लाँघ कर 'संसार' या 'विश्व' की चर्चा करना उन्हें पसंद नहीं था। हाँ, तो मैं चर्चा कर रहा था उनकी भारतीयता की, सो उसके लिए एक ही उदाहरण काफी होगा। एक बार पहली जनवरी



आचार्य विश्वनाथप्रसाद जी मिश्र जिनकी प्रथम पुण्यतिथि ३१ जूलाई को है।

को एक सज्जन पंडित जी के आवास (वाणी-वितान) पर पधारे। मैं वहाँ पहले से ही उपस्थित था। आते ही उक्त सज्जन ने प्रणाम की मुद्रा में हाथ जोड़े हुए कहा—"पंडित जी, नव वर्ष के आगमन पर आपको बधाई"। इस पर पंडित जी ने तत्काल उत्तर दिया कि मैं अभी इसाई नहीं हुआ हूँ। आगत सज्जन कुछ समझ नहीं सके, उनकी आँखों में जिज्ञासा झलक उठी, जिसे पंडित जी ने तत्क्षण पढ़ लिया और स्पष्ट करते हुए बोले—"अरे, भाई, अपना नव वर्ष तो चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को आरंभ होता है, पहली जनवरी को नहीं।" यह थी उनके अंतःकरण की सजग भारतीयता और यह था उनका भारतीय परंपरा के प्रति अनुराग। फिर, भला, कैसे स्वीकार कर लूँ अबोध रजनीश का स्मारण कि "१२ जुलाई को ही तो आपके गुरु जी की पुण्य तिथि होगी।" कदापि नहीं, ऐसा हो नहीं सकता; उन्नीस दिन बाद ही सही किंतु पंडित जी की पुण्य-तिथि मानी या मनाई जाएगी श्रावण कृष्ण षष्ठी को ही।

आज इस महत्त्वपूर्ण निर्णय पर पहुँच कर भी मन विश्राम नहीं पा रहा है। वह बार-बार अतीत की गहराइयों में झाँकने लगता है। चित्रपटल से एक दृश्य हटता है तो दूसरा प्रस्तुत हो जाता है। बीच-बीच में भविष्य की चिंता भी व्यग्र करने लगती है। स्मरण हो आया कि २४ जूलाई को गुरुपूर्णिमा भी तो है। प्रतिवर्ष गुरुपूर्णिमा के दिन पंडित जी के शिष्यगण उनके आवास पर जुटते थे। भेंट की सामग्री और पुष्पमाल तो हम लोग अलग-अलग ले आते थे किंतु पूजन की सामग्री चंदन, अक्षत, रोली तथा गंगा-जल आदि रामा दास जी ले आते थे। आशीर्वाद, प्रसाद एवम उपदेश पाकर हम लोग गद्गद् हो जाते थे। एक बार गुरुपूर्णिमा के दिन मुझे कहीं अन्यत्र जाना था, इसलिए मैं प्रातः सूर्योदय होते-होते वाणी-वितान पहुँच गया। देखा तो पंडित जी पूजा के वेश में पूजन सामग्री की डलिया हाथ में लिए ( घर में स्थित ) मंदिर की ओर से चले आ रहे हैं। मैंने प्रणाम किया तो बोल पड़े "आप आज बहुत सबेरे आ गए"। मैंने कहा "हाँ, पंडित जी, आज अभी मुझे एक जगह जाना है"। पंडित जी ने कहा, "अभी बैठ जाओ, पहले मैं अपने गुरुओं की पूजा कर लूँ, तब तुम अपने गुरु की पूजा करना"। मै बैठ गया और देखने लगा पंडित जी की गुरुपूजा। उन्होंने बड़े ही श्रद्धा भाव से लाला भगवानदीन तथा आचार्य रामचंद्र शुक्ल के चित्रों की पूजा की। मैं पंडित जी का कुछ मुँह लगा हो गया था, पूजा समाप्त होते ही बोल पड़ा—"पंडित जी, आपकी गुरुपूर्णिमा की अपेक्षा मेरी गुरुपूर्णिमा उत्कृष्ट होती है"। इस पर उन्होंने कहा—वह कैसे"। मैं कहने लगा "आप तो विवश होकर चित्रों की पूजा करते हैं, जिनमें चरण ही नहीं हैं और मैं प्रत्यक्ष गुरु की पूजा करता हूँ, भेंट चढ़ाता हूँ, चरणों में प्रणाम करता हूँ। तत्पश्चात बदले में आशीर्वाद पाता हूँ, प्रसाद पाता हूँ तथा उत्साहवर्द्धक उपदेश पाता हूँ। अब आप ही बताइए, आपकी गुरुपूर्णिमा से मेरी गुरुपूर्णिमा उत्कृष्ट है या नहीं ?" इस पर पंडित जी ठठा कर हँस पड़े और सुस्थिर होने पर महात्मा तुलसीदास की उक्ति उनके मुख से अनायास निकल पड़ी—

बहुत प्रीति पुजाइबे पर पूजिबे पर थोरि"।

गत वर्ष गुरुपूर्णिमा पड़ी थी पंडित जी के निधन के केवल छह दिन पूर्व। उस दिन गुरुपूजा के लिए मैं पहुँचा तो देखा कि श्री रामा दास तथा श्री गोवर्द्धनलाल जी उपाध्याय पहले ही पहुँच चुके थे। हम लोग साथ ही उस कक्ष में प्रविष्ट हुए जिसमें पंडित जी रोग-शय्या पर पड़े थे। उस दिन पूजन की सामग्री धरी की धरी रह गई थी, केवल पलंग की पाटी पर सिर रख-रख कर हम तीनों शिष्यों ने प्रणाम किया था। प्रसाद देने का काम माता जी ने कर दिया था, किंतु आशीर्वचनों की शब्दावली मैंने स्पष्टरूप से पंडित जी की भरी आँखों में बाँच ली थी। उनकी वाणी मौन थी किंतु नेत्रांबु मुखर थे। उस समय रत्नाकर जी की पंक्ति" पानी आज सकल सँवारयो काज बानी को" का अनायास स्मरण हो आया था और साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया था कि इस पंक्ति की रचना का आधार कोई ऐसा ही दृश्य रहा होगा, जिसे कवि के हृदय ने बड़े ही मनोयोग से पढ़ लिया था।

चिंतन का क्रम भंग हुआ, दृश्य बदल गया, अतीत की सुध जाती रही और भविष्य की चिंता जाग उठी। सोचने लगा गुरुपूर्णिमा भी निकट आ गई, २४ जूलाई को ही तो है। अब तो प्रत्यक्ष गुरु के पूजन का गुमान भी जाता रहा। गुरु जी की असमर्थता में प्रसाद वितरण करने वाली माता जी भी नहीं रह गईं। आठ मई १९८३ को उन्होंने भी अपना दुलार समेट लिया। फिर भी गुरुपूर्णिमा आएगी, मैं निगुरा नहीं हूँ, पूजा करूँगा ही, पर इस बार चरण-स्पर्श से वंचित रह जाऊँगा, विवश होकर चित्र को ही पूजना पड़ेगा। परंपरा भी हमारे जीवन का कैसा मजाक उड़ाती है। चित्र की पूजा करने पर मैंने कभी गुरु जी की खिल्ली उड़ाई थी, किंतु आज उन्हीं का अनुकरण करने जा रहा हूँ। इसी उधेड़-बुन में चित्त विकल होने लगता है, तब तक अंतःकरण के किसी कोने से कोई बोल उठता है—पगले, व्यग्र क्यों हो रहा है, अनुकरण ही तो परंपरा है। पंडित जी पूरे परंपरावादी थे, तू भी परंपरा तोड़ नहीं सकता; फिर झिझकता क्यों है, परंपरावादिता ही तो तेरा अपना वास्तविक बल है।

अंतःकरण की इस स्वीकारोक्ति के विपरीत आचरण आत्मघात ही होगा। अतः अब मुझे अपना मार्ग नहीं बनाना है; गुरु जी ने ही राजडगर का निर्माण कर दिया

है। मुझे तो केवल अनुधावन करना है। इसी चिंतनधारा में एक अन्य दृश्य का भी स्मरण हो आया, जो मेरे जीवन का अत्यंत मार्मिक पक्ष कहा जा सकता है। बात उस समय की है, जब पंडित जी विश्वविद्यालय आवास में रोग-शय्या पर पड़े थे। मैं नित्य ही घंटा दो घंटा उनके पास बैठता था, उस समय दी जाने वाली दवाएँ देता था; समाचार पत्र पढ़कर सुनाता था और साहित्य संबंधी अपनी जिज्ञासाएँ भी प्रस्तुत करता था, जिनका भरपूर समाधान वे लड़खड़ाती आवाज में कर देते थे। लकवे का जब प्रथम आक्रमण हुआ था, तब उनकी वाणी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था, किंतु द्वितीय आक्रमण में उनकी वाणी भी अव-रुद्ध हो गई थी। थोड़ा सुधार होने पर वे लड़खड़ाती आवाज में ही सारी बातें करते थे। एक दिन पंडित जी के पास मैं अकेले बैठा था परिवार का भी कोई व्यक्ति वहाँ नहीं था। पंडित जी ने कहा, "भैया, जरा करवट बदलवा दो"। मैंने आदेश का पालन किया, उन्हें बाईं करवट से पलटा कर दाईं करवट लिटा दिया और स्वयम् सामने रखी कुर्सी पर बैठ गया। थोड़ी देर शांत रहने के बाद पंडित जी ने कहना आरंभ किया—"अब तक तो स्थिति यह थी कि तुम्हारे आ जाने पर जीने का अवलंब मिल जाता था, किंतु अब कोई भी अवलंब मुझे बचा नहीं सकता। मेरी मृत्यु अब निकट आ गई है। देखो, तुम्हें धीर समझ कर कह दे रहा हूँ, किंतु माता जी को मत बताना"। इतना सुनते ही मैं रुआँसा हो गया और विकलता के कारण कुछ बोल नहीं सका। मेरी दशा देख कर वे पुनः कहने लगे "यह तो जगत की गति है, इस पर धीर पुरुष व्यग्र नहीं होते। देखो, मेरी संपत्ति के उत्तराधिकारी तो मेरे पुत्र-पौत्रादि हैं किंतु अपने साहित्यिक उत्तराधिकारी की मुझे बड़ी चिंता थी। सोचा करता था कि क्या मानस की साहित्यिक टीका और मीमांसा का काम नहीं हो पाएगा। किंतु तुम्हारे सहयोग से टीका तो पूरी हो गई, रह गई है मानस-मीमांसा, उसे अब तुम्हीं लिख डालना। इस प्रकार पंडित जी बोलते जा रहे थे और सुन-सुन कर मेरा मानस द्रवित हुआ जा रहा था। आखिर उस वेदना को कब तक दबाता, वह बरबस नेत्रों से वह निकली। इतने में पंडित जी ने मेरी ओर देखा तो वे बोल पड़े—"अरे, तुम रो रहे हो, तुम्हें तो मैं बहुत कड़े हृदय का समझता था, जाओ, जाओ, आँख मुँह धो आओ"। मैं चुपचाप उठ खड़ा हुआ और संलग्न स्नानगृह में आँखों को भलीभाँति धोकर पुनः कुर्सी पर आ बैठा। पंडित जी ने फिर कहना आरंभ किया—"सुनो, आज मेरी बातें ध्यान देकर सुन लो, उसके बाद मैं कुछ नहीं कहूँगा। आज तुम से मर्म की बात कह रहा हूँ, तुम्हें और लक्ष्मीशंकर गुप्त को पाकर मैं आश्वस्त हो गया हूँ। तुम दोनो मिल कर मेरे अधूरे कामों को पूरा कर देना, और हाँ, यह भी सुन लो, इसे ही अपने कर्त्तव्य की सीमा न समझ लेना; मेरी साहित्य-परंपरा को सपूत की भाँति पल्लवित करते रहना"। इतने में माता जी फलों का रस लेकर गुरु जी को पिलाने आ गईं और मैं प्रणाम करके वहाँ से चला आया।

आज तक इस वार्ता को मन में ही सँजोए रहा, किसी से चर्चा तक नहीं की। किंतु गुरुपूर्णिमा ज्यों-ज्यों निकट आ रही है गुरु के वे शब्द—"मेरी साहित्य-परंपरा को सपूत की भाँति पल्लवित करते रहना" बार-बार स्मरण हो आते हैं। सोचने लगता हूँ—एक पिता संतान से जितनी आशाएँ लेकर जीता है, उससे कई गुनी आशाएँ लेकर मरता है। मुझ जैसे अशक्त शिष्य से गुरु जी ने इतनी बड़ी उम्मीद क्यों कर ली, मैं आज तक समझ नहीं सका। फिर भी इतना भली-भाँति समझता हूँ कि गुरुजी के आदेशों का पालन करना ही सच्ची गुरुपूजा एवम् वास्तविक श्रद्धांजलि होगी।

जैसे बादल गगन में चलते हैं बिन पाँय।
ऐसे पुरुष कबीर हैं शून्य में रहे समाय॥
—आचार्य गरीब साहब की साखी

# उलटवाँसी और अलंकार शास्त्र

डा० किशोरी लाल गुप्त, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्. सुधवै, वाराणसी

**उपमा:—**

अलंकारों का मूल सादृश्य है। यह सादृश्य रूप या आकार का हो सकता है और गुण या धर्म या वर्ण (रंग) का हो सकता है। अनादिकाल से लोगों की दृष्टि दो वस्तुओं के सादृश्य पर जाती रही है और जब से वे वाणी के द्वारा अपने मनोभावों को व्यक्त करने में समर्थ हुए हैं तभी से उपमा अलंकार का जन्म हुआ है। यह अलंकार सहज है, अकृत्रिम है और लोक-वाणी में बहुशः-प्रयुक्त है।

उपमा के चार अंग हैं—उपमेय, उपमान, वाचक और धर्म। जिसकी तुलना की जाती है, उसे उपमेय कहते हैं। जिसके साथ तुलना की जाती है, उसे उपमान कहते हैं। जिस शब्द के द्वारा सादृश्य स्थापित किया जाता है, उसे वाचक कहते हैं। जो गुण दोनों वस्तुओं में समान रूप से उपस्थित रहता है, उसे धर्म कहते हैं।

उदाहरण के लिए:—

पीपर-पात सरिस मन डोला

ये 'मन' का वर्णन किया जा रहा है, अतः यह उपमेय हैं। मन की तुलना 'पीपर-पात' से की जा रही है, अतः 'पीपर-पात' उपमान है। 'सरिस' शब्द के द्वारा उपमा दी गई है। यह वाचक शब्द है। 'डोलना' धम है—मन भी डोलता है और 'पीपर-पात' भी। अत्यंत चंचलता के साथ डोलने का गुण दोनों में है, उभयनिष्ठ है।

जब उपमा के ये चारो अंग रचना में उपस्थित होते हैं, तब पूर्णोपमा अलंकार होता है। जब इनमें से एक या अनेक अंग लुप्त रहते हैं, तब उसे लुप्तोपमा अलंकार कहते हैं।

**वाचक-धर्म-लुप्तोपमा, रूपक और प्रतीप:—**

जिस उपमा में वाचक और धर्म लुप्त रहता है, उसे वाचक-धर्म-लुप्तोपमा कहते हैं। रूपक भी एक प्रकार की उपमा ही है। इसमें भी केवल उपमेय और उपमान होते हैं; वाचक और धर्म नहीं होते। फिर वाचक-धर्म-लुप्तोपमा और रूपक में क्या अंतर है?

वाचक-धर्म-लुप्तोपमा में उपमान पहले होता है, उपमेय बाद में, जैसे 'चंद्र-मुख'=चंद्रमा के समान मुख। यह वाचक धर्म लुप्तोपमा है। इसी को उलट कर 'मुख-चंद्र' कर दें, तो यह रूपक हो जायगा। मुख-चंद्र=मुख रूपी चंद्रमा। रूपक में उपमेय पहले होता है, उपमान बाद में आता है। यदि 'मुख-चंद्र' का अर्थ मुख के समान चंद्र' कर लिया जाय, तो यह 'प्रतीप' अलंकार हो जायगा। उपमान सदैव प्रसिद्ध और उपमेय से श्रेष्ठ होता है। अप्रसिद्ध और अश्रेष्ठ उपमान होने पर प्रतीप अलंकार हो जानता है। प्रतीप का अर्थ ही है उलटा।

**रूपकातिशयोक्तिः—**

वाचक-धर्म-लुप्तोपमा, रूपक और प्रतीप में उपमा के केवल दो अंग रह जाते हैं - उपमेय और उपमान। अब यदि इतनों से भी उपमेय को निकाल दें, केवल उपमान रह जाय, तो यह रूपकातिशयोक्ति हो जायगा। जैसे सूरदास का यह प्रसिद्ध पद लें—

अद्भुत एक अनूपम बाग
जुगल कमल पर गजवर क्रीड़त
तापर सिंह करत अनुराग

कमल चरण का, गज गति का और सिंह कटि का सुप्रसिद्ध, उपमान है। यहाँ उपमेय का उल्लेख न कर के केवल उपमान का कथन है। उपमान प्रसिद्ध हैं, अतः अर्थ करने में कोई कठिनाई नहीं होती। लोग आसानी से समझ जाते हैं कि राधा के चरण कमल जैसे हैं, उनकी गति गज जैसी है, वे गज-गामिनी हैं। उनकी कटि सिंह सदृश है। इसी बात को कवि ने कहा - दो कमल हैं, उन पर हाथी क्रीड़ा कर रहा है, उसके साथ उसका सहज शत्रु सिंह अनुराग कर रहा है। हाथी कमल को खा जाता है, सिंह हाथी को खा जाता है, पर कवि की सृष्टि अद्भुत है जहाँ वैरभाव है नहीं, अनुराग ही अनुराग है।

**उलटवाँसी—**

हिंदी शब्द सागर में उलटवाँसी का यह अर्थ दिया

हुआ है—

"संज्ञा स्त्री० [ हिं. उलटा + सं. वाशो या वासी = बोली ] सीधे न कहकर घुमा फिराकर या उलट कर कही हुई बात या व्यंजना। जैसे—

फील रबाबी, बलद पखावज, कौआ ताल बजावे।
पहिरि चोलना गदहा नाचे, भैंसा भगति करावे॥
—कबीर ग्रं०, पृष्ठ ३०७

मैं समझता हूं 'संस्कृत वाशी या वासी = बोली' से उलटवाँसी के बाँसी का कोई संबंध नहीं है। हिंदी में एक शब्द 'उलटवाँसा' भी है, जो 'हिंदी शब्दसागर' में नहीं है। उलटवाँसा का अर्थ है बच्चे का उलटे ढंग से पैदा होना। सामान्यतया बच्चे का सिर माँ के गर्भ से पहले बाहर आता है; पर कभी-कभी किसी-किसी बच्चे के पैर ही पहले बाहर निकल आते हैं। ऐसे बच्चे सामान्य ढंग से न पैदा होकर उलटे ढंग से पैदा होते हैं, अतः इन्हें 'उलटवाँसा' कहा जाता है। 'उलटवाँसी' का 'वाँसी' 'उलटवाँसा' के 'वाँसा' का ही स्त्रीलिंग रूप है। 'वाँसा' या 'वाँसी' का अर्थ हुआ 'ढंग'। 'उलटवाँसी' का अर्थ हुआ उलटे ढंग से कही गई बात। जैसे 'फील बाबी' में कहा गया है कि हाथी रबाब नामक तार का बाजा बजा रहा है। रबाब आदमी बजाता है न कि हाथी। यह उलटी बात है। इसीलिए यह उलटवाँसी है।

**उलटवाँसी और रूपकातिशयोक्तिः—**

उलटवाँसी और रूपकातिशयोक्ति दोनों वस्तुतः एक ही हैं, इनमें तत्त्वतः कोई भेद नहीं है। दोनों में केवल उपमान है, उपमेय नहीं। दोनों में प्रसिद्धि अप्रसिद्धि का भेद है। रूपकातिशयोक्ति में उपमान साहित्य-जगत में परम प्रसिद्ध होता है, दृढ़ होता है, अतः उसके समझने में बहुत कठिनाई नहीं होती। परंतु उलटवाँसी में उपमान प्रयोजनवश लाए जाते हैं और साहित्य में रूढ़ नहीं हुए रहते। इसीलिए उनको समझना कठिन हो जाता है और बात उलटी लगती है।

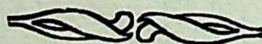
**कबीर और उलटवाँसी—**

संत कबीर अपनी उलटवाँसियों के लिए परम प्रसिद्ध हैं। वे उलटवाँसियों के सम्राट हैं। इसीलिए उनके संबंध में प्रसिद्ध है—

कबीर साहब की उलटी बानी
बरसै कम्मल, भीजै पानी

पानी के बरसने से कमल भीगता है, पर यहाँ उलटी बात जान पड़ती है—बरस रहा है कमल और भीग रहा है पानी। यह कमल सहस्रदल कमल है, जिससे बूंद-बूंद कर के अमृत टपकता है, योगी की साधना तभी सफल मानी जाती है, जब उसकी कुंडली जाग्रत होकर सुषुम्ना नाड़ी में ऊपर चढ़ती है और उस अमृत-बूंद को पीती है। पानी कुंडलिनी का उपमान है। यह अप्रसिद्ध है।

संसार में कबीर साहब जैसा उलटवाँसी कहनेवाला कोई नहीं हुआ। कबीर साहब ने ये उलटवासियाँ कुछ तो लोगों को चमत्कृत करने के लिए कहीं और कुछ इस उद्देश्य से भी कि उचित पात्र लोग ही, जिज्ञासु ही, ठीक अर्थ तक पहुँच सकें।



- ☐ तार 'तार' तथा 'बेतार' द्वारा भी पहुंच सकता है। उसी प्रकार भक्त सगुण - साकार मार्ग से और ज्ञानी निर्गुण - निराकार मार्ग द्वारा ईश्वर साक्षात्कार कर सकता है।
- ☐ आँख में पड़ा तिनका पहाड़ को ओझल कर देता है और अज्ञान परमेश्वर को।
- ☐ खिले हुए फूल की तरह प्रसन्न रहना ही जीवन है।
- ☐ जब हाथ में हीरे आ जाते हैं तो कंकड़ पत्थर स्वयं छूट जाते हैं। निजानन्द की प्राप्ति होने पर विषयानन्द छूट जाते हैं।
- ☐ कार्य कारण रूप परात्पर ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाने पर हृदय की अविद्यारूप ग्रन्थि टूट जाती है समस्त संशय-संदेह कट जाते हैं और शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं।

# मन-रसायन

विजयकुमार राय

जीवन जीवन से उत्पन्न होता है, यह एक अज्ञतापूर्ण भ्रम है। अब यह एक प्रमाणपुष्ट, प्रयोग-सिद्ध और संदेह रहित वैज्ञानिक वास्तविकता है कि जीवन प्रोटीन तथा उसी वर्ग के अन्य जटिल यौगिकों का श्रेणीबद्ध उपापचयन मात्र है। वह निर्जीव पदार्थों को एक रमणीय जीवनी शक्ति में समाहित कर देने वाला एक अत्यन्त जटिल माध्यम है। वह तत्वों का एक शुद्ध रासायनिक संघटन है।

मानव शरीर जो अशेषगुणों का अगाध आगार है, सृष्टि के सौन्दर्य का शोभन शृंगार है, सत्तम संसार का अनमोल अलंकार है, उद्विकास का उच्चतम उपहार है, इस सत्य से इनकार नहीं कर सकता कि वह केवल एक रसायनशाला है, प्रयोगशाला है। उसकी नींव ही नहीं सारी प्रक्रिया भी रासायनिक है। कुछ गिने चुने मूल तत्व एक निश्चित अनुपात में संयोजित होकर उसका निर्माण करते हैं। इन्हीं के संतुलित समन्वयन से शरीर का विकास और विघटन से ह्रास होता है। अतः शरीर को सजीव, सक्रिय, स्वस्थ एवं सुरक्षित रखने के लिए खाद्य और पेय पदार्थों द्वारा, वायु और प्रकाश द्वारा, परिश्रम और विश्राम द्वारा, औषधि और उपचार द्वारा इन प्रकृत पदार्थों की समुचित अनुपात में सम्प्राप्ति एक अपरिहार्य आवश्यकता है।

जीवन वृत्त के अध्याय हैं तो अनेक पर सर्वोत्कृष्ट है निर्जीव तत्व को उठाकर सजीव तत्व में सत्वर समाहित कर लेने की संक्रिया वाला। यह कार्य अत्यन्त रासायनिक है। आनुवंशिकता—पूर्वजों से जोड़ने वाली प्रक्रिया—और कुछ नहीं उत्तरोत्तर पीढ़ियों में जनित्र रासायनिक अविछिन्नता ही है। जीवित हम मृत पूर्वज ही हैं। पुरातन मृत रासायनिक माध्यम से ही वर्तमान जीव में जीवित रहता है। इस भारतीय भाग्यवादिता का प्रतिवाद नहीं किया जा सकता कि हम अपनी पूर्वजता के दास हैं। हमारी सारी आधारभूत क्रियाएं-पाचन, श्वसन, संवेदन, स्वेदन, स्मरण, जनन, उत्सर्जन आदि कोरी रासायनिक हैं। और इनका माध्यम रक्त-प्रवाह अनेक लवणों के एक निश्चित अनुपात में सांद्रण द्वारा ही इन क्रियाओं को कर पाने में समर्थ होता है। आयुर्वेद चिकित्सा-प्रणाली की सारी कार्य-पद्धति ही रासायनिक तत्वों कफ ( शरीर से उत्सर्जित पदार्थ ), वात ( ज्ञान-तंतु की सुक्ष्म रासायनिक प्रणाली ) और पित्त ( समस्त ग्रंथि-स्राव ) के संतुलन पर आधारित है। शारीरिक ही नहीं हमारी बौद्धिक और मानसिक क्रियाएँ ( भावना, चिन्तना, कल्पना आदि ) भी रसाधारों के ही आश्रित होती हैं। हर्ष-विषाद, प्रसाद-अवसाद, राग-विराग, आकर्षण-विकर्षण आदि रासायनिक संवेदनाएं मात्र हैं।

मन को पहचानने का प्रयास उतना पुराना है जितना मानव का इतिहास। आज यह सर्वमान्य तथ्य है कि मन शरीर में वैसे नहीं रहता जैसे मकान में हम। वह शरीर की उच्चतम क्रिया है। वह एक समूहवाचक संज्ञा है जीवित पदार्थ की अनुक्रियाओं का समूह। वह पदार्थ नहीं, हां, पदार्थ से बंधा अवश्य है। शरीर भी पदार्थ से सम्बद्ध है, जीवित पदार्थ से। मनुष्य न तो केवल तन है न केवल मन; वह तो एक तन-मन-प्राणी है। इसलिए तो शरीर को प्रभावित करने वाला प्रत्येक पदार्थ हमारी मानसिक वृत्तियों, भावनात्मक प्रवृत्तियों, संवेगात्मक कृतियों और व्यावहारिक विकृतियों में पूर्ण रूप से प्रकट होता है। जीव-विज्ञान और मनोविज्ञान दोनों इस तथ्य की प्रबल पुष्टि करते हैं।

सही है, शरीर पुरुषार्थ चतुर्भुज का साधक है पर दैहिक व्याधियों और मानसिक आधियों का उत्पादक भी तो है। मनोविज्ञान के आधुनिकतम शोधपूर्ण निष्कर्षों से स्पष्ट है कि मनुष्य के सभी प्रकार के रोगों—शारीरिक मानसिक, स्नायविक—का कारण केवल उसका आन्तरिक मन है। रोग हमारी विकृत वासनाओं, दूषित भावनाओं और अतृप्त कामनाओं की अभिव्यक्ति मात्र है। इनके

कारण हमारे मन में रोग का विचार आता है, फिर, रोगी होने का विश्वास पैदा होता है और यही विश्वास रोग के शारीरिक लक्षणों के रूप में प्रकट होता है। मानसिक विकार की उपस्थिति मनुष्य को बेचैन बना देती है। इसी बेचैनी का स्वरूप परिवर्तन के बाद प्रदर्शन शारीरिक रोगों में होता है। रोग मन को सहजावस्था में लाने का प्राकृतिक प्रयास है। मानसिक तनाव, आन्तरिक अशान्ति, वैयक्तिक उलझन, व्यावसायिक विफलता, आर्थिक विपन्नता आदि की पीड़ा विकृत व्यवहार या शारीरिक पीड़ा के रूप में प्रकट होकर मन को हल्का कर देती है। अन्नमय स्थूल शरीर के उपसर्ग रुग्ण मनोमय सूक्ष्म शरीर के परिणाम मात्र हैं। रोग इन्द्रिय गम्य वस्तु नहीं। चिकित्स्य स्थूल शरीर नहीं सूक्ष्म शरीर होता है। शरीर तो मानसिक रोगों का भोग क्षेत्र मात्र है। बीमार होने से पहले मन की उदासी, जी का भारीपन, मस्तिष्क की निष्क्रियता, शरीर की अकड़न आदि शुद्ध मानसिक लक्षण हैं। लक्षण और कुछ नहीं रोग की भाषा है। औषधि, वनस्पति वर्ग से, खनिज वर्ग से, प्राणि वर्ग से, शारीरिकस्राव से तथा व्याधिप्रसूत दूषित द्रव्यों से प्रस्तुत रासायनिक रस है जो मनोदैहिक सतुलन को पुनर्स्थापित करके स्वास्थ्य प्रदान करता है। नैराश्य और उदासीनता से क़ब्ज, चिन्ता और भय से पेचिश और क्षय, तीव्र संवेग से आमाशयिक एवं आंत्रिक व्रण, तनाव से फुफ्फुस के रोग, संवेग-दमन से धड़कन, विषाद से अनिद्रा, कुंठा से उन्माद, आत्मग्लानि स मूर्छा, ईर्ष्या से आंख के रोग, क्रोध तथा उतावलेपन से रक्तचाप, भग्नाशा से संभ्रम, अतिसंवेदनशीलता से हृदय के रोग हो जाते हैं। औषधि का सम्बन्ध शरीर से कम मन से अधिक है। आधुनिकतम चिकित्सा विज्ञान में प्रचलित हो रही है दैहिक—मानसिक उपचार पद्धति-शारीरिक रोग की दवा मानसिक विधि से। मानसिक भाव अनेक प्रकार के विषरस पैदा करके रोग उत्पन्न करते हैं। इससे विष का रेचन होता है। शारीरिक स्वास्थ्य केवल जल, वायु, भोजन, औषधि से ही नहीं, सद्भावना—मैत्री, प्रेम, त्याग, उदारता, करुणा, मुदिता, शुचिता आदि—से भी सुधरता है। इसीलिए भारतीय दर्शन में सद्विचार, सद्व्यवहार और सदाचार स्वास्थ्य की कुंजी माने गए हैं। हमारी मानसिक स्थिति से कायिक, वाचिक तथा आचारिक कर्म बनते हैं और कर्म से उनके फल, रोग। रोग केवल कर्म-भोग है।

शरीर जीवन का केन्द्र है और इसीलिए अत्याचारों का शिकार भी। हमारे गृहस्थ भोगी भोग के लोभ में केवल इसे भोगते हैं, आध्यात्मिक योगी योग की लालसा में इसे केवल साधते हैं, पहलवान केवल प्रदर्शन के लिए इसे रगड़ते हैं और तपस्वी तप के लोभ से इसे केवल तपाते हैं। कम लोग याद रखते हैं कि शरीर शक्ति-पुंज भी है और सारे जीवन-स्रोत शरीर से ही प्रस्फुटित होते हैं। अनुभव और अनुकरण से इतना तो सभी जानते और मानते हैं कि शरीर की ऊर्जा का उद्गम आहार में है पर विरले ही ऐसे होते हैं जो समझते हैं कि क्या खायें कब खायें और कैसे खायें। मनुष्य आजतक न तो अपने आहार के प्रकार को निश्चित कर पाया न उसकी मात्रा को। आधे से अधिक चिकित्सक हमारे आहार से और शेष हमारी भूख से अपना पेट भरते हैं। आहार-काल की चित्त दशा और मानसिक भावना के महत्व को तो जैसे हम जानते ही नहीं। आनन्द और उल्लास के वातावरण में जो आहार अमृत बन जाता है चिन्ता और व्यग्रता के कारण विष भी बन सकता है। भोजन-ग्रहण कोरी यांत्रिक क्रिया नहीं, इसका वातावरण प्रार्थना सा पवित्र, अनुग्रह-बोध सा समर्पित और संतोष सा निश्चित होना चाहिए।

आहार में शरीर के लिए पोषक द्रव्य मानसिक जगत के लिए भी पोषक होते हैं। इसी प्रकार घातक द्रव्यों के शिकार दोनों ही समान रूप से होते हैं। शरीर के रसायन में परिवर्तन होते ही मानसिक दशा में परिवर्तन स्वयमेव आ जाता है। उपदंश-विष रक्त में रहने पर निर्णयक्षमता नष्ट हो जाती है, विवेचन-भाव धुंधला हो जाता है, तर्क-शक्ति का ह्रास हो जाता है। कोकीन विष से स्पर्श-भ्रान्ति, झूठा आह्लाद, संस्पर्श-शून्यता आदि विक्षेप प्रकट होने लगते हैं। अफ़ीम से निर्मित द्रव्यों से दायित्वाभाव, व्यक्तित्व-अव्यवस्था, संवेगात्मक-अस्थिरता, उद्विग्नता, विचार-स्तब्धता, अनिद्रा, कम्पन आदि उपद्रव प्रारम्भ हो जाते हैं। तम्बाकू खाने या पीने से बाइस प्रकार के विभिन्न विष शरीर में प्रवेश कर के स्नायु-केन्द्रों पर घातक आघात

करते हैं; मस्तिष्क और मन की कोशिकाओं को विकृत कर देते हैं, मन में अपराध-भावना को जन्म देते हैं। शरीर में जब भी और जहाँ कहीं भी दर्द होता है विषैले पदार्थों एवं रासायनिक द्रव्यों के एकत्र होने के फलस्वरूप ही। इसीलिए सादे चमड़े में दर्द का अनुभव नहीं होता परन्तु शोथ आते ही दर्द होने लगता है। मद्यपान से मस्तिष्क-कोश निर्बल हो जाते हैं, मानसिक अनुक्रियाएँ विकृत हो जाती हैं, संतुलनशक्ति शिथिल हो जाती है, नैतिक बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, दृश्य-श्रव्य-भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, अतिभावुकता आ जाती है तथा प्रवृत्यात्मक-निर्दयता की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो जाती है। वार्धक्यविष के कारण ही रूढ़ि-प्रियता, स्वास्थ्य चिन्ता, चिड़चिड़ाहट, मृत्युचिन्ता और स्मृति-संभ्रम के मानसिक दोष वृद्धों में बहुधा पाए जाते हैं। आक्सीजन के अभाव में संज्ञा-शून्यता, बेहोशी और स्मृतिनाश के उपद्रव होने लगते हैं। भोजन में माड़ी की अधिकता से आलस्य, मांस से उत्तेजना, आती है। कैलशियम के अभाव से उत्कट क्रोध, और भावनात्मक विद्रोह उत्पन्न होता है।

हमारे शरीर में अनेक रस-ग्रंथियाँ हैं। इनमें विभिन्न प्रकार के अत्यन्त प्रभावकारी रस निकालने की क्षमता होती है। आवश्यकता पड़ते ही मस्तिष्क, रासायनिक संदेश-वाहकों द्वारा इन्हें सूचना भेजता है और वे तुरत अपना रस नलिका द्वारा वांछित स्थान पर या सीधे रक्तवाहिनियों में उड़ेलना प्रारम्भ कर देती हैं। इन रसों के सम्यक मात्रा न मिलने पर अनेक मानसिक रोग होने लग जाते हैं। पाचन-रसों की अधिकता से आहार-नाल के व्रण तो होते ही हैं, मन में उदासी, स्वभाव में अनमनस्कता और व्यवहार में कटुता भी आ जाती है। पाचक रसों के अभाव से अनिद्रा, विचार स्तब्धता, नियंत्रणाभाव, कल्पनाह्रास आदि मानसिक विक्षेप होने लगते हैं। आवेग, संवेग तो केवल नलिका विहीन ग्रंथियों के स्राव से होने वाली रासायनिक अनुक्रियाएँ हैं ही। व्यवहार की सारी असामान्यताएँ अंतःस्रावी ग्रंथियों के संतुलन में विक्षेप आने से होती है। इनके रस शारीरिक सुस्थिरता और मानसिक रचना को सीधे प्रभावित करते हैं। गलग्रंथि रस के अभाव से मन में आलस्य, एकाग्रता लाने में असमर्थता, स्वभाव में शान्ति, संवेगों में अस्थिरता आदि विक्षेप उत्पन्न हो जाते हैं। अधिवृक्क ग्रंथियों के स्रावों से उद्वेगों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। भय, क्रोध और चिन्ता के समय शरीर की सारी शक्ति को उत्तेजित और संगठित करके भगने या लड़ने का सामर्थ्य इन्हीं रसों से मिलता है। इसी प्रकार बालस, पोषणिका, दृक्कन्दिका, अग्नाशय आदि अंतःस्रावी ग्रंथियों के प्रभाव से भी अनेक शारीरिक और तज्जनित मानसिक विकार पैदा हो जाते हैं। अत्यन्त मोटापा, अत्यन्त कृशतनता, दाढ़ी-मूछ का अभाव, स्त्री में दाढ़ी मूछ आदि विकार अवश्य ही मानसिक संतुलन बिगाड़ देंगे। आचरण को अस्वाभाविक, भावनात्मकता को विचलित और मन को अपराधी बनाने का कार्य अन्तःस्राव ही करते हैं। इस प्रकार, हम जाने या नहीं, हम अपने सभी व्यवहारों और मानसिक कार्यों के लिए अपनी अन्तःस्रावी ग्रंथियों के दास हैं। ग्रंथियों के पालन एवं रसों के निर्माण की सामग्री हमारे भोजन से मिला करती है। अतः परोक्ष या अपरोक्ष रूप में हमारे व्यक्तित्व का निर्माण हमारी थाली में होता है।

आधुनिक जीव-विज्ञान का विश्वास है कि हमारे मानसिक कार्य और व्यवहार पूर्वजों से प्राप्त जीनों के अनुरूप ही होते हैं। ये जीन शुद्ध रासायनिक पदार्थ हैं जो शरीर और चरित्र को अपूर्व वैयक्तिकता प्रदान करते हैं। आज ऐसी वैज्ञानिक विधियाँ ज्ञात हो गयी हैं जिनसे इन जीनों के रसायन में परिवर्तन करके जीव के व्यवहार और आचरण में परिवर्तन ला सकते हैं। इस क्रिया को उत्परिवर्तन कहते हैं। रांजन किरणों, परावैगनी किरणों, अंतरिक्ष किरणों, गामा किरणों के प्रभाव से अनेक जीवों में शरीर एवं गुण परिवर्तन पैदा किए गए हैं। अनेक रासायनिक द्रव्यों—नाइट्रस अम्ल, आयोडिन सीस लवण, अश्रु-गैस, सरसों तेल, यूरेथेन आदि—द्वारा भी उत्परिवर्तन लाये जाते हैं। आज अनेक नये जीव और नये-नये प्रकार के बीज इसी के परिणाम हैं। अब तो गर्भस्थ भ्रूणों को वांछित जीन देने की क्रिया भी प्रारम्भ हो गयी है। वह दिन दूर नहीं जब हमारी सन्तान रंग-रूप, नाकनक्शे, आकार-प्रकार में ही नहीं शीलस्वभाव में मन-बुद्धि में, प्रवृत्ति-प्रकृति में भी मनोवांछित होगी।

अतः मन और शरीर अन्योन्याश्रित हैं। रोगों की उत्पत्ति में दोनों में सहसम्बन्ध है। हमारी सारी प्रतिक्रियाएं समग्र व्यक्तित्व से होती हैं। हम मनोदैहिक प्राणी हैं। मनोभावों और शारीरिक अनुक्रियाओं के बीच लीक खींचना आसान नहीं है। संवेगात्मक प्रक्रियाओं का सार शारीरिक विक्षेप है। आत्मरक्षा के लिए सब अंग, समस्त शक्तियाँ, और सारे अनुभव एक जुट होकर कार्य करते हैं। संतुलित व्यक्तित्व मन और शरीर के संतुलित समायोजन का परिणाम है। शारीरिक और मानसिक दोनों कारण मिल कर व्यक्तित्व का बीज बोते हैं। शारीरिक रचना के दोष आचरण में और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन शारीरिक प्रतिक्रियाओं में प्रकट होते हैं। व्यक्तित्वों की मात्रात्मक और गुणात्मक भिन्नताओं को समझने के लिए विशिष्ट दृष्टिकोण की आवश्यकता है। रोगों की चिकित्सा शारीरिक नहीं मनोदैहिक होनी चाहिए। अपराधी को बन्दीगृह नहीं अस्पताल भेजना चाहिए। सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोणों को व्याधिकीय दृष्टिकोण में परिवर्तित कर देना चाहिए। सामान्य-असामान्य व्यवहार, अनुकूल-प्रतिकूल अनुक्रिया, सामाजिक-असामाजिक प्रवृत्ति, नैतिक-अनैतिक दृष्टिकोण सभी मनोदैहिक परिणाम हैं और इनका समाधान भी केवल मनो-दैहिक विधियों से हो सकता है। शरीर विकार की चिकित्सा चिकित्साविज्ञान नहीं मनोविज्ञान कर सकता है। मनुष्य का उद्विकास शारीरिक से अधिक मनोवैज्ञानिक है। इसी का ज्ञान धर्म, दर्शन, साहित्य और कला का जनक है। सचेतन जीव एक अद्भुत शिल्पशाला है, संयोजनशाला है, शोधशाला है, संसृष्टिशाला है।

# अमृतवाणी

दुखी मन! तेरा रोग अशान्ति नहीं आसक्ति है।

श्रम तन को कम मन को अधिक माजता है।

मन के समक्ष चार प्रकार के दृश्य आते हैं—वस्तु वैसी ही होती है जैसी दिखती है, वस्तु न तो है न दिखती है, वस्तु है पर दीखती नहीं और वस्तु नहीं है पर दीखती है।

मन की परीक्षा? केवल परिस्थिति ही कर सकती है।

मन की तृप्ति का ही दूसरा नाम है विरक्ति।

मन का मालिक ही वीर होता है, फकीर होता है, पीर होता है।

दीखें भले ही—पर राग और त्याग भिन्न-भिन्न नहीं, विरोधी नहीं। दोनों एक ही मन के दो रूप हैं। एक से बचना दूसरे में गिरना है। कन्धा बदलने से मुर्दा हल्का थोड़े ही हो जाता है। हाँ, क्षणिक राहत जरूर मिल जाती है।

आप वस्त्र त्याग सकते हैं? अधूरे दीखेंगे, अपरिचित लगेंगे। वह शरीर का अंग जो बन गया है। इसी प्रकार गुलामी जब मन का अंग बन जाती है तो तोड़ना कठिन हो जाता है।

सत्य के हिम्मतवर ठेकेदारों का एक ही काम है—प्रलोभन और भय का जाल बुनकर सीधे-सादे मन को फँसाना।

हमारा मन ही हमारा होना है। अतः मन को जानना, पहचानना और समझना ही आत्मज्ञान है।

मनुष्य मनु की सन्तान हो या नहीं पर मन की तो है ही।

हमारे साहित्य में 'न करना' कुछ करना नहीं कहलाता पर मन के संसार में कुछ न करना ही उसकी सर्वोत्तम उपलब्धि है।

# साधना

( म० सुकृतदास बरारी )

साधना का अभिप्राय है—किसी साध्य या उपास्य की प्राप्ति का प्रयत्न। मानव जीवन का मुख्य साध्य है मोक्ष। मोक्ष याने दुःख-संसार सागर के चक्र से छुटकारा। संसार बन्धन से छूट जाना ही मनुष्य जन्म का मुख्य ध्येय है। तब उस संसार बन्धन से छूटने का साधन या प्रयत्न क्या होना चाहिये, यही इस शीर्षक का अभिप्रेत विषय है। दर्शन शास्त्रकारों का प्रयास भी इसी ध्येय की सिद्धि के लिए है।

दर्शन का अर्थ है—साक्षात्कार। प्रश्न उदित होता है—किस का साक्षात्कार? संसार जन्म—मृत्यु रूपी दुःख का सागर है। सागर तो अथाह ही होता है; जन्म-मृत्यु-दुःख का कारण भी तो अथाह याने अगम्य ही है। यदि यही मान लिया जाय, कि जन्म-मृत्यु रूपी संसार का कारण अगम्य याने बुद्धि की सीमा से बाहर है; तब तो जगत् ( जन्म-मृत्यु का चक्र ) अनादि और अनन्त ही ठहरा? और यदि यही बात ठीक है, फिर तो मोक्ष का भी कुछ तात्पर्य नहीं? और मोक्ष तो सभी आस्तिकों ने माना है। इसी उलझन को सुलझाने के निमित्त तत्त्वज्ञों ने जगत् को स्वरूप से अनादि नहीं किन्तु प्रवाह रूप से अनादि ठहराया है। [ विषयान्तर ध्येय की सिद्धि के ही लिए हो रहा है. क्षम्य है। ]

महानदियों का प्रवाह यद्यपि अविच्छिन्न है, तो भी उस प्रवाह का अन्त बाँध रूप में किया जा सकता है। इसी प्रकार जीवों के जन्म मृत्यु रूपी प्रवाह का अन्त मोक्ष-दशा में हो जाता है। [ यहाँ यह भूलना नहीं चाहिये, कि समस्त संसार की निवृत्ति नहीं हो सकती ' कारण कि जीवात्माएँ असंख्य हैं; उनमें से जिस-जिस जीवात्मा के कर्मों का ( जो जन्म मृत्यु का कारण हैं ) क्षय हो गया हो, उन्हीं के जन्म-मृत्यु का अन्त होता है, न कि सब का। ]

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध हो चुका, कि संसार बन्ध ( जन्म-मृत्यु ) की निवृत्ति मोक्ष स्थिति में हो सकती है। वह मोक्षस्थिति जिस प्रयत्न से साध्य हो, बस, उसी प्रयत्न का नाम साधना है।

अनन्त अन्वेषकों की साधनाएँ भी अनन्त हो सकती हैं; परंच साध्य ( मोक्ष ) की प्राप्ति में प्रायः सब ने आत्म साक्षात्कार को ही मुख्य ठहराया है। और है भी ठीक ही। निज स्वरूप की विस्मृति अर्थात् अपने स्वरूप को न जानना ( स्वरूप का अज्ञान ) ही जन्म-मृत्यु मय संसार-वृक्ष का का मूल है। और उस अज्ञान की निवृत्ति आत्म साक्षात्कार पर ही अवलम्बित है। इस आत्म साक्षात्कार में सहायक प्रयत्न ही साधना है।

मानव मात्र के अन्तःकरण मल, विक्षेप एवं आवरण रूपी तीन दोषों से आवृत हैं। इस दोषत्रय की निवृत्ति बिना अन्तःकरण-स्वच्छ नहीं हो सकता। दोष युक्त अन्तः-करण में स्वरूप ज्ञान का उदय होना असम्भव है। बादलों से आवृत सूर्यबिम्ब का दर्शन बादलों की निवृत्ति बिना क्यों कर हो। उक्त तीनों दोषों की निवृत्ति के साधन भी कर्म, उपासना और ज्ञान रूप से तीन ही हैं। और वे तीनों साधन निसैनी की सीढ़ियों के समान क्रम बद्ध हैं। पहली सीढ़ी बिना तय किये दूसरी सीढ़ी पर पाँव नहीं जम सकेगा। तद्वत् ही मोक्ष पद या आत्म साक्षात् पर आरूढ़ होने के लिए ज्ञानिओं ने कर्म, उपासना और ज्ञान का क्रम नियुक्त किया है।

कई महानुभाव आवेश में आकर कह तो देते हैं, कि 'हमें कर्म और उपासना ( ध्यान धारणा ) की आवश्यकता नहीं याने हम कर्मकांड एवं उपासना कांड को नहीं मानते'। परन्तु विचार दृष्ट्या उनका यह आलाप "अपने मुख की बारता, सुने न अपने कान" के सदृश केवल उपा-हासास्पद ही ठहरेगा। वे महानुभाव भी कर्म और उपासना में तो बद्ध ही हैं, किन्तु कर्म और उपासना के अभिप्राय से वे अनभिज्ञ हैं। जो हस्त पाद एवं मुख आदि इंद्रियों द्वारा कार्य किया जाता है, वही तो कर्म है। पूज्यों का वन्दन,

उनके शरीर की सेवा-पाद प्रक्षालन, स्नान कराना, उनके लिए भोजन तैयार करना, आसन बिछाना, पग चंप्पी करना आदि सेवा कार्य हों तो कर्म है। इस सेवा कार्य को भला, कौन महानुभाव नहीं करते और करवाते ? गुरुओं को वस्त्र, पुष्प, भोजन आदि अर्पण करना, कौन जिज्ञासु नहीं चाहेगा ? "कर्मकांड नहीं मानते" कहने वाले महापुरुष भी, यदि उन्हें सायं प्रात: वन्दन नहीं किया जाय तो वे नाराज क्यों हो जाते हैं ? पाठ आरंभ के समय पाठकों को वन्दन करना आवश्यक है। क्या, यह कर्मकांड नहीं हुआ ? बहुत से महात्मा कह देते हैं, कि 'यह मर्यादा है'। भाई ! मूंड का नाम कपाल। मर्यादा कहो या कर्मकांड। कई महानुभाव तो ऊपर निर्दिष्ट कार्यों को ही उपासना कह डालते हैं। खैर वह उपासना भी तो उन्हें मान्य हुई ? किसी भी तरह वे कर्मकांड एवं उपासनाकांड के भी वँधुआ हुये ही।

उपासना यथार्थ में मानसिक कर्म भले ही हो सकती है, परन्तु उसे शारीरिक कर्म में शुमार कर लेना, केवल संस्कृत भाषा की अनभिज्ञता का ही फल है। आध्यात्मिक चरचा में संस्कृत के शब्द तो कई आते ही हैं, और उन्हें जानना भी जरूरी है। उपासना शब्द भी संस्कृत-भाषा का ही है। जो उप और आसना इन दो शब्दों के मेल से बना एक सामासिक शब्द है। जिसमें 'उप' का अर्थ है समीप और 'आसना' स्थिति को कहा जाता है। सारत: उपासना का अर्थ है—अपने इष्ट या ध्येय के समीप स्थित होना अर्थात् पहुँच जाना। उपासना याने ध्येय रूप में तल्लीन हो जाना। जिसे ध्यान-धारणा कहा जाता है। परन्तु संस्कृत भाषा का ज्ञान नहीं होने से लोग भ्रम वश कर्म को ही ( मनगढन्त ) उपासना मान बैठते हैं। संस्कृत शब्दों का ज्ञान तो ज्ञान, कर्म एवं उपासनादि के प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यक है। अस्तु।

यह तो सिद्ध हो चुका, कि मोक्षप्राप्ति हेतु आत्म साक्षात्कार आवश्यक है; और इस आत्म साक्षात्कार में सहायक प्रयत्न ही साधना है। यद्यपि आत्म साक्षात्कार में स्वरूपज्ञान की आवश्यकता है परन्तु स्वरूप ज्ञान की उपलब्धि में बाधक रूप तीन दोष हैं जिनकी निवृत्ति क्रमश: कर्म उपासना और ज्ञान पर अवलम्बित है। अत: ये कर्मादि तीनों साधन भी साधना-क्षेत्र में शामिल हैं। तथापि कर्मादि तीनों बहिरंग साधना है। अन्तरंग साधना तो आत्मसाक्षात्कार की सहसा सन्निकटिका है। उसी सन्निकटिका साधना का महर्षि पतंजलि ने योग रूप में निर्देश किया है। 'योग' शब्द ही सम्बन्ध याने स्वरूप प्राप्ति का द्योतक है। परन्तु महर्षि पतंजलि द्वारा निर्दिष्ट यौगिक साधना कष्ट साध्य है। अत:—

### सद्गुरु कबीर का साधनाक्षेत्र

सन्त मत के आद्य प्रवर्तक सदगुरु कबीर की साधना का यहाँ संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया जाता है। इस साधना में षट् चक्र वेधने की कष्टप्रद प्रक्रिया मूलत: नहीं है। सद्गुरु कबीर ने अपने साधना मार्ग को सहजयोग, सहज समाधि के नाम से निर्दिष्ट किया है। यह साधना नाम मात्र के लिए साधना है। यथार्थत: उसकी अन्तिम स्थिति में तो साधक, साधना और साध्य रूप त्रिपुटी का लय ही हो जाता है, और वही आप का अभिप्रेत भी है। वहाँ साधक और साध्य की एकता है। उस स्थिति को प्राप्त साधक अपनी मस्ती में ललकार उठता है, कि—

न पल बिछुड़े पिया हमसे, न हम बिछुड़ें पिआरे से।
हमारा यार है हम में, हमन को इंतजारी क्या॥

न वहाँ भ्रम का साधन कांच महल है, न भ्रम ही। वह तो "न त्वं न चाहं न गुरुर्न शिष्य" की स्थिति है। जब तू है, तो मैं रहेगा ही। और मैं है तो तू भी रहेगा। गुरु है, तो शिष्य भी है। और शिष्य है तो गुरु भी रहूंगा ही। न वह एक है, न दो। कारण ये सब गुरु-शिष्य, मैं-तूं और एक-दो आदि परस्पर सापेक्ष हैं, और वह स्थिति निरपेक्ष है। उसी स्थिति को प्राप्ति का प्रयत्न है "कबीर का साधनाक्षेत्र"।

सद्गुरु कबीर का स्वय दिग्दर्शन है—

एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि।
है जैसा तैसा रहै, कहैं कबीर विचारि॥
( बीजक )

[ जैसे का तैसा रहना ही सहज समाधि है। ]

पच्छा पच्छी के कारणे, सब जग रहा भुलान।
निरपच्छ हो के हरि भजे, सोई सन्त सुजान॥
( बीजक )

[ पछा पछी = मेरी तेरी भावना। हरि = भावना-हीन स्थिति। भजना = प्राप्त होना। ]

माला फेरूँ न हरि जपूँ, मुख से कहूँ न रामं।
मेरा हरि मोको जपे, मैं पाऊँ विसराम॥

इसी साधना का पर्याय है भक्ति। यथा:—

भक्ति भगवान् की बहुत बारीक है,
सीस सौंपे बिना भक्ति नाही।
हो अवधूत सब आस तन की तजे,
जीयत मरे तब भक्ति पाहो॥
( रेखता )

[ तन की आशा छोड़ना ही जीयत मरना = भावना-हीन स्थिति है। ]

इति नहीं—वे अन्त है। "नेति नेति"



भजन -

## अयोनिज अवतार

साहिब कबीर अयोनिज अवतारा।
कमल पत्र पर प्रकट भये, जानत सब संसारा।।टेक।।
निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाणिक, वचन कवीर टकसारा।
उनके शिष्य सन्त सब कहिते, जिन्होंने आँख निहारा॥
कवीर जन्म विधवा ब्राह्मणि से, एक ने कर निरधारा।
कौन प्रमाण पास तासु के, कथनी का आधारा॥
जनम कवीर लक्ष्मी आँचर से, दूसर किया विचारा।
नहीं प्रमाण पास उसके भी, मिथ्या कीन्ह प्रचारा॥
तीसर कहै शुकदेव कवीर भे, जन्मे सीप मँझारा।
बिना प्रमाण उसकी भी कथनो, केवल भरम पसारा॥
हिन्दू जोगी मुसलमान भे, जुलहा जाति पुरा।
तिसमें जन्म कबीर का भयऊ, चौथा कहत लबारा॥
कहिं कहिं सतगुरु निज बानी में, जुलहा शब्द उचारा।
अन्य उक्ति अरथ अध्यातम, यहि उन शब्द का सारा॥
इन चारों में साच जो एकहु, कहा क्यों चारि प्रकारा।
बंसूदास बिचारि के कहते, हैं भटकावन हारा॥

महन्त बंसूदास कबीर पंथी, मादक निषेध प्रचारक, परमट, कानपुर



# कलि में हरि के अवतार श्री कबीर साहब

स्व० श्री गोपाल शास्त्री दर्शनकेशरी, डी. ५९।३१ सिगरा वाराणसी

भारते यवनाक्रान्ते निर्देष्टु सत्पथंनृणाम् ।
हरिः कबीरनाम्नावे कलाववतरिष्यति ।।
( भविष्य पुराणम् )

( अर्थ—जब भारतवर्ष यवन जाति से आक्रान्त हो जाय ( मुसलमान-राज्य करने लगेगें ) तब मनुष्यों को सन्मार्ग का उपदेश देने के लिये भगवान् विष्णु कबीर साहब के नाम से कलि में अवतार लेगें ।

यह बात स्पष्ट है । कबीर साहब ने स्वयं हिन्दी में वेद, उपनिषद्, वेदान्त सभी संस्कृत शास्त्रों का मर्म कह दिया है जिसका संग्रह बीजक, रमैनी इत्यादि नामों से प्रचलित है । आज पण्डितों ने संस्कृत भाषा की शिक्षा को पाणिनि पद्धति छोड़ कर कठिन कर दिया है । कबीर साहेब के ग्रन्थों से जगत् का कितना-उपकार हो रहा है ।

कबीर साहब का कहना है कि ईश्वर माया रूपी अपनी विलक्षण शक्ति को आगे करके जीव बनकर अपनी माया के बाजार सत् आनन्द रूपी जगत् को देखने चला, परन्तु उस माया को अपने कांख ( कक्ष ) में न दबाकर ओढ़ लिया । इसी कारण अपने सच्चित् आनन्दरूप दिव्य भवन में न पहुँच कर घोड़शाल ( अश्वशाला ) में ठहर गया । अर्थात् आत्म ज्ञान न कर देहको ही आत्मा मान बैठा । देहात्मवादी तो, कभी भी अपने लक्ष्य को पा सकता ही नहीं ।

कबीर साहब स्पष्ट कहते हैं कि "मुझे कहाँ ढूढें बन्दे मैं तो तेरे साथ रे । अर्थात् तुम तो मैं ही हूँ । ब्रह्म ही जीव है । कस्तूरी मृग की ही नाभी में रहती है वह उसे बाहर ढूढ़ता है । यही जीव का आणव मल है । जीव यदि अपने को ब्रह्म समझे जगत् को अपना ही रूप समझे सभी प्राणियों को अपना स्वरूप समझे तो कहाँ रागद्वेष रहेगा । भेद में ही तो रागद्वेष डाह, मत्सर, ईर्ष्या, जलन, इत्यादि दुर्गुण उत्पन्न होते हैं ।"

मै तो बराबर कहता रहता हूँ कि कबीर साहब के सम्प्रदाय के सज्जनगण–साधु चाहे गृहस्थ–सभी उनके ही ग्रन्थों को पढ़ें । उनमें वेद से लेकर सभी शास्त्र भरे पड़े हैं ।

हाँ, यदि संस्कृत पढ़ना है तो अद्वैत वेदान्त जो कबीर साहब ने कहा है—वह पाणिनि अष्टाध्यायी 'ऋजु-पाणिनीयम्' ग्रन्थ है उसे पढ़ें । लघुकौमुदी न पढ़ें । देखिये—

एको धातुस्तिङ्कृदन्त प्रयोगादानन्त्यगतः चरीकर्तिसर्वम् । ब्रह्माद्वैतं शब्द शास्य वोध्यं धातु ब्रह्म-प्रसूतंतिङ् सुलभाम् । ( केशरी )

अर्थ—एक ही धातु से पाणिनिजी के ही तिङ् कृत् प्रत्ययोंके योग से अनन्त शब्द बन जाते हैं । और सभी पद-रूप जगत् प्रसन्नता से चलता है । ऐसा ही कबीर साहब का कहना है कि, यह जगत् एक ब्रह्म का ही तो पसारा है । एक ब्रह्म अनेक प्राणी जीव वृक्ष, पेड़ पौधा सभी बन गया है । श्रुति = वेद में लिखा है—

"स एकाकी नारमत स द्वितीयमैच्छत् ।"

अर्थ—वह ईश्वर अकेला रहना नहीं चाहा । वह दूसरे को खोजने लगा । तो दो हुआ । इस प्रकार भगवान् अनन्त जगत् बनकर अपने सत्, चित्, आनन्द रूप को स्वयं जीव बनकर भोगने के लिये जीव बने हैं । यह तो अज्ञान है कि अपने को सभी दुःखी कर डालते हैं । डाह, घृणा, क्रोध, ईर्ष्या न कर मित्रता करना चाहिए सुखीजनों को पुण्यात्माओं को देखकर प्रसन्न होना चाहिये । पापियों के पाप की उपेक्षा करे । ये सभी बातें कबीर साहब ने कहा है । सभी का सग्रह बीजक-ग्रंथों में है । उसकी विस्तृत व्याख्या श्रीहनुमानसाहब आदि बड़े बड़े विद्वानों ने की है । वही पढ़ें समझें । उससे अधिक कोई क्या कहेगा । कलि में कबीर साहब का वचन ही ईश्वर का वचन है—

झीनी झीनी बीनी चदरिया ।



# विप्रमतीसी

[ डा० किशोरी लाल गुप्त, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्., सुधवै, वाराणसी ]

## नाम-विचार

कबीर साहब की एक सुप्रसिद्ध रचना 'विप्रमतीसी' है। यही रचना सुप्रसिद्ध निम्बार्क-संप्रदायाचार्य परशुराम देव जी के नाम से भी मिलती है। यह परशुराम-सागर भाग तीन में 'विप्रमती' नाम से संकलित है।—अथ विप्रमती लिख्यते।' परंतु इसकी पहली पंक्ति में ही इसका नाम 'विप्रमती सी' छपा है, जो संपादक की भूल है, छपना चाहिए 'विप्रमतीसी' ही। विचारदास शास्त्री ने बीजक की टीका लिखी है जो रामनारायण लाल बेनीमाधव इलाहाबाद द्वारा १९२६ ई. में प्रथमतः प्रकाशित हुई थी। इसमें पृष्ठ २५३ पर 'विप्रमतीसी' पर यह पाद टिप्पणी दी हुई है—

'विप्रमतीसी=( पूर्वोक्त ) ब्राह्मणों की बुद्धि का वृत्तांत। वस्तुतः यह शब्द 'विप्रमतितीसी' है, क्योंकि इसमें तीस चौपाइयों से उपदेश दिया गया है।"

शास्त्री जी की बात ठीक प्रतीत होती है। यह शब्द तीन शब्दों से मिल कर बना है विप्र, मति, तीसी। इस ग्रंथ में तीस चौपाइयों में विप्रों की मति का वर्णन हुआ है। 'विप्रमति' का एक अर्थ यह हो सकता है कि आज विप्रों की मति कैसी हो गई है। बिना ब्रह्म को जाने हुए ही वे ब्राह्मण हैं वे कर्म से ब्राह्मण न रहकर जन्म से ब्राह्मण हैं। इसका एक दूसरा अर्थ भी हो सकता है—विप्रो के लिए मति।

ग्रंथ का पूरा नाम है 'विप्र-मति-तीसी' जो सिकुड़ कर 'विप्रमतीसी' बन गया है, परशुराम सागर में यह और भी सिकुड़ कर 'विप्रमती' बन गया है।

## 'विप्रमतीसी' और 'विप्रमती' का तुलनात्मक अध्ययन

आगे विचारदास जी शास्त्री ( आचार्य प्रकाशमणिनाम साहब ) संपादित कबीर के बीजक से 'विप्रमतीसी' पूर्ण रूप से अवतरित है। उसकी बगल में परशुराम देवाचार्य कृत 'विप्रमती' भी उद्धृत है। समान पंक्तियाँ आमने सामने दी गई हैं। 'विप्रमतीसी' में ३० चौपाइयाँ हैं अंत में एक साखी है। 'विप्रमती' में ३६ चौपाइयाँ हैं। चौपाई ७,९,१०,२१,३२,३५ नई हैं। विप्रमतीसी में इनके सामने सादा छोड़ दिया गया है। शेष तीस चौपाइयों में तीन स्थलों पर उलट फेर है।

( क ) ग्यारहवीं चौपाई को ७,८ के बीच रखना पड़ा है। यह विप्रमतीसी की सातवीं चौपाई है।

( ख ) इक्कीसवीं चौपाई को ३०,३१ के बीच रखना पड़ा है। यह विप्रमतीसी को छब्बीसवीं चौपाई है।

( ग ) चौंतीसवी चौपाई की ३२,३३ के बीच रखना पड़ा है। यह विप्रमतीसी की अट्ठाईसवीं चौपाई है।

शेष चौपाइयाँ उसी क्रम में हैं, जिस क्रम में वे विप्रमतीसी में हैं।

दोनों कृतियों की भाषा में अंतर होना स्वाभाविक है। विप्रमती की भाषा राजस्थानी या मारवाड़ी रंग लिए हुए हैं। विप्रमतीसी की भाषा सहज सर्वमान्य साहित्य की भाषा है। इन दोनों कृतियों में भाषा के इस सहज अंतर को छोड़कर जो अन्य पाठ-भेद है, उन्हें रेखांकित कर दिया गया है। इस रेखांकन से इन पर सहज ही दृष्टि जा सकती है।

इन दोनों को मिलाने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि दोनों वस्तुतः एक ही ग्रंथ हैं। भले ही विप्रमतीसी में 'कबीर' की छाप हो और विप्रमती में 'परसा' ( परशुराम ) की।

विप्रमती परशुराम सागर भाग ३ ( पृष्ठ १२८-२९ ) के संपादक—डा. राम प्रसाद शर्मा एम. ए., पी-एच. डी., किशनगढ़ राजस्थान है और प्रकाशक करेंट बुक कंपनी जयपुर है। प्रकाशनकाल है १९७१ ई.।

## विप्रमतीसी

सुनहु सबहि मिलि विप्रमतीसो
हरि विनु बूड़ी नाव भरो-सी १
ब्राह्मन होके ब्रह्म न जाने
घर महँ जग्य-प्रतिग्रह आनें २
जेहि सिरजा तेहि नहि पहिचानें
करम भरम ले बैठि बखानें ३
ग्रहन अमावस अवर दुईजा
सांती पांति प्रयोजन पूजा ४
प्रेत कनक मुख-अंतर बासा
आहुति सहित होम की आसा ५
कुल उत्तिम जग माँहि कहावैं
फिरि फिरि मधीम करम करावैं ६

सुत दारा मिलि जूठो खाई
हरि भगतन को छूति कराहीं ७
करम असौच उचिष्टा खाँहीं
मति भरिष्ट जम लोकहि जाहीं ८

नहा खोरि उत्तिम होय आवैं
बिस्नु भगत देखे दुख पावैं ९
स्वारथ लागि रहै बे काजा
नाम लेत पावक जिमि डाढ़ा १०
राम क्रिस्न की छोड़िन्हि आसा
पढ़ि गुनि भए क्रीतम के दासा ११
करम पढ़े करमहि को धावैं
जे पूछे तेहि करम दिढावैं १२
निहकरमी की निंदा कीजे
करम करे ताही चित दीजे १३

## विप्रमती

सबको सुणियो विप्रमती सो
हरि बिनु बूड़े नाव भरो सो १
बाँमण छे पाणि ब्रह्म न जाणैं
घर मैं जगतपति ग्रह आणैं २
जिण सिरजे ताकून पिछाणैं
करम भरम कौं बैठि बखाणैं ३
ग्रहण अमावस थावर दूजा
सूतग पातिग प्रोजन पूजा ४
प्रेत कनक मुख अंतरि बासा
सवो अऊत होम की आसा ५
कुल उत्तिम जग मद्धि कहावे
फिरि फिरि मद्धिम कर्म कमावे ६
आन देव पूजे सिर नावे
ऊँचच जाति कूँ लछिन लावे ७
सुत दारा को झूठणि खाहीं
हरी भगवण की छोति कराहीं ११
कर्म असौच ऊचिष्टा खाहीं
मतै भिष्ट जम लोकहि जाहीं ८
सदा व्रिमालय उद्रहीं भरहीं
महा प्रसाद की निंदा करहीं ९
दान उपाय करि लियो न्हाले
झूठ साच करि लरिका पाले १०
न्हाय धोय उत्तिम होय आवे
विष्णु भगत देख्यां दुख पावे १२
स्वारथ लागि फिरै वेकाजे
राम सुण्यां पावक ज्यौं दाझे १३
राम कृष्ण की छाँडो आसा
पढ़ि गुणि भए कर्म कै दासा १४
सीखै करम, करम सँग धावे
जो बूझे ताहि कर्म दिढावे १५
निहकरमी की निंदा करीजै
करम करे ताको मन धीरजे १६

ऐसि भक्ति भगवंत की लावैं
हिरणाकुश को पंथ चलावे १४
देखहु सुमति करे परगासा
(विनु) अभिअंतर (भए) किरतम दासा १५

---

जाके पूजे पाप न ऊडे
नाम सुमिरनी भव मह बूडे १६
पाप पुन्य के हाथे दासा
मारि जगत की कीन्ह विनासा १७
ई बहतो कुल बहनि कहावें
ई ग्रिह जारैं ऊ ग्रिह मारें १८
बैठे ते घर साहु कहावैं
भितर भेद मन मुसहि लगावैं १९
ऐसी विधि सुर विप्र भनीजे
नाम लेत पंचासन लीजे २०
बूढ़ि गए नहि अपु सँभारा
ऊँच नीच कहु काहि जौ हारा २१
ऊँच नीच है मधिम बानी
एकै पवन एक है पानी २२
एकै मटिया एक कुंभारा
एक सभन्हि का सिरजनिहारा २३
एक चाक सभ चित्र बनाया
नादविंद के मध्य समाया २४
व्यापी एक सकल की जोती
नाम धरे का कहिए मोती २५
राच्छस करमी देव कहावैं
वाद करैं गोपाल न भावैं २६
हंस देह तजि न्यारा होई
ताकार जाति कहै धौं कोई २७
स्याह सपेद कि राता पियरा
अवरन बरन कि ताता सियरा २८

हिंद भगत भगवंत न आवे
हिरनाकुस को पंथ चलावे १७
देखौ मति की जो परकासा
विणां भासकर तम का वासा १८

---

ताकौं पूज्यां पाप न ऊडे
नाव सवरणी भौ मैं बूड़े १९
पाप पुण्य के हाथा पासा
मारि जगत कौ कीयौ नासा २०
ज्यौं बहिन कुल बहनि कहावे
घर मंडण वा घरहिं जरावे २२
ज्यौं वेस्य ग्रह साह कहावे
भीतर भेद मुसै न लखावे २३
ऐसो विधि सुर विप्र भ·जे
भगति विमुख सुपचा सम दीजे २४
अंध भये आपो न संभारे
ऊँच नीच कहि कहि निज हारे २५
ऊँच नीच मद्धिम सा वाणी
ऐकै पवण ऐकहीं पाणी २६
ऐकै माटी ऐक कुंभारा
एकै सबकौ सिरजण हारा २७
ऐकै चाकि सबि चित्र बनाया
नाद बिंद के मद्धि समाया २८
अंतरजामी विप्रक सूदा
ताहि विचारी करि मन सूधा २९
व्यापक ऐक सकल कौ गोती
नांव कहा धरि कीजे छोतो ३०
राकस करणी देव कहावे
वाद करे गोपाल न गावे २१
हंस देह तजि न्यारा होई
ताकी जाति कहौ धौं कोई ३१
विणसि गयाँ पाछे का कहिये
ऊँच नीच कौ भरम न लहिये ३२
स्याह सुपेत कि राता पीला
अवरण वरण कि ताता सीला ३४

हिंदू तुरुक कि बूढ़ो बारा
नारि पुरुष का करहु विचारा  २९

कहिए काहि कहा नहि माने
दास कबीर सोइ पे जाने  ३०

साखी—बहा है बहि जाता है, कर गहे चहुँ ओर
समुझाए समुझे नहीं, देहु धका दुइ ओर

—:□:—

नारी पुरुष कि बूड़ा बाला
तुरक कि हींदू करो सँभाला  ३३
अगम अगोचर कहत न आवे
अपणे अपणें सहजि समावे  ३५
समझि न परे कही को माने
'परसा' दास हीई सो जानैं  ३६

इति विप्रमती संपूर्णं ।।१३।।
चौपाई ३६। पद ३६

इति श्री परसराम जी की वाणी संपूर्णं
पोथी को संवत १६७७ वर्षे ।। इति ।।

### क्या 'विप्रमती' परशुराम देवाचार्य की रचना है ?

डा० रामप्रसाद शर्मा ने परशुराम सागर भाग ३ की भूमिका ( पृष्ठ ११६-११८ ) में उलटी गंगा बहाई है और निर्णय दिया है कि 'विप्रमती' परशुराम देवाचार्य की रचना है, कबीर साहब की नहीं। उन्होंने कुल छः तर्क दिए हैं। आगे हम उनके एक-एक तर्क पर अलग-अलग विचार कर रहे हैं।

( १ ) कबीर की भाषा में राजस्थानी ( मारवाड़ी ) का अद्‌भुत मेल है, पर कबीर की विप्रमती में मारवाड़ी शब्दों का नितांत अभाव है। मारवाड़ी शब्दों के स्थान पर उनके तत्सम रूप रख दिए गए हैं। डा० शर्मा के मत से "परशुरामदेव कृत विप्रमती लीला को बीजक संग्रहकों ने मोहवश अदल-बदल कर कबीर साहब के नाम से लिपिबद्ध कर लिया है।"

क्या यही बात उलटकर नहीं कही जा सकती ? परशुराम देव जी ने कबीर की विप्रमतीसी को लिया। हिंदी के सामान्य शब्दों के स्थान पर उन्होंने मारवाड़ी शब्द रख दिये। 'विप्रमतीसी' के तीसी का ठीक अर्थ न समझने के कारण उन्होंने ६ चौपाइयाँ ( अर्द्धालियाँ ) और जोड़ दीं। कबीर साहब की भाषा को मारवाड़ी मिश्रित कहना निराधार एवं भ्रामक है। वह तो काशी की भाषा है।

( २ ) "बीजक में कबीर कृत तीन-चार लीलाओं का ही संग्रह है जब कि परशुराम देव ने एक ही शैली में तेरह लीला ग्रंथ लिखे हैं तथा विप्रमती लीला उनकी अंतिम रचना है। जो विद्वान इसे मूल रूप में कबीर कृत मानते हैं, वे इस तथ्य को भुला देते हैं कि परशुराम कवि ने ऐसी ही शैली में १२ लीला ग्रथ और लिखे हैं। उनकी केवल विप्रमती लीला कबीर कृत हो, यह कैसे माना जा सकता है।"

यह बड़ा लद्धड़ तर्क है। क्या डा० शर्मा कहना चाहते हैं कि तेरहो लीला ग्रंथ कबीर साहब के मान लिए जाय ? सचमुच वे ऐसा नहीं चाहते। वे कहना चाहते हैं जिस तरह बारह लीला ग्रंथ परशुराम देवाचार्य के हैं, उसी प्रकार उसी शैली में लिखित विप्रमतीसी भी उन्हीं की रचना है। मुझे यह कहना है कि विप्रमतीसी लीला-ग्रंथ है ही नहीं, विचार-ग्रंथ है। चौपाई छंदों में रचना होने मात्र से वह परशुराम देव की रचना नहीं हो सकती। कबीर का ज्ञान चौंतीसा भी चौपाई छंदों में विरचित है।

( ३ ) "कबीर और परशुराम देव लगभग समकालीन थे, पर परशुराम वाणी की पोथी संवत् १६७७ वि० में ही तैयार हो गई थी। पोथी के संपूर्ण होने का उक्त सम( भी 'विप्रमती लीला' के अंतिम पृष्ठ पर अंकित है। बीजक परशुराम वाणी से अर्वाचीन है।"

इस पर मुझे यह कहना है—

( क ) कबीर और परशुराम देव लगभग समकालीन नहीं थे। कबीर का सर्वमान्य समय सं १४५५-१५७५ वि०

है। डा० शर्मा के अनुसार परशुराम देव का समय सं० १४५०-१५९७ वि० है। पर यह ठीक नहीं है। मैंने 'श्रीभट्ट, हरिव्यास देव और परशुराम देव के रचनाकाल पर विचार, शीर्षक लेख ( नागरी प्रचारिणी पत्रिका, शोध विशेषांक सं. २०७९ वि. वर्ष ७७ अंक १-४ पृष्ठ ८८-९४ ) में सिद्ध किया है कि इनका समय सं० १६००-८० वि० है।

( ख ) 'परशुराम वाणी' का संकलनकाल सं. १६७७ वि० है। यह संकलनकाल ही नहीं है। रचनाकाल भी है।

( ग ) बीजक के परशुराम वाणी से अर्वाचीन, १६७७ वि० के बाद की संकलित होने के प्रमाण अपेक्षित हैं। यह ठीक है कि बीजक को कबीर के शिष्य भगवान दास लेकर भाग गए थे, जिससे उनका नाम भग्गूदास हो गया था। पर धर्मदास ने बीजक का जो संकलन किया था, वह बांधवगढ़ में सुरक्षित था। अब वह वहाँ हो, या न हो, यह दूसरी बात है। धर्मदास का समय विक्रम की सत्रहवीं शती है। यों उनके द्वारा बीजक का संकलनकाल सं० १५२१ कहा जाता है, जो ठीक नहीं। पर धनी धर्मदास किसी भी हालत में परशुराम देव से परवर्ती नहीं हैं। और बीजक का संकलन सं० १६७७ से पहले हो चुका था।

( ४ ) "कबीर ग्रंथावली के कई संकलनों में 'विप्रमती लीला' का प्रकाशन नहीं कराया गया है। इससे प्रतीत होता है कि कबीर साहित्य के शोधकर्ता एवं बहुत से विद्वान इसे कबीर कृत नहीं मानते।" पाद टिप्पणी में डा० श्याशमसुंदर दास द्वारा संपादित एवं काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'कबीर ग्रंथावली' का उल्लेख किया गया है।

डा० श्यामसुन्दर दास द्वारा संपादित 'कबीर ग्रंथावली' का संपादन जिस हस्तलेख के आधार पर हुआ है उसका नाम है 'कबीर जी की वाणी'। नाम से ही स्पष्ट है कि यह कबीर की समस्त रचनाओं का संग्रह नहीं है। यह समस्त ग्रंथावली नहीं है। उक्त हस्तलेख में विप्रमतीसी नहीं थी, इसका अभिप्राय यह कथमपि नहीं है कि यह कबीर कृत नहीं है। बाबू श्यामसुंदर दास ने कहीं भी खंडन नहीं किया है कि विप्रमतीसी कबीर की रचना नहीं है और न उन्होंने यहीं कोई दावा किया है कि कबीर ग्रंथावली में कबीर साहब की समस्त रचनाएँ संकलित की गई हैं या जो रचनाएँ इसमें संकलित हैं वहीं कबीर साहब की रचनाएँ हैं, शेष उनकी नहीं है। ऐसी स्थिति में यह तर्क भी असमीचीन है।

( ५ ) परशुराम देव का साहित्य निम्बार्क-संप्रदाय की साहित्य-परंपरा पर नहीं चला, संत-साहित्य परंपरा पर चला। अतः उनकी इस रचना को "संकुचित संप्रदायवाद ने दबा दिया और उसे लोग धीरे-धीरे भूल गए। इस प्रकार से विलुप्त हुए साहित्य को संत संप्रदायों ने अपना लिया। बीजक-संग्रहकों को तो इतना मोह हुआ कि उन्होंने विप्रमती लीला ग्रंथ को अक्षरशः अपना बना लिया।"

यह ठीक है कि परशुराम देवाचार्य का अधिकांश साहित्य संतों जैसा है। पर निंबार्कियों ने उनके साहित्य को भुला दिया यह कहना गलत है। इसके स्पष्ट प्रमाण उनके परशुराम वाणी' सं० १६७७ और 'परशुराम सागर' नामक संकलन सं० १८३७ हैं। बीजक संग्रहकों की बार-बार चर्चा करके डा० शर्मा यही सिद्ध करना चाहते हैं—

सूझ जुआरिहिं आपन दाऊँ

उन्हें दूसरों का भी ध्यान रखना चाहिए। तर्क ऐसे हो जो अकाट्य हों।

( ६ ) डा. शर्मा ने डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल का यह कथन उद्धृत किया है—

"परशुराम का रचनाकाल ज्ञात नहीं है। वे कबीर साहब से पहले के हैं, या पीछे के, यह भी ज्ञात नहीं। इसलिए पूर्ववर्ती संबंध से भी इस विषय में कोई निर्णय नहीं हो सकता। परंतु इतना निश्चय है कि औरों की भी कुछ रचनाएँ कबीर के नाम से चल पड़ी हैं। कबीर के नाम से प्रसिद्ध कुछ रचनाएँ स्वामी सुखानन्द और बखना जी के नाम से मिलती हैं। कबीर जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति की रचना दूसरों के नाम से चल पड़ेगी यह कम संभव है। अधिक संभव यही है कि कम प्रसिद्ध लोगों की रचनाएँ कबीर के नाम से चल पड़ी हों और उनके कर्ताओं को लोग भूल गए हों।"

यह ठीक है कि कबीर के नाम पर जो समस्त साहित्य मिलता है, वह सब का सब कबीर साहब का नहीं है। पर यह भी अपनी जगह ठीक है कि बीजक में जो कुछ है, वह सभी कबीर साहब का है। कबीर पंथ की मान्यता तो

यही है।

( ७ ) अंत में डा. शर्मा ने लिखा है कि शिव सिंह सरोज ने भी विप्रमती रचना को परशुराम देव कृत माना है। 'शिव सिंह सरोज' प्रमादवश लिख उठा है। डा. शर्मा वस्तुतः डा. शिव प्रसाद सिंह और उनके ग्रंथ 'सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य' का उल्लेख कर रहे हैं। वर्तमान में जब यह दृष्टि-भ्रम है, फिर अतीत का क्या कहना ?

हमारा स्पष्ट निष्कर्ष है कि 'विप्रमतीसी' कबीर साहब की रचना है। विचार साम्य के कारण परशुराम देवाचार्य ने इसे अपना लिया है और इस पर अपनी मोहर भी अपनी भाषा के साथ-साथ लगा दी है।

---

## अ० भा० कबीर पंथ समाज, कबीर जयन्ती परिपत्र

हर्ष के साथ मैंने सूचित किया है कि १९८३ की कबीर जयन्ती दिनाक २४ जून से २५ जून तक मनायी जाय और सभी ने पूर्ण निष्ठा और श्रद्धा के साथ सद्गुरु कबीर जयन्ती उपर्युक्त तिथि में मनाई।

महन्त महावीदास ( महामंत्री )

## बैजनाथपुर सद्गुरु कबीरमठ में सद्गुरु कबीर जयन्ती

दिनाङ्क २५'६।८३ जेष्ठ पूर्णिमा को प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष बैजनाथपुर कबीरमठ में वयोवृद्ध तपो वैराग्यनिष्ठ स्थानीय मठाधिपति श्री विष्णु गोस्वामी की अध्यक्षता में बड़े ही धूमधाम से कबीर जयन्ती मनाई गई।

सर्व प्रथम श्री योगेन्द्रानंद गोस्वामी तथा श्री रघुनाथ गोस्वामी जी ने संगीतात्मक मंगलाचरण किया। पश्चात् तपोविरागमूर्ति श्री विदूर दास जी साहब ने आगत सन्त महन्त-सेवक-भक्तों का स्वागत करते हुए सद्गुरु कबीर के दार्शनिक गूढ़ सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया। उसके बाद वाराणसी से आये हुए डा० कपिलदेव शास्त्री जी ने वर्तमान सन्दर्भ में कबीर सिद्धान्तों की उपयोगिता का प्रतिपादन करते हुए कहा कि कबीर साहब का मानवधर्म अपनाने से भी समाज में शान्ति तथा व्यवस्था बनी रह सकती है। कबीर सिद्धान्त ही मानव कल्याण के लिये परम उपयोगी है। उनको सहज योग साधना" के द्वारा ही मानव लौकिक तथा पारलौकि शान्ति को प्राप्त कर सकता है। पश्चात् पं० श्री दुःखहरण दास जी साहब ने कबीर साहब की उलटवासियों को सरल सुबोध रूप में प्रस्तुत किया। उलटवासियों को सुनकर श्रोताओं को बड़ा ही आनन्द आया। अन्त में स्थानीय छोटे महन्त श्री रामलखन गोस्वामी जी ने जयन्ती में आगत सन्त महन्त-सेवक तथा विद्वानों के प्रति कृतज्ञता प्रकट किया। स्मरणीय है कि प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी ग्रामीण बच्चों तथा युवकों द्वारा सद्गुरु कबीर साहब की जयध्वनि करते हुए प्रभात फेरी की गई।

महन्त रामलखन गोस्वामी
पूर्व चम्पारन-विहार

# पगु धार्यो चंदवार

प्राच्यविद्या विशारद उदय शङ्कर शास्त्री, आगरा

कबीर पंथ में ऐसा प्रचलित है कि कलियुग में सद्गुरु कबीर साहेब का प्राकट्य काशी नगरी के निकट लहरतारा नामक तालाब पर ज्येष्ठ मास में हुआ था। इसी के उपलक्ष में आज भी अनेक स्थानों पर सद्गुरु की प्राकट्य जयन्तियाँ मनाई जाती हैं, उत्सव आदि होते हैं। कबीर साहब का चरित्र प्रकाश करने वाले लोगों ने अपने सामर्थ्य के अनुसार खोज बीन करके स्थिर किया कि कबीर साहब का प्राकट्य समय संवत् १४५५ ज्येष्ठ कृष्ण ३० दिन चंद्रवार है। कुछ दिन तक लोगों में यही संवत् कबीर साहब का जन्म संवत् माना जाता रहा, पर आगे चल कर जब इस समस्या पर और अधिक चिन्तन मनन किया गया और गणना कर के देखा गया तो विदित हुआ कि संवत् १४५५ के ज्येष्ठ बरसाइत ( बट सावित्री या बड़मावस ) के दिन चन्द्रवार नहीं था अपितु यह चन्द्रवार उससे आगे के संवत् में पड़ता है। वस्तुतः पन्थ जो प्रचलित है कि "चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार इक ठाठ ठए। से संवत् १४५५ ही ग्रहण किया जाता रहा और 'गए' की सगति बैठाने का प्रयत्न नहीं किया जाता था, जब 'गए' शब्द को चौदह सौ पचपन को जोड़ कर विचार किया गया तो स्पष्ट हुआ कि '१४५५ के बीत जाने पर अर्थात् १४५६ के ज्येष्ठ ३० चंद्रवार को प्राकट्य हुआ। तब से निर्भ्रान्त रूप से यही तिथि प्राकट्य तिथि के रूप में मान्य है।

जहाँ तक सद्गुरु कबीर साहब के इहलौकिक चरित्र का प्रश्न है और उसके साथ जो किबदन्तियां जुड़ी हुई हैं, उन सब के बारे में विचार करने का यहाँ अवसर नहीं है, यहाँ तो केवल उनकी ओर इगित कर देना ही अभीष्ट है। कबीर साहब के जीवन चरित के संबध में आधिकारिक रूप से लिखने का पहला प्रयास श्री अनन्तानन्द जी के द्वारा किया गया था। उनकी लिखी हुई परिचयी आज भी अपना महत्व अक्षुण्ण रखे हुए हैं। कहा जाता है कि अनन्तानन्द जी भी स्वामी रामानन्द जी के शिष्य थे। उन्होंने अपने समय के सन्तों के चरित्र लिखे हैं, जिनके हस्त लेख देश के अनेक स्थानों में पाये जाते हैं उन्हीं में कबीर साहब भी हैं। अनन्तानंद जी ने उस परिचयी मे यह भी लिखा है कि स्वामी रामानन्द जी से कबीर साहब का परिचय किस प्रकार हुआ। स्वामी रामानन्द जी से परिचय होने के उपरान्त कबीर साहब ने किस प्रकार जनसाधारण में अपने उपदेशों का प्रचार किया। उस समय के शासकों के द्वारा उत्पीड़ित एव प्रताड़ित जन समुदाय को किस प्रकार उससे मुक्ति दिलाई। पंडितों, मौलवियों आदि समाज के ठेकेदारों के द्वारा फैलाई गई बुराइयों को दूर हटा कर एक अदभुत एवं पवित्र वातावरण की सृष्टि की। इस प्रयास में उन्हें अनेक प्रकार के विरोध भी सहने पड़े, जिनका बड़े साहस के साथ सामना भी उन्होंने किया। कबीर पंथ में इन घटनाओं को 'बावन कसनी' के नाम से स्मरण किया जाता है :

इसी प्रसंग को लक्ष्य करके ओरछा निवासी भक्त शिरोमणि हरिराम व्यास जी ने लिखा है।

कलि में साँचो भक्त कबीर।  
जब तें हरि चरननि रुचि उपजी  
तब तें बुन्यो न चीर।  
दोनौं लेइ न कबहूँ जाँचे  
ऐसो मति कौ धीर॥  
जोगी जती तपी संन्यासी  
तिनकी मिटी न पीर।  
पाँच तत्त्व तें जनम न पायो  
काल न ग्रस्यो शरीर॥  
ब्यास भक्ति को खेत जुलाहौ,  
हरि करुनामय नीर॥

श्री व्यास जी के इस पद में एक बहुत ही महत्वपूर्ण तथ्य की ओर संकेत किया गया है, जिसकी ओर ध्यान दिया जाना आवश्यक है. वह यह कि पथ में जहाँ यह मान्यता है कि सद्गुरु कबीर साहेब ने सतयुग, त्रेता द्वापर और कलियुग चारों युगों के जीवों का उद्धार करने के निमित्त 'रहे विदेह देह धरि प्रगटे' शरीर धारण किया था। परन्तु आज का बुद्धिवादी समाज इस तथ्य को

स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं है वह तो जीवन-मरण की स्वाभाविक प्रक्रिया को ही सामने रखता है। ऐसी स्थिति में व्यास जी के जैसे अनन्य भक्त का यह लिखना 'पाँच तत्व से जन्म न पायो काल न ग्रस्यो सरीर' उन लोगों की आँख खोलने वाला है जो यह विश्वास करते हैं कि पाँच तत्व के बिना शरीर का निर्माण हो ही नहीं सकता है। इतना ही नहीं कबीर साहब के तिरोधान के विषय में भी कहा 'काल न ग्रस्यो सरीर' अर्थात् उन्होंने अपनी इच्छा से ही शरीर छोड़ा। इस प्रसंग में इतना कहना पर्याप्त है कि ये व्यास जी ओरछा ( बुंदेल खंड ) से आकर वृंदावन में रहे थे और अकबर तथा महाराज मधुकर शाह के समकालीन थे।

---

१. भक्त कवि-व्यास जी—वासुदेव गोस्वामी, पृ० १९४, प्र. सं. २००९, मथुरा।

## सद्गुरु कबीर प्राकट्य दिवस

**सांकरा, पो० कुम्हारी ( जि० दुर्ग )**

दिनांक २५-६-८३ को कबीर आश्रम सांकरा ( जि. दुर्ग म. प्र. ) में महंत श्री रामचन्द साहेब की अध्यक्षता में कबीर साहब प्राकट्य महोत्सव बड़ी धूमधाम के साथ मनाया गया। सबेरे ७ बजे जन समुदायों के साथ ग्राम में प्रभात फेरी हुई। ९ बजे महंत श्री रामचन्द्र साहेब के कर कमलों द्वारा झंडारोहण हुआ। इसके बाद भजन-मंडली द्वारा ध्वज वंदन हुआ। 'यह झंडा श्वेत निराला है, सत्यधर्म प्रचारण वाला है' इसके बाद सतसंग सभा का कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। सर्व प्रथम अध्यक्ष साहब की मंडली के कार्यकर्ता एवं विद्यालयीय छात्राओं द्वारा पुष्पमालाओं से स्वागत किया गया।

कबीर आश्रम के प्रांगण में काशी लहरतालाब के अनुरूप छोटा तालाब बनाया गया जिसमें कमलफूल एवं पत्तों और बिजली लाइट तथा तोरणपताको से भव्य रूप से सजाया गया था, जहाँ अगरबत्ती, इत्र, गुलाब का सुगन्ध चारों तरफ फैलता हुआ आकाश-मार्ग की ओर बह चला। इस सभा को देखकर सूर्य भी अपने ताप को कम कर लिया वर्षा की छींटें पड़ने लगीं हवा भी उष्ण की जगह शीतल बहने लगी, मानो साहब की प्राकट्य दिवस पर पाचों तत्व समर्पित होकर आनन्द ले रहे हों। जिसमें सर्वश्री संत सहस शरण दास साहब मंडली अध्यक्ष श्री भुजबल, उपाध्यक्ष श्री बिसनदास पटेल, महामंत्री, श्री परागादास, कोषाध्यक्ष श्री जानुराम साहू, संचालक एवं सलाहकार श्री इन्दुदास, छबीराम साहू, संचालक एवं सलाहकार श्री इन्दुदास चेनुदास, छबीराम, बिसाल पटेल ने सद्गुरु कबीर साहेब के जीवन चरित्र पर प्रकाश डाला।

विद्यालयीय छात्र बाबू टालू राम साहू, बाबू चूरावन दास साहू, बाबू हीरा लाल, रामरतन मानिकदास ने अपना वक्तव्य प्रस्तुत किया और कहा कि हम सबको सद्ग्रन्थों का अध्ययन, सत्याचरण करना आवश्यक है जिससे हमारा लौकिक एवं पारमार्थिक जीवन सुदृढ़ हो सके।

महिला वर्ग श्रीमती अम्बाबाई साहुन ने रामायण अयोध्याकाण्ड का राम जन्म का श्लोक से 'भये प्रगट कृपाला' बन्दना करके पातिब्रत की तरफ महिलाओं का ध्यान आकर्षित किया। श्रीमती सुखवती बाई ने भजन "बिगड़े ला बना लेहु साहब, बिगड़े ला बना लेहु ना" सुनाया।

श्री चिन्ता रामघनकर एवं श्री भैरव प्रसाद श्रीवास्तव ने सद्गुरु कबीर साहब के प्राकटय भजन सुनाया:—

लोक को छोड़ कर आये हैं सद्गुरु,
इस कमल दल पे आना गजब हो गया।

अन्त में स्थानीय भावदास साहू ने सभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि सद्गुरु कबीर साहब के बताये हुए मार्ग पर चलना चाहिये एवं वाणियों को अपने में ढालना चाहिए। "जो तू चाहो मुझको छाड़ सकल को आस, मुझ ही जैसा होय रहो सब सुख तेरे पास"। हम समस्त कबीरपंथी एक ही स्थान पर एक साथ बैठने की प्रयास करें जिससे अपना एवं देश का कल्याण हो और साहब की वाणी जन-जन तक पहुँच सके। शाम ६ बजे महंत श्री रामचन्द्र साहब के कर कमलों द्वारा सात्विक यज्ञ सम्पन्न हुआ। सभी लोग प्रसाद लेकर अपने को धन्य मनाते हुए नारा लगाया की कबीर की वाणी अमर रहें।

भावदास साहू ( संचालक )

# शिक्षा-दर्शन

आचार्य युधिष्ठिर शास्त्री-दर्शनाचार्य, एम. ए. द्वेद दर्शन-स. वि.
अध्यक्ष श्री साधुबेला संस्कृत महाविद्याल, वाराणसी

"शिक्षा" का अर्थ 'सीखना' है। वर्णों आदि का उच्चारण सीखना 'शिक्षा' है। मनुष्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था में अविकसित रूप में रहता है, क्योंकि उसमें शिक्षा का अभाव रहता है। परंतु जब धीरे-धीरे अकारादि वर्ण उदात्तादि स्वर, ह्रस्वादि मात्राएं, प्रयत्न बल, वर्णों का मध्यम वृत्ति से उच्चारण, साम अर्थात् समता तथा संतान-संतीत अर्थात् संहिता आदि की शिक्षा प्राप्त कर लेता है तो पूर्ण विकसित होकर मनुष्यत्व के वास्तविक स्वरूप की ओर अग्रसर होता है।

इस तरह शिक्षा से मनुष्य का जीवन समृद्ध होता है। उसकी बुद्धि और प्रज्ञा सुदृढ़ और प्रांजल होती है। मनुष्य किसी भी मनुष्य से बड़ा उसी स्थिति में होता है, जब उसकी बुद्धि और मस्तिष्क शिक्षा द्वारा तीव्रतर और उच्च होती है। इसलिए विद्याहीन मनुष्य को कुत्ते की पूंछ के समान कहा गया है जो गुह्येन्द्रिय को नहीं छिपा सकती।

शुनः पुच्छमिव व्यर्थं जीवितं विद्यया विना।
न गुह्यगोपने शक्तं न च दशनिवारणे॥

विद्या से मनुष्य अपना जीवन सार्थक करता है। इसके बिना उसका जीवन निरर्थक और सारहीन होता है। इसके संयोग से बुद्धि प्रखर होती है, बोध-क्षमता विकसित होती है और विवेक संपुष्ट होता है। यह ऐसे मार्ग का दिग्दर्शन करती है जिससे मनुष्य पथभ्रष्ट होने से बच जाता है तथा सही मार्ग का अनुसरण करके अपना इहलौकिक और पारलौकिक जीवन सुखमय बनाता है। इस प्रकार शिक्षा वह शक्ति है जो जीवन के हर क्षेत्र में मनुष्य को सच्चा पथ प्रदर्शित करती है।

## महाभारत-काल में शिक्षा का अर्थ

चूंकि शिक्षा का तात्पर्य शक्ति से है, इसलिए महाभारत-काल में शिक्षा उस अन्तर्ज्योति या शक्ति को कहा गया है जो मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, तथा आत्मिक बलों का संतुलित विकास करती है।

मनुष्य पशुओं से उच्च और देवताओं से निम्न कोटि का प्राणी है, क्योंकि वह आसुरी और दैवीय इन दो प्रवृत्तियों का संयोग है। इसलिए इन प्रवृत्तियों के तीव्र होने पर वह कभी पशुओं की श्रेणी में और कभी देवता की श्रेणी में चला जाता है। जब उसके अन्दर आसुरी प्रवृत्ति तीव्र होती है तब वह पशु के श्रेणी में चला जाता है और व्यभिचार जैसे बुरे कर्मों में प्रवृत्त हो प्रतिकूल आचरण करते हुए नारकीय जीवन व्यतीत करता है—

मनसा कर्मणा वाचा प्रतिकूला भवन्ति ये।
तादृशानासुरान् विद्धि मर्त्यास्ते नरकाश्रयाः॥

किंतु जब इस आसुरी प्रवृत्ति को नियंत्रित करते हुए दैवी प्रवृत्ति अधिक तीव्र होती है, तब मनुष्य देवताओं की श्रेणी में चला जाता है और अनुकूल आचरण करते हुए विकास के उस बिन्दु पर पहुंच जाता है। जहां जाकर वह भेद-भाव से ऊपर उठकर आत्मसाक्षात्कार करते हुए वास्तविक सुखों का उपभोग करता है—

मनोवाक्कर्मभिर्नित्यमनुकूला भवन्ति ये।
तादृशानमरान् विद्धि ते नराः स्वर्गगामिनः॥

आतम अनुभव सुख सुप्रकासा।
तब भव मूल भेद भ्रम नासा॥

इस आसुरी प्रवृत्ति को नियंत्रित करके दैविक प्रवृत्ति को तीव्र करने वाली शक्ति का नाम ही 'शिक्षा' है। शिक्षा मनुष्य को अविद्या-रूपी अंधकार से मुक्त कर विद्यारूपी प्रकाश से आलोकित करती है।

विद्या का संबंध मनुष्य के प्रगतिशील जीवन से है, क्योंकि इसके द्वारा किया गया कर्म प्रबल होता है जिससे मनुष्य का चहुंमुखी विकास होता है।—

यदेव विद्यया करोति श्रद्धायोपनिषदा,
तदेव वीर्यवत्तरं।
भवतीति खल्वेतस्यवाक्षरस्योपाव्याख्यान भवति॥

विद्याहीन मनुष्य ज्ञानरूपी नेत्र के कारण नेत्रहीन है—

अनेक संशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम्।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः॥

विद्या मनुष्य के हृदय-मन्दिर की अन्तर्ज्योति को प्रकाशित कर उसे ज्ञान रूपी नेत्र देती है।

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः।

इससे वह समस्त तत्त्वों के मूल को समझते हुए सही कार्य में प्रवृत्त होता है—

ज्ञानं तृतीयं मनुजस्य नेत्रं समस्ततत्त्वार्थविलोकदक्षम्
तेजोऽनपेक्षं विगतान्तरायं प्रवृत्तिमत्सर्वजगत्त्रयेऽपि॥

विद्या से ज्ञान होता है, ज्ञान से तत्त्व के दर्शन होते हैं और तत्वदर्शन करने के पश्चात मनुष्य विनीत चित्त होकर समस्त पुरुषार्थ का भाजन हो जाता है।

विद्ययास्पर्शयते ज्ञानं ज्ञानात् तत्त्वनिदर्शनम्।
दृष्टतत्त्वो विनीतात्मा सर्वार्थस्य च भाजनम्॥

इस तरह विद्या मनुष्य के उच्चतम जीवन का आधार है और उसकी प्राप्ति शिक्षा के द्वारा होती है।

## महाभारत में शिक्षा का उद्देश्य और उसके रूप

महाभारतकालीन शिक्षा का उद्देश्य न सिर्फ पारलौकिक अपितु लौकिक सुख की प्राप्ति भी उद्देश्य था। यही कारण है कि उस समय लौकिक एवं आध्यात्मिक इन दोनो प्रकार की शिक्षाओं का समुचित विकास हुआ था, जिससे एक तरफ मनुष्य आध्यात्मिक शिक्षा के द्वारा नैष्ठिक ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ एवं संन्यास की शिक्षा प्राप्त कर पारलौकिक सुख की अनुभूति करता था, तो दूसरी तरफ वह लौकिक शिक्षा के द्वारा गृहस्थोचित्त जीवन व्यतीत करते हुए इहलौकिक सुख की प्राप्ति करता था।

इन दोनों प्रकार की शिक्षाओं की प्राप्ति मनुष्यों को एक निश्चित अवस्था के बाद होती थी जो उपनयन संस्कार कहलाता था। उपनयन संस्कार की अवस्था वर्णों के अनुसार होती थी। ब्राह्मण का उपनयन संस्कार पांच वर्ष में, क्षत्रिय का छः वर्ष में, और वैश्य का आठ वर्ष में होता था—

ब्रह्मचर्यसकामस्य कार्यं विप्रस्य पंचमे।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येर्ध्यार्थिनेऽष्टमे॥

उपनयन संस्कार के बाद ही बालक वेद मंत्रों के श्रवण का अधिकारी हो सकता था। वेद में आर्यों के सब प्रकार के ज्ञान की निधि है। वेदों में व्यावहारिक जीवन की आवश्यकताओं से लेकर निःश्रेयस् तक की प्राप्ति के उपाय बतलाए गए हैं। इस प्रकार शिक्षा मनुष्य के जीवन को स्वच्छ एवं पवित्र बनाते हुए न सिर्फ उसके आध्यात्मिक लक्ष्य की पूर्त्ति करती है अपितु उसके नैतिक, सामाजिक और परलौकिक लक्ष्य की भी पूर्त्ति करती है।

मनुष्य के दो प्रमुख लक्ष्य हैं—इहलौकिक और पारलौकिक सुख की प्राप्ति, पारलौकिक सुख की प्राप्ति वैदिक कालीन शिक्षा का उद्देश्य था। उस समय परा विद्या की अपेक्षा अपरा विद्या का महत्व अधिक था क्योंकि परा विद्या का संबंध सृष्टि के उस मूलतत्त्व ब्रह्म से था जिसकी प्राप्ति लौकिक शिक्षा से न होकर आध्यात्मिक शिक्षा से होती थी। अतः तत्कालीन शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को पूर्ण ब्रह्म की प्राप्ति कराना था।

उपनयन संस्कार के बाद प्रत्येक व्यक्ति ग्रामों, नगरों से दूर गुरु के समीप रहते हुए विद्याध्ययन करते थे। यह कार्य खुले आकाश के नीचे प्राकृतिक सम्पदाओं से भरे हुए उस स्थान पर होता था जो निर्जन एकान्त वन अथवा पहाड़ की तराई में होता था। इस बात की पुष्टि महाभारत में वर्णित व्यास द्वारा हिमालय के पूर्व तट पर अपने शिष्यों को उपदेश के रूप में दी जाने वाली शिक्षा से होती है। जो व्यक्ति इस स्वच्छन्द वातावरण में शिक्षा प्राप्त करना नहीं चाहते थे उनके लिए घर पर ही शिक्षा की व्यवस्था होती थी। उदाहरण स्वरूप, पाण्डवों और कौरवों की शिक्षा घर पर हुई थी। वे लोग आचार्य द्रोण के शिष्य थे, जो भीष्म के दिए हुए धन-धान्य से सुन्दर भवनों में रहते हुए इन्हें शिक्षा दिया करते थे।

गृहं च सुपरिच्छिन्नं धनधान्यसमाकुलम्।
भारद्वाजाय सुप्रीतः प्रत्यपादयत प्रभुः॥
स ताञ्छिष्यान् महेष्वासः प्रतिजग्राह कौरवान्।
पाण्डवान् धार्तराष्ट्रांश्च द्रोणो मुदितमानसः॥

परंतु इस तरह की शिक्षा की अपेक्षा प्रकृति के स्वच्छन्द वातावरण में दी जाने वाली शिक्षा का महत्व अधिक था, क्योंकि ऐसी शिक्षा गाँव और नगरों के कोलाहल से दूर

रहने के साथ-साथ कठोर नियम पर आधारित थी। इस शिक्षा की प्राप्ति के लिए प्रत्येक विद्यार्थी को सादगी से जीवन व्यतीत करते हुए जप, तप, व्रत आदि नियमों में इन्द्रियों को नियंत्रित करना पड़ता था। उन्हें समस्त श्रृंगारों का त्याग करके वल्कल, मुंज आदि धारण करते हुए भिक्षाटन से जीवन व्यतीत करना पड़ता था और कामना को तीव्र करने वाले नाच, गान, स्त्रियों आदि का त्याग करके नित्य संध्या होम, अग्नि-होत्र आदि कर्मों में प्रवृत्त रहते हुए स्वाध्याय करना पड़ता था।

स्वाध्याय का मुख्य विषय ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद यजुर्वेद, इतिहास पुराण, व्याकरण श्राद्ध-कल्प, गणित, उत्पात विद्या, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, वेदविद्या, भूततन्त्र, धनुर्वेद, ज्योतिष, सर्पदेवजनविद्या, देवजनविद्या, गंधधारण आदि विद्याओं के साथ-साथ ७४ प्रकार की कलाएँ होती थीं, जो निम्नांकित हैं —

गायन, वादन, नर्तन, नाट्य, आलेख्य, विशेषक, चौक पूरना, पुष्पशय्या बनाना, अंगरागादिलेपन, पच्चीकारी, शयन रचना, जल-तरंग बनाना, जल क्रीड़ा, रूप बनाना, माला गूँथना, मुकुट बनाना, वेश बदलना, कर्णाभूषण बनाना, इत्र आदि सुगंध द्रव्य बनाना, आभूषणधारण, जादूगरी, असुन्दर को सुन्दर बनाना, हाथ की सफाई, रसोई कार्य, आपानक, सूचीकर्म, कलावस्तु, पहेली बुझाना, अंत्याक्षरी, पुस्तकवाचन, नाट्यप्रस्तुत करना, काव्य समस्या पूर्ति, बेंत की बुनाई, सूत बनाना, बढईगीरी, वास्तुकला, रत्न परीक्षा, धातुकर्म, रत्नों की रंग परीक्षा, आकरज्ञान, बागवानी, मेढा-पक्षी आदि लड़वाना, पक्षिओं की बोली बोलना, मालिश करना, केश-मार्जन-कौशल, गुप्त भाषा ज्ञान विदेशी कलाओं का ज्ञान, विदेशी भाषाओं का ज्ञान, भविष्यकथन, कठपुतली-नर्तन, कठपुतली के खेल सुनकर दोहरा देना; आशुकाव्य क्रिया, भाव को उतार कर कहना, घोखाधड़ी, अभिधान, नकाब लगाना, द्यूत-विद्या, रस्साकशी, बालक्रीड़ा कर्म, शिष्टाचार, मन जीतना एवं व्यायाम इन ऊपर वर्णित सभी विद्याओं एवं कलाओं का अध्ययन गुरु के आदेशानुसार करना पड़ता था।

अध्ययन की विधि साधारणतया मौखिक थी। उसका यह अर्थ नहीं कि उस समय लिपि का विकास नहीं हुआ था। लिपि का विकास तो वैदिक काल में ही हो चुका था। इस बात की पुष्टि वेद कालीन ग्रन्थों में वर्णित छन्दों से होती है। ऋग्वेद में गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुभ, बृहती, विराज, त्रिष्टुभ जगीत आदि छन्दों के नाम मिलते हैं। अथर्ववेद में इन छन्दों की संख्या ग्यारह बताई गई है। छन्दों के इस सूक्ष्म विवेचन से प्राचीन लिपिकला का अस्तित्व प्रमाणित होता है क्योंकि लिपिकला के अभाव में छन्दों का उपर्युक्त वर्गीकरण, विश्लेषण एवं वर्णन नहीं हो सकता है। यही कारण था कि उत्तर वैदिक कालीन ग्रन्थों में छन्दों के साथ-साथ अक्षरों का वर्णन किया गया है। उदाहरणस्वरूप, तैत्तिरीय संहिता, मैत्रायणी संहिता, काठक संहिता तथा शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में छन्दों के पादों तथा उनके अक्षरों की संख्या तक गिनाई गई हैं। अक्षरों का तो स्पष्ट उल्लेख छान्दोग्योपनिषद् में भी मिलता है। इस उपनिषद में 'ई' ऊ और ए स्वर क्रमशः ईकार, ऊकार और एकार शब्दों से सूचित किए गए हैं। इसमें स्वरों का संबंध इन्द्र से उष्मों का संबंध प्रजापति से और स्पर्श वर्णों का संबंध मृत्यु से बतलाया गया है।

ऊपर वर्णित लिपि संबंधी तथ्य महाभारत में भी मिलते हैं। इस ग्रंथ में जहाँ एक ओर गायत्री छन्द का वर्णन है, वहीं दूसरी ओर लोक-कल्याण के लिए ब्रह्मा द्वारा एक लाख अध्याय वाले नीतिशास्त्र की रचना का उल्लेख भी मिलता है। एक लाख अध्याय वाले नीतिशास्त्र की रचना मौखिक नहीं हो सकती है, क्योंकि मौखिक के आधार पर निश्चित की हुई नीति अधिक समय तक टिक नहीं सकती जिससे स्थायी रूप से लोक-कल्याण नहीं होता। स्थायी रूप से लोक-कल्याण तो उस नीति से होता है, जो लिखित होने के कारण अधिक समय तक टिकता है। ब्रह्मा द्वारा रचित नीतिशास्त्र का उद्देश्य लोक-कल्याण करना था, इसलिए यह कहना अनुचित नहीं होगा कि यह शास्त्र लिखित था दूसरी बात यह है कि इस शास्त्र को लिखित मानने से कोई दोष उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि प्राचीन ग्रन्थों में लिपिकला के स्रष्टा के रूप में ब्रह्मा को ही स्वीकार किया गया है। इस संबंध में बृहस्पति का कथन है कि ब्रह्मा ने पुरा-काल में ही पत्रों पर रेखांकित किये जा सकने वाले अक्षरों का निर्माण किया।

बृहस्पति द्वारा कहे गए ऊपर के कथन से सिर्फ लिपि के सृजन की बात ही स्पष्ट नहीं होती, बल्कि इससे प्राचीन काल में लिपि के लिए उपयोग की जाने वाली सामग्री का भी संकेत मिलता है। उस समय लिपि के लिए पत्र होता था, जो भोजपत्र कहलाता था। इस तरह स्पष्ट होता है कि महाभारतकाल में लेखन-कला का पूर्ण विकास हो चुका था।

लिपि के अंकन का रूप सर्वप्रथम अशोक के स्तम्भ-लेखों में मिलता है। आधुनिक देवनागरी का रूप उसी लिपि का क्रमिक विकसित स्वरूप है। यह लिपि ब्राह्मी लिपि कही जाती थी। जिस अशोक स्तंभ की लिपियों की चर्चा हम कर रहे हैं वह ब्राह्मी लिपि के विकास के मध्य का कोई रूप है, आज का कोई रूप नहीं। इसका विकास अशोक काल से बहुत पहले ही हो चुका था। ललित-विस्तार में इस विषय का वर्णन मिलता है कि सिद्धार्थ गौतम को लिपि का ज्ञान कराया गया था। यह छठी शताब्दी ई० पू० की बात है। भारत में लिपि का आविष्कार इससे बहुत पहले ही हो चुका था। हड़प्पा और मोहनजोदड़ों के खनन से जो मृत्त-पटिकाएँ प्राप्त हुई उन पर बहुसंख्यक अक्षर उल्लिखित मिले हैं इन्हें प्राग्वैदिक कहा गया है। यह भी एक सिद्धान्त है कि सिन्धुघाटी-सभ्यता के अक्षर ही विकसित होकर ब्राह्मी लिपि के रूप में आये। इस प्रकार महाभारत काल के पहले और बाद में लिपि को देखते हुए यह तो अनिवार्य रूप से मानना ही पड़ेगा कि महाभारतकाल में भी भारतीयों को लिपि का ज्ञान था जिसकी शिक्षा प्रारम्भ में ही दी जाती थी।

परंतु लिपि-कला का पूर्ण विकास होने पर भी उस समय अध्ययन करने की विधि मुख्यतः मौखिक ही थी। इसका कारण यह था कि इसके पीछे आर्य ऋषियों की यह वैज्ञानिक धारणा थी कि गुरु-मुख से उन्हें सीखे बिना उच्चारण या पाठ की शुद्धता तथा ऋचाओं की वैधिक शक्ति का रक्षण नहीं हो सकता था। यज्ञ में वेद के मन्त्रों के शुद्ध प्रयोग की बड़ी आवश्यकता थी। इसलिए उनका शुद्ध उच्चारण गुरु के मुख से ही सीखा जाता था, जिससे पाठ में उच्चारण की अशुद्धि न हो जो यजमान के नाश के लिए वज्र की तरह समर्थ मानी जाती थी।

> दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा
> मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
> सवाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति
> यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥

वैदिक शिष्य, इसी कारण, न केवल मन्त्रों को अपितु उनके पद-पाठ, दो-दो पद मिलाकर क्रमपाठ तथा पदों के उलट-फेर से घन, जटा आदि पाठों को भी स्वर सहित कण्ठस्थ करते थे।

कण्ठस्थ करने के लिए शिष्य को स्वाध्याय करना पड़ता था। स्वाध्याय करते समय शिष्य के मन में जो सन्देह उत्पन्न होता था उस संदेह को दूर करने के लिए शिष्य प्रश्न पूछता था।

> एतन्मे संशयं विप्र हृदि शल्यमिवार्पितम्।
> छिन्धीतिहासकथनात् परं कौतूहलं हि मे॥

और गुरु उस प्रश्न का उत्तर देते हुए उसके संदेह को दूर करता था। पुरानी कथाएँ कहता था। अथवा अनुभूति के द्वारा प्राप्त ज्ञान का उपदेश करता था।

> तमेवंवादिनं पार्थं शिष्यं गुरुरुवाच ह।
> सर्वं तु ते प्रवक्ष्यामि यत्र वै संशयो द्विज॥

गुरु के उपदेश से जो ज्ञान प्राप्त होता था वह सत्य, अजर-अमर, माना जाता था क्योंकि वे ब्रह्मज्ञानी होने के साथ-साथ तत्वदर्शी होते थे और समस्त विद्याओं में पारंगत होने के कारण वे शिष्यों को उनके वर्णोचित गुणों के अनुसार प्रवृत्ति एवं निवृत्ति मार्ग की शिक्षा देते थे।

वर्णोचित गुणों के अनुसार शिक्षा देने की यह भावना वैदिक एवं उपनिषद्कालीन शिक्षा में नहीं थी। उस समय प्रत्येक वर्ण के व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करने के साथ-साथ आचार्य पद पर नियुक्त होते थे। शिष्य बनने के लिए व्यक्ति की योग्यताओं पर ध्यान दिया जाता था, जाति पर नहीं। सर्वत्र शिष्य के गुणों और सत्य कर्मों का ही मूल्यांकन होता था। वही व्यक्ति शिष्य होने के योग्य माना जाता था जो ज्ञान-पिपासु एवं जिज्ञासु होने के साथ-साथ बुद्धिमान, कष्ट-सहिष्णु, परिश्रमी, और विद्या ग्रहण करने की योग्यता रखने वाला होता था। इन गुणों के अभाव वाले व्यक्ति को शिष्यभाव प्राप्त नहीं होता था, क्योंकि मंद बुद्धि होने के कारण ज्ञान के प्रति उसमें आस्था नहीं

होती थी। इस संबंध में निरुक्त में कहा गया है कि जो नम्रता के साथ उपस्थित नहीं होता था जो अपने विशिष्ट विषय के महत्त्व को नहीं समझता था। ऐसे शिष्य को स्वीकार नहीं किया जाता था।

शिष्य की योग्यता की परीक्षा गुरु करते थे। परीक्षा के लिए प्रत्येक शिष्य को कम से कम एक वर्ष गुरु के समीप रहते हुए, उनकी सेवा करनी पड़ती थी। एक ही गुरु के सान्निध्य में रहकर जो छात्र शिक्षा ग्रहण करता था, वह 'सतीर्थ्य' कहा जाता था। ऐसे शिष्य की योग्यता गुरु जान लेता था और उसे शिष्य के रूप में ग्रहण कर लेता था। नचिकेता की यथोचित परीक्षा लेने के बाद ही यमाचार्य ने इस से कहा, 'हे ब्रह्मन् ? तुम्हें नमस्कार हो। तुम नमस्कार योग्य अतिथि होकर भी मेरे घर में तीन रात्रि तक बिना भोजन किये रहे। अतः एक-एक रात्रि के लिए एक-एक कर के मुझसे तीन वर माँग लो। यम ने उसे उपदेश दिया :—

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीगृहे मे
अनश्नन्ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्य।
नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन्स्वस्ति मे अस्तु,
तस्मात्प्रति त्रीन्वराम्वृणीष्व॥

शुक्र जब पूर्णरूपेण कच के शील-स्वभाव से संतुष्ट हो गये तब उन्होंने उसे अपना शिष्य स्वीकार किया। कृष्ण और बलराम के आचरण से संतुष्ट होकर ही सन्दीपनि ने उन्हें शास्त्रों का ज्ञान कराया था।

निश्चिन्त्यतौ तदा मेने प्राप्तौ चन्द्रदिवाकरौ।
सांगांश्च चतुरो वेदान्सर्वशास्त्राणि चैव हि॥

इस तरह शिष्यों के चुनाव का आधार जाति न होकर उनकी योग्यता होती थी। यह बात सिर्फ शिष्यों के लिए ही नहीं थी, आचार्य के चुनाव के लिए भी इसी बात पर ध्यान दिया जाता था। प्रत्येक वर्ण का व्यक्ति, जो विद्वान्, तत्त्वदर्शी एवं ब्रह्मज्ञानी होता था, आचार्य पद पर नियुक्त किया जाता था और उससे उच्च और निम्न दोनों प्रकार के व्यक्ति शिक्षा ग्रहण करते थे। इस तरह की शिक्षा के अनेकों उदाहरण उपनिषदों में मिलते हैं। आरुणि एक विद्वान् ब्राह्मण था, जिसे पांचाल-नरेश जैबलि ने शिक्षा दी थी। गार्ग्य बालाकि ने काशीनरेश अजातशत्रु से ब्रह्म विद्या का उपदेश प्राप्त किया था। इसी तरह परिचारिणी जाबाल के पुत्र सत्यकाम को सत्य के आधार पर शिष्य रूप में ग्रहण करते हुए कुलीन ब्राह्मण आचार्य गौतम ने उसे शिक्षा प्रदान की थी।

प्रवाहणस्य जैवलेरास तस्मै
आसनमाहृत्योदकमाहरयांचकारमा
हास्मा अर्घ्यं चकार तं हो वाच
भगवते गौतमाय ... ... इति॥

शिक्षा का यह रूप धीरे-धीरे परिवर्तित हो गया। इस में योग्यता के साथ-साथ वर्ण-भेद की भावना का उदय हुआ। शूद्रों को शिक्षा से वंचित कर दिया गया। वैदिक शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार शूद्र को नहीं रहा। शूद्र का संस्कार नहीं होता था, इस लिए चतुराश्रमों की व्यवस्था उनके लिए नहीं थी। स्वभावतः ब्रह्मचर्य उनके लिए निषिद्ध होने के कारण वे अध्ययन से वंचित थे। वेदाध्ययन और भजन उनके लिए पूर्णतः वर्जित थे।

तस्माच्छूद्रः पाकयज्ञैर्यजेताव्रतवान् स्वयम्।
पूर्णपात्रमयीमाहुः पाकयज्ञस्य दक्षिणाम्॥

वेदाध्ययन के निमित्त कोई भी शूद्र कुलपति के आश्रम में नहीं प्रवेश कर सकता था। जो शूद्र कुलपति के आश्रम में प्रवेश करता था अथवा वेदों का अध्ययन करता था, उसे कठोर से कठोर दण्ड देने की व्यवस्था थी। दण्ड की व्याख्या करते हुए गौतम धर्मसूत्र में लिखा है कि जो शूद्र वैदिक मंत्र का उच्चारण करता था उसकी जिह्वा काट ली जाती थी। इस कठोर दण्ड के भय के कारण शूद्र पूर्णरूपेण शिक्षा से वंचित रहते हुए अन्य तीन वर्णों की सेवा मात्र करता था।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, ये तीन वर्ण शिक्षा प्राप्त करते थे। शिक्षण का कार्य मुख्यतः ब्राह्मण करता था, परंतु उस समय ब्राह्मण उस व्यक्ति को कहा जाता था जो ब्रह्मज्ञानी होता था क्योंकि वर्णों का आधार जन्म न होकर कर्म था। इसलिए शूद्रों को छोड़कर अन्य वर्णों के व्यक्ति कर्म के आधार पर ब्रह्मत्व को प्राप्त करते हुए आचार्य-पद पर नियुक्त हो गुण और कुल की परीक्षा ले शिष्यों को अध्ययन कराते थे। जनक एक क्षत्रिय राजा थे जिन्होंने व्यासनन्दन शुकदेव को प्रवृत्ति और निवृत्ति-मार्ग की शिक्षा

दी थी। गाधि के पुत्र विश्वामित्र ने ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर राम और लक्ष्मण को शिष्य के रूप में ग्रहण कर उन्हें शिक्षा प्रदान की थी। काशीवासी तुलाधार वैश्य ने ब्राह्मण जाजलि को धर्म संबंधी सूक्ष्म बातों की शिक्षा दी थी—

एवमुक्तस्तुलाधारो ब्राह्मणेन यशस्विना।
उवाच धर्मसूक्ष्माणि वैश्यो धर्मार्थतत्त्ववित्॥

योग्यता के आधार पर आचार्य का चुनाव होने के कारण आचार्य ज्ञान और दर्शन के अप्रतिम विद्वान् होते थे। राग, द्वेष, लोभ आदि गुणों से ऊपर उठकर निःस्वार्थ हो शिक्षा में अभिरुचि रखने वाले ज्ञान-पिपासु शिष्य को शिक्षा दिया करते थे। जो गुरु के आदेश का उल्लंघन करते हुए ब्रह्मचर्यव्रत का त्याग करके शिक्षा में मन नहीं लगाता था उसे कुपात्र समझते हुए गुरु शिक्षा से वंचित कर देता था। इतना ही नहीं, गुरु उसे रज्जु से बाँध कर छड़ी से पीटते हुए अहिंसायुक्त कल्याणकारी मधुर वचनों के द्वारा सही मार्ग पर लाने का प्रयास करता था। किंतु यदि इतने पर भी वह सही मार्ग का अनुसरण नहीं करता था, तो गुरु उसे या तो अपने यहाँ से हटा देता था अथवा उससे उपवास कराता था।

इसके विपरीत वह शिष्य, जो शिक्षा प्राप्ति की अभिरुचि लिए गुरु के साथ रहता था, उत्तम शिष्य माना जाता था। गुरु की उस पर विशेष कृपा रहती थी।

गौतमस्य तु शिष्याणां बहूनां जनमेजय।
उतङ्केऽभ्यधिका प्रीतिः स्नेहश्चैवाभवत् तदा॥

इस कारण वह पूर्ण शिक्षा प्राप्त करता था। पूर्ण शिक्षा प्राप्त करने की निश्चित अवधि नहीं थी। शिष्य एक वेद, दो वेद, तीन वेद अथवा चारों वेदों की शिक्षा प्राप्त कर अपना अध्ययन समाप्त कर देता था। तीन वेदों की अवधि ३६ वर्ष निश्चित की गई थी परंतु शिष्य इस नियत अवधि के पूर्व ९ या १८ वर्ष अथवा इससे भी कम समय में वेदों का अध्ययन कर के शिक्षा समाप्त करता था।

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम्।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा॥

शिक्षा की समाप्ति गुरु के आदेशानुसार होती थी, जो समावर्तन संस्कार के द्वारा सम्पन्न होता था। समावर्तन संस्कार एक प्रकार का आदेश था जिसे गुरु अध्ययन समाप्त कर घर लौटने वाले शिष्य को देता था। इसमें एक विशेष प्रकार का स्नान कराके गुरु शिष्य को उन सामग्रियों के उपभोग का आदेश देता था, जिनका उपभोग वह अध्ययन काल में कभी नहीं करता था। वह गुरु के आदेश से अपने अनुकूल कन्या से विवाह करते हुए पुत्र उत्पन्न करता था और वस्त्र, माला, सुगन्धित तेल आदि वस्तुओं का उपभोग करते हुए गुरु-ऋण पितृ-ऋण और देव-ऋण से मुक्त होने का प्रयास करता था। गुरु के आज्ञानुसार उन्हें वह दक्षिणा देता था। दक्षिणा के रूप में वस्त्र, माला, मणियों का कुण्डल, दण्ड, उपानह और छत्र के साथ-साथ वह अपने प्राणों को भी देने में देर नहीं करता था। महाभारत में यह बात उल्लिखित है कि गुरु द्रोण के मांगने पर एकलव्य ने अपना अँगूठा उन्हें दक्षिणा के रूप में दिया था।

तथैव हृष्टवदनस्तथैवादीनमानसः।
छित्वाविचार्य तं प्रादद् द्रोणायाङ्गुष्ठमात्मनः॥

उत्तंक मुनि ने अपनी गुरु-पत्नी को दक्षिणा के रूप में दो कुण्डल दिये थे—

स गत्वा त्वरितो राजन् गौतमस्य निवेशनात्।
प्रायच्छत् कुण्डले दिव्ये गुरुपत्न्यास्तदानघ॥

## शिक्षा का सामाजिक मनोविज्ञान

गुरु को दक्षिणा देकर प्रत्येक शिष्य घर लौटता था और अपने अपूर्ण ज्ञान को पूर्ण करने के लिए पिता अथवा अन्य आचार्य से शिक्षा ग्रहण करते हुए जीवन के अंतिम क्षण तक स्वाध्याय में लगा रहता था। जीवन भर स्वाध्याय करते हुए शिक्षा प्राप्त करने वाले शिष्य को 'चरक' कहा जाता था। उसका मुख्य उद्देश्य अपने लिए नहीं, अपितु सामाजिक कल्याण के लिए अपने को उत्सर्ग करना था।

सामाजिक उत्सर्ग की भावना की उत्पत्ति ज्ञान से होती थी, क्योंकि ज्ञान के क्षेत्र में सभी का स्वागत होता था। 'ज्ञान एक प्रकार का यज्ञ माना जाता था जिस को करने से मन, अन्तःकरण, सम्यकबोध धारणाशक्ति, प्रतिभा, चेतन शक्ति आदि शक्तियों की प्राप्ति होने के साथ-साथ सबों की उन्नति होती थी।

( शेष अगले अक में )

# सत्य, धर्म, और सम्प्रदाय

हरिश्चन्द्र चौधरी मालपर्यवेक्षक द० पू० रेल्वे, राजनान्दगांव ( म० प्र० )

श्री भागवत में कहा है:—

सत्यं परं धीमही

अर्थात् मैं सत्य स्वरूप परमात्मा का ध्यान करता हूँ।

तथा:—

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं,
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यामृतसत्यनेत्रं,
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपद्ये।

अर्थात्: -मैं उस सत्य स्वरूप परमात्मा की शरण ग्रहण करता हूँ, जिसका व्रत, नियम सत्य है। जो परम सत्य है। जिस सत्य से जगत् का प्रादुर्भाव हुआ है; और जो उसमें अन्तर्यामी रूप से स्थित है तथा जो सत्यस्वरूप अमृत एवं सत्यनेत्र है, ऐसे सत्यात्मक ब्रह्म की शरण में जाता हूँ। श्रीमद्भागवत् में और भी लिखा है कि:—

सत्यमेव जयते नानृतं,
सत्येनपन्था विततो देवयानः।

अर्थात् सत्य की ही जय होती है। जो सत्यवादी हैं जो सत्यपथ पर चलते हैं उनके सत्यधाम पहुँचने के लिये देवमार्ग खुल जाते हैं।

× × ×

चिन्तन एवं अनुभूति मानव जीवन के दो पहलू हैं। एक आध्यात्मिक उपलब्धियों की ओर ले जाता है तो दूसरा सामाजिक उपलब्धियों की ओर; किन्तु संत महापुरुषों का इन दोनों से संबंध रहता है। इनकी वाणी में चिंतन का अथाह जल भरा होता है। उसमें अनुभूति की उत्ताल तरंगे प्रवाहित होती रहती है। सत की अनुभूति बहुमुखी होती है। वह कभी जीवन की ओर कभी समाज की ओर तो कभी ब्रह्म की अनुभूति कराता है।

सद्गुरु श्री कबीर साहब के सत्य के दर्शन उनके इन शब्दों से स्पष्ट हो जाता है कि:—

तू कहता कागद की लेखी
मैं कहता हूँ आँखिन देखी।

श्री सतगुरु कबीर साहब की वाणी कितनी स्पष्ट है। उन्होंने जीवन को, समाज को, निकट से देखा है; साक्षात्कार किया है। ( यह तो व्याख्या की बात है। वास्तव में श्री सद्गुरु कबीर साहेब तो स्वयं सत्यपुरुष हैं ) साहब कहते हैं —

लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल।।"

जीवन समाज और सत्य की इन्होंने पूर्ण रूप से अनुभूति की है। इसकी समीक्षा की है। उन्होंने जीवन की जैसी साफ और सही समीक्षा की है वैसी आज तक किसी भी संत ने नहीं की है। श्री सद्गुरु कबीर साहेब कहते हैं:—

कबीर कहा गरबियो, इस जीवन की आस,
टेसू फूले दिवस दस, खंखर भए पलास।
सुंदर यों ही देखते, औसर बीत्यो जाइ,
अंजुरि माहीं नीर ज्यों, कितनी बार ठहराइ।।

मानव समाज की ओर इशारा करके कहते हैं कि इस समाज में बड़ी विचित्रता है तथा इसमें मनुष्य की स्थिति बड़ी जटिल है। सत्य का कहीं सम्मान नहीं। सत्यवादी पर कोई विश्वास नहीं करता। झूठ का सभी भरपूर सम्मान करते हैं। दूध गली-गली बिकता है पर उसे कोई नहीं पूछता परन्तु मद्यपान के लिये लोग मधुशाला की ओर दौड़ लगाते हैं। सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि सत्य ही ब्रह्म है किन्तु इस ओर किसी का भी ध्यान नहीं है। श्री रामचरित मानस लिखा में है कि:—"धर्म न दूसर सत्य समाना, आगम निगम पुरान बखाना। सत्य मूल सब सुकृत सुहाये, वेदपुरान विदित मनु गाये।" किन्तु झूठ और दम्भ ने सत्य का, विष ने अमृत का स्थान ले लिया है। यह संसार ऐसा दीवाना है कि वह दुःख को सुख मान बैठा है। यही कारण है कि मानव सच्चे सुख से दूर भाग रहा है और एक दूसरे के प्राणों का भूखा हो गया है। परमात्मा द्वारा दिये गये जीवन का हम कोई मूल्य नहीं समझ रहे हैं। इसके स्थान पर लोभ और तृष्णा का

साम्राज्य फैल गया है। सत्य पथ पर चलना कठिन समझ रहे हैं और संतोष भी प्राप्त करना चाह रहे हैं। परन्तु संतोष किसी को भी प्राप्त नहीं है। हम किसी को कुछ दान दे देने, अथवा यज्ञ वा पूजा कर लेने या तीर्थ यात्रा कर आने से अपने कर्त्तव्य से छुट्टी पा जाना समझते हैं परन्तु तब भी संतोष प्राप्त नहीं होता।

जाने-अनजाने, चाहे अनचाहे, अपेक्षित अनपेक्षित किसी को कुछ दे देना, पूजा या यज्ञ या तीर्थ यात्रा कर आना धर्म नहीं है और न इससे संतोष ही प्राप्त होता है। इस जगत् में संतोष किसी को नहीं मिला। ( सिर्फ सतपुरुष को छोड़ कर )। मिलेगा भी कहाँ से ? हम मानवों की महान् तपस्यायें, अनन्त तीर्थ यात्रायें, असीम आकांक्षायें भी संतोष को पा नहीं सकीं, फिर भी हमारी चेष्टा संतोष को पाने की ओर निरंतर अग्रसर होती जा रही है। पीड़ा, दुःख, संघर्ष, और वियोग का संताप हम मानव धर्म के नाम पर सहते आ रहे हैं और कहते हैं कि यह सब हम दूसरों के लिये कर रहे हैं। हमारा क्या है ? यह काम हो गया। अब हम संतुष्ट हो गये। परन्तु, कटु सत्य यह है कि मानव अपने ही लिये जीता है और कर्म भी करता है अपने लिये ही, और हम यह नाटक रचते रहते हैं कि हम जो कुछ भी कर रहे हैं दूसरों के लिये ही कर रहे हैं। हमारे भीतर छिपी छली आंकाक्षायें ही हमें कुकर्म करने के लिए निरंतर प्रेरित करती आ रही हैं जिससे हम सत्य से दूर भागते जा रहे हैं। जो व्यक्ति इन से दूर रह कर सत्य पथ पर चलता है, जो सत्यवादी है, वही सच्चा संत है। सच्चे संतों के लक्षण हैं दया, पवित्रता, सहिष्णुता, समुचित विचार, मन, वाणी और इन्द्रियों पर सयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय सरलता, संतोष, समदर्शिता, सेवा, मौन, आत्मचिन्तन मिष्ट भाषण एवं परोपकार तथा समाधस्थि होकर परम सतपुरुष सद्गुरु में एकाकार हो जाना। सद्गुरु श्री कबीर साहब ने सत्य को ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का सृष्टि कर्ता एवं सद्ब्रह्म कहा है। सत्य का कोई दूसरा रूप नहीं है और न हो सकता है। कोई यह नहीं कह सकता कि उसका इष्ट झूठा है। इष्ट सच्चा है तो इससे यही अर्थ निकलता है कि सभी में सत्य समाया हुआ है। अर्थात् सभी इष्ट रूप है। सद्गुरु श्री कबीर साहब ने जो रास्ता दिखाया है वह सत्यपथ है ज अनादि है, अनन्त है।

सत्य विशुद्ध है, अतः सत्य तक पहुँचने के लिये अर्थात् सत्पुरुष परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त करने के लिये हमें भी शुद्ध बनना होगा। सिर्फ साहब बन्दगी या सतनाम बोलने से कुछ नहीं होगा। धन धन कहने से कोई धनी नहीं हो जाता। इसके लिये प्रगाढ़ निष्ठा, असीम धैर्य, अटूट लगन एवं कठिन परिश्रम की जरूरत होती है। इसी प्रकार सत्पुरुष की निकटता के लिये भी सतनाम में प्रगाढ़ निष्ठा, सद्गुरु में अटूट लगन एवं प्रचुर विश्वास अपनत्व और प्रेम परमावश्यक है। शुद्धता शरीर में, वस्त्र में, स्वभाव में, मन-वाणी में, आचरण में, रहन-सहन में हो और परमसत्पुरुष में अनन्य प्रेम हो, तभी हम सत्पथ के, श्री सद्गुरु कबीर पंथ के पथिक कहलाने योग्य हो सकते हैं। साहब ने कहा है कि:—

काम क्रोध मद लोभ की, जब लग मन में खान।
तब लग पंडित मूरखो, दोनों एक समान ॥

सत्य ही मानव का धर्म है। सत्य वह धरातल है जिस पर धर्म रूपी वृक्ष खड़ा है। उसकी शाखायें ही सम्प्रदाय हैं। सीधे अर्थों में हम यह कह सकते हैं कि सत्य वह भूमि है जिस पर प्रत्येक धर्म का अपना विशेष पथ है और साधक अपने अनुकूल पथ का चयन करता है। यही सम्प्रदाय है। प्राचीन काल से मोक्ष के लिये चली आ रही अलग-अलग आराधना एवं आचार-पद्धति जो अनेक आचार्यों द्वारा चलाई गई हैं, सम्प्रदाय है।

धर्म एक गुण या विशेषता है जिसके नष्ट होने से सब नष्ट हो जाता है। जो सत्य को धारण कर अवनति की खाई में गिरने वाले मानवों को, समाज तथा राष्ट्र की रक्षा करते हुए सन्नियम, सुनीति, न्याय, सद्गुण तथा सत्कर्म, एकता, शान्ति, लौकिक तथा पारलौकिक सुख प्रदान करता है, वही सही धर्म है।

धर्म ही के कारण मनुष्य श्रेष्ठ है क्योंकि धर्म (मानवी गुण यथा-दया, क्षमा, सहिष्णुता, संतोष प्रेमादि) मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। अधर्म ( यथा-क्रोध, घृणा, कुवासना, अहंकार तृष्णा आदि ) मनुष्य को विकृति है। मानव-समाज में छुआछूत एक घृणास्पद रोग है जो उसके

धर्म को नष्ट कर रहा है। इसका मुख्य कारण सम्प्रदाय है।

धर्म एक दूसरे को अलग नहीं करता वरन् एकता के सूत्र में बाँधता है। धर्म-रूपी वृक्ष की संप्रदाय रूपी शाखायें आडम्बर एवं अपनी झूठी हठवादिता की वायु में बाग की मस्ती में झूम रही हैं और धर्म रूपी वृक्ष उनके बोझ से चरमरा रहा है। जब तक सत्य रूपी धरातल का मजबूत सहारा है, तब तक वह हरा भरा रहेगा किन्तु यदि संप्रदाय रूपी शाखायें व्यर्थ आडम्बर एवं झूठी हठवादिता-रूपी झंझावात से अपने को नहीं सँभालेंगी तो वे वृक्ष को भी गिरा देंगी। किंतु जिसकी जड़ें सत्य रूपी धरती में गहराई तक चली गयी हैं वह सम्प्रदाय का बोझ सहते हुये भी अपने स्थान पर अडिग रहेगा, शाखायें टूटती गिरती रहेंगी। जो सम्प्रदायों से चिपके रहते हैं वे धर्म के सत्य को पा नहीं सकेंगे, क्योंकि वे तो शाखा को ही सब कुछ समझते हैं। शाखाओं में आपस में एकता नहीं है क्योंकि उनकी दिशायें, मान्यतायें, अलग-अलग हैं और यही कारण है कि प्रार्थना की जगह एक दूसरे की निंदा; दया और प्रेम की जगह घृणा का ही स्वर सुनाई पड़ता है। समस्त धर्म का मूल-तत्त्व इतना ही है कि जो अपने को अनुकूल लगे, अच्छा लगे उसका दूसरे के प्रति भी व्यवहार और आचरण करें।

जो सबको धारण करे, जिससे सबका अभ्युदय हो वही धर्म है। धर्म हृदय को विभक्त नहीं करता वरन् जोड़ता है। इस जगत् में जितने भी मत हैं सबकी नींव सच्चे विश्वास में है तर्क में नहीं। इस जगत में हम मानवों का एक ही धर्म है, मानव धर्म। धर्म को सभी मानव, सभी समाज सभी मतमतान्तर, परम सुख की प्राप्ति का साधन मानते हैं। धर्म वह है जिसके द्वारा इस लोक में सबका सर्वाङ्गीण विकास होता है और मानवजीवन के लक्ष्य—'मोक्ष' की प्राप्ति होती है। अतः हम मनुष्यों को निम्न-लिखित कार्य करते जाना चाहिये जिससे मोक्ष की प्राप्ति हो सके:—

हम अपने मनोगत सभी कुकर्मों को छोड़ें, अपने में संतुष्ट रहें। दुःख में न उद्विग्न हों और न सुख में बहुत उत्साहित। शुभ और अशुभ दोनों में एक रस हों। इन्द्रियों एवं मन को संयम से रोकें, क्योंकि भोग की चिन्ता करने से सम्पर्क होता है और काम से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से सम्मोह होता है और सम्मोह से स्मृति लुप्त हो जाती है तथा बुद्धि का नाश हो जाता है। अतः इन्द्रियों को समेट कर शान्त स्थान में जलते दीप की अडिग लौ की तरह शान्त हो सत्पुरुष को परमात्मा में ध्यान लगाना तथा समतोल के लिये चित्त को तराजू की डंडी की तरह अचल और स्थिर रखना चाहिए। सभी प्राणियों के सुख के लिये प्रति दिन परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करते रहना चाहिये। इससे व्यर्थ ढकोसला-रूपी मान्यताओं का महल ढह जायेगा। सत्य की पूर्ण अनुभूति तथा धर्म की सार्थक अनुभूति होगी। संतोष प्राप्त होगा। अन्त में परमपुरुष का साक्षात्कार करते हुये मोक्ष को प्राप्त होंगे।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद्दुःख भाग भवेत्॥
सतनाम सतनाम सतनाम।
ॐ शांतिः! शांतिः!! शांतिः!!



हिन्दू के सद्गुरु सही, मुसलमान के पीर। दादू दोनो दीन में अदली नाम कबीर॥
अब ही तेरो सब मिटे, जन्म मरन की पीर। सास उसासा सुमिरले, दादू नाम कबीर॥
कोई दीक्षा सगुन में, कोई निर्गुन ठहराय। दादू गति कबीर की मोते कही न जाय॥
भवजल तारन जीव की, खेवट आय कबीर। अनन्त कोट सुख भाव से दादू उतरे तीर॥

# कबीरचौरा मठ में श्री कबीर साहब का प्राकट्य-महोत्सव समारोह

संत विचार दास

कबीरचौरा स्थित सद्गुरु कबीर साहब की कर्मभूमि में हर वर्ष की तरह इस वर्ष भी उनका प्राकट्य-महोत्सव मनाया गया। मठ में इस साल जयन्ती महोत्सव का त्रिदिवसीय कार्यक्रम था। सद्गुरु का प्राकट्य ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन हुआ था। हर वर्ष ज्येष्ठ पूर्णिमा जून के प्रथम सप्ताह से लेकर जून के आखिरी तारीख तक पड़ती है। इस वर्ष प्राकट्य महोत्सव २५ जून को था। मठ में तीन दिनों २४-२५ और २६ जून तक विशाल आयोजन हुआ।

अन्य वर्षों की अपेक्षा इस वर्ष काफी संख्या में संत-महंत सेवक-सती और कबीर प्रेमियों ने भाग लिया। एंस तो देश के कोने-कोने से कबीर अनुयायी संत-महंत भक्त गण आये थे। लेकिन विशेष रूप से बिहार, मध्यप्रदेश गुजरात, राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली और नेपाल के कबीर पंथियों की संख्या अधिक थी।

२४ जून को प्रातः से चार बजे शाम तक संत-महात्माओं का सत्संग प्रवचन कीर्तन, भजनादि का कार्यक्रम चलता रहा। अपराह्न चार बजे से बीजक का अखण्ड पाठ शुरू हुआ। बीजक का यह अखण्ड पाठ वर्ष में एक ही बार होता है। कबीरपंथ में इस अखण्ड बीजक पाठ का बहुत महत्त्व बताया जाता है। इसके लिए एक निश्चित वेदी बनी हुई है। यह वेदी मठ के चार आचार्य गुरुओं की समाधियों के बीच में अवस्थित है। हवन सामग्री युक्त बीजक का सामूहिक सस्वर पाठ करते हैं। विधि-विधान के साथ बीजक का पाठ आरम्भ हुआ। मठ के आचार्य श्री ने घी की ज्योति से हवन कुण्ड की अग्नि जलाकर बीजक की प्रथम 'रमैनी' अन्तर जोति' शब्द" का उच्चारण कर बीजक का पाठ प्रारम्भ किया। हवन कुण्ड में हवन सामग्री डालने के कुछ नियम बने हुए हैं। एक एक रमैनी समाप्त होने पर, एवं शब्द के एक-एक शब्द समाप्त होने पर सामूहिक पाठ करने वाले सभी संत हवन कुण्ड में हवन सामग्री डालते हैं। पाठ समाप्त होने पर आचार्य श्री ने पाठ के महत्त्व पर प्रकाश डाला।

२५ जून को कबीर साहब का मुख्य प्राकट्य महोत्सव था। उस दिन प्रातः से ही चहल-पहल शुरु हो गयी। आगन्तुकों के लिए ठहरने की समुचित व्यवस्था थी। व्यवस्था सम्बन्धी कार्यक्रम बँटे हुए थे। सभी संत कार्यकर्ता अपनी-अपनी व्यवस्था में लगे हुए थे। दूसरी तरफ सवेरे से ही संतो की भजन मण्डली, कीर्तन, भजन कर रही थी। बीच-बीच में उपदेशक संत, नेमी प्रेमी भक्तों को कबीर साहब के अमृतमय ज्ञान का श्रावण करा रहे थे।

साढ़े दस बजे मंदिर-प्रांगण से कबीर साहब की विशाल शोभा यात्रा निकाली गयी। सबसे पीछे दो घोड़ों के रथ पर आचार्य श्री बैठे थे। सजे हुए रथ पर कबीर साहब का एक बड़ा चित्र रखा था। शोभा यात्रा में विभिन्न वाहनों सवारियों पर संत मण्डली कीर्तन-भजन करते हुए चल रहे थे। प्रायः साधु गण श्वेत झंडा लेकर नारा लगाते हुए शोभा यात्रा की शोभा बढ़ा रहे थे। कुछ संत भक्तों के हाथों में सूक्तियाँ लिखें बैनर थे। 'आज कबीर जयन्ती है। 'कबीर साहब की जय' 'कबीर जयन्ती कुलीनता और मानवता की प्रतीक है आदि बीच-बीच में नारे लगाये जा रहे थे। आगे पीछे तीन अंग्रेजो बैण्ड बाजे भी अपनी धुन से शोभा बढ़ा रहे थे।

शोभा यात्रा मंदिर से निकल कर बनारस के मुख्य सड़कों से गुजरती हुई मठ में आकर सभा के रूप में परिणत हो गयी।

सभा की अध्यक्षता मठ के महंत आचार्य अनन्त श्री अमृत साहब ने की। अध्यक्ष पद से बोलते हुए साधुओं और भक्तों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा कि कबीर साहब आज हमारे लिए सामयिक हैं। सद्गुरु की वाणी युग के साथ चलने वाली वाणी है। कबीर साहब सत्य के वक्ता थे। सत्य के लिए जीवन भर वे संघर्ष करते रहे। जाति-पाँति, छुआ-छूत जैसे भेद भावों को जड़ से मिटा देना चाहते थे। पाखण्ड के विरोधी थे। आज भी किसी-न किसी रूप में समाज के भीतर कुरीतियां फैल रही हैं।

कबीरपंथी साधुओं को संगठित होकर इन सारी कुरीतियों के खिलाफ संघर्ष करना चाहिये।

आचार्य श्री ने आचरण-शुद्धता पर बल देते हुए कहा कि धर्म आचरण का विषय है। आचारणहीन मनुष्य ही अधर्म का काम करता है आचरण ही आदमी के दिल को पवित्र बनाता है और सत्य की ओर प्रेरित करता है। जब भी मनुष्य भीतर की गहराइयों में उतरता है तो धर्म उच्चारण का विषय न रहकर आचरण का विषय बन जाता है। आचरण सम्बन्धी शुद्धता पर सद्‌गुरु ने बहुत बल दिया है इसकी पुष्टि में कई साखियाँ प्रस्तुस्त कीं।

राष्ट्रीय समस्याओं पर चर्चा करते हुए आचार्य श्री ने कहा कि कबीर साहब राष्ट्रीय एकता के पक्षधर थे। जन-भावना को तैयार करने के लिए साधुओं को जनता के भीतर जन-जागरण का काम करना पड़ेगा। संकेत रूप में पंजाब और असम की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि तुच्छ और स्वार्थी राजनीतिज्ञों के कारण यह सब हो रहा है।

मंदिर के अधिकारी संत गंगाशरण शास्त्री ने सभा को सम्बोधित करते हुए कबीर जयन्ती मनाने की सार्थकता पर प्रकाश डाला और कहा कि जयन्ती मनाने का मतलब यह नहीं कि हम एक जगह एकत्र होकर भोज-भण्डार करके अपने को कृतार्थं मान लें। हम सद्‌गुरु के आदर्शों पर चलें, सच्ची जयन्ती यही होगी। जब तक हम उनके आदर्शों को अपने आचरण में नहीं उतारेंगे तब तक ऐसी जयन्ती से कोई लाभ नहीं है। कबीर साहब आम लोगों के संत थे। जयन्ती जनता के बीच और जनता के लिए मनाना चाहिये। इस अवसर पर साधुओं को जनहित का कार्यक्रम चलाना चाहिये ताकि तमाम लोग उनकी वाणी और उनके उपदेशों से लाभन्वित हो सकें।

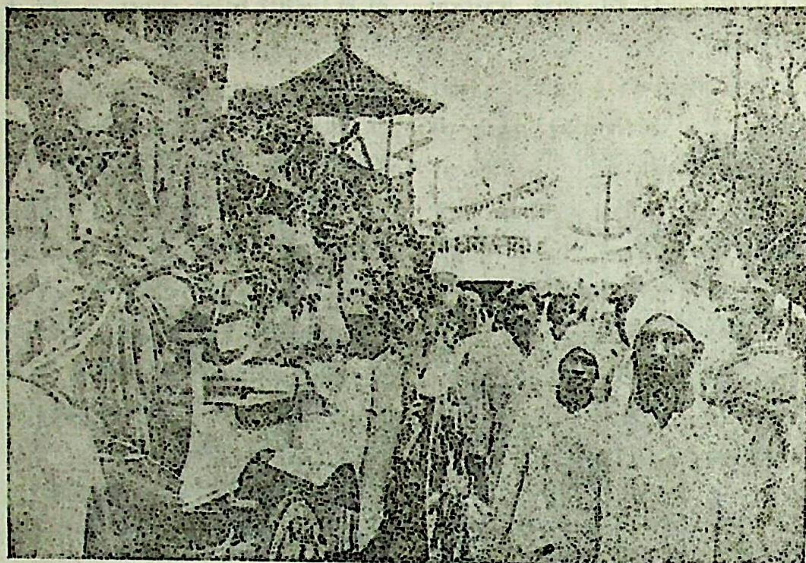
विद्वान् वक्ता महंत साधुशरण गोस्वामी ने अपने प्रवचन में कबीर साहब की एक साखी पर विस्तृत चर्चा करते हुए 'कथनी' और 'करनी' का अन्तर बताया। उन्होंने कहा कि आज आदमी कहता अधिक है, करता कम है। यही कबीर साहब में और हम में बुनियादी फ़र्क है। जब तक हम 'कथनी' को 'करनी' में नहीं उतार लेते हैं तब तक हमारा कहना सुनना आदमी को धोखा देना ही है। कबीर साहब 'कथनी' में नहीं 'करनी' में विश्वास करते थे। हम जो कहते हैं उसे करते नहीं, इसीलिए हमारे कहने का असर लोगों पर नहीं पड़ता। 'करनी' का आदर्श ही कबीर साहब का उच्चादर्श था। हमलोगों को सद्‌गुरु के उपदेशों का पालन करना चाहिये।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग के प्रवक्ता डा० शुकदेव सिंह ने कबीर साहब के श्रम से जुड़ी जन-मुक्ति की चर्चा करते हुए कहा कि कबीर साहब स्वयं एक मेहनत कश संत थे। वे लोगों को बताना चाहते थे कि आदमी मेहनत करते हुए तपस्या के समानान्तर लोक-परलोक की दुनिया प्राप्त कर सकता है। इसके सबूत कबीर साहब स्वयं है।

कबीर दल के सयोजक संत विवेकदास ने कबीर पंथ की वर्तमान परिस्थितियों पर चर्चा करते हुए कहा कि आज कबीर अनुयायियों की दिशा हीनता से पंथ विघटन की कगार पर जा पहुँचा है। पंथ के प्रति हम सजग नहीं होंगे तो आगे स्थिति और बदतर होगी। सम्पूर्ण भारत में फैले हुए मठों को एक मंच पर लाना बहुत ही जरूरी है। जब तक हम मठों को एक सूत्र में नहीं बाँधते हैं तब तक पंथ की स्थिति ऐसी ही रहेगी। हम विशाल हैं, लेकिन हम बिखरे हुए हैं। इसलिए हमारी शक्ति की पहचान समाज में नहीं हो पा रही है। हमें अब युग के अनुसार संगठित होकर काम करना चाहिए तभी हम अपनी शक्ति पहचान करा पायेंगे। विवेक दास ने युवा साधुओं का आवाहन करते हुए कहा कि यह काम हम युवा साधुओं का है। साधुओं का दल बना कर यात्रा करें और देश भर में घूम-घूम कर संगठन का काम करें। बिखरे मोतियों की की तरह मठों साधुओं को माला के रूप पिरोयें। स्वयं उनके भीतर जागरुता पैदा करें तभी कबीरवाणी को सही रूप में क्रियान्वित कर पायेंगे।

महाराजा कालेज, आरा, हिन्दी विभाग के प्रोफसर दुर्ग विजय सिंह ने कबीर वाणी को धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक नीतियों पर विशद चर्चा करते हुए कहा कि इन सारे पक्षों पर खुले दिमाग से हमें विचार करना चाहिये।

आगे डा० सिंह ने कहा कि बीजक कबीर साहब का



( कबीरचौरा मठ से निकाले गये आकर्षक जूलूस में बग्गी पर विराजमान अनन्त श्रीविभूषित आचार्य साहब )

सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ है। बीजक में उनके मूल सिद्धान्त सुरक्षित हैं। इसलिए बीजक का व्यापक प्रचार-प्रसार होना चाहिये। बीजक ग्रन्थ सर्वत्र नहीं उपलब्ध होने पर खेद प्रकट करते हुए कहा कि बीजक का सस्ता संस्करण प्रकाशित करना चाहिये ताकि आम लोगों तक बीजक ग्रन्थ पहुँच पाये। यह काम एक आदमी का नहीं है। देश भर के कबीर पंथियों और कबीर प्रेमियों को विचार करना है कि कैसे बीजक का सस्ता संस्करण उपलब्ध हो पायेगा। साहित्य को जब तक हम सस्ता और सरल नहीं बनायेंगे तब तक हम किसी भी महापुरुष के उद्देश्य को जनता के बीच नहीं पहुँचा पायेंगे। प्रो० रामाश्रयदास ब्रह्मचारी, महंत रामलखन दास, डा० सत्यनाम दास, शान्ति प्रिय शास्त्री आदि वक्ताओं ने सभा में अपने विचार व्यक्त किये।

चार बजे शाम से नौ बजे रात्रि तक सामूहिक भण्डारे का आयोजन हुआ। इस दिन करीब दस हजार साधु भक्तों ने प्रसाद ग्रहण किया। रात्रि दस बजे से कबीरपंथ की प्रसिद्ध सात्विक पूजा चौका आरती का आयोजन हुआ। कबीर पंथ में गुरु का बड़ा महत्त्व है। इस पूजा में गुरु की विधिवत् पूजा होती है। नारियल, पान बतासा और ज्योति से गुरु की आरती उतारते हैं गुरु के माध्यम से ईश्वर की पूजा होती है। दो बजे रात्रि तक श्रद्धालु भक्त आचार्य श्री के प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित करते रहे।

२६ जून को कबीर दल संगठन द्वारा जयन्ती का आयोजन किया गया। यह आयोजन कबीरचौरा मठ में एक सभा के रूप में हुआ सभा में यह विचार व्यक्त किया गया कि आज की स्थिति में दुनिया को सही मार्ग पर चलने के लिए कबीर को प्रासंगिकता अत्यधिक हो गयी है। सभा वक्ताओं ने युवा साधुओं से अपील की कि जन-सामान्य में कबीर साहब को प्रासंगिक बनाने के लिए पहल करें। सभा में यह निर्णय लिया गया कि आगामी वर्षों में देश व्यापी स्तर पर पूरे ज्येष्ठ मास को 'कबीर मास' के रूप में मनाया जायेगा और सरकार से यह माँग की जायेगी कि कबीर जयन्ती पर राष्ट्रीय अवकाश की घोषणा की जाये। सभा के पहले प्रातः पाँच बजे दो सौ युवा साधुओं ने कबीर दल का जुलूस निकाला जो लहुराबीर, चेतगंज, नई सड़क, गोदौलिया, चौक, मंदागिन, और लोहटिया होते हुए मठ में वापस पहुँचा। जुलूस में युवा संत संकल्प की मुद्रा में पंक्तिबद्ध चल रहे थे। श्वेत वस्त्र धारी कबीरपंथी युवा साधु खंजड़ी, एकतारा, झाल और मजीरा जैसे साधारण वाद्यों पर कबीर साहब के विरागात्मक भजन और साखियों को आकर्षक ढंग से गाते हुए, सड़क पर चल रहे थे। 'बेला अमृत गया आलसी सो रहा' 'उठ जाग मुसाफिर भोर भई' मुठी बाँधि गरभ से आया' आदि पद लय-सहित गाती हुई युवा संत मंडली यात्रा कर रही थी। हाथ में कबीर दल के बेनरों और सचित्र पोस्टरों पर कबीर साहब की सूक्तियाँ लिखी हुई थीं और तख्तियों पर पाखण्ड, धार्मिक भेद भाव, समाजिक कुरीतियों तथा साम्प्रदायिकता विरोधी वाक्य लिखे गए थे। इस पूरे कार्यक्रम का संयोजन कबीर दल के संयोजक विवेकदास ने किया था।

# सद्गुरु कबीर विचार प्रचार संघ का
## छठा वार्षिक अधिवेशन एवं सत्संग

श्री १०८ बौआ साहब द्वारा संस्थापित कबीर विचार प्रचार संघ का छठा वार्षिक अधिवेशन बृहद सत्संग समारोह १९-६-८३ तथा २०-६-८३ को महन्त फूलेना दास कर्पूरी महाविद्यालय में विद्यालय के संस्थापक रामजुलुमराय, पं० दीनदयाल साहब तथा बौआ साहब के शिष्यों के संयोजकत्व में सम्पन्न हुआ।

प्रथम दिन की अध्यक्षता कुनौली के पू. पा. श्री १०८ महन्त सरयुदास जी साहब ने की। कुमारी रेखा एवं कुमारी पूनम ने "इस मन मदिर के प्रांगण में आओ प्रभु तेरा स्वागत है" भजन को सुनाकर सभी का स्वागत किया। स्वागत मंत्री स्थानीय श्री १०८ महन्त फूलेना दास के स्वागत पत्र का पठन हुआ। श्री श्याम कुमार सेवक ने उद्घाटन भाषण कर सभा का उद्घाटन किया। इसी बीच अध्यक्ष जी के दो शब्द हुए। अध्यक्ष जी ने अपने दो शब्द में कहा कि—राम कण-कण में रमते हैं। उसी से प्रेम करो। यहाँ अपना पराया कोई नहीं है सभी एक हैं यही कबीर साहब का सिद्धान्त है। आपने बघला स्थान का इतिहास बताया। सही रूप में यह बघला ग्राम सिद्धों की भूमि है इसी स्थान पर सिद्ध संत ने अपनी खंती गाड़ी थी। सांसद अजीत कुमार मेहता ने आभार प्रदर्शन करते हुए कहा कि आज धर्म राजनीति में प्रविष्ट हो गया है। अपना कर्तव्य ही धर्म है दूर दृष्टिकोण ही हमारा धर्म है। इसके पश्चात् आपने अपना इतिहास बताया। संत कबीर विद्यालय के प्राचार्य रामनारायण राय ने कहा कि सद्गुरु कबीर साहब का प्राकट्य विषम परिस्थिति में हुआ था उन्होंने उस युगभेद को मिटाकर एकत्व की स्थापना की और जितने धन से कुटुम्ब एवं अतिथि का भरण-पोषण हो सके उतने धन की आवश्यकता बतायी।

सद्गुरु कबीर मंदिर के अधिकारी गंगाशरण साहब ने कहा कि कबीर विचार प्रचार संघ का यह छठा अधिवेशन हो रहा है। आपकी मनोभावना ने मुझे भी खींच लाया। आपने कहा कि सद्गुरु कबीर के अध्यात्मवाद में दया, क्षमा, अहिंसा, अस्तेय आदि प्रविष्ट हैं। यही दया अस्तेय आदि जैन, बौद्ध, ईसा सभी धर्म सम्प्रदायों में है आपने कहा कि सद्गुरु कबीर साहब को तत्कालीन कुछ लोग आगे बढ़ने नहीं देना चाहते थे।

श्री कबीर शान्ति संदेश के सम्पादक सर्वदर्शनाचार्य श्री श्यामदास जी शास्त्री साहब ने वर्तमान परिस्थिति को बताते हुए कहा कि हमें उसी को देखना तथा उसी पर चलना है जिसे सद्गुरु कबीर ने कहा। आज हम बातें बड़ी-बड़ी करते हैं किन्तु उस पर स्वयं नहीं चल पाते। समाज को उसमें लाने के लिए सद्गुरु के बताये मार्ग पर चलना नितान्त आवश्यक है। पं० महन्त दीनदयाल जी साहब ने संसार की व्याख्या करते हुए "मन रे छाड़हु भरम नाचहु डगमग छाड़िदे···लीन्हों हाथ सिंधोरा" पर भजन तथा उपदेश सुनाया। आपके भजन तथा उपदेश से सभी सभासद मन्त्रमुग्ध हो निश्चल रहे।

अन्त में प्रसिद्ध संत कबीर विचार प्रचार संघ के संस्थापक श्री १०८ बौआ साहब ने अपने आशीर्वचन से सभा की समाप्ति की घोषणा की।

ता० २०।६।८३ को ११। बजे दिन से सत्संग प्रारम्भ हुआ। आज के भी सभा के अध्यक्ष पद पर श्री १०८ महन्त सरयुग दास जी साहब कुनौली आसीन हुए। आपके अध्यक्ष पद पर आसीन होते ही सभा सुस्थिर एवं सुशोभित होने लगी।

इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष वेदान्ताचार्य स्वामी जी अखिलेश्वरानन्द जी साहब ने सद्गुरु कबीर के सहज समाधि की विस्तृत व्याख्या की। श्री दुखहरण दास जी शास्त्री साहब ने सद्गुरु के सिद्धान्त को अद्वैत वेदान्त का सिद्धान्त बताते हुए इसका सांगोपांग वर्णन किया। संत श्री रामकिशुन दास जी साहब ने अपने भजन से सभी को मंत्रमुग्ध कर दिया। उक्त विद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष सन्त श्री चन्द्र प्रकाश शास्त्री ने भौतिक वस्तुओं की स्थूलता एवं सूक्ष्मता का विवेचन करते हुए आन्तरिक चेतना का स्थूल एव सूक्ष्म विवेचन किया। श्री सत्यनाम शास्त्री ने सन्त का लक्षण बताते हुए "निहबैरी निःकामता" की

व्याख्या की।

श्री राम एकबाल पाण्डेय जी ने—"मो सम कौन कुटिल खलकामी" को शास्त्रीय संगीत के द्वारा सुना कर सभी के हृदय को हर लिया। आप भजनोपदेशकों में प्रसिद्ध हैं। महन्त पं० दीनदयाल साहब ने "मोहि वैराग भयो" भजन के साथ-साथ आप जीव ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा तथा हिरण्यगर्भ का विशद विवेचन किया। आपके भजन एवं उपदेश को सुनने के लिए जनता लालायित रहती थी। अधिकारी श्री गंगाशरण साहब ने हरि के हजार नाम का विशद विवेचन करते हुए ॐ को परमात्मा का नाम निर्धारण किया। श्री कबीर शांतिसंदेश के संपादक श्री श्यामदास जी शास्त्री एवं वेदान्ताचार्य ने बीजक में परमात्मा का स्वरूप पर विवेचन करते हुए बताया कि सद्गुरु कबीर के सिद्धान्त में परमात्मा सत् ही है। सद्गुरु कबीर साहब ने इसी का उपदेश भी दिया।

श्री कबीर विचार प्रचार संघ के संस्थापक श्री १०८ बोधा साहब ने अन्तिम दिन के प्रवचन में कहा कि मनुष्य दुःख से छुटकारा पाना और सुख की प्राप्ति करना चाहता है यह तब ही होगा जब राम को जानेगा।

एकहि राम सकल संसारा, एक राम है जगत पियारा का उदाहरण देते हुए आपने कहा कि आनंद राम में हैं उसी आनंद को सब प्राप्त करना चाहते हैं। वह राम सर्व व्यापक है "तिया पुरुष कछु कहो न जाई सर्व रूप में रहा समाई।" अन्त में आपने सागरों का उद्धरण देते हुए कहा कि सागरों में भी ओ३म्कार का वर्णन है वह भी परमात्मा का वाचक है।

अन्त में अध्यक्ष जी ने इस सम्मेलन की सफलता व्यक्त करते हुए कहा कि जब तक जड़ और चेतन का निराकरण नहीं कर पायेंगे तब तक चेतन स्वरूप परमात्मा की जानकारी नहीं कर सकेंगे। वह परमात्मा सब में विराजमान है। हम हिन्दू हैं हमारा धर्म सब से सनातन एवं व्यापक है फिर भी हम अन्य धर्म के मानव को अपने में नहीं मिला सकते यह हमारी बड़ी कमी है। आज हम सब को साथ मिला कर चलते तो हमारे सामने आने वाली कठिनाई नहीं आती। सद्गुरु कबीर ने इसी को डंके की चोट पर कहा है। आज सारा विश्व तभी सुख शांति का अनुभव कर सकेगा जब वह आपसी भेदभाव का त्याग करें।

## सद्गुरु प्राकट्य धाम लहरतारा में सद्गुरु कबीर प्राकट्य महोत्सव

सद्गुरु कबीर प्राकट्य धाम लहरतारा में सद्गुरु कबीर प्राकट्य महोत्सव कबीर पंथ के आचार्य शिरोमणि पं० श्री आचार्य उदितनाम साहब की अध्यक्षता में तथा पू० रा० धर्माधिकारी श्री मनोहर साहब शास्त्री के संयोजकत्व में ता० २२ २३ व२४ जून को बड़े धूम धाम से मनाया गया। आपका यह विशाल कार्यक्रम पूरे विश्व में प्रसिद्ध है इस उत्सव को मनाने के लिए विदेश से भी संत महन्त एवं भक्तगण आते हैं। इस वर्ष अनुमानतः १० हजार से १५ हजार तक श्रद्धालु जनता एवं सन्त, महन्त भाग लिये थे। उत्सव के अंतिम दिन शोभा यात्रा भी निकली थी। तीन दिन लगातार संतों, महन्तों एवं विद्वानों तथा उपदेशकों के भजन एवं उपदेश होते रहे। श्रोताओं ने उपदेशों को सुन कर स्वयं को कृतकृत्य माना अन्तिम दिन रात्रि को पं० श्री आचार्य उदितनाम साहब के कर कमलों से सात्विक ज्ञान यज्ञ आरती चौका सम्पन्न हुआ।

काया काशी मन मगहर, दोउ के मध्य कबीर।
काशी तज मगहर गये, पाया नहिं शरीर ॥
काया काशी मन मगहर, दोउ के बीच मुकाम।
जहाँ जुलहदी घर किया, आदि अंत बिसराम ॥
नौलख नानक नाद में दस लख गोरख तार।
लाख दत्त संगत सदा, चरनों चरच कबीर ॥
नौलख नानक नाद में, दस लख गोरख पास।
अनंत संत पद में मिले, कोटि तरे रैदास ॥
खोजी खालक में मिले, ज्ञानी के उपदेश।
सतगुरु पीर कबीर है, सब काहू परवेश ॥

—आचार्य गरीब साहब



## आत्म निवेदन

लेखकों से:—

१—श्री कबीर साहब और सन्त भक्त सम्बन्धी लेख, कविता, कहानी आदि ही प्रकाशित होंगे।

२—लेख स्पष्ट और एक ही पृष्ठ पर लिख कर सम्पादक के नाम भेजना चाहिये।

३—मुद्रित सामग्री की पाण्डुलिपि वापस न होगी किन्तु लेखों वाला अंक ही लेखकों को सेवा में भेजा जायेगा।

४—जहाँ तक हो सरल, सुबोध भाषा का प्रयोग करें। स्पष्ट बड़े अक्षरों एक तरफ लिखें।

५ विवादग्रस्त लेख छप न सकेंगे। उसके लिये क्षमा करें।

६ लेख को सम्पादक न्यूनाधिक कर सकते हैं।

१—ग्राहक महानुभावों को पत्र-व्यवहार करते समय अपना पता स्पष्ट लिखना चाहिए।

२—वार्षिक मूल्य वर्ष समाप्ति के १ माह पूर्व आगामी वर्ष के लिये भेजना चाहिए।

३ पत्रिका हमारे यहाँ से हर मास के ६ या ता० १० को भेजी जाती है। यदि वह समय से आपको न मिले तो १५ ता० के बाद अपने डाक घर से पूछ-ताछ करें तब हमें सूचित करें।

४—वर्ष भर का चन्दा एक साथ आने पर ही ग्राहक बनाये जाते हैं और उसकी रसीद भेजी जाती है।

५—वार्षिक मूल्य १५) रु० श्रीकबीर शान्ति-सन्देश के सपादक के नाम साफ-साफ पता लिखकर भेजें।

६—पत्र-व्यवहार में यदि उत्तर चाहते हैं तो ५५ पैसे का डाक टिकट लगा लिफाफा भेजना न भूलें।

७—पत्रिका न मिलने की शिकायत या अन्य प्रकार की शिकायत श्रीकबीरशान्ति-सन्देश, श्रीकबीर कीर्ति मन्दिर, काशी सस्था, सी. २६/1 संत कबीर रोड, वाराणसी के पते पर भेजें, जामनगर कदापि न भेजें क्योंकि पत्रिका सम्बन्धी शिकायत पत्र का उत्तर यहीं से प्राप्त हो सकता है।

—सम्पादक

केन्द्रीय पञ्जीकृत संख्या आर० एन० ३३०२३/७७

# सद्गुरु कबीर की साखी

## गुरु शिष्य हेरा को अंग

ऐसा कोई ना मिला, हमको दे उपदेश।
भौसागर में डूबते कर, गहि काढ़े केश ॥१॥

ऐसा कोई ना मिला, घर दे अपन जराय।
पाँचौं लड़के पटकिके, रहै नाम लौ लाय ॥२॥

ऐसा कोई ना मिला, जासों कहूं दुख रोय।
जासो कहिए भेद को, सो फिर बैरी होय ॥३॥

ऐसा कोई ना मिला, सब विधि देय बताय।
सुन्न मण्डल में पुरुष हैं, ताहि रहूं लौ लाय ॥४॥

ऐसा कोई ना मिला, समझै सैन सुजान।
ढोल दमामा ना सुनै, सुरति विहूंना कान ॥५॥

ऐसा कोई ना मिला, समझै सैन सुजान।
अपना करि किरया करै, लो उतारि मंदान ॥६॥

[ सही पता न मिलने पर सम्पादक-कार्यालय को वापिस करें । ]

ग्राहक संख्या :

श्री




डाक पंजीकृत संख्या : एल० आर० एन० १४६

**श्री कबीर-शान्ति संदेश**

मासिक-पत्र

सम्पादक कार्यालय :
श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था
सी० २६/१, सन्त कबीर रोड,
वाराणसी
पिन कोड : २२१००१

श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था, वाराणसी के लिए श्यामदास शास्त्री द्वारा सम्पादित
एवं आर्यावर्त प्रेस, जालपादेवी रोड, वाराणसी द्वारा मुद्रित।
आवरण मुद्रक : फाईन आर्ट प्रेस, गोयनका गली, अस्सी, वाराणसी।





卐 सत् सत् सोऽहं गुरु 卐 सोऽहं हंसः सद्गुरु शरणम् 卐 ॐ श्रीराम सत्यराम सोऽहं गुरु राम 卐

# श्री कबीर-शान्ति संदेश

मासिक पत्रिका

वर्ष ६ अंक ८



मोको कहाँ ढूँढ़े बंदे मैं तो तेरे पास मैं।

सद्गुरु कबीर

श्री कबीर शान्ति-सन्देश के आद्य उद्भावक और श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था के आद्य संस्थापक :—महन्त श्री शांतिदास जी गुरु श्री १०८ श्री पुरुषोत्तम दास जी महाराज साहब, श्री कबीराश्रम, जामनगर [ सौराष्ट्र ]

संवत् २०४० | कबीराब्द ५८३ | अगस्त १९८३

कहता हूं कहि जातहूं, कहूँ बजाये ढोल। स्वासा खाली जात है, तीन लोक का मोल॥



## नागपुर में कबीर पंथी संत-सम्मेलन

पू० पा० पं० श्री हजूर उदितनाम साहब आचार्य कबीर पंथ सद्गुरु कबीर प्राकट्यधाम लहरतारा वाराणसी ( उत्तर प्रदेश ) तथा श्री कबीर धर्मस्थान, खरसिया, जिला रायगढ़ ( म० प्र० ) सद्गुरु की असीम कृपा से दि० १९-११-८३ से दि० २१-११-८३ दिन शनिवार, रविवार एवं सोमवार तक नागपुर कबीर पंथी समाज के संयोजकत्व एवं व्यवस्थापकत्व में कबीर पंथी सन्त-सम्मेलन का आयोजन होगा। इसमें पू० पा० श्री १००८ धर्माधिकारी श्री मनोहरदास जी शास्त्री साहब तथा पंथ के विद्वान् पधारेंगे।

प्रेषक—म० गुरुचरण जी साहब, नागपुर कबीर पंथी समाज
कबीर आश्रम, शांतिनगर, नागपुर – ?


मूल्य : वार्षिक १५) पन्द्रह रुपये आजीवन २५१) दो सौ इक्यावन विदेश में १८६) वार्षिक
एक प्रति का मूल्य १)५० मात्र

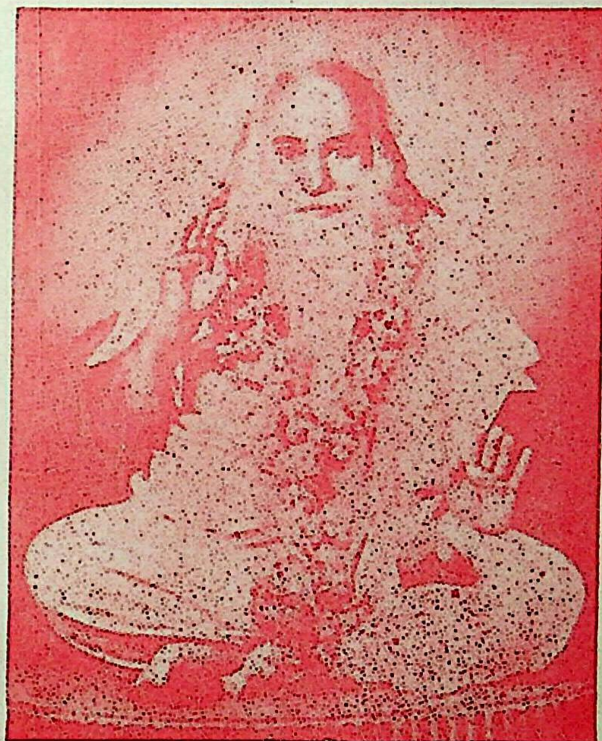

### श्री कबीर शान्ति संदेश के उद्देश्य

१—विवादों से दूर रहकर सत् का प्रचार एवं प्रसार।
२—श्री कबीर साहब की वाणी एवं उनके उपदेशों की ओर ले चलने का सत्प्रयत्न।
३—प्रेम, दया, सद्भावना, सेवा, एकता, परोपकार एवं सत् चिंतन मे प्रवर्तन।


प्रकाशक
श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था
सी. २६/१ सन्त कबीर रोड
वाराणसी – २२१००१

संपादक
श्यामदास शास्त्री

यतीन्द्र वागीशं विगतरजसं शान्तिमनधम् सदानन्दं स्वामिन् ? सुरतपरकल्याणमनिशम् ।
दयागारस्वातं कमलदलनिर्लेपमनसम् नमामि श्यामोऽहं शमनभवदुखं निशदिनम् ॥



श्री कबीर शान्ति संदेश के आद्य उद्भावक परमातमदेव सद्गुरु देव श्री १००८ महन्त शान्तिदास जी महाराज साहब गुरु श्री १००८ श्री पुरुषोत्तमदास जी महाराज साहब ।



सिद्ध स्थान श्री कबीर आश्रम जामनगर के आठव गादीपति त्याग वैराग्य तपोनिष्ठ पू० पा० सद्गुरुदेव श्री १००८ महन्त रामस्वरुपदास जी महाराज साहब गुरु श्री १००८ शान्तिदास जी महाराज साहब ।




卐 सत् सत् सोऽहं गुरु 卐 सोऽहं हंसः सद्गुरु शरणम् 卐 ॐ श्री राम सत्यराम सोहं गुरुराम 卐

# श्रीकबीर-शान्तिसंदेश

वर्ष ६ ] अगस्त १९८३ कबीराब्द ५८४ [ अंक ८

## चेतावनी

करो न कोई यह मन को परतीत।
थाह बताइ बुडावत भव में, बनि हितकारी मीत।
गने न उदे अस्त निशि वासर, छाह घूप जल शीत॥
भटकत फिरै निरन्तर चहुदिशि ऐसो महा पलीत।
स्वर्ग पताल जाय एक पल में, कपि सम अति निर्भीत॥
गण गंध्रवं असुर सुर किन्नर, सबको लीना जीत।
ऋषि मुनि योगी बनवासी, तपसी सिद्ध अतीत॥
छल्यो सकल ज्ञानी विज्ञानी, बहु विधि करि अनरीत।
सुने न एक सीख काहू की, गावे अपनी गीत।
कहैं कबीर डरे यह तिन से, जिनकी गुरु से प्रीत॥

—सद्गुरु कबीर साहब

# संपादकीय

यह जीव अपने रक्षक का सुख में कम और दुख में अधिक स्मरण करता है। ज्ञान के अभाव में लौकिक तथा कृत्रिम रक्षक का ही स्मरण करता है, जिसके हाथ में कुछ नहीं होता। ज्ञानी सर्वसत्ता सम्पन्न परमात्मा का ही स्मरण करता है जिसके हाथ में सब कुछ है। वह तिल को ताड़ और ताड़ को तिल, पर्वत को राई और राई को पर्वत बनाने की क्षमता रखता है। उसीका स्मरण कर यह सच्चे सुख को प्राप्त कर सकता है।

ईश्वर को स्मरण करने वालों की सद्गुरु कबीर ने दो कोटियाँ बतायी हैं, एक तो सुख में स्मरण करने वाला और दूसरा दुख में। यह भी बताया है कि सुख के स्मरण का फल किस रूप में प्राप्त होता है और दुःख के स्मरण का किस रूप में। दुःख का स्मरण दुःख के नाश के लिए होता है और सुख का स्मरण दुःख के अभाव के लिए। सुख में स्मरण से दुःख का उद्भव ही नहीं होता। इसी को सद्गुरु कबीर साहब ने कहा है:—

'जो सुख में सुमिरन करे तो दुख काहे होय।'

दुःख के नाश और सुख की प्राप्ति की अभिलाषा की पूर्ति के लिए सुख में सुमिरन करना आवश्यक है। इसी लिए सदगुरु कबीर साहब ने भक्तों की दो कोटियाँ बतायी हैं। भगवान् कृष्ण ने तो भक्तों की चार कोटियाँ बतायी हैं। आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। आर्त दुःखी, ईश्वर का स्मरण दुःख की समाप्ति पर्यन्त करता है। जिज्ञासु, जिज्ञासा की समाप्ति पर्यन्त अर्थार्थी अर्थ ( कामना ) की प्राप्ति पर्यन्त तथा ज्ञानी निरन्तर ईश्वर का स्मरण करता है। यही ज्ञानी सदा एक समान रहता है। इसी को भगवान कृष्ण सर्व श्रेष्ठ मानते हैं। सद्गुरु कबीर ने तो उसी को महत्त्व दिया है जिसका प्रारंभ और अन्त समान रहता है। वे कहते हैं:—

जैसे लागी ओर तैसे से निबहे छोर।

नवधा भक्ति में स्मरण भी एक भक्ति है। श्रवण,कीर्तन,स्मरण पाद सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन, इन नवो में स्मरण का तीसरा स्थान है। किन्तु सद्गुरु कबीर साहब स्मरण पर ही बल देते हैं। इनकी दृष्टि में स्मरण सब से श्रेष्ठ है। स्मरण से ही भक्ति तैल धारा के समान निरन्तर हो सकती है। इसका अच्छी तरह से प्रयोग भक्तों ने किया है। इतिहास में सब से पहले महर्षि वाल्मीकि की ही गणना आती है जो राम राम या मरा-मरा का जाप कर के ही आदि कवि ब्रह्मज्ञ बन गए। गोस्वामी तुलसीदास जी ने स्पष्ट रूप से इसका कथन किया है।

उलटा नाम जपत जग जाना।
वालमीकि भये ब्रह्म समाना॥

आगे चलकर यह स्मरण ही अजपा जाप का रूप ले लेता है। अजपा जाप में न तो जीभ हिलती है न तो दाँत ही डोलते हैं। केवल मन का उस वस्तु से सम्बन्ध रहता है जिसका वह स्मरण करता है। उसका उससे अभेदान्वय हो जाता है।

इसीलिए सद्गुरु कबीर ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—

ऐसा जाप जपो मेरे सन्त हिले न जिह्वा डोले न दन्त

इसी अजपा से ही वाल्मीकि आदि भक्त ज्ञानी कहलाए। वाल्मीकि ने दुःख से अथवा पाप से छुटकारा पाने के लिए ही सप्तर्षियों की बात मानी। यदि भविष्य के दुःख का भय उन्हें नहीं होता तो आज वाल्मीकि, वाल्मीकि नहीं रहते। इसीलिए सद्गुरु कबीर ने कहा कि उस परमात्मा का सुमिरन करो, जिससे दुःख का होना तो दूर रहा उसकी आशंका भी नहीं की जा सकती:—

सुमिरन करहु राम का, छाड़हु दुःख की आस।

यह जीव संसार के पदार्थों का स्मरण, एवं प्राप्ति से ही स्वयं को सुखी मानता है। ईश्वर से विरत होने का यही मुख्य कारण है। यही उससे ( ईश्वर ) दूर रखता है। सम्पत्ति मिल गई तो सब सुख मिल गया। आज सम्पत्ति या अर्थ ने ही चतुर्थ पुरुषार्थ का स्थान ही ले लिया है। चतुर्थ पुरुषार्थ है मोक्ष, आत्यन्तिक सुख। अज्ञानी सम्पत्ति

में ही इसे निहित मानता है सम्पत्ति मिल गई, मोक्ष मिल गया, ऐसी स्थिति देखकर सद्गुरु की वाणी प्रस्फुटित हो जाती है।

कनक कामिनी देख के तू मतभूल सुरंग।
बिछुड़न मिलन दुहेलरा, केचुली तजत भुजंग॥

आज सम्पत्ति है, कल नहीं रहेगी। इसकी यही स्थिति है। इसीलिए विज्ञ इसके वास्तविक रूप को पहचान कर व्यवहार करते हैं।

आज समाज में अनेकों वाल्मीकि के पूर्व स्वरूप (रत्नाकर) हो गये हैं। किसी को न पाप का भय है, न दुःख का। रुपया परमसत्ता है, वही परमेश्वर है उसकी प्राप्ति में जो कुकर्म हो जाय, थोड़ा हैं। आज मानव-मानव में भेद हैं, धर्म-धर्म में भेद है। अहिंसा के महान् पुजारी भी आज कितने लोगों को धर्म से विरत कर रहे हैं। आज हमारी अन्तर्दृष्टि ही समाप्त हो गई है। प्राणी कहाँ जा रहा है, किस लिए जा रहा है, जिसके लिए वह समाज पर इतना कठोर कुठाराघात कर रहा है क्या वह उसके साथ जायेगा ?

## ठगों और धूर्तों से सावधान

यह जानने को मिला है कि श्री कबीर आश्रम जामनगर, पोरबन्दर, द्वारका, काशी जी और पालनपुर संस्थाओं एवं आश्रमों के और मेरे नाम से कुछ ठग धूर्त चंदा, फंड श्री कबीर आश्रम और मेरे नाम से रसीद छपवाकर सौराष्ट्र, गुजरात और अन्य प्रदेशों में कर रहे हैं। तो धर्मप्रेमी जनता एवं कबीर पंथी सेवकों से तथा नेमी प्रेमी जनों से मेरी विनती है कि ऐसे ठगों धूर्तों को मेरे या श्री कबीर आश्रम के नाम पर चन्दा फन्ड न देवें। हमने यहाँ से किसी भी व्यक्ति को चंदा फंड लेने को नहीं कहा है। हमारे यहाँ आश्रमों की ओर से कभी भी ऐसे अन्य भाड़ूती लोगों द्वारा फंड चंदा नहीं लिया जाता है। इसकी जानकारी के लिए सबको मेरी विज्ञप्ति है। जिन लोगों को मदद या सहायता भेजनी हो तो वे श्री कबीर आश्रम, कबीरपुरा रोड, जामनगर, गुजरात ३६१००५ के पते पर ही भेज कर रसीद ले लेवें और श्री कबीर आश्रमों के नाम से चंदा करने वाला कोई ठग या धूर्त मिले तो पुलिस को सौंपकर शिक्षा कराकर हमें ज्ञात कराने का कष्ट करें। इसके लिए प्रार्थना है।

लि. : श्री कबीर आश्रम, जामनगर और इसकी शाखा संस्थाओं की ओर से

—महन्त रामस्वरूपदास जी तथा ट्रस्टीमंडल

## मुक्ताकण

शम्भुनाथ राय, काशी विश्वविद्यालय

### सबद—१६

रामुराय झीझीं, जंतर बाजे,
कर चरन बिहूना नाचे ॥ १ ॥
कर बिनु बाजे सुनै स्रवन बिनु,
स्रवन सरोता सोई ।
पाटन सुवस सभा बिनु अवसर,
बूझहु मुनिजन लोई ॥ २ ॥
इन्द्रि बिनु भोग स्वाद जिभ्या बिनु,
अछये पिंड बिहूना ।
जागत चोर मंदिल तहँ मूसे,
षसम अछत घर सूना ॥ ३ ॥
बिज बिनु अंकुल पेड़ बिनु तरिवर,
बिनु फूले फल फरिया ।
बांझ कि कोष पुत्र अवतरिया,
बिनु पग तरिवर चढ़िया ॥ ४ ॥
मसि बिनु द्वात कलम बिनु कागद,
बिनु अच्छर सुधि होई ।
सुधि बिनु सहज ग्यान बिनु ग्याता,
कहहि कावर जन सोई ॥ ५ ॥

चूर्णिकाः—रामुराय = राम को स्वामी मान लेने वाला साधक। झीं झीं = मंद झंकार। बिहूना = रहित। स्रवन = कानों के माध्यम से प्राप्त होने वाला ज्ञान। सरोता = श्रोता। पाटन = पत्तन, नगर। लोई = लोग, जगत् के सामान्य लोग। अछये = सत्तावान है। अछत = विद्यमान रहते हुए। पेड़ = (पिंड, पेड़) मूल, जड़।

अवतरणः—योगी जब सभी इंद्रियों का निग्रह करके समाधि लगाता है तब उसे अपने भीतर मंद झंकार सुनाई पड़ती है, जिसे वह प्रत्यक् चेतन मान बैठता है जो कि उसका भ्रम होता है। कबीर साहब के अनुसार शब्दवादियों की यह उपासना अज्ञानमयी है।

अर्थः—ऐ राम को परमात्मा मानने वाला साधक, (समाधि की स्थिति में तुम जो सुनते हो कि तुम्हारे अंतःकरण में) मंद-मंद झंकार वाला वाद्य बज रहा है और (जिसे सुन-सुन कर तुम्हारा मन) बिना हाथ पैर के ही नाचने लगता है (सब कुछ भ्रम है) ॥ १ ॥ (प्रत्यक् चेतन का नाद तो) बिना हाथ से बजाए ही बजने लगता है और (साधक उसे) बिना श्रवण के ही सुनता है (वस्तुतः) श्रवण (कानों के माध्यम से मिलने वाला ज्ञान) और श्रोता एक ही हो जाते हैं (उनमें भेद नहीं रह जाता है, तन्मय हो जाते हैं, ज्ञेय और ज्ञाता में अंतर रह ही नहीं जाता)। वहाँ नगर भली भाँति बसा रहता है और बिना नियत समय के ही सभा लगी रहती है (अर्थात् वह नित्य चेतन है); मनन करने वाले महात्मा लोग (इस रहस्य को) समझें ॥ २ ॥ (शब्दवादी को शब्द का) भोग (ज्ञान) बिना इंद्रिय के ही होता है, बिना जिह्वा के (शब्द-रस का) स्वाद भी ग्रहण हो जाता है और बिना पिंड के (शब्द की) सत्ता भी बनी रहती है। किंतु (साधक की इस भ्रम पूर्ण) जाग्रत अवस्था में (मनरूपी) चोर (हृदयरूपी) मंदिर में चोरी किया करता है, (वस्तुतः) स्वामी (आत्मा) के विद्यमान रहते हुए भी (अंतःकरणरूपी) घर सूना पड़ा रहता है (अर्थात् अज्ञान से आवृत्त रहने के कारण आत्मा का नियंत्रण मन तथा अन्य इंद्रियों पर से हट जाता है) ॥ ३ ॥ (अज्ञानी साधकों को लक्ष्य प्राप्ति का केवल अभ्यास होता है और इस अभ्यास को वास्तविक बताना उसी प्रकार निराधार एवम् हास्यास्पद होता है जैसे किसी मूढ़ का कहना कि यह) अंकुर बिना बीज के उत्पन्न हुआ है, (यह) वृक्ष बिना मूल के (खड़ा) है, (ये) फल बिना फूल के ही फले हैं। (इस) वंध्या की कोख से पुत्र उत्पन्न हुआ है, (इतना ही नहीं, वह) बिना पैर का है और (ऊँचे) वृक्ष पर चढ़ गया है ॥ ४ ॥ कबीर साहब कहते हैं कि (जिस साधक की स्थिति) बिना स्याही के दवात जैसी (निर्मल), बिना कलम चले कागज जैसी (बेदाग) होती है, जिसे बिना अक्षर (शास्त्राध्ययन) के ही ज्ञान हो जाता है, जिसे बिना स्मृति और बिना ज्ञानप्रेरक के ही सहज ज्ञान हो जाता है, वही (सच्चा) जन (साधक) होता है ॥ ५ ॥

# श्रीमन्त माधवदेव के बड़गीत

डा० लक्ष्मीशंकर गुप्त, काशी विद्यापीठ

## ५३—राग भटियाली

ध्रु०—गोपाल भावियो मन, सकल जवने।
हरि बिने केने आन चिंता अकारने॥

पद—अथिर जीवन धन जौवन सकल।
कमल पत्रर नीर जेसन चंचल॥
जानिया भजियो मन इसब तेजिया।
संसार सागरे मन, नमर मजिया॥
हरिर मायार फांदे जीव भैल बंदी।
इतिनि भुवने पलाइवार नाइ सधी॥
गुनि सावा मन, तुमि एराइवा कमने।
फांदोवाल गोविंदर धरियो चरने॥
निज प्रियतम हरि जगत निवास।
भजियो चचल मन तेजियो आलास॥
कहय माधव हरि अगतिर गति।
मायार फांद एराइ पाइवा जदुपति॥

गोपाल मन=हे मन, गोपाल का ध्यान करो। केने=किस कारण। आन=अन्य। अकारने=अकारण, निरर्थक। सकल=सब। कमल'''चंचल=कमल के पत्ते पर स्थित जल-विंदु जैसा चलायमान। जानिया=(ऐसा) जान कर। भजियो मन=हे मन, भजो। इसब तेजिया=यह सब छोड़ कर। सागरे=सागर में। नमर मजिया=मज्जित हो (डूब) कर मत मरो। हरिर'''फांदे=हरि की माया के फंदे में। भैल=हुआ; हो गया है। इतिनि''' संधी=इन तीनो भुवनों में पलायन करने (भागने) का अवकाश (मार्ग) नहीं है। गुनि मन=हे मन, सोच कर देखो। एराइवा कमने=कैसे छूटोगे ? फांदोवाल''' चरने=बांधने वाले गोविंद के चरण धरो। भजियो=भजो। तेजियो आलास=आलस्य छोड़ो। हरि'''गति=हरि ही अगति (जिसकी कहीं गति नहीं है, विवश) की गति (शरण) हैं। मायार''''जदुपति=मांया के फंदे से छूट कर यदुपति को पाओगे।

## ५४—राग नाट

ध्रु०—जादु भाल नाचतु, नंदनंदन गोविंद नाचतु,
ब्रज-नायक नागर नाचतु, परमानंद रसे रे।
सुरासुरे जार चरन-पंकज-रेनु सिरे परसे रे।

पद—लावण्य सुंदर कटि धरिया ए बाम हाते रे।
दच्छिन कोमल कर थापिया ए प्रभु माथे रे॥
कटित किंकिनी बाजे नुपुर झुरय पावे रे।
ईषत कटाच्छ हासि सुंदर भ्रुव चलावे रे॥
नाटेर माधुरी गोपो मोहन मदन फांदे रे।
जसोमति-नंद-नंदन चकोर,
स्यामल सुंदर चांदे रे॥
चौभिति गोपिनी बेढ़ि हाते तालि बजावे रे।
कहय माधव हरि भुवन मन भुलावे रे॥

जादु=यादव, श्रीकृष्ण। भाल नाचतु=भलीभांति नाचते हैं। रसे=रस में, आनंद में। जार=जिसके। सिरे=सिर से। परसे=स्पर्श करते हैं। कटि=कमर पर। धरिया=रख कर। हाते=हाथ से। दच्छिन=दाहिना। थापिया=स्थापित कर के, रख कर। माथे=मस्तक पर। झुरय=झनकारता है ध्वनि करता है। ईषत=हलका, थोड़ा। नाटेर=नाटक की। फांदे=फंदे में कर लेते हैं, (अपने सौंदर्य के पाश में) बांध लेते हैं। नाटेर''''''फांदेरे=(अपनी) नाटकीयता की माधुरी से मदनमोहन (श्रीकृष्ण) गोपियों को बांध लेते हैं (अथवा—नाटकीयता की माधुरी से गोपियों को मोहने वाले श्रीकृष्ण मदन—कामदेव—को भी बांध लेते हैं)। जसोमति'''''' चांदे रे=गोपी-वृंद अथवा कामदेव यशोदा और नंद को आनंद देने वाले (श्रीकृष्ण, का चकोर है (उनकी ओर मुग्धभाव से अनवरत देखता रहता है) और श्यामसुंदर (उनके लिए मोहक) चद्रमा हैं। चौभिति=चतुर्दिक्, चारो ओर से। बेढ़ि=घेर कर। भुवन मन=त्रिभुवन के वासियों) का मन। भुलावे=मुग्ध कर लेते हैं।

## ५५—राग बराड़ी

ध्रु०—सोइ सोइ स्याम मनोहर देखियो नयन भरि।
ब्रजेर प्रजार भाग्यफल गोटे आछय मुरुति धरि

पद—स्यामनाम नव अमृत रसेर एरूपे भेल भांडार।
गोकुलवासीर नयन उच्छव आनंद कुसुम सार॥
जोहि अंगे गैया दृष्टिपात हय, तथाये तंभिया रय।
कतना नयने पान करिबेक जतेक माधुरी बय॥
देखिते देखिते नबीन नबीन रूपेर लावण्य बोले।
ए रूप तेजिया आवर देखिया नयने मरे बिकले॥
लाजे मनमथे मुरुति न धरे रूपेर देखि माधुरी।
लावण्य देखिया सव चूर भेल बिधिर जत चातुरी॥
कत जनमेर भाग्ये मिलि आछे गोकुलेर सुमंगल।
ए रूप लावण्य जिजने देखिया तारेसे जन्म साफल॥
ए रूप माधुरी तेजिया आवर देखिते मन नधावे।
मोर निज गति नंदेर नदन मुरुख माधवे गावे॥

सोइ=उसी। ब्रजेर प्रजार=ब्रज की प्रजा का। गोटे=पूर्ण, अखिल। गोटे ···धरि=पूर्ण मूर्ति (पूर्णावतार) धारण कर के विराज रहे हैं। रसेर=रस का। ए रूपे······भांडार=इस रूप (प्रकार) के भांडार हुए हैं। सार=तत्त्व। जाहि ····गैया=जिस अंग पर जा कर। हय=होता है। तथाए···रय=(दृष्टि) वहीं स्तंभित रह जाती है। कतना · बय=जितनी माधुरी बह रही है (उसे) नयन कितना पान करेंगे? रूपेर=रूप का। बोल=बोल उठता है। ए रूप ·····बिकले=इस रूप को तज कर अपर (वस्तु) देखने पर नेत्र विकल हो कर मरने लगते हैं। लाजे=लज्जावश। मुरुति न धरे=मूर्ति (शरीर) नहीं धारण करता (अनंग ही रहता है)। भेल=हो गई। बिधिर=ब्रह्मा की। जत=जितनी। कत···सुमगल=कितने जन्मों के भाग्य से गोकुल का सुमंगल मिला है। जिजने···साफल=जिस जन ने देखा उसका जन्म सफल हो गया। आवर ··नधावे=और (वस्तु) देखने के लिए मन नहीं दौड़ता। मोर···गति=मेरी अपनी शरण। नंदेर=नंद के।

## ५६—राग बेलवार

ध्रु०—बिंदिाबने भेटलहों ए हरि, गुनेर निधि ए।
अपरूप रूपे नयन दुहों पूरल
हामारि सुपरसन बिधि ए॥

पद—सतड़ित नोल नबिन मेघ जिनिये,
वन सोभित पितबासे।
निरमल गगने तारक झिकि जिनिये,
रतन भुषन परकासे॥
सुंदर केस सुबेस भाल बनिये,
सोभये कुसुम अपारा।
प्रफुलित जैसे नोलगिरि सिखर,
पेखि मन मोहित हमारा॥
ब्रजेर बालक माजे बिनोद नागर गुरु,
खेलत बहु रस भावे।
रसेर माधुरि हरि त्रिभुवन मोहय,
दीन माधव दासे गावे॥

भेटलहों=भेंट लिया, पा लिया। अपरूप=विलक्षण, अद्भुत। पूरल=(आनंदाश्रु से) पूरित हो गए। सुपरसन=(स्पर्शन) भेंट?, (चरण-) स्पर्श?, (सुप्रसन्न) कुबेर? हामारि···बिधि ए=हमारी भेंट या चरण-स्पर्श की विधि ऐसी थी (अथवा—ये हमारे लिए कुबेर और ब्रह्मा हैं जो क्रमशः धनपति और भाग्यविधाता होने से सारी इच्छाएँ पूर्ण करते हैं)? सतड़ित=विजली-सहित। जिनिए=(सौंदर्य में) जीत कर। पितबासे=पीतांबर से। झिकि=झिलमिलाहट, चमचमाहट। रतन · परकासे=रत्न-जटित आभूषणों के प्रकाश से। भाल=माथा, भला, मोहक। बनिये=शोभा पा रहा है, बना है। सुंदर··· बनिये=सुंदर केशों से युक्त मनोहर वेश से माथा शोभा पा रहा है (अथवा—सुंदर केशों से युक्त मोहक वेश बना है)। देखि=देख कर। माजे=(मध्ये) बीच में। विनोद···गुरु=क्रीडा में चतुर नागरों के गुरु श्रीकृष्ण। रसेर=रस की, आनंद की।

# सद्गुरु कबीर व्याख्यानमाला

श्री कबीर कीर्ति मन्दिर, काशी द्वारा आयोजित 'सद्गुरु कबीर व्याख्यानमाला' के अन्तर्गत विगत गुरुवार दि० १८-८-८३ को श्री कबीर कीर्ति मन्दिर के प्रार्थना कक्ष में डा० वासुदेव सिंह ने 'सद्गुरु कबीर की साधना पद्धति' विषय पर बोलते हुए कबीर साहब के उपास्य, उनकी सुरति, निरति और अनहदनाद की अवधारणा एवम् ज्ञान, योग, भक्ति तथा प्रेम की साधना का विस्तृत तथा सूक्ष्म विवेचन किया।

उन्होंने बतलाया कि कबीर साहब के उपास्य को द्वैत-अद्वैत की संज्ञा से बांधा नहीं जा सकता। लोक मंगल का प्रतीक, द्वैताद्वैत से परे, परमतत्त्व ही उनका उपास्य है। उनका ब्रह्म पूर्ण है, वह विश्वमय भी है, उससे परे भी है। वह घट-घट मे समाया हुआ है। हमारे भीतर अवस्थित वह परमतत्त्व छापा-तिलक लगाने अथवा मंदिर जाने आदि बाह्याचारों से प्राप्त नहीं हो सकता। वह सुरति शब्द योग द्वारा प्राप्त हो सकता है।

कबीर साहब की सुरति साधना ज्ञान, भक्ति तथा योग का समन्वय है। उन्होंने अपने समय की सभी साधना पद्धतियों की पूरी जानकारी की। उन समस्त साधना पद्धतियों से उन्होंने केवल उन्हें ही ग्रहण किया जो उनकी कसौटी पर खरी उतरी। सुरति, निरति तथा अनहद नाद की अवधारणा की विस्तृत विवेचना करते हुए डा० बासुदेव सिंह ने बतलाया कि किसी वस्तु में मन का इतना लग जाना कि मन वहीं रुक जाय, सुरति है। सुरति की चरम अवस्था को निरति कहते हैं। भली प्रकार से किया गया प्रेम हमें निरति में पहुँचाता है। ऐसी स्थिति में मन उत्कृष्ट अवस्था में पहुँच जाता है, यही उनमनी अवस्था है। उनमनी अवस्था में मन के पहुँचने पर कुण्डलिनी का जागरण होता है, और साधक को एक नाद सुनाई देता है जिसे अनहद नाद कहते हैं। फिर एक ज्योति के दर्शन होते हैं। शून्य चक्र में मोती पैदा होता है। यही मोती वह परम ज्योति है जो कमलवत् होता है। इस रास्ते पर चलने के लिए सद्गुरु आवश्यक है, वही मार्ग दर्शक होता है। कबीर साहब के प्रेमतत्त्व पर प्रकाश डालते हुए आपने कहा कि लौकिक प्रेम विषयोन्मुखी होता है। यदि हम प्रेम को अन्तर्मुखी कर दें तो परमतत्त्व की प्राप्ति हो सकती है। हम शरीर को ही आत्मा मान बैठे हैं। इसलिए द्वन्द है। शरीर को लेकर ही संघर्ष है। आत्मा जो सब से परे है, न हिन्दू है न मुसलमान है इससे प्रेम करना है। यह ज्ञान होने पर हमारे अन्दर अनुराग पैदा होता है तथा उसके वियोग का बोध होता है। वियोग बोध से, उसे प्राप्त करने को हमारे अन्दर व्याकुलता पैदा होती है। संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रो० रामशंकर त्रिपाठी ने आभार प्रदर्शन किया तथा बतलाया कि सुरति स्मृति का अपभ्रंश है। साधना में सुरति अर्थात् स्मृति का महत्व है। लक्ष्य के प्रति सर्वदा स्मृति बनी रहे उसे ही सुरति कहते हैं।

आपने निर्विकल्प ज्ञान की व्याख्या करते हुए बतलाया कि भाव-अभाव, सत्-असत् अस्ति-नास्ति, संसार, मोक्ष यही प्रपंच है और द्वैत प्रपंच का बोध विकल्प हैं। इनसे ऊपर उठा हुआ ज्ञान जिसमें द्वैत-बोध नहीं है वह निर्विकल्प ज्ञान है। मन प्रपंच खड़ा करता है। मन के विकल्पों से मन के द्वारा रचित प्रपंचों से रहित अवस्था उनमनी अवस्था है।

अन्त में आपने कहा कि भारत में अनेक अद्वैतवाद हैं। उनकी दृष्टि से भी कबीर साहब के पदों की व्याख्या होनी चाहिए। बल्कि कबीर साहब के पदों से ही कबीर साहब की व्याख्या हो तो ज्यादा अच्छी बात होगी।

कार्यक्रम के प्रारम्भ में श्री विजय कुमार राय जी ने विषय की स्थापना करते हुए कहा कि कबीर साहब के दर्शन, समन्वय का दर्शन है। उन्होंने ज्ञान, योग, भक्ति और कर्म की साधना पद्धतियों का समन्वय किया। साधना में कठिनाई मन की आती है। इसलिए कबीर साहब ने भाव-पक्ष को लिया। आज हमारे पास भावपक्ष, हृदय नहीं रह गया है। हमने अपने ज्ञान से हृदय पक्ष का गला घोंट दिया है। प्रेम का अन्त त्याग में है। भक्ति निष्काम के बगैर सफल नहीं हो सकती। निष्काम कर्म तभी सम्भव है जब भीतर प्रेम हो। सब को एक समान समझना ही निर्वाण का मार्ग है प्रारम्भ में व्याख्यानमाला के संयोजक प्रसिद्ध गाँधीवादी चिन्तक श्री राम प्रवेश शास्त्री ने विद्वान वक्ता का परिचय दिया तथा अंत में श्री कबीर कीर्ति मंदिर के व्यवस्थापक श्री श्यामदास जी शास्त्री ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

# शीलवंत कोई एक

कु० चावली अन्नपूर्णा

वाराणसी जनपद की सत्य घटना है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की एक स्नातक छात्रा चेतगंज चौराहे से राजकीय बस पर सवार हुई। उस दिन छात्रा को फीस जमा करनी थी। लेडी सीट पर पहुंच कर उसने अपना पर्स वहीं रखकर कण्डक्टर से टिकट ले ही रही थी कि उसका पर्स गायब हो गया। आश्चर्य इस बात की थी कि एक शिशु को गोद में लिये हुए एक नटी के अतिरिक्त समस्त महिला सीटें खाली पड़ी थीं। नटी से पर्स के बारे में पूछने पर स्पष्ट इन्कार कर दिया।

नटी के अतिरिक्त आस-पास किसी अन्य यात्री के न रहने के कारण उस पर पूर्णतः शक होना स्वाभाविक था। गोदौलिया स्टापेज पर जब बस पहुंची, छात्रा ने बस कण्डक्टर से थोड़ा रुके रहने का आग्रह किया और नटी को लेकर निकट स्थित भट्टाचार्या होमियोपैथ की दूकान में प्रवेश की। वहाँ नटी को निर्वस्त्र कर उसने तलाशी ली तथापि पर्स हाथ नहीं आया।

बस पर पुनः सवार होते ही अन्य यात्री छात्रा के ऊपर कटाक्ष करने लगे—"सम्पन्न होने का मतलब यही है कि किसी गरीब के इज्जत का जरा भी लिहाज नहीं।" बस जब मदनपुरा चौराहे पर रुकी तब वह नटी नीचे उतरने लगी। नटी के साथ वह छात्रा भी बस से नीचे उतर गयी और उसके पैरों पर गिरकर क्षमायाचना करते हुए बोली—"माँ मुझे क्षमा कर दे, मैंने आज तुम्हारे साथ बड़ी गलती की है।" नटी बोली—"ठीक है, जो तुझे अच्छा लगा किया।" परन्तु लड़की के बार-बार कहने पर कि माँ मुझे क्षमा कर दो, नटी टाल न सकी और बोली—"जब तुम मुझे माँ के समान समझ रही हो तो मैं भी तुझे अपनी बेटी के समान मानती हूँ। लो ये रहा तुम्हारा पर्स।' पर्स वास्तव में गोद में स्थित शिशु के गर्दन की ओर से नटी द्वारा उसके गर्दन के नीचे डाल दिया गया था जो कमर के पास कसा हुआ था लेकिन तलाशी मात्र नटी की ही ली गयी थी। छात्रा पर्स ले नहीं रही थी। नटी ने कहा—"नहीं, तुम मेरी बेटी हो, यह पर्स तुम्हारा है, तुम्हें रखना होगा। यह पैसा हमने अपने लिए नहीं चुराये थे। इस बालक की तबीयत तीन दिन से खराब है। दवा करने का कोई साधन न होने से ऐसा करना पड़ा है।" छात्रा ने कुछ रुपये पर्स से निकाल कर नटी के हाथ में हठात् रखे और कहा—"माँ इसे रख ले, इससे बच्चे की दवा कराना।"

बस अभी तक रुकी थी, बस कर्मचारी और यात्री सभी ध्यानावस्थित हो निःस्तब्ध सब कुछ देखते रहे। शील के समक्ष असद् व्यवहार ने आत्मसमर्पण किया। परन्तु शीलवान बिरले ही होते हैं और यह शील अन्तःकरण की पवित्रता के बिना सम्भव नहीं है। इसीलिए सन्तप्रवर कबीर साहब ने कहा है—

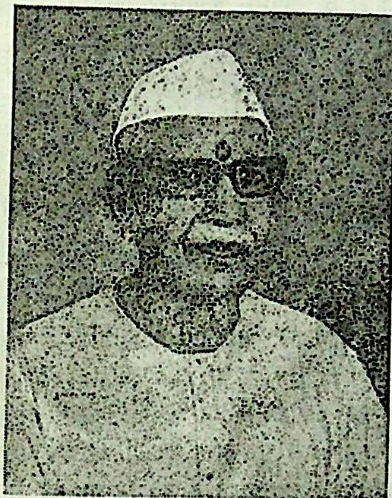
सुख का सागर सील है, कोइ न पावे थाह। सब्द बिना साधू नहीं, द्रव्य बिना नहिं साठ॥
सीलवंत सबसों बड़ा, सब रत्नों की खान। तीन लोक की संपदा, रही सील में आन॥

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र की प्रथम पुण्यतिथि पर

# श्रद्धा-सुमन

डॉ० लक्ष्मीशङ्कर गुप्त हिंदी विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी

गुरुपूर्णिमा आ गई। गुरुओं के प्रति श्रद्धा और कृतज्ञता का दिन। प्रति वर्ष यह पर्व इसी प्रकार आता ही रहेगा। गुरुपूर्णिमा इस वर्ष भी आई, पर मेरे लिए इसने कुछ कटौती कर दी। इसने मुझे प्रसन्नता नहीं दी। मेरे



स्व० आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र

पल्ले पड़ी गंभीरता, अभाव और तमिस्रा। पिछले वर्ष इस दिन मेरे पूज्य गुरुदेव आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र सशरीर विद्यमान थे। पिछली गुरुपूर्णिमा के छह दिन पीछे ही यशःशेष हो गए। आज से चार दिन पूर्व प्रिय बंधु श्री शंभुनाथ राय से मेरी भेंट हो गई थी। हम लोग सतीर्थ भी हैं। गुरुपूर्णिमा का ध्यान मुझे पहले से था। मैंने उनसे कहा—'राय साहब, इस वर्ष तो गुरुपूर्णिमा मुझे दुर्योधन की स्थिति में लाने जा रही है। गत वर्ष तक काशी में मेरे दो गुरु थे—आचार्य मिश्र और पं० करुणापति त्रिपाठी। इस वर्ष एक ही रह गए हैं। प्रत्यक्ष आशीर्वाद अब आधा ही रह गया'।

पूर्णिमा आ ही गई। प्रातःकाल स्नान-संध्या करने के पश्चात् मैंने यह निर्णय किया कि आज कीर्तिशेष गुरुदेव के चित्र की ही पूजा करूँगा। जब मैं गुरु जी के सान्निध्य में बैठ कर सूरसागर की टीका लिखा करता था, उस समय कुछ ऐसे भी पद आ जाते थे जिनकी व्याख्या करने के लिए कुछ समय तक माथा मारना पड़ता था। गुरु जी के अध्ययन-कक्ष में अनेक चित्रों के साथ महात्मा सूरदास का भी एक बड़ा सा चित्र लगा था जो उनके ठीक सामने पड़ता था। एक दिन कठिनाई होने पर उन्होंने उस चित्र की ओर देखा और कहा—'का हो अन्हरऊ, बहुत दिक मत करो'। मैंने हँस कर पूछा—'पंडित जी, क्या सूरदास सुन गए होंगे और अर्थ लगवा देंगे'। गुरु जी ने उसी विनोद के भाव में कहा —'क्यों नहीं, आत्मा तो सूक्ष्म और सर्वव्यापी है। फिर उनके चित्र के पास तो उसका अधिक प्रभाव होगा ही'। कुछ ही क्षणों बाद ऐसा सटीक अर्थ बैठा कि गुरु जी खिल उठे। टीका लिख डाली गई। फिर उन्होंने कहा—'देखा, तुम कह रहे थे कि क्या सूरदास सहायता कर देंगे। की न ?' मैंने हँसी से ही स्वीकृति दी। गुरु जी की उसी बात का ध्यान कर के आज मैंने उनके चित्र की ही पूजा की। वे न तब ही मेरे समक्ष नैवेद्य ग्रहण करते थे, न आज ही ग्रहण करते हुए चर्मचक्षुओं से दिखाई पड़े, पर मेरे मन ने मान लिया कि उन्होंने मेरा निवेदन स्वीकार कर लिया। पर, मैं प्रति वर्ष जो उनके चरणों पर माथा रख कर प्रणाम करता था, वह न कर पाया, भींगी पलकों से हाथ जोड़ लिए।

उन्होंने एक बार कहा था कि मुझे बड़ी चिंता थी कि मेरे बाद मेरी परंपरा कैसे चलेगी, किंतु अब मुझे भरोसा हो गया है कि वह व्यवच्छिन्न नहीं होगी क्योंकि मुझे शंभुनाथ और तुम मिल गए हो। मैं अब भी सोचता हूँ कि उनकी आशा हम लोग कहाँ तक पूरी कर सकेंगे। न तो हममें पांडित्य है, न लेखन-शक्ति। यदि कुछ हो सकेगा, तो उनके आशीर्वाद से ही।

काल की गति बड़ी विलक्षण है। वह किसी को एक स्थिति में नहीं रहने देती। शिवसायुज्य-प्राप्ति के कुछ दिन पूर्व उनकी वाणी अस्पष्ट हो गई थी और पिछली

गुरुपूर्णिमा को तो वह पूर्णतः सुपुप्त थी। उसने नेत्रों का आश्रय ग्रहण कर लिया था। उस दिन मेरे मन में बात आई थी कि यह वही पडित जी हैं जिन्होंने साहित्यरत्न के मौखिक परीक्षार्थी के रूप में परीक्षक डॉ० धीरेंद्र वर्मा को साहित्यशास्त्र में खूब लताड़ा था और उन्हें ही पनाह माँगते बनी थी। उसी दिन वे पंडित जी की अगाध गहराई का पता पा गए थे। बहुत दिन पीछे जब पंडित जो काशी विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हो गए थे, एक बार काशी नागरी-प्रचारिणी-सभा में भारतीय और पाश्चात्य समीक्षा-पद्धति की तुलना के विषय में उच्च स्तरीय गोष्ठी का आयोजन हुआ। लोग कहने लगे कि विषय का प्रवर्तन कौन करेगा। डॉ० धीरेंद्र वर्मा भी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने कहा कि विश्वनाथ जी के रहते दूसरा कौन करेगा। पडित जी ने जब अपना व्याख्यान समाप्त किया, तब उनके दोनो पद्धतियों के शास्त्रीय ज्ञान को प्रत्यक्ष कर के लोग अवाक् रह गए थे। जो पंडित जः अपनी वाग्मिता से विद्वन्मडली तथा जनसामान्य दोनो को समान रूप से मुग्ध कर लेते थे, उन्हीं की मूकता देख कर मैं काल के जेतृत्व से अभिभूत हो गया।

जगत् पंडितों से शून्य नहीं है, पर साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में पंडित जी की सूक्ष्म अंतर्दृष्टि जैसी थी, वैसी कम लोगों को मिलती है। हम लोग तो हाथ में रखी हुई वस्तु भी नहीं देख पाते, पर उनकी मर्मभेदिनी दृष्टि सात ताले के भीतर बंद सामग्री भी देख लेती थी। मैं जब आलम-कृत 'सुदामा-चरित' का संपादन कर रहा था, तब हस्तलेख में मुझे एक स्थान पर पाठ मिला—

'खुवाबगाह कोल करि लाया, गोसे बीच मचान बनाई' इसमें 'खुवाबगाह······ला॰।' की संगति मैं बैठा ही नहीं पा रहा था। जब परास्त हो गया, तब पंडित जी के यहाँ गया। अपनी समस्या रखी। उस समय वे रोग-शय्या पर ही थे, पर उनकी वाणी समझने योग्य थी। उन्होंने थोड़ी देर तक विचार किया, फिर बोले—"तुमने इसे नहीं समझा? यह है—'खुवाबगाह को लकरी लाया'। लिखक की असावधानी से ऐसा हो गया है।" मैं तो पंडित जी का मुंह देखता ही रह गया और अपनी बुद्धि पर बड़ी झेंप आई।

प्रायः विद्वान् बड़ गंभीर होते हैं। हास्य-विनोद पसंद नहीं करते, किंतु पडित जी वड़े विनोदी थे और वहुत शिष्ट विनोद करते थे। ऐसा विनोद नहीं जो किसी को मर्मभेदी सिद्ध हो. एक बार मुझे कहीं जाना था। इसलिए निश्चित समय से कई घटे पूर्व मैं उनके घर पहुँच गया। घंटी वजाई। वे अपनी कानपुरी अवधी मे ऊपर से वोले—'को है?' मैंने उत्तर दिया—'मैं हूँ, पडित जी'। वे सामने आ गए और मुसकराते हुए बोले—"अच्छा, आप हैं 'पंडित जी'।"

वे और माता जी हमलोगों को पुत्रवत् नहीं, पुत्र ही मानते थे। लगभग दो वर्ष पूर्व मेरे एक मित्र की पत्नी अपने मामा के घर काशी आई थीं। उस समय पंडित जी रुग्ण थे और काशी विश्वविद्यालय के आवास में ही रहते थे। मेरे पास मित्र का पत्र आया कि आप मेरी श्रीमती जी को गुरु जी के दर्शन करा दीजिएगा। उनके पत्र का समाचार जान कर मेरी श्रीमती जी ने कहा कि मैं भी उनकी श्रीमती जी से भेंट और गुरु जी के दर्शन कर लेती तो अच्छा होता। फलतः हम तीन लोग गुरु जी के आवास पर पहुँचे। घंटा डेढ घंटा रुके। जब चलने को हुए तब उन्होंने माता जी को पुकार कर कहा—'बहुएँ जा रही हैं, इनका कोंछा भर दो'। माता जी ने चावल से दोनो का अंचल भर दिया। जब द्रव्य भी देने लगीं, तव मेरी पत्नी ने कहा—'इनको नहीं लूँगी। मुझे डाटेंगे।' माता जी बोलीं—'तुम्हें डाटेंगे, तो मैं उन्हें ही डाटूँगी' और उनके स्नेहाग्रह से दोनो बहुओं को द्रव्य लेना ही पड़ा।

वैशाख कृष्ण एकादशी को इसी वर्ष माता जी को भी शिवसायुज्य प्राप्त हो गया। अब हम गुरु जी और माता जी दोनो ही के प्रत्यक्ष स्नेह से वंचित हो गए। अब तो यही कामना है कि हम पर स्वर्ग से उनके स्नेह की अविरल वर्षा होती रहे।

# शिक्षा-दर्शन

आचार्य युधिष्ठिर शास्त्री-दर्शनाचार्य, एम. ए. द्वेद दर्शन-स. वि.
अध्यक्ष श्री साधुबेला संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी

( गतांक से आगे )

यही कारण था कि आचार्य के घर वेदों का अध्ययन समाप्त करके कुटुम्ब के बीच रहते हुए पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के लिए व्यक्ति स्वाध्याय करता था और इन्द्रियों को नियंत्रित कर पुत्रों एवं शिष्यों को शिक्षा देता हुआ शास्त्रीय विधि के द्वारा दूसरों का कल्याण करके अपना कल्याण करता था—

आचार्यकुलाद्वेदमधीत्य यथाविधानं गुरोः कर्मातिशेषेणाभिसमवृत्य कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानो धार्मिकान्विदधदात्मनि सर्वेन्द्रियाणि सम्प्रतिष्ठाप्याहिंसन्सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेवं वर्तयन्यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते ।

जिससे सामाजिक उन्नति होती थी । इस तरह शिक्षा के पीछे सामाजिक विकास छिपा हुआ था, जिससे प्रेरित होकर व्यक्ति शिक्षाप्राप्ति के लिए सतत् प्रयत्नशील रहता था ।

परंतु मनोवृत्तियों में भिन्नता होने के कारण सभी व्यक्ति एक ही तरह की शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते थे । इसलिए मनोवृत्तियों के आधार पर ब्राह्मण-क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों में व्यक्तियों को बाँट कर प्रत्येक वर्ण को एक विशेष प्रकार की शिक्षा दी जाती थी । ब्राह्मण अध्ययन-अध्यापन में अपनी अभिरुचि रखते थे इसलिए उन्हें वेद की शिक्षा दी जाती थी और सुरक्षा कार्य में अभिरुचि रखने वाले क्षत्रिय को धनुर्वेद की शिक्षा दी जाती थी । इस बात की पुष्टि महाभारत में वर्णित द्रोणाचार्य द्वारा पाण्डवों एवं अन्य राजकुमारों को दी जाने वाली अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा से होती है ।

ततो द्रोणः पाण्डुपुत्रानस्त्राणि विविधानि च ।
ग्राहयामास दिव्यानि मानुष्याणि च वीर्यवान् ॥
राजपुत्रास्तथा चान्ये समेत्य भरतर्षभ ।
सोऽभिजग्मुस्ततो द्रोणमस्त्रार्थे द्विजसत्तमम् ॥

वैश्य कृषि कार्य में अभिरुचि रखता था इसलिए उसे कृषि एवं पशुपालन की शिक्षा दी जाती थी । सेवाकार्य में अभिरुचि रखने वाले शूद्रों को सेवा करने की शिक्षा दी जाती थी ।

एक ही वर्ग के अन्दर रहने वाले सभी व्यक्तियों को एक ही तरह की शिक्षा नहीं दी जाती थी । उनकी शिक्षा भी मनोवृत्तियों के आधार पर होती थी । यही कारण था कि महाभारत कालीन समाज में जहाँ भीम ने बलराम से खडग-गदा एवं रथ के द्वारा युद्ध करने की शिक्षा प्राप्त कर उसमें दक्षता प्राप्त की थी ।

असियुद्धे गदायुद्धे रथयुद्धे च पाण्डवः ।
संकर्षणादशिक्षद् वै शश्वच्छिक्षां वृकोदरः ॥

वहीं दूसरी ओर द्रोणाचार्य से शिक्षा प्राप्त कर अर्जुन मुट्ठी से धनुष को पकड़ने में, हाथों की फुर्ती में और लक्ष्य को वेधने में अधिक दक्ष हुआ था ।

प्रगाढदृढमुष्टित्वे लाघवे वेधने तथा ।
क्षुरनाराचभल्लानां विपाकानां च तत्त्ववित् ॥

इसी तरह सहदेवने बृहस्पति से नीतिशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी—

नीतिमान् सकलां नीतिं विबुधाधिपतेस्तदा ।
अवाप्य सहदेवोऽपि भ्रातॄणां ववृते वशे ॥

और नकुल द्रोण से अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा प्राप्त कर विचित्र प्रकार से युद्ध करने की क्षमता के लिए प्रसिद्ध हुआ था ।

द्रोणेनैव विनीतश्च भ्रातॄणां नकुलः प्रियः ।
चित्रयोधी समाख्यातो बभूवातिरथोदितः ॥

इस तरह अभिरुचि के अनुसार शिक्षा दिये जाने के कारण प्रत्येक व्यक्ति का सम्यक् विकास होता था जिससे वह योग्यतम सदस्य के रूप में समाज को ऊपर उठाने के लिए अपनी शिक्षा का प्रचार करता था ।

## शिक्षा के विभिन्न प्रकार

उपर्युक्त शिक्षा की विधि के फलस्वरूप एक ऐसे समाज का निर्माण हुआ जो अपने सदस्यों के संतुलित विकास के लिए सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दो प्रकार की शिक्षाओं की व्यवस्था करता था। ये दोनो प्रकार की शिक्षाएं प्राथमिक और उच्च स्वरों पर दी जाती थीं। प्राथमिक स्तर पर इन शिक्षाओं के लिए गुरुकुलों की स्थापना की गई थी, जहाँ आचार्य वेद, वेदांगों का स्वाध्याय कराते हुए अपने शिष्यों को सैद्धान्तिक ज्ञान देता था और पुनः उस सैद्धान्तिक ज्ञान को जीवन में उतारने के लिए, उनके अनुरूप आचरण करवाते हुए, शिष्यों को व्यावहारिक शिक्षा देता था।

शिक्षण की यह क्रिया आचार्य के ज्ञान के अनुसार होती थी। जब आचार्य अपने संपूर्ण ज्ञान की शिक्षा शिष्य को दे देता था तब शिष्य उनके आज्ञानुसार अपने अधूरे ज्ञान को पूर्ण करने के लिए अन्य आचार्यों से शिक्षा प्राप्त करता था। इस बात की पुष्टि महाभारत में वर्णित इस प्रसंग से होती है, जिस में गुरु रूप व्यास के आदेश से संपूर्ण योगशास्त्र एवं समस्त सांख्य का अध्ययन कर के शुकदेव उनकी आज्ञा से मोक्ष धर्म संबंधी विशेष ज्ञान के लिए मिथिला नरेश जनक के पास गये थे—

> पितुर्नियोगाज्जग्राह शुको धर्मभृतां वरः।
> योगशास्त्रं च निखिलं कापिलं चैवभारत॥
> पितुर्नियोगमादाय जगाम मिथिलां नृप।
> प्रष्टुं धर्मस्य निष्ठां वै मोक्षस्य च परायणम्॥

उच्च शिक्षा की परीक्षा के लिए विद्वत् परिषद् और विद्वत् समितियाँ हुआ करती थीं। इनकी स्थापना प्रायः राजा द्वारा राजा-सभा में ही हुआ करती थी।

## शिक्षा के सामाजिक पहलू

इन दोनों प्रकार की शिक्षाओं की व्यवस्था व्यक्ति के व्यापक हितों को ध्यान में रख कर की गई थी, क्योंकि व्यक्ति से परिवार और परिवार से समाज का निर्माण होता है। इसलिए सामाजिक विकास व्यक्ति के समुचित विकास से ही संभव है। व्यक्ति का समुचित विकास उसकी शारीरिक और बौद्धिक शक्तियों के संतुलित विकास से ही होता है। उन्हीं बातों को ध्यान में रखकर तत्कालीन समाज में शारीरिक और बौद्धिक इन दो प्रकार की शिक्षाओं की व्यवस्था की गई थी। एक ओर धनुर्वेद की शिक्षा देकर व्यक्ति के शारीरिक शक्ति को बढ़ाया जाता था तो दूसरी ओर वेद-वेदांगों और नाना प्रकार के शास्त्रों द्वारा धर्म संबंधी गूढ़ रहस्यों की शिक्षा से उनकी मानसिक शक्ति को पुष्ट किया जाता था। इस बात का प्रमाण महाभारत में उल्लिखित कृपाचार्य को दी जाने वाली शिक्षा है।

> आगम्य तस्मै गोत्रादि सर्वमाख्यातवांस्वय।
> चतुर्विधं, धनुर्वेदं शास्त्राणि विविधानि च॥
> निखिलेनास्य तत् सर्वं गुह्यमाख्यातवांस्तदा॥
> सोऽचिरणैव कालेन परमाच र्यतां गतः॥

अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा, घोड़ों, हाथियों, रथों, एवं भूमि पर युद्ध करने की शिक्षा के साथ-साथ कृषि, पशु-पालन, उद्योग एवं शिल्पों की शिक्षा शारीरिक शिक्षा के पहलु थे। इन शिक्षाओं को प्राप्त कर व्यक्ति बल एवं पराक्रमों से सम्पन्न हो बाह्य शक्तियों से समाज की सुरक्षा करता हुआ उसकी वृद्धि के लिए धन अर्जन करता था। वह वार्तावृत्ति में ही सुखों का अनुभव करते हुए व्यापार, शिल्प एवं उद्योग धंधा करके धन प्राप्त करता था—

> वणिज शिल्पिनः श्रितान्।
> अभीक्षणमनुगृह्णासि धनधान्येन दुर्गतान्॥
> काचित् स्वनुष्ठिता तात वार्ता ते साधुभिर्जनैः।
> वार्तायां संश्रितस्वात लोकोऽयं सुखमेधते॥

परंतु इतने से ही समाज सुविकसित नहीं होता था। सुविकसित समाज के लिए उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त आंतरिक संगठन का होना आवश्यक था जिसकी स्थापना सद्भावना से होती थी। मन, वाणी और शरीर से किसी प्रकार भी किसी को कष्ट न देना तथा प्रिय भाषण, अपने अपकार करने वाले पर भी क्रोध न करना, कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्याग, अन्तःकरण की शुद्धता अर्थात् चित्त की चंचलता का अभाव, किसी की निन्दा न करना, सब प्राणियों में हेतु-रहित दया, इन्द्रियों का विषयों के साथ

संयोग होने पर आसक्ति का न होना, कोमलता तथा लोक और शास्त्र के विरुद्ध आचरण में लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव, आदि मनुष्य की सद्भावना के अंदर आने वाले गुणात्मक व्यवहार थे।

अहिंसा सत्यमकोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥

इनकी उत्पत्ति बौद्धिक शिक्षा में होती थी। मीमांसा, न्याय, पुराण, धर्मशास्त्र, चारों वेद एवं वेद के छहों अंग · ये चौदह प्रकार की विद्याएं थीं—

अगानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्याय विस्तरः।
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्याह्येताश्चतुर्दश॥
पुराणन्याय मीमांसा धर्मशास्त्रांगमिश्रिता।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥

इन्हें बौद्धिक शिक्षा के प्रमुख पहलू के रूप में स्वीकार किया गया था। इन विद्याओं से संपन्न व्यक्ति शील, सदाचार से युक्त हो सम्मानित होता हुआ प्रेम, दया, क्षमा, सहानुभूति आदि सूत्रों में व्यक्तियों को बांधकर समाज को सुविकसित करता था।

इस तरह एक सुगठित समाज की स्थापना थी। इसके लिए व्यक्ति को शारीरिक एवं बौद्धिक शिक्षाएँ भी प्राप्त करनी पड़ती थीं, परंतु ऐसी शिक्षाएँ आसानी से प्राप्त नहीं होती थीं। इसके लिए गुरु की विशेष कृपा की आवश्यकता होती थी, जो गुरु शिष्य के लिए मधुर संबंध पर आधारित थी।

## शिक्षक और शिष्य के बीच संबंध

गुरु शिष्य के संबंध की स्थापना गुरु के प्रति शिष्य के पावन एवं उदात्त भावना और शिष्य के प्रति गुरु के स्नेह और आत्मीयता की भावना के कारण होती थी। शिष्य गुरु को देवतुल्य मानते हुए उनकी सेवा करता था और उससे संतुष्ट हो गुरु शिष्य को अनेकानेक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देता था, जिससे वह पिता के रूप में माना जाता था। गुरु का शिष्य के साथ पिता के समान व्यवहार था। वह अपने पुत्र और अंतेवासी को एक ही कोटि में रखता था।

शिष्य भी गुरु के साथ पुत्र के समान व्यवहार करता था। वह आचार्य को पितृतुल्य और मातृतुल्य मानते हुए उनका अनादर नहीं करता था—

तं मन्येत पितरं मातरं च
तस्मै न द्रुह्य·········।

इस तरह गुरु-शिष्य के बीच पिता-पुत्र का संबंध था, जिसकी स्थापना ज्ञान-प्राप्ति के उद्देश्य से उपनयन-संस्कार के बाद होती थी। इस संबंध में मनुस्मृति में कहा गया है कि द्विज बालक के दो जन्म होते हैं, इसीलिए द्विज कहा जाता है। पहला जन्म माता के गर्भ से होता है और दूसरा उपनयन-संस्कार से। द्वितीय जन्म ब्रह्म अर्थात् ज्ञानकी प्राप्ति के लिए होता है और इस द्वितीय जन्म में उसकी माता गायत्री होती है तथा पिता आचार्य होता है—

तत्र यद्ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिह्नितम्।
अत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते॥

गुरु शिष्य का संबंध कभी-कभी परिवर्तित हो जाता था। अत्यन्त ही स्नेह और ममता के कारण कभी-कभी अपनी कन्या का विवाह गुरु शिष्यों में से किसी एक योग्य शिष्य के साथ कर देता था। इस संबंध में कहा जाता है कि उत्तंक ने गुरु-पुत्री के साथ विवाह किया था। परंतु ऐसा संबंध विशेष परिस्थिति में होता था जब गुरु किसी शिष्य की सेवा और उसके ज्ञान-विज्ञान से संतुष्ट हो जाता था।

गुरु स्नेहवश शिष्य को अपनी कन्या दे देता था। साधारणतः उन दोनों के बीच पिता-पुत्र का संबंध था। इस संबंध के द्वारा ज्ञान-पिपासु शिष्य धर्मनिष्ठ आचार्य के जीवन का अनुकरण करता हुआ शिक्षा प्राप्त करता था।

## शिक्षा हिन्दू व्यवस्था का प्रतिफल

हिन्दू समाज का प्रतिफल होने के कारण शिक्षा सामाजिक आवश्यकता एवं जरूरतों की पूर्ति करती थी। यही कारण था कि व्यक्ति शिक्षा प्राप्त कर अपनी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए अपने जीवन को समाज के लिए समर्पित कर देता था। वह सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए यज्ञ करते हुए लोगों को वेद की शिक्षा देता था, जिससे लोक-प्रसिद्ध हो द्विजातियों से पूजित होता

हुआ वह आनन्द का उपभोग करता था—

पूज्यमाना द्विजैर्नित्य मोदमाना गृहे रताः ।।
याजनाध्यापनरताः श्रीमन्तो लोकविश्रुताः ।।

इस तरह की शिक्षा निःशुल्क होती थी। शुल्क के रूप में शिष्य आचार्य का प्रत्येक कार्य करता था और शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्हें दक्षिणा देता था—

गुरवे दक्षिणां दत्त्वा समावृत्तो महामुनिः ।

दक्षिणा आचार्य की आय का प्रमुख स्रोत था। इसके अतिरिक्त कभी-कभी आचार्य को दान के द्वारा धन प्राप्त होता था। इस बात का स्पष्टीकरण मत्स्यपुराण के एक प्रसंग से होता है। उसमें कहा गया है कि भीम ने द्वादशी के दिन उपाध्याय को अँगूठी, कटक, सुवर्णसूत्र, सुवस्त्रादि दान दिया था।

आय के इन स्रोतों द्वारा प्राप्त धन में यदि आचार्य का जीवन-यापन नहीं हो सकता था तो वह शिष्यों की सहायता से कृषि-कार्य करता था। ऐसी एक कथा महाभारत के आदिपर्व में सविस्तर उल्लिखित है।

स एक शिष्यमारुणिं पांचाल्यं प्रेषयामास। गच्छ केदारखण्डं बधानेति ।।

जिस आचार्य के कृषि कार्य करने के पास लिए भूमि नहीं थी, उसके जीवन-यापन की व्यवस्था राज्य की ओर से होती थी। इस संबंध में कहा जाता है कि आचार्य द्रोण पाण्डवों और कौरवों के गुरु थे, जिनके जीवन-यापन के लिए भीष्म ने धन-धान्य से भरा हुआ एक घर प्रदान किया था।

गृहं च सुपरिच्छिन्नं धनधान्यसमाकुलम् ।
भारद्वाजाय सुप्रीतः प्रत्यपादयत प्रभुः ।।

परंतु ऐसे आचार्यों की संख्या बहुत कम थी। अधिकांश आचार्य आश्रमों में रहते हुए दक्षिणा, दान, भिक्षा एवं अपने निजी उद्योगों धंधों द्वारा जीवन व्यतीत करते थे। उनके जीवन का अनुकरण करके शिष्य भी स्वावलम्बी होकर समाज की सेवा करता था।

### शिक्षा द्वारा व्यक्तित्व का समाजीकरण

सामाजिक सेवा की भावना की उत्पत्ति पूर्ण व्यक्तित्व के विकास से होती थी और व्यक्तित्व का पूर्ण विकास शिक्षा के माध्यम से होता था। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति भिन्न भिन्न प्रकार के नियमों, संयमों का ज्ञान प्राप्त कर उनका पालन करते हुए अपने अंदर स्थित तमस् एवं रजोगुण को समाप्त कर सत्त्वगुण में प्रतिष्ठित होता था।

तमसा रजसा चापि त्यक्तः सत्त्वे व्यवस्थितः ।

इससे इसके अंदर आत्मविश्वास की भावना उत्पन्न होती थी। इस भावना के उत्पन्न होने से व्यक्तित्व का समुचित विकास होता था, क्योंकि इसी भावना से प्रेरित होकर व्यक्ति जीवन को व्यवस्थित करता हुआ अपने कर्मों एवं विभिन्न प्रकार के सामाजिक उतरदायित्वों का निष्पादन करता था। वह भविष्य के कष्टमय जीवन को सुखमय बनाने के लिए गुरु के सान्निध्य में रहकर विभिन्न नियमों का पालन करते हुए अपने अद्भुत साहस का परिचय देता था।

इस तरह आत्म विश्वास से सर्वांगीण विकास होता था। यही कारण था कि शिक्षा प्रारम्भ करने के लिए किए जाने वाले उपनयन संस्कार के साथ छात्र के अंदर आत्म विश्वास जगाने का प्रयास किया जाता था और अग्नि से यह प्रार्थना की जाती थी कि वह छात्र पर अपनी दया दृष्टि रखे और बुद्धि, मेध्य और शक्ति में वृद्धि करे, जिससे अग्नि-शिखा की तरह उसकी विद्या और बुद्धि, मेध्य और शक्ति में वृद्धि हो, जिससे उसकी विद्या और शक्ति की कृति सभी दिशाओं में प्रसारित हो। अनेक देवताओं के पूजन के साथ उसमें यह भावना दृढ़ की जाती थी कि ये देवतागण उसकी रक्षा करेंगे। ब्रह्मचारी की चोट, रोग और मृत्यु के समय सविता उसकी रक्षा करता था—

देव सवितरेण ते ब्रह्मचारी तं
गोपाय स मामृतेत्याचार्यः ।

सुदृढ़ आत्म विश्वास के लिए आत्म-संयम आवश्यक था, क्योंकि आत्मसंयम से विवेक-भावना और न्याय प्रवृत्ति का उदय होता था जिससे आध्यात्मिकता की वृद्धि होने से व्यक्ति के अंदर स्थित अज्ञान-रूपी अंधकार दूर हो जाता था और वह ज्ञान-रूपी प्रकाश से आलोकित हो समाज के अन्य व्यक्तियों को भी प्रकाशित करता था। वह सब के प्रति मित्रभाव रखते हुए किसी से बैर या किसी

की हिंसा नहीं करता था —

न हिंस्यात् सर्वभूतानि मैत्रायणगतश्चरेत् ।
नेदं जन्म समासाद्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥

इस तरह उसके व्यक्तित्व का समाजीकरण हो जाता था ।

## शिक्षा के उद्देश्य-आत्मानुशासन और चरित्र-निर्माण

चूंकि व्यक्तित्व का समाजीकरण आत्म-संयम से होता था, इसलिए आत्म-संयम की शिक्षा देना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था । आत्म-संयम का अर्थ आत्मानुशासन है । अपने कर्त्तव्यों के पालन करने की दृष्टि से इन्द्रियों और मन की उच्छृंखल प्रवृत्तियों को नियंत्रित और व्यवस्थित रखना आत्मानुशासन कहलाता था । इससे व्यक्ति शांत एवं विकार रहित हो अनासक्त भाव से विषयों का अनुभव करता था, जिससे उसे मुक्ति की प्राप्ति होती था—

इन्द्रियैरिन्द्रियार्थान् यश्चरत्यात्मवशैरिह ।
असज्जमानः शान्तात्मा निर्विकारः समाहितः ॥
आत्मभूतैस्तद्भूवः सह चैव विनैव च ।
स विमुक्तः परं श्रेयो नाचिरेणाधितिष्ठति ॥

गीता में कहा गया है कि संयमयुक्त योग उस व्यक्ति के ही दुःखों को दूर करता है, जो यथा योग्य आहार-विहार करने वाला होता है ।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

इस तरह आत्मानुशासन के लिए नियमित एवं व्यवस्थित आचरण होना आवश्यक था, जो सच्चरित्रता से ही संभव था ।

प्राचीन काल में चरित्र का विकास करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था । इसके अन्तर्गत व्यक्ति को नैतिक क्रियाओं द्वारा धर्म-अधर्म, शुभ-अशुभ, सुख-दुःख, पाप-पुण्य, सत्य-असत्य, आदि का ज्ञान कराके सन्मार्ग पर चलने की शिक्षा दी जाती थी । इससे उसके चरित्र का विकास होता था, और वह कर्मनिष्ठ विद्वान् व्यक्ति के रूप में समाज में पूजित होता था । धर्म और चरित्र से संयुक्त व्यक्ति पण्डित कहलाता था । चरित्र ही विद्वत्ता का कारण था । सच्चरित्रता के अभाव में समस्त वेदों का ज्ञाता विद्वान् होकर भी समाज में माननीय नहीं होता था । जब कि केवल गायत्री मंत्र के ज्ञाता पंडित अपनी सच्चरित्रता के कारण माननीय और पूजनीय होते थे—

सावित्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः ।
नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥

सच्चरित्रता व्यक्ति का भूषण मानी जाती थी । आचरण-सम्पन्न और चरित्रवान व्यक्ति अभिनन्दनीय था तथा आचरणहीन और चरित्रहीन निन्दनीय ।

सत्कर्मों से ही चरित्र का उत्थान माना गया था । सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि सत्कर्म थे जिनका संचालन नैतिक मूल्यों से होता था । शिक्षा देकर चरित्र को विकसित करने का प्रयास किया जाता था । शिक्षित व्यक्ति में समाज के प्रत्येक व्यक्ति के प्रति सद्व्यवहार करने की प्रवृत्ति उत्पन्न की जाती थी जिससे उसका चरित्र विकसित होता था, क्योंकि चरित्र के विकास के आधारभूत तत्व सहिष्णुता, सौहार्द, सत्य-निष्ठा, नैतिकता, सदाचार आदि सद्गुण माने जाते थे । इन सद्गुणों के विकास से व्यक्ति अपनी तामसी एवं पाशविक प्रवृत्ति को नियन्त्रित कर सत्य-असत्य के भेद को स्पष्ट करता हुआ सत्य के स्वरूप को पहचानता था । और अपने चरित्र को उस सत्य के सांचे में ढालने का प्रयास करता था, जिससे उसका उत्थान प्रारंभ होता था ।

यह कार्य व्यक्ति अपने विद्यार्थी-जीवन में ही करता था । विद्यार्थी जीवन को ब्रह्मचर्य जीवन कहा जाता था । इस जीवन में आदेशों एवं नियमों का पालन कराते हुए व्यक्ति को शील का अर्थ समझाया जाता था । उसके अंदर दया, ज्ञान एवं दूसरे से द्रोह न करने की भावना उत्पन्न होती थी । मन, वचन और क्रिया द्वारा किसी भी प्राणी से द्रोह न करना, सब पर दया करना और यथाशक्ति दान देना शील कहलाता था ।

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा ।
अनुग्रहश्च दानं च शीलमेतत् प्रशस्यते ॥

शील ही धर्म, सत्य, सदाचार, बल आदि का आधार है—

धर्मः सत्य तथा वृत्तं बलं चैव तथाप्यहम् ।
शीलमूला महाप्राज्ञ सदा नास्त्यत्र संशयः ॥

इसलिए शील का ज्ञान हो जाने पर व्यक्ति इन गुणों के महत्व को समझते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करता था। इससे उसके चरित्र का पूर्ण विकास होता था। ब्रह्मचर्य, तप और नियम का जीवन था। इसलिए कहा गया था कि ब्रह्मचर्य धारण करने वाले में समस्त देवता अधिवास करते हैं। समिधा और मेखला सहित ब्रह्मचारी विभिन्न प्रकार के व्रतों को करता हुआ अपने श्रम और तप के प्रभाव से लोगों को समुन्नत करता था। इसके श्रम और तप के सामने सभी लोग नतमस्तक होते थे। लोगों में ऐसी धारणा थी कि इसी तप के कारण समाज राष्ट्र एवं राज्य समुन्नत होता था। इसलिए राजा ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करता था। आचार्य ब्रह्मचर्य द्वारा ही शिष्यों को यथोचित रूप में शिक्षित करने की योग्यता सम्पादित कर पाता था—

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥

इसलिए चरित्र के उत्थान के लिए ब्रह्मचर्य-व्रत आवश्यक था। इसके द्वारा ी ज्ञान की प्राप्ति एवं वृद्धिहोती थी। चूंकि ज्ञान के लिए इन्द्रियों को नियंि त करना आवश्यक था, इसलिए इन्द्रियनिग्रह पर अधिक जोर दिया जाता था ( वह शौच, आचार, स्नान, अग्नि-कार्य और सध्योपासन आदि सीखता था :—

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमयादितः ।
आचारमग्निकार्यं च सांध्योपासनमेव च ॥

इससे उसके चरित्र का उत्थान होता था।



## सद्गुरु कबीर जयन्ती—श्री सत्य कबीर सतसंग मंडल, करांची

विश्व वंद्य प्रातःस्मरणीय सद्गुरु कबीर साहब धनी धर्मदास साहब की असीम कृपा से श्री सत्य कबीर सत्संगमडल, करांची में सद्गुरु कबीर साहब की ५८३ वीं जयन्ती बुधवार ता० २२-३-८३ से ता० १४-६-८३ तक बड़े धूमधाम से मनायी गयी।

मानव में दया का, अभाव हो गया, अहिंसा की प्रबलता हो गई, धर्म के नाम पर त्रास दिया जाता हरक्षण प्रत्येक स्थान में रक्षक का अभाव था। ऐसी विषम परिस्थिति में सद्गुरु कबीर साहब सभी के रक्षक के रूप में १४५६ में काशी के लहरतारा धाम में प्रकट हुए। अपनी मृदु से मृदु, कठोर से कठोर वाणी से सभी को शिक्षा दी। जिससे मानव अपने अन्यायों एवं अत्याचारों से विरत हो सका समाज में शान्ति-व्यवस्था स्थापित हुई। सत्संग का यह कार्यक्रम लगातार बुधवार, गुरुवार एवं शुक्रवार तक चलता रहा।

बुधवार को संध्या प्रार्थना एवं आरती रात्रि ७ से ६ बजे तक होती रही। गुरुवार को शाम के ७ बजे से ९ बजे तक भजन उपदेश हुआ तथा संतों का आदर सत्कार किया गया। शुक्रवार को रात्रि ८ से ११ बजे चौका आरती गुरुपूजा महन्त श्री जीवनदास जी गुरु श्री पं० श्री हजूर उदित नाम साहब के कर-कमलों से सम्पन्न हुई।

प्रेषक—प्रमुख तथा महन्त
श्री १०८ जीवनदास जी गुरु पं० श्री हजूर उदितनाम साहब आचार्य कबीर पंथ

गगन घटा घहरानी साधो, गगन घटा घहरानी।
पूरब दिशि से उठी बदरिया, रिमझिम बरसत पानी ।।
आपन आपन मेडि सम्हारो, बह्या जात यह पानी।
दुबिधा दूब छोलकर बाहर, बोयो नाम की धानी ।।
योग युक्ति करि करु रखवारी चर न जाय मृग पानी।
बाली झार कूटी घर लावै, सोई कुशल किसानी ।।
पाँच सखी मिलि कीन्ह रसोइया, एक से एक सयानी।
दोनों थार बराबर परसैं, जेवें मुनि अरु ज्ञानी ।।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, यह पद है निर्वानी।
जो यह पद को परिचय पावै, ताको नाम विज्ञानी ।।



## आत्म निवेदन

लेखकों से:—

१—श्री कबीर साहब और सन्त भक्त सम्बन्धी लेख, कविता, कहानी आदि ही प्रकाशित होंगे।

२—लेख स्पष्ट और एक ही पृष्ठ पर लिख कर सम्पादक के नाम भेजना चाहिये।

३—मुद्रित सामग्री की पाण्डुलिपि वापस न होगी किन्तु लेखों वाला अंक ही लेखकों की सेवा में भेजा जायेगा।

४—जहाँ तक हो सरल, सुबोध भाषा का प्रयोग करें। स्पष्ट बड़े अक्षरों में एक तरफ लिखें।

५ विवादग्रस्त लेख छप न सकेंगे। उसके लिये क्षमा करें।

६ लेख को सम्पादक न्यूनाधिक कर सकते हैं।

ग्राहकों से :—

१—ग्राहक महानुभावों को पत्र-व्यवहार करते समय अपना पता स्पष्ट लिखना चाहिए।

२—वार्षिक मूल्य वर्ष समाप्ति के १ माह पूर्व आगामी वर्ष के लिये भेजना चाहिए।

३—पत्रिका हमारे यहाँ से हर मास के ६ या ता० १० को भेजी जाती है। यदि वह समय से आपको न मिले तो १५ ता० के बाद अपने डाक घर से पूछ-ताछ करें तब हमें सूचित करें।

४—वर्ष भर का चन्दा एक साथ आने पर ही ग्राहक बनाये जाते हैं और उसकी रसीद भेजी जाती है।

५—वार्षिक मूल्य १५) रु० श्रीकबीर शान्ति-सन्देश के संपादक के नाम साफ-साफ पता लिखकर भेजें।

६—पत्र-व्यवहार में यदि उत्तर चाहते हैं तो ५५ पैसे का डाक टिकट लगा लिफाफा भेजना न भूलें।

७—पत्रिका न मिलने की शिकायत या अन्य प्रकार की शिकायत श्रीकबीरशान्ति सन्देश, श्रीकबीर कीर्ति मन्दिर, काशी संस्था, सी. २६/१ संत कबीर रोड, वाराणसी के पते पर भेजें जामनगर कदापि न भेजें क्योंकि पत्रिका सम्बन्धी शिकायत पत्र का उत्तर यहीं से प्राप्त हो सकता है।

—सम्पादक

केन्द्रीय पञ्जीकृत संख्या आर० एन० ३३०२३/७७ जिला पं० सं० ७९२/७९

आज ५ अगस्त १९८३ को

श्री कबीर शान्ति सन्देश हिन्दी मासिक पत्र के स्वामित्व सम्बन्धी अन्य विवरण।

फार्म ४ [ देखें नियम ८ ]

१—प्रकाशन स्थान—श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था द्वारा श्यामदास शास्त्री राष्ट्रीयता—भारतीय

२—प्रकाशन अवधि—मासिक

३—मुद्रक का नाम—आर्यावर्त प्रेस, जालपादेवी रोड, वाराणसी राष्ट्रीयता भारतीय।

४—प्रकाशक का नाम—श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था सी. २६।१ संत कबीर रोड, वाराणसी

५—संपादक का नाम—श्री श्यामदास शास्त्री. राष्ट्रीयता—भारतीय।

६—उन व्यक्तियों के नाम व पते जो इस मासिक पत्र के मालिक व साझेदार हैं—पू० पा० १००८ महन्त श्री शान्तिदास महाराज साहब गुरुश्री पुरुषोत्तमदास जी महाराज साहब श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था सी. २६।१ संत कबीर रोड, वाराणसी।

मैं श्यामदास शास्त्री यह घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही है।

— श्यामदास शास्त्री




ग्राहक-संख्या :

श्री

डाक पञ्जीकृत संख्या : एन० आर० एन० १२६

**श्री कबीर-शान्ति-संदेश**

मासिक-पत्रिका

सम्पादक कार्यालय :
श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था
सी० २६/१, कबीर रोड,
वाराणसी-२२१००१

श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था, वाराणसी के लिए श्यामदास शास्त्री द्वारा संपादित
एवं आर्यावर्त प्रेस, जालपादेवी रोड, वाराणसी द्वारा मुद्रित
आवरण मुद्रण : पवन प्रिन्टर्स, बड़ी पियरी, वाराणसी।

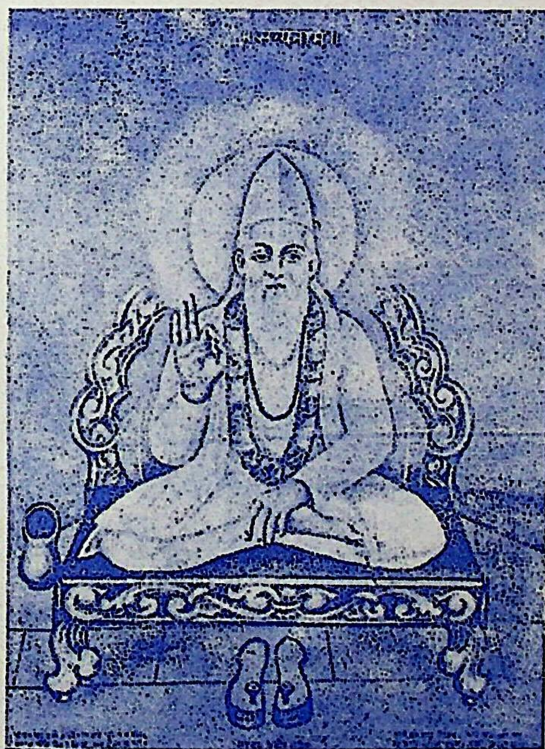



卐 सत् सत् सोऽहं गुरु 卐 सोऽहं हंसः सद्गुरु शरणम् 卐 ॐ श्रीराम सत्यराम सोऽहं गुरु राम 卐

# श्री कबीर-शान्तिसंदेश

मासिक पत्रिका

वर्ष ६ अंक ९




मोको कहाँ ढूँढ़े बंदे मैं तो तेरे पास मैं।

सद्गुरु कबीर

श्री कबीर शान्ति-सन्देश के आद्य उद्भावक और श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था के आद्य संस्थापक :-महन्त श्री शांतिदास जी गुरु श्री १०८ श्री पुरुषोत्तम दास जी महाराज साहब, श्री कबीराश्रम, जामनगर [ सौराष्ट्र ]

संवत् २०४० कबीराब्द ५८३ सितम्बर १९८३

कहता हूं कहि जातहूं, कहूं बजाये ढोल । स्वासा खाली जात है, तीन लोक का मोल ॥






मूल्य : वार्षिक १५) पन्द्रह रुपये आजीवन २५१) दो सौ इक्यावन विदेश में १८६) वार्षिक

एक प्रति का मूल्य १)५० मात्र


## आवश्यक सूचना

श्री कबीर शान्ति सन्देश का वर्ष ७ का १, २, ३ अंक बीजक साखी खण्ड पर आधारित विशेषांक होगा। लेखकों से निवेदन है कि समय का ध्यान में रखते हुए १५ दिसम्बर १९८३ तक लेख भेजने की कृपा करें ।

## श्री कबीर शान्ति संदेश के उद्देश्य

१ — विवादों से दूर रहकर सत् का प्रचार एवं प्रसार ।

२—श्री कबीर साहब की वाणी एवं उनके उपदेशों की ओर ले चलने का सत्प्रयत्न ।

३—प्रेम, दया, सद्भावना, सेवा, एकता, परोपकार एवं सत् चिंतन में प्रवर्तन ।


प्रकाशक

श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था

सी. २९/१ सन्त कबीर रोड

वाराणसी – २२१००१

संपादक

श्यामदास शास्त्री

यतीन्द्र वागीशं विगतरजसं शान्तिमनघम् सदानन्दं स्वामिन् ? सुरतपरकल्याणमनिशम् ।
दयागारस्वातं कमलदलनिर्लेपमनसम् नमामि श्यामोऽहं शमनभवदुखं निशदिनम् ॥



**श्री कबीर शान्ति संदेश के आद्य उद्भावक परमात्मदेव सद्गुरु देव श्री १००८ महन्त शान्तिदास जी महाराज साहब गुरु श्री १००८ श्री पुरुषोत्तमदास जी महाराज साहब ।**



सिद्ध स्थान श्री कबीर आश्रम जामनगर के आठव गादीपति त्याग वैराग्य तपोनिष्ठ पू० पा० सद्गुरुदेव श्री १००८ महन्त रामस्वरुपदास जी महाराज साहब गुरु श्री १००८ शान्तिदास जी महाराज साहब ।




卐 सत् सत् सोऽहं गुरु 卐 सोऽहं हंसः सद्गुरु शरणम् 卐 ॐ श्री राम सत्यराम सोहं गुरुराम 卐

# श्रीकबीर-शान्तिसंदेश

वर्ष ६ ] सितम्बर १९८३ कबीराब्द ५८४ [ अंक ९

## काया मंथन का प्रतिफल

अजर अमर इक नाम है, सुमिरन जिहि आवै।
बिनु मुख नाम रटा करै, नहिं जीभ डुलावै॥
श्रवण बिनु धुन सुना करै, दो नयन छिपावै।
अरध उरध मध कोठरी, तहँ ध्यान लगावै॥
तिरबेनी के घाट पर, हंसा नहवावै।
गगनमहल पश्चिम दिशा, खिरकी खोलवावै॥
पानी पवन के गम नहीं, अमरित भर लावै।
चाँद सूर्य दिवसौं नहीं, असन्देश कहावै॥
साहब कबीर अस योगिया, काया मथि नावै।

—सद्गुरु कबीर साहब

# संपादकीय

प्राणी स्वयं को नाना प्रकार के बंधनों से बंधा हुआ मानता है। उनसे यह छुटकारा पाना चाहता है। उसी से यह दुःखी भी है। यह तभी सुखी हो सकता है जब बन्धनों से मुक्त हो।

मानव में नाना प्रकार की कामनाएँ विद्यमान हैं, वही कामनाएँ समय-समय पर उद्भूत होती रहती हैं। उन्हीं कामनाओं की पूर्ति के लिए यह अत्यन्त प्रयत्नशील रहता है। एक-कामना या इच्छा की पूर्ति हो ही नहीं पाती कि दूसरी कामना उद्भूत हो जाती है। इन्हीं कामनाओं के उद्भव एवं पूर्ति में यह अपना सम्पूर्ण समय व्यतीत कर देता है। इन बंधनो में पड़कर यह निरीह और असहाय बन जाता है। इसीलिए सद्गुरु कबीर साहब ने कहा है—

बहु बंधन से बाँधिया एक बिचारा जीव।
की बल छूटे आपना की छुड़ांवे पीव॥

हमारे शास्त्रों ने ज्ञानी और भक्त यही दो कोटियाँ मानव की बतायी हैं। ज्ञानी ईश्वर का प्रौढ़ पुत्र है और भक्त अप्रौढ़ अर्थात् शिशु। इसी लिए गोस्वामी तुलसी दास जी महाराज ने भगवान् से कहलवाया है।

मोरे प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी।

प्रौढ़ को अपने कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान रहता है। प्रौढ़ जानकर हाथ अग्नि में नहीं डालेगा। वह अग्नि की दाहकता को जानता है। अग्नि में हाथ पड़ने पर वह जला देगी, इसलिए वह अग्नि के दाहकत्व-दुःख से दूर रहने के लिए उसका स्पर्श नहीं करता। प्रभु का ज्ञानी पुत्र सत्य और मिथ्या का स्वयं निर्णय करता है और मिथ्या का त्याग तथा सत्य का ग्रहण करता है। बालक अबोध होता है। वह सत्य असत्य का ज्ञान नहीं कर पाता। उसे अग्नि की दाहकता का ज्ञान नहीं। उसे वह पकड़ भी सकता है क्योंकि उसे जलने का भय नहीं। उसके समक्ष भय नाम की कोई वस्तु नहीं, माँ है तो तीनों लोकों में उसे कौन त्रास दिखाने में समर्थ हो सकता है। माँ की गोद में वह निर्भय होकर स्थिर रहता है। यदि वह अज्ञानवश किसी भी वस्तु को पकड़ने के लिए जाता है और उससे उसका अहित होने वाला हो तो माँ उससे उसे विरत कर देती है, वह उसे नहीं पकड़ पाता। भक्त की चिंता स्वयं भगवान् करते हैं, उसे सदैव नजर में रखते हैं। इसीलिए कहीं ज्ञानी असफल हो जाता है गिर भी जाता है किन्तु भक्त की असफलता का प्रश्न ही नहीं उठता। वह जानता ही नहीं कि सफलता-असफलता क्या चीज है। उसे तो भगवान् मिल गये; वह सफल हो गया। ज्ञानी को माया अपने चक्र में फँसा सकती है किन्तु भक्त को नहीं। जहाँ भी दृष्टि इस तरह का प्रसंग आया है भक्त को माया उसके रास्ते से विचलित नहीं कर सकी है। प्रभु की अविचल उस पर रहती है। ज्ञानी स्वयं बंधन से छुटने का सामर्थ्य रखता है वह बंधन को ज्ञान की कतंनी से काट डालता है। कर्म ही तो बंधन है। अज्ञानी कर्म करता है और स्वयं में कर्तृत्वाभिमान रखता है, इसीलिए वे कर्म उसे बाँधते हैं भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—

अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥

ज्ञानी कर्मों को ज्ञान से जला कर राख के समान बना देता है। इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि जैसे लकड़ी को अग्नि भस्मसात् कर देती है, उसी प्रकार ज्ञान सभी कर्मों को जला देता है।

यथैधांसि समृद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।

मन भर भी भुने हुए चने बोने पर एक मुट्ठी या एक दाना नहीं हो सकता, उनकी अंकुरण-शक्ति समाप्त हो जाती है। अंकुरण-शक्ति से युक्त चने एक मुट्ठी क्यों न हो मन भर होने की क्षमता रखते हैं। उसी को सद्गुरु कबीर साहब ने कहा है—

मन भर के जो बोइये मूठी भर न होय,
मूठी भर जो बोइये उपजू पसेरी आठ।

जब तक कामना-रूपी अंकुर विद्यमान रहेंगे तब तक वह उन कामनाओं के कारण जन्म-मरण के चक्र में घूमता रहेगा। वासना की समाप्ति ही अंकुरण की समाप्ति है। इसीलिए सद्गुरु कबीर साहब ने कहा है कि—

कहै कबीर कामो नहि, जीवहि मरन न होय॥

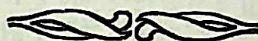
आज हम ज्ञानी बनते हैं और भक्त भी बनते हैं। स्वयं को सर्वश्रेष्ठ भक्त होने का दावा भी रखते हैं। अब हमें भक्त की कोटि पसंद नहीं। भक्त को तो सेवा करनी पड़ती है। सेवा कार्य कितना कठिन है सेवा करने वाला ही जानता है। हम तो सेव्य हैं हम दूसरे की सेवा कैसे कर सकते हैं, इसीलिए हमें भगवान् बनने में कोई कठिनाइ नहीं। ऐश्वर्यादि षड्गुणों से भले रहित हों किन्तु भगवान् तो हैं ही। शास्त्रों ने ऐश्वर्यादि षड्गुणों से युक्त को भगवान् की संज्ञा दी है। हम ईश्वर का सही स्थान नहीं बताते। यदि हम प्रभु का सही स्थान बता देते हैं तो, हमारी पूजा कौन करेगा। हमें पूजा चाहिये, मान चाहिये, प्रतिष्ठा चाहिये। इसी को तो सद्‌गुरु कबीर ने कहा है—

मोटी माया सब तजे झीनी तजो न जांय।
पीर पैगम्बर औलिया झीनी सबको खाय॥

भगवान् आद्य शंकराचार्य ने लोकैषणा को मोक्ष के मार्ग का बाधक बताया है। जब तक हम में पुत्र, लोक, वित्त, इन तीनों एषणाओं की समाप्ति नहीं होगी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते। आज हम भक्तों की गाथा को भूल गये हैं। ज्ञानी के आचरण हमारी दृष्टि से ओझल हो गये हैं; इसीलिए हम दुःखी हैं। हम सद्‌गुरु की उक्ति पर जब तक अपनी दृष्टि नहीं डालेंगे हमें सफलता नहीं मिल सकती न दुःख दूर हो सकता है।

"करहु विचार जो सब दुःख जाई।"

यह सद्‌गुरु कबीर की उक्ति है।



## सद्‌गुरु कबीर ग्राम अमोदी में संत समागम महाज्ञान यज्ञ

सत्यलोकवासी श्री १००८ अमृतदास जी साहब की पुण्य स्मृति में तुसार कबीर मठ की शाखा ग्राम आमोदो, कबीर कुटी में वैशाख पूर्णिमा ता० २६-५-८३ को श्री सुमरण तुसार कबीर मठ के महन्त श्री श्री १०८ भजनदास जी साहब की अध्यक्षता में तथा अमोदी कबीर कुटी के व्यवस्थापक महन्त सुमरण दास जी साहब के व्यवस्थापकत्व में संत-समागम, साधु भंडारा, महाज्ञान यज्ञ बड़े घूमधाम से मनाया गया। इस महायज्ञ में देश विदेश के सन्त महन्त पधारे थे। इस महायज्ञ में मौजा वन्सूला निवासी कीर्तनकार श्री पारसनाथजी के द्वारा सारगर्भित ग्रन्थ की कथा हुई। इस अवसर पर खरसिया से श्री मिश्रोदास जी साहब ने पधार कर सभा के संचालन का कार्य सम्पन्न किया। सरपंच जगनथिया साहु, अमोदी वरदू लाल आशाराम जी यादव, देवलाल साहु, अघोरी मास्टर जी साहु, अध्यापक मोहन लाल जी आदि की उपस्थिति रही एवं उनका अत्यन्त सहयोग रहा।

प्रेषक—महन्त भजनदास, तुसार कबीर मठ ( म० प्र० )

## सद्‌गुरु कबीर जयन्ती, ठुमरपारा

तुसार कबीर मठ शाखा मौजा ठुमरपारा, कबीर कुटी में श्री १०८ महन्त सुमरन दास जी की अध्यक्षता में अर्ध ज्येष्ठ मास में बड़े धूमधाम से कबीर जयन्ती मनायी गई। सरपंच महावीर गोटिया, संत सुसकुल दास जी, गरीबदास जी वैष्णव, भुनकु दास साहु, वहरतीन बाई आदि के द्वारा कुटी में ध्वजारोहण हुआ। रात्रि में ग्रन्थ की कथा सारगर्भित रूप में हुई तथा महन्त सुमरण दास जी साहब के कर-कमलों से चौका आरती सात्विक ज्ञान-यज्ञ सम्पन्न हुआ।



# मुक्ताकण

शंभुनाथ राय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय

## सबद—१७

रामहिं गावे औरहि समुझावे,
हरि जाने बिनु विकल फिरे ॥ १ ॥
जा मुष बेद गायत्री उचरे,
जाके वचन संसार तरे।
जाके पाँव जगत उठि लागे,
सो ब्राह्मन जीव-वध करे ॥ २ ॥
अपने ऊँच नीच घर भोजन,
घ्रीन कर्म हठि बोद्र भरे।
ग्रहन अमावस ढुकि ढुकि माँगे,
कर दीपक लिये कूप परे ॥ ३ ॥
एकादसी बरत नहिं जाने,
भूत-प्रेत हठि हृदय धरे।
तजि कपूर गाँठी विष बाँधे,
ग्यान गवाँये मुगुध फिरे ॥ ४ ॥
छीजे साह चोर प्रतिपाले,
संतजना को कूटि करे।
कहहिं कबीर जिभ्या के लंपट,
यहि विधि प्रानी नरक परे ॥ ५ ॥

चूर्णिकाः— घ्रीन कर्म = घृणित कर्म। बोद्र = उदर, पेट। ढुकि ढुकि = घुस-घुस कर। मुगुध = मूर्ख, अज्ञानी। छीजे = नष्ट होते हैं। कूटि = उपहास, खिल्ली। लंपट = विषयी।

अर्थः—(सदाचरण एवम् ज्ञानवत्ता का आडंबर करने वाले ब्राह्मण) राम (की प्रशस्ति) को (स्वयम्) गते हैं, दूसरों को समझाते (उपदेश देते) हैं, किंतु परमात्मा (के वास्तविक मर्म) को जाने बिना विकल होकर घूमा करते हैं ॥ १ ॥ जिसके मुख से वेदपाठ एवम् गायत्री का उच्चारण होता है, जिसके आशीर्वचन से संसार का उद्धार होता है और (सारा) जगत् (प्रातःकाल) उठ कर जिसके चरण लगता है, वही ब्राह्मण जीव हत्या करता है (भला यह कैसी विडंबना है) ॥ २ ॥ (ये आडंबरी ब्राह्मण) अपने को तो बहुत ऊँचा मानते हैं किंतु भोजन के लिए नीच के घर भी चले जाते हैं, (प्रायः जीव-हत्या आदि) घृणित कर्म को हठपूर्वक कर के उदरपूर्त्ति किया करते हैं। ग्रहण तथा (सोमवती, मौनी) अमावस्या आदि (पर्वों) पर (घरों में) घुस-घुस दान माँगते फिरते हैं, (वस्तुतः शास्त्रज्ञ होते हुए भी ये) हाथ में दीपक लिए हुए (अंधे की भाँति) कूप में जा गिरते हैं (अर्थात् आवागमन से मुक्त नहीं हो पाते) ॥ ३ ॥ ये करते तो हैं एकादशी व्रत किंतु उसके मर्म को जानते ही नहीं, (परमात्मा की उपेक्षा करके) हठपूर्वक भूत प्रेतादि की उपासना में तीन रहते हैं। (वस्तुतः वे सुगंधित) कपूर को फेंक कर गाँठ में विष बाँध लेते हैं, ज्ञान को गवाँ कर वे मूर्ख भटकते रहते हैं ॥ ४ ॥ (ये पागल) सज्जन को सताते हैं, चोर की रक्षा करते हैं और संतों का उपहास करते रहते हैं। कबीर साहब कहते हैं ऐसे लोग जिह्वा के लंपट होते हैं और इसी प्रकार के कुकर्म के कारण नरक में ही पड़ा करते हैं ॥ ५ ॥

## सबद—१८

राम गुन न्यारो न्यारो न्यारो।
अबुझा लोग कहाँ लौं बूझैं,
बूझनिहार बिचारो ॥ १ ॥
केते रामचंद्र तपसी से,
जिन यह जग बिटमाया।
केते कान्ह भये मुरलीधर,
तिन भी अंत न पाया ॥ २ ॥
मच्छ कच्छ औ ब्राह सरूपी,
बामन नाम धराया।
केते बौध निकलंकी केते,
तिन भी अंत न पाया ॥ ३ ॥
केते सिघ साधक संन्यासी,
जिन्ह बनवास बसाया।
केते मुनिजन गोरष कहिये,
तिन भी अंत न पाया ॥ ४ ॥

जाको गति ब्रह्मौ नहिं जाने,
सिव सनकादिक हारे।
ताके गुन नल कैसे पैहो,
कहहिं कबीर पुकारे ॥ ५ ॥

चूर्णिका :—गुन = विशेषता, जीवों में विद्यमान प्रकृति प्रदत्त सत्, रज, तम नामक तीन प्रवृत्तियाँ। न्यारो = पृथक्। अबुझा = न समझने वाला, अज्ञानी। बूझनिहार = समझने वाले, ज्ञानी। विटमाया = विरमाया, स्तंभित किया, आकृष्ट किया। केते = कितने बड़े, कितने।

अर्थ :—राम (परमात्मा) की विशेषताएँ (जागतिक विशेषताओं से) पृथक् हैं! वस्तुतः राम त्रिगुणातीत्त हैं)। (भला इस रहस्य को) अज्ञानी लोग कहाँ तक समझ सकेंगे; समझने वाले ज्ञानी लोग ही (इसका) विचार करें ॥ १ ॥ जिन्होंने (अपने कार्यों से) इस जगत को स्तंभित कर दिया (वे) तपस्वी सदृश रामचंद्र कितने महान हुए और (मुरली बजा कर जगत को बश में कर लेने वाले) मुरलीधर कृष्ण कितने महान् हुए, किंतु वे भी (उस गुणातीत राम को) पूरा पूरा नहीं समझ सके ॥ २ ॥ (भगवान् के अवतार कहे जाने वाले) मत्स्य, कच्छप, वाराह, वामन, बुद्ध और कल्कि आदि कितने बड़े-बड़े रूपधारी हुए, किंतु वे भी (असीम परमात्मा की) सीमा को न पा सके ॥ ३ ॥ सिद्ध साधक और संन्यासी कितने ही हो चुके हैं, जिन्होंने (परम तत्त्व की प्राप्ति हेतु) आजीवन) वन में ही निवास किया, कितने ही मननशील लोग तथा गोरखनाथ आदि (योगी) हो गए हैं किंतु उन्होंने भी (परमात्मा का) अंत नहीं पाया ॥ ४ ॥ जिसकी गति ब्रह्मा को भी ज्ञात नहीं; शिव सनकादिक (जिसका रहस्य ढूढ़ने में) हार चुके हैं, कबीर उद्घोष के साथ कह रहे हैं कि उस (परमेश्वर) के गुणों को (सामान्य) जन कैसे ज्ञात कर सकते हैं ॥ ५ ॥

## कर्मों का फल

किसी नगर के बाहर एक स्यार और दूसरा गृद्ध रहता था। एक दिन गृद्ध ने स्यार से पूछा कि तुम्हारा स्यार का जन्म किस पाप को करने से हुआ है। स्यार ने कहा—मैं पूर्व जन्म में साहुकार था, जिस ब्राह्मण साधु को जो वस्तु देने को कहता था, फिर उसको देता नहीं था, इसी पाप से मेरा जन्म स्यार का हुआ है। अब तुम बताओ कि तुम्हारा गृद्ध का जन्म किस पाप को को करने से हुआ है। गृद्ध ने कहा—मैं साधु ब्राह्मणों का माल चुरा-चुरा कर खाता था। इसी पाप से मेरा जन्म गृद्ध का हुआ है। कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है।

कबीर कमाई आपनी कबहु न निस्फल जाय।
सात समुन्दर आड़े पड़ा, आगे मिलसी धाय॥

—सद्गुरु कबीर

# अनन्य भक्त का आदर्श जीवन

प्रेषक—चन्द्रकान्त म. महेता एल. एल. बी.

रिटायर्ड जज, रावपुरा कोठी के पास शास्त्री की पोल समीप, बड़ोदरा, गुजरात ३९०००१

सद्गुरु कबीर साहेब के अनन्य भक्त और बीजक ग्रन्थ के प्रथम गुजराती अनुवादक श्री मणिलाल तुलसीराम महेता के ज्येष्ठ सुपुत्र भक्त श्री जयन्तिलाल मणिलाल महेता बी. ए. एल. विशिष्ट ज्ञानी भक्त, अच्छे कार्यकर्ता और प्रचारक थे। वे सद्गुरु कबीर सद्ज्ञान प्रचारक समिति संचालित सद्गुरु कबीर निवास, तीर्थधाम डाकोर के ट्रस्टी तथा श्री सद्गुरु कबीर हनुमत साहित्य सभा ट्रस्ट के ट्रस्टी तथा मंत्री रहे। आपने बीजक का गुजराती अनुवाद, दिव्य जीवन संघ बडोदरा द्वारा प्रकाशित संत कबीर, सदभिनन्दन, प्रस्थान त्रयी तथा प० पू० सद्गुरुदेव श्री स्वामी हनुमानदास जी साहेब षट्शास्त्री जी की जन्म शताब्दी अभिनन्दन ग्रन्थ आदि का लेखन तथा प्रकाशन में एवं सद्गुरु कबीर साहेब के साहित्य के व्यापक प्रचार-प्रसार में आपने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

आपका जीवन एक आदर्श अनुकरणीय जीवन था। आपका ५५ वर्ष की आयु में दिनांक ७-४-८३ को बडोदरा में हृदय की गति रुक जाने के कारण शरीरान्त हो गया। आपकी स्मृति में दिनांक २२-४-७३ को श्री कबीर मन्दिर, पानीदरवाजा, बडोदरा में प० पू० पंडितजी श्री रामेश्वरानन्द जी साहब, साहित्य व्याकरण, सांख्य योग, वेदान्ताचार्य की अध्यक्षता में एक सभा का आयोजन किया गया जिसमें धर्माधिकारी पू० श्री मनोहरदास जी साहब शास्त्री नयी धरती के महन्त साहब; बडोदरा दिव्य संघ के प्रतिनिधि; आपके मित्र मंडल, संत समाज तथा भक्तगण विशाल संख्या में उपस्थित होकर आपका गुणानुवाद करते हुए आपके प्रति सद्भावना श्रद्धांजलि अर्पित की तथा आपके परिवार को सद्भावना-पत्र प्रेषित किया।

आपकी चिर बिदाई से कबीर पंथ में ज्ञानी भक्त और अच्छे कार्यकर्ता प्रचारक की क्षति हुई है। आपकी निज स्वरूप में स्थिति के उपलक्ष्य में आपके अनुज श्री चन्द्रकान्त मणिलाल महेता एल. एल. बी. रीटायर्ड जज ने ५५ पंक्तियों में हरिगीत छंद में आपका जीवन वृत्त गुजराती में आलेखन किया है। यह आपका आदर्श जीवन के लिये एक अनुपम श्रद्धांजलि है।

परम पूज्य बडील बन्धु, सहोदर, गुरुवर्य, पितृसम श्री जयन्तिलाल महेता का संक्षिप्त जीवनवृत्त।

### हरिगीत

ज्ञानी पिताना पुत्र थई,<br>
जीवन दिपाव्युं विश्वमां।<br>
साहित्यनी सेवा करी,<br>
ते धर्म धर मानित थया॥ १॥

वृद्धाख्यनगरे जन्म लई,<br>
वटपूरमां बी० ए० थया।<br>
निज कार्यना कौशल थकी,<br>
ऑफीस अधिकारी थया॥ २॥

वृन्दा तणी शुभ कुखने,<br>
पावन करी सत्कर्मथी।<br>
आभा मणी सम लालनी,<br>
ओपे अहीं तव रूपमां॥ ३॥

संवत् गुण स्वर भक्ति मन,<br>
वैशाख कृष्ण छठे दिने।<br>
लइ जन्म राशी मकर मा,<br>
दृष्टा थया निज भाग्यना॥ ४॥

नक्षत्र षाटा उत्तरा,<br>
बुध शुक्र दशमे वृषभमां।<br>
शनि कर्क व्ययमां दु:खदा,<br>
गुरु मेष नवमे शुभप्रदा॥ ५॥

लग्नेश भास्वर भाग्यमां,<br>
सह भौम आत्म गृहे स्थिते।<br>
धन पञ्चमे राहु स्थिते,<br>
अगियार केतु कष्टदा॥ ६॥

लालित्यमय लीलावती;
शुभ जेठ भगिनी आपनी।
श्री चन्द्रकान्त सुभ्रात वो,
सेवक अनुज अँहि आपनी ॥ ७॥
श्री राम लक्ष्मणनुं युगल,
आजे विखूटूं थई गयुं।
अग्रज विना जीवन अचेतन,
सम अनुजनुं थई गयुं ॥ ८॥
लघु भ्रात मुजने पितृसम,
वात्सल्य भावो अर्पिने।
प्रेर्यो जिवनमां प्रेम थी,
सद्ज्ञान भक्ति योगमां ॥ ९॥
माता अपरथी भ्रात भगिनी,
राजेन्द्र उरमोला थया।
शुयोग भावे प्रेम थी,
बन्दन करे सौ आपने ॥ १०॥
भार्या कुमुद वात्सल्यमय,
धर्मिष्ठ सेवा रत सदा।
छे भक्तियुत सरला सुदुहिता,
प्रेम मूर्ति सुलोचना ॥ ११॥
गुरु भक्त हर्षद सुखद नित,
छे श्रेष्ठ सुत परिवारमां।
आनन्द कन्द परेश पण,
सौने घणो प्रिय पौत्र छे ॥ १२॥
कौशल्ययुत कल्याणमय,
कुलवान पत्नी पुत्रनी।
छे रोहीणी सेवा रता
प्रेमे करे छे वन्दना ॥ १३॥
श्री चन्द्रकान्त जमातृ पण,
अति सौम्य गुण सम्पन्न छे।
जीज्ञेश धृति शुभ रोहिणी,
अरपे हमेशा अंजली ॥ १४॥
शुभ विमलगौरी भ्रात बहु,
हेमन्त, बाबु, मालवी।
छे भरत, शरद; अशोक पण,
परिवार भ्रातृ भावनी ॥ १५॥
हेमन्त पुत्र नरेश पण,
नन्दन परम प्रिय आपनो।
वीणा, मीना, दीना, प्रतिमा,
शुभ पत्नि अवुज अपत्यनी ॥ १६॥
रचना, मनस्वी, वैभवी,
गार्गी, सुभाई, पुत्रनी,
पुत्री सहू प्रेमे अँहि,
यत्वे हमेशां आशिषो ॥ १७॥
हनुमान सद्गुरु की कृपाथी,
आत्म दर्शन मेलवी,
नित मुक्त जीवन भोगवी:
अंते विदेही थई गया ॥ १८॥
श्री देव सद्गुरु नी कृपा थी,
रेख कर्म मिटाविने,
परमार्थ दर्शन मेलवी,
निज आत्म रूपे स्थिर थया ॥ १९॥
सद्गुरु कविरना वृत्तने,
आलेखि 'सत कबीर' मां।
शुभ सदभिनन्दन ग्रन्थनी,
प्रस्थान त्रय रचना करी ॥ २०॥
ओंकारनुं गांभीर्य ने,
सद्गुरु वचन वेदादिमां।
समजावि पूर्ण रहस्य थी,
कृतकृत्य जीवन मां थया ॥ २१॥
अनुवाद बीजक ग्रंथनो,
गुजरात मां मानित थयो।
साहित्यनी सेवा करी,
साचेज सारस्वत थया ॥ २२॥
निष्काम भक्ती योगने,
सद्ज्ञान आत्म बोधने।
विकासावि गुर्जर देशमां,
जनता तणी सेवा करी ॥ २३॥

सत्संग भजनो मां सदा,
आनन्द ने उल्लासथी।
जीवन तणुं सुरहस्य तो,
अहिं आपथी प्रकटित थयु. ॥२४॥

यात्रा तणा अति शोखथी,
सुप्रवास पर्यटनो करी।
निज रूपनां सहु धाम मां,
विभु रूपथी दर्शन कर्या॥ २५॥

तीर्थस्थलोंमां दान दई,
अति चित सुद्धी मेलवी।
संतों तणा सांनिध्यमां,
बुध सन्त गुणग्रह थई गया॥ २६॥

विश्वास श्रद्धा रूपथी,
शंकर भवानी ओलखी।
आतम चराचर राममां,
निज रूपथी स्थापित थया॥ २७॥

डाकोरमां श्री कबिरनी,
संस्था तणा ट्रस्टी थया।
मंत्री सभा साहित्यना,
सेवा थकी शोभित थया॥ २८॥

जनता तणा भगिरथ बनी,
रेलावि गंगा ज्ञानने।
प्यासी मही जन हृदयनी,
तव प्रेमथी सांत्वन करी॥ २९॥

गुरु भक्तिनो आदर्श पण,
शिखवी घणा सौजन्य थी।
पालन करी निज जिवनमां,
ते धर्मधर सार्थक थया॥ ३०॥

उत्सव शताब्दी देवनो,
उजवी तमे अति हर्ष था।
आशीष संतोंनो लई,
कृतकृत्य जीवनमां थया॥ ३१॥

उत्सव जयंति ऊजविने,
निज नाम सार्थक करि गया।
ते श्री जयंतिलाल अहिं,
अमरत्व ने पामी गया॥ ३२॥

अंक गुण नभ अयन संवत,
फाल्गुन वदी दशमी तिथी।
तव देह शांत करी तमे,
निज रूपमां स्थिर थई गया॥ ३३॥

---

## सद्गुरु कबीर जयन्ती

### सद्गुरु कबीर मठ, तुसार

प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष जेष्ठ शुक्ल पूर्णिमा दि० २५ जून को जयन्ती समारोह मठाधीश श्री १०८ महन्त भजनदास जी साहब की अध्यक्षता में तथा व्यवस्थापक अधिकारी श्री सुमरनदास जी के व्यवस्थापकत्व में बड़े धूम-धाम से सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर श्री कन्हैयादास तथा बिसाहिन बाई द्वारा ग्रन्थ की कथा हुई। प्रातः ७ बजे से १० बजे तक नगर शोभा यात्रा ( जुलूस ) निकली। इस शोभा-यात्रा में अजस्र भजन-कीर्तन होते रहे। कुटी में शोभा-यात्रा समाप्त होने के पश्चात् पाँच साधुओं द्वारा श्वेत ध्वजा का रोपण हुआ। पुजारी श्री साधुशरण दास जी, भंडारी दीवान बुधराम जी, मुचकुलिया कबीर कुटी से आये हुए अजरदास जी, संत श्री ताराचंद जी, वहरतीन बाई, ईश्वरदास जी, श्री दौलतराम जी, सरपंच पंच अधनलाल जी तथा जनता ने इस जयन्ती भाग लिया। रात्रि को श्री १०८ महन्त भजनदास जी साहब के कर-कमलों से सात्विक यज्ञ ( चौका आरती ) सम्पन्न हुआ।

# संत गरीब साहब के साहित्य से मानव कल्याण

श्री विजेंद्र पांडे एम० ए०, एम० फिल०

प्राचीनकाल से ही योग का महत्त्व है। इसके आदि प्रणेता साक्षात् शंकर माने जाते हैं। शंकर भगवान ने पार्वती को योग का उपदेश दिया, जिसको मत्स्येन्द्र नाथ जी ने सुना और उसको पृथ्वी पर ले आये। इसके अतिरिक्त भी हमारे प्राचीनतम ग्रंथ वेद, पुराण उपनिषद् सब में योग का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। या यों कहें योग की यह विद्या वेद उपनिषद्, रामायण, महाभारत श्रीमद्भागवत्, गीता और पातंजल-योग से होती हुई नाथ-योग, बौद्धयोग, जैनयोग एवं कबीर साहब के माध्यम से प्रविष्ट होती हुई अन्य संतो को भी मिली।

संत साहित्य पर जितना नाथ योग का प्रभाव पड़ा है, उतना किसी भी योग का नहीं पड़ा। इसके अतिरिक्त संतों की वाणियों में बौद्ध और सूफी सम्प्रदाय का भी प्रभाव पड़ा है। परन्तु जहां तक साधना का पक्ष है, उसमें पूर्णरूपेण नाथ योग का ही प्रभाव है। इसको इन शब्दों में यों कह सकते हैं कि संत साहित्य और नाथ योग का साधना पक्ष मूल रूप में एक ही है। सूक्ष्म दृष्टि से इसका अवलोकन किया जाय तो लगभग पूरे संत साहित्य में, कुण्डलिनी जागरण, शिवशक्ति संगम, ईश्वर विश्वास, बाह्योपासना के विधान का खण्डन, अंतस्साधना की विशेषता, नादबिंदु, हठयोग, पंचभूतजय, शरीर की शुद्धि और पुष्टि के साथ-साथ उनकी आध्यात्मिक साधना रूप में स्वीकृति, रसायन-प्रयोग, षट्कर्म, पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन, चन्द्र-सूर्य तत्त्व, षडंग योग, पिण्डब्रह्माण्डैक्य सहज की भावना, सहज-समाधि, शून्य द्वैताद्वैत-विलक्षणता ब्रह्मतत्व इत्यादि की गणना विद्यमान है। जिसको इन लोगों ने अपने पूर्ववर्ती नाथ सम्प्रदाय से, कुछ ने ज्यों का त्यों, कुछ ने कुछ हेर फेर करके, अपने में आत्मसात् करके, उनको क्रियात्मक साधना के दौरान अनुभूत करके अपने साहित्य या वाणी में स्वान्तः सुख के लिए कहा है।

संत गरीब साहब भी नाथ सम्प्रदाय से बहुत ही प्रभावित हैं, जिसका उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है। व्यक्तित्व की दृष्टि से ये भी कबीर साहब की ही कोटि में आते हैं पर इन्होंने कबीर साहब की तरह चुटीली भाषा का प्रयोग नहीं किया है।

संतों का कार्य होता है परहित। वे स्व की चिंता नहीं करते। वे हर समय संसार की चिंता में या प्रभु की चिंता में रहते हैं। वे जब संसार के लोगों की बुराई देखते हैं तब उनका विरोध करते हैं। स्वयं उनको दूर करने का उपाय करते हैं। संत गरीब साहब ने भी अपनी वाणी से कुरीतियों वाह्याचारों, पाखंडों आदि का विरोध किया है।

संत गरीब साहब ने अपनी बातों को समझाने के लिए प्रतीकों का सहारा लिया है। संसार की बातों में तो कम, पर ईश्वर सम्बन्धी चर्चाओं के दौरान इन प्रतीकों के बिना वे चल ही नहीं सके हैं। इन प्रतीकों के माध्यम से उन्होंने संसारी लोगों को ईश्वर की बातें समझाने का प्रयत्न किया है जिससे संसार का कल्याण हो सके। उनके प्रतीक चांद सूर्य, अग्नि, झिलमिल तारे, कमल, प्रकाश, दीपक, ज्योति, गंगा-यमुना-सरस्वती, प्रयाग, त्रिवेणी, त्रिकुटी, नदी, दुलहिन, चींटी, इत्यादि हैं। इन प्रतीकों को ग्रहण करने का एक कारण यह भी है कि इनको संसार के लोग आसानी से देख सकते हैं तथा देखे हुए प्रतीकों के आधार पर उस परम सत्ता के स्वरूप की सहजता से समझ सकते हैं। इनके परवर्ती साहित्य में भी इन प्रतीकों का आधार ग्रहण किया गया है। इनके बाद के संतों में भी इनका काफी प्रभाव देखने को मिलता है।

संत गरीब साहब की भाषा में एकरूपता नहीं है। क्योंकि भ्रमणकाल में इनका विविध भाषाभाषियों से सम्पर्क हुआ था। उन्होंने उनकी बातें, तथा उनका सार ग्रहण किया इसके दौरान उनको अनेक बोलियों के शब्दों से परिचय हुआ तथा उनको उन्होंने हृदयगम कर लिया। यदि इनकी वाणी का अवलोकन किया जाय तो अपाततः उसमें अनेक बोलियों का सम्मिश्रण मिलेगा। इनकी भी भाषा को कबीर साहब की भाषा की तरह पंचमेल खिचड़ी की संज्ञा से विभूषित किया जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

सत गरीब साहब ने रीतिकालीन कवियों की तरह छंद रस, अलंकार आदि को अपना लक्ष्य मानकर रचनायें नहीं की हैं, पर उनमें भी ये सब विद्यमान हैं। इन वाणियों में, दोहा छंद की प्रधानता है। इनमें चौपाई, सवैया, रेखता, आदि छंद भी मिल जाते हैं। आत्मा और परमात्मा के मिलन का प्रसंग है वहाँ संयोग शृंगार भी देखने को मिलता है। शांत रस तो इनके पूरे साहित्य में छाया हुआ है। अलंकार तो किसी का यों भी पीछा नहीं छोड़ते। वे किसी न किसी रूप में आ ही जाते हैं। प्रतीकात्मकता की भरमार है। श्लेष, रूपक; उपमा, अनुप्रास आदि भी स्थान, स्थान पर मिल जाते हैं।

संत गरीब साहब को यदि आधुनिक संदर्भ में देखा जाय तो आज भी वे अपनी वाणियों को लिये हुए प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। इनकी वाणियों का यदि अमल किया जाय तो सामाजिक परिवेश में जितने भी तनाव हैं, सबके सब अपने आप समाप्त हो जायेंगे। यदि इनके प्रेम या श्रद्धा किसी एक को ही ले लिया जाय, तो एक से ही मानव-एक दूसरे के खून का प्यासा है क्योंकि किसी में भी दूसरे के प्रति प्रेम की भावना नहीं है। श्रद्धा की तो बात ही नहीं है। जहाँ प्रेम और श्रद्धा ही नहीं है, वहाँ तो भक्ति की बात करना ही निरर्थक है। इस परिवेश में यदि संत गरीब साहब की वाणियों का अमल किया जाय और उनके बताये हुए रास्ते पर चला जाय तो इस तरह के अमानवी और घृणित कार्य नहीं होंगे, जैसे आधुनिक समाज में हो रहे हैं। एक दूसरी बात और महत्त्वपूर्ण है कि जिस जाति भावना को संतों ने बहुत पहले ही दूर करने एवं सबको एकात्मभाव से रहने के लिए कहा था उसे आज भी लोग दुहरा रहे हैं। इसी कारण संत गरीब साहब इस युग में भी मौलिक हैं।

इस प्रकार यदि संक्षेप में संत गरीब साहब के बारे में कहा जाय तो वे साधना में नाथयोगी, प्रेम और श्रद्धा को लेकर इसके परे भक्तों की कोटि में समाज सुधारक, बाह्याचारों के विरोधी, सरल चित्त, सर्व संतगुण-सम्पन्न एवं आज भी उपयोगी है।

## संत-सम्मेलन

राजकीय मध्य विद्यालय-महुली, अंचल रोसड़ा (जिला समस्तीपुर) के प्रांगण में सद्गुरु श्री कबीर के महान उपासक, संस्कृत वाङ्मय के मर्मज्ञ विद्वान् एवं रोसड़ा कबीर मठ के मठाधीश आचार्य म० पंडित श्री ठाकुरदास साहब की अध्यक्षता में संत सम्मेलन दिनांक ११-८-८३ को दिन वृहस्पतिवार श्रावण शुक्ल पक्ष दिन द्वितीया को सम्पन्न हुआ। दूर-दूर से आये निम्नलिखित विद्वानों ने "सद्गुरु कबीर के सिद्धान्त और दर्शन" पर अपने-अपने विचार इस सम्मेलन में व्यक्त किये।

श्री सोनेलाल दास जी - महुली, श्री रामसखा यादव जी उपशास्त्री, श्री झरीलाल जी गायक-महुली, श्री छेदीलाल दास जी, पंडित श्री रामकृष्णदास जी महाराज - चेरिया बरियारपुर, महंथ श्री मुनेश्वर दास जी महाराज साहब - फतेहपुर, महंथ श्री रामदास जी महाराज - सिमराहा आदि। अंत में श्री ठाकुर दास जी साहब ने अपने अध्यक्षीय प्रवचन में "मानव की समस्याओं" पर प्रवचन देते हुए जनता को अपनी ओर आकर्षित किया जिसे सुन कर उपस्थित जन-समुदाय ने करतल ध्वनि के साथ उनका अभिवादन किया। अंत में कृतज्ञताज्ञापन श्री रामानन्द यादव जी बी. ए. (आनर्स) शिक्षक ने किया।

—रामसखा यादव महुली, समस्तीपुर

# गुरु—भगवान् का अविशेषावतार

श्रीमती शशिप्रभा

गुरु की महिमा अपरंपार है। वह सदा-सर्वदा प्रणम्य है। उसके बारे में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाकर उसकी स्तुति करना है। जिसके निर्माण में 'साईं को सियत मास दस लाये' उसी वस्त्र के संस्कार हेतु गुरु धोबी तुल्य है। सामान्य रूप से जिस व्यक्तित्व का निर्माण ईश्वर ने किया है उसे घट के समान गढ़-गढ़ कर विशेष व्यक्तित्व प्रदान करने के लिए गुरु कुम्हार सदृश है मानव योनि को प्राप्त कर वे धन्य हैं जिन्हें सद्गुरु प्राप्त हो चुके हैं, और

भली भई जो गुरु मिले, नहिं तो होतो हान।
दीपक जोति पतंग ज्यों, पड़ता आन निदान॥

गुरु साक्षात् भगवान् के अवतार होते हैं। पूर्णावतार, अंशावतार, विशेषावतार, अविशेषावतार और नित्यावतार—ये पांच प्रकार के अवतार कहे गये हैं। नौ कलाओं से पन्द्रह कलाओं के अवतार अंशावतार और सोलह कलाओं के अवतार पूर्णावतार कहलाते हैं। निमित्त भेद से विशेषावतार और अन्तःकरण में प्रकट श्री भगवान का नित्यावतार होता रहता है। भगवान् का अविशेषावतार श्रीगुरु से दीक्षा देते समय प्रकट होता है। भगवान के निराकार (इन्द्रियातीत) होने के कारण जीव के लिए उनका साक्षात्कार सहज नहीं है। इसलिए जिस मानव रूपी केन्द्र द्वारा अपनी ज्ञान शक्ति प्रगट करके भगवान शिष्य को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, वही केन्द्र लोक में गुरु कहलाता है। इसीलिए श्री कबीर साहब सद्गुरुदेव की महत्ता प्रकट करते हुए कहते हैं कि—

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँव।
बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो लखाय॥

क्योंकि जिस गुरु के द्वारा गोविन्द का साक्षात्कार हुआ, उसके प्रसन्न रहने से भगवान् निरन्तर प्रसन्न रहेंगे और हृदयासन में बैठे नित्यावतार की लीला से हमें कृतार्थ करते रहेंगे। पापकर्म से रोकते रहेंगे और उत्थान की ओर चित्तवृत्ति को प्रेरित करते रहेंगे। इसीलिए सहजोबाई ने गुरु और हरि का मार्मिक भेद बताते हुए यहाँ तक कहा कि भगवान् को भले ही छोड़ दूँ पर गुरु को कभी न भूलूँगी—

राम तजूँ पै गुरु न बिसारूँ।
गुरू के सम हरि कूं न निहारूँ॥

फिर सामान्य जीव (अतत्त्वदर्शी मनुष्य) ऐसे परम-कल्याणकारी गुरु की उपेक्षा करके अपना कल्याण कैसे कर सकता है? जो गुरु से विमुख हुआ उसका ज्ञान-विचार सब नष्ट हो जाता है। परशुराम द्वारा प्राप्त युद्धविद्या कर्ण को क्यों विस्मृत हो गयी? वणिक द्वारा गुरु की अवहेलना से रुष्ट हो शिव का श्राप देना—जिस पूर्व जन्म की अपनी कथा को कागभुशुंडी ने स्वयं गरुण को सुनाया है—किसे नहीं मालूम?

इसीलिए श्री कबीर साहेब ने कहा है—

गुरु मानुष करि जानते, ते नर कहिये अंध।
यहाँ दुःखी संसार में, आगे यम के बंध॥

इसी प्रसंग में कतिपय उदाहरण प्रस्तुत है। चारो ओर बस्ती से घिरा हुआ एक गांव। जिसके मध्य एक ओर तालाब और दूसरी ओर आम का बड़ा बगीचा। वहीं तालाब के किनारे समतल स्वच्छ ठोस भूमि पर दर्शकों से घिरा हुआ एक बाजीगर जो अपना कौतुक दिखा रहा था। सर्वाधिक जोखिम भरा उसका खेल था छुरों को ऊपर आकाश में फेंककर हाथों से पकड़ना। तीन छुरे, एक ही समय में बारी-बारी शीघ्रता से वह ऊपर फेंकता और सिर के पास आते-आते हाथों से पकड़ लेता। दर्शक एकाग्र चित्त हो उसके कौशल को देख रहे थे। लेकिन एक चरवाहा अपने को रोक न सका और बोला—'तू तो हाथों से पकड़ता है, मैं तो इन छूरियों को दाँतों से पकड़ सकता हूँ'। दर्शकों के साथ साथ बाजीगर ने भी आश्चर्य भरी निगाहों से उसे देखा, और बोला—'भाई तू भी अपनी कला का सबके समक्ष प्रदर्शन कर'। फिर क्या था, चरवाहा मैदान में उतरा और एक-एक छुरे को लेकर इस प्रकार कुशलता से फेंकना और दाँतों से पकड़ना प्रारम्भ किया कि जब वह छुरा फेंकता तब नीचे आते-आते उसका मूँठ ही दाँत पर आकर गिरता। चरवाहे ने इस कौशल से लोगों को हतप्रभ कर दिया। बाजीगर ने चरवाहे से विनम्रता-

पूर्वक पूछा—'तूने यह कला कहाँ से सीखा है'? चरवाहा ने उत्तर दिया—'मैंने किसी से सीखा नहीं है, अभ्यास करते-करते यह कला स्वयं मुझे आ गई है'। बाजीगर ने अनेक प्रकार से घुमाकर पूछा कि हर एक का कोई न कोई गुरु तो होता ही है पर चरवाहे ने गुरु स्वीकार नहीं किया। तव बाजीगर मन ही मन रंज होते हुए बोला—'अच्छा तो तुम गुरु स्वीकार नहीं करते, कोई बात नहीं, परन्तु यही खेल एक बार फिर दिखला'। चरवाहे ने पुनः कौतुक आरम्भ किया। परन्तु इस बार मूठ के बल से गिरने के बदले छूरी नोक के बल गिरी और गिरते ही मुँह के द्वारा कण्ठ के अन्दर घुस गई। बड़ा कारुणिक दृश्य उपस्थित हो गया। चरवाहा मरने लगा। बाजीगर उसका सिर गोद में उठाये हुए बोला—'अब भी तू कह दे, तूने यह विद्या कहाँ से सीखा है'। चरवाहे ने कराहते हुए मरणासन्न अवस्था में स्वीकार किया कि मैं बगुले को देखा करता था कि वह मछलियों को ऊपर फेंकता है और उनके नीचे आते-आते मुँह में निगल जाता है। मैंने भी बगुले की भाँति ही अभ्यास करना आरम्भ कर दिया। बराबर करने से ही मैं यह खेल दिखला सका था परन्तु···। बाजीगर बोला—'तेरा गुरु तो अवश्य था, तूने इन्कार क्यों किया? लेकिन उत्तर देने के पहले ही चरवाहे के प्राण-पखेरू उड़ गये। गुरु की उपेक्षा का यही फल है।

इसी सन्दर्भ में एक दूसरा उदाहरण प्रस्तुत है। एक ब्राह्मण बालक यात्रा से थका-मादा एक बगीचे में विश्रामरत था। उसी समय (चाण्डाल गुरु) माणिक पहुंचे और उन्होंने एक सूखे वृक्ष पर कमण्डल का थोड़ा जल छिड़का। जल की बूँदें पड़ते ही उस सूखे वृक्ष में ताजे-ताजे सेव फलित हो उठे। आचार्य ने तोड़ा और खाया। बालक इस चमत्कार को देखकर आश्चर्यचकित था। विनम्र निवेदन द्वारा उसने आचार्य का पूरा परिचय प्राप्त कर लिया। बताये पते के अनुसार तत्काल चलकर बालक आचार्य की कुटिया में पहुंचा और आचार्य पत्नी को प्रणाम कर घर में झाड़ू-बुहारू और अन्य सेवा में रत हो गया तथा विनम्रता एवं सेवा भाव प्रदर्शित कर आचार्य पत्नी को प्रसन्न कर लिया। परिणामस्वरूप जब भ्रमण करते हुए आचार्य माणिक दो दिन बाद कुटिया में पहुंचे। आचार्य पत्नी ने बालक की प्रशंसा की और आचार्य के न चाहने पर भी बालक को साथ रखने हेतु सहमत कर लिया। कुछ दिन पश्चात् प्रसन्नचित्ता आचार्यपत्नी ने बालक को सिद्धि प्रदान करने हेतु बाध्य किया। आचार्य गम्भीरतापूर्वक बोले—'तुम कह रही हो इसलिए एक सिद्धि प्रदान करता हूं', और बालक को सम्बोधित करते हुए बोले—'यदि पूछे जाने पर आचार्य की उपेक्षा करोगे तो यह सिद्धि उसी दिन से तुम्हारे पास से लुप्त हो जायेगी। अतः इस बात पर ध्यान रखना'। बालक बोला—गुरुजी आपकी अतिशय कृपा है, भला ऐसा मैं क्यों करूँगा?

किसी भी समय किसी भी पेड़ से सेव का फल उगाने की सिद्धि प्राप्तकर वह बालक काशी नगरी में चला आया और यहीं रहकर उसी सिद्धि के सहारे जीवनयापन करने लगा। सिद्धि द्वारा फलित सेव हर स्थान के सेवों से सुन्दर, रसमय और स्वादिष्ट हुआ करता था। एक दिन बालक सेव बेच रहा था। जून का महीना, चतुर्दिक सेव का अभाव था। काशी नरेश का एक सेवक ढूढ़ते-ढूढ़ते बालक के पास पहुंचा और उसी दिन से वह प्रति दिन काशी नरेश के लिए सेव ले जाने लगा। सेव का मौसम न होने पर भी इतने उत्तम कोटि का सेव पाकर राजा को आश्चर्य होता। उन्होंने सेवक से पूछताछ की। सेवक ने बताया एक बालक प्रति दिन सेव बेचता है उसी से क्रय कर के यह सेव लाया जाता है। राजाज्ञा से बालक काशी नरेश के समक्ष प्रस्तुत किया गया। बातचीत के बाद उसे वहीं आतिथ्य प्रदान किया गया और दूसरे दिन राम बाग में विद्वानों की सभा में बालक द्वारा सिद्धि का प्रदर्शन कराया गया। इस चमत्कार को देखकर सभी प्रफुल्लित हो सराहना करने लगे। काशी नरेश ने जिज्ञासापूर्वक बालक से उसके गुरु का परिचय पूछा। बालक ने उत्तर देते हुए कहा—'आज से ८-१० वर्ष पूर्व एक आचार्य से मैं ने यह सिद्धि प्राप्त किया, परन्तु अब नाम याद नहीं है। इस प्रकार ब्राह्मण बालक ने अपने गुरु (जो चाण्डल वंशी थे) का नाम नहीं बतलाया। इसका परिणाम हुआ कि बालक के पास से सिद्धि का लोप हो गया। दूसरे दिन काशी नरेश को सेव नहीं मिल पाया। वह बालक राजा के सामने पेश किया गया। काशी नरेश ने पूछा—'क्या बात है, सेव

नहीं बेच रहे हो ?' बालक ने बहानेबाजी करते हुए उत्तर दिया— आज फल नहीं आया, बाद में आयेगा तो सेवा करेंगे। काशी नरेश को समझते देर नहीं लगी। राजा से प्रताड़ित हो वह बालक पुनः आचार्य के पास पहुँचा। अत्यन्त अनुरोध करने पर भी आचार्य ने कहा—'यहाँ से चले जाओ, अब दाल नहीं गलेगी।

इसीलिए कहा गया है —

> कबीर हरि के रूठते, गुरु के शरणे जाय।
> कहै कबीर गुरु रूठते, हरि नहिं होत सहाय॥

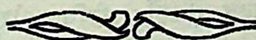
अच्छी तरह स्मरण रखना चाहिए कि गुरु से विमुख प्राणी कभी सफलता नहीं पाते हैं परन्तु गुरु भक्त गुरु की सेवा-भक्ति द्वारा अपनी मनोकामना सिद्ध कर लेते हैं। उनका प्रभाव बढ़ता रहता है। सब प्रकार की कला-कौशल और विद्या प्राप्त होती है।

> कुमति कीच चेला भरा, गुरु ज्ञान जल होय।
> जन्म जन्म का मोरचा, पल में डारे धोय॥

इस सम्बन्ध में भी एक दृष्टान्त प्रस्तुत करना अपेक्षित प्रतीत हो रहा है।

पांडव और कौरवों के युद्ध विद्या गुरु द्रोण के पास एक बार एक भील बालक उपस्थित हो बाण विद्या सीखने का अनुरोध करने लगा। परन्तु द्रोणाचार्य अस्पष्ट असहमति व्यक्त करते हुए बोले —मैं तुझे बाण विद्या नहीं सिखा सकता क्योंकि तू भील है. इस विद्या को सीखकर बहुत अत्याचार और हिंसा करेगा। बार-बार प्रार्थना करने पर भी जब द्रोणाचार्य सहमत न हुये तो निराश बालक वहाँ से चला गया और बन में पहुँच कर द्रोणाचार्य की एक मूर्ति स्थापित किया और श्रद्धापूर्वक गुरु को नित्य-प्रणाम-पूजा कर उस मूर्ति के सन्मुख ही आज्ञा लेकर धनुष सन्धान का अभ्यास करता रहा। थोड़े ही दिनों में उसने अपने अभीष्ट की सिद्धि कर ली। बाण विद्या में वह अर्जुन से भी प्रवीण सिद्ध हुआ। जिसकी प्रशंसा अर्जुन और गुरु द्रोणाचार्य दोनों ने की। वही बालक एकलव्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जिसका नाम जिह्वा पर आते ही हर एक का हृदय-द्वार उसके सम्मानार्थ खुल जाता है। बाह्याचार के बजाय गुरु के प्रति हार्दिक पूर्ण विश्वास होना चाहिए। गुरु का पार्थिव व्यक्तित्व कैसा भी हो पर पूर्ण श्रद्धा, विश्वास और दृढ़ता के कारण शिष्य उच्चपद को प्राप्त कर लेता है।

आज श्री कबीर साहेब की वाणी के माध्यम से युगानुकूल अविशेषावतार का प्राकट्य हो रहा है जो चतुर्दिक फैले हुए असमानता, द्वेष, हिंसा, स्वार्थ, संकीर्णता आदि दुष्कृत्य को नष्ट कर देवत्व प्रदान करने में सक्षम है, और जो उनके उपदेशों को हृदयंगम करने में तत्पर हैं मानों उनके हृदय में नित्यावतार की लीला चल रही है। ऐसे पुरुष सचमुच धन्य हैं। उन्हें बारम्बार नमन।



## संत-सम्मेलन

कमुरुद्दीनपुर (बेगूसराय) दिनांक २८-८-८३ दिन रविवार से दिनांक ३०-८-८३ दिन मंगलवार तक त्रिदिवसीय संत सम्मेलन श्री सोनेलाल दास जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। आपका ओजस्वी एव सारगर्भित प्रवचन 'सद्गुरु कबीर के जीवन और दर्शन' पर हुआ। इस सम्मेलन में पं० रामकृष्ण दास जी श्री रामेश्वरी दास जी, खगड़िया, श्रीमती दुखनी दासीन, श्री छठूदास जी, दरभंगा, श्री रामबहादुर जी एवं श्री सौदागर जी आदि विद्वानों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये।

—रामसखा यादव

# सद्गुरु कबीर व्याख्यानमाला

श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी द्वारा आयोजित "सद्-गुरु कबीर व्याख्यानमाला" के अन्तर्गत विगत १४ सितम्बर ८३ को सायं ६ बजे कीर्ति मन्दिर के प्रांगण में काशी विद्यापीठ के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा. केशव प्रसाद सिंह ने 'सद्गुरु कबीर की मानवतावादी दृष्टि' पर अपने विचार व्यक्त किये।

कबीर साहब के प्राकट्य से पूर्व की सामाजिक-धार्मिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए आपने बताया कि तेरहवीं शताब्दी के उपरान्त मुस्लिम शासकों की हिन्दू धर्म विरोधी नीति तथा सम्प्रदाय विशेष पर अत्याचार से जहाँ एक ओर घोर निराशा की स्थिति व्याप्त थी वहीं विभिन्न हिन्दू सम्प्रदायों की स्थिति भी विविदाग्रस्त तथा अस्पष्ट थी। उस समय धर्म इतने रूपों में बँटा था कि उसका वास्तविक स्वरूप स्पष्ट नहीं था। सभी सम्प्रदाय अपनी अपनी बुद्धि से जगत, जीव, परमात्मा आदि से संबंधित प्रश्नों का निराकरण कर रहे थे। ऐसी स्थिति में कबीर साहब का प्राकट्य हुआ। मानवता के तत्कालीन विकृत स्वरूप को उन्होंने देखा। उस स्थिति में मानवता की रक्षा कैसे हो, उनके सामने यह एक बहुत बड़ा प्रश्न था।

भगवान् कृष्ण के बाद यदि किसी ने बड़ ओजपूर्ण स्वर से कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों दृष्टियों को मानवीय दृष्टि प्रदान की है तो वे कबीर साहब थे। जो काम सैनिकों की तलवार ने नहीं किया उसे कबीर साहब की साखी की दुनाली ने किया।

कबीर साहब की मानवतावादी दृष्टि उनके द्वारा उद्धृत पौराणिक आख्यानों में दिखलाई पड़ती है। कबीर साहबने किसी भी मार्ग को गलत नहीं बतलाया। धर्म, योग, ज्ञान, भक्ति सभी मार्ग ठीक हैं। लक्ष्य सभी का एक ही है, एक ओर जाने के मार्ग भिन्न-भिन्न हो सकते हैं।

स्वभाव और स्वधर्म की सूक्ष्म विवेचना करते हुये आपने पतलाया कि द्वन्द हमारा स्वभाव है। द्वन्द्व से कोई मुक्त नहीं है। हमारे शास्त्रों में भी कहा है कि जब कोई लड़ने को न मिले तो अपने काम, क्रोध, लोभ से लड़ो। कबीर सा. ने लड़ने की बात नहीं की। उन्होंने धर्म के अहिंसक स्वरूप तथा प्रम के स्वरूप को ग्रहण किया। प्रेम ही एक ऐसा धागा है जो सम्पूर्ण मानवता को एक सूत्र में बांध सकता है। कबीर सा. ने कीर्तन, नाम स्मरण तथा बहिर्मुखी इन्द्रियों को अन्तर्मुखी करने पर ओर दिया। उन्होंने संन्यास को परित्याग नहीं अपितु एक परिवर्तन की संज्ञा दी। व्यक्ति को परिवर्तन में अपने स्वधर्म का ध्यान रखना चाहिये। कर्म के आधार पर धर्म नहीं बदलता। कबीर सा. ने धर्म को कर्म के साथ जोड़ा और स्वधर्म की महत्ता प्रदान की। मानव स्वभाव की चर्चा करते हुये आपने कहा कि मानव के साथ अहंकार जुड़ा है। व्यक्ति मान, सम्मान का भूखा है। इसके लिये वह कुछ भी उठा नहीं रखता। किन्तु अहंकार को छोड़े बगैर व्यक्ति का उत्थान नहीं हो सकता। मनुष्यता को बनाये रखने के लिये अहंकार का विलयन जरूरी है वरना झूठा अहंकार मनुष्यता को विनष्ट कर देगा। सभी धर्मों की यही मान्यता है। मजहब बदलने से स्वभाव नहीं बदलता। अन्त में डा. के० पी० सिंह ने कहा कि मानवीय स्वरूप का अध्ययन करने वाला कबीर साहब से बड़ा कोई पैदा नहीं हुआ।

कर्म के फल की अनिवार्यता के सन्दर्भ में आपने कबीर साहब की ऐसी साखियों के उद्धरण प्रस्तुत दिये जिनमें विभिन्न पौराणिक आख्यानों के माध्यम से कर्म फल की अनिवार्यता की स्थापना की है। कबीर साहब का लक्ष्य था, मानवता की प्रतिष्ठापना कैसे हो? कबीर साहब की भाषा, भाव तथा ज्ञान सभी में मानवता की प्रतिष्ठा की चेतना का दर्शन होता है। आपने बतलाया कि विश्व में मानवता की इतनी स्पष्टता एवं गहराई से सहज व्याख्या करने वाला पैदा नहीं हुआ। कबीर साहब ने कहा है कि भक्ति करना है तो संशय को दूर करो, सहज मार्ग में आओ। उन्होंने जीवन में धर्म के दो तत्त्वों सत्य और अहिंसा के स्थान को सोचा और ज्ञान के द्वारा उसका प्रचार किया। इस प्रकार उन्होंने मानव धर्म की बात कही। मर्म की बात धर्म की बात है। जहाँ मर्म की बात नहीं वहाँ धर्म

नहीं। आज भौतिक वस्तुओं की प्रचुरता है किन्तु सुख घटता जा रहा है क्योंकि व्यक्ति को स्वधर्म का ज्ञान नहीं है। कबीर सा.ने स्वधर्म को अपनाने पर जोर दिया। उन्होंने मध्य मार्ग, सहज, सरल मार्ग अपनाने पर बल दिया। नाथों, सिद्धों, वैष्णाओं सभी से उन्होंने सत्य का ग्रहण किया और ज्ञान के द्वारा उन तत्त्वों का प्रचार किया। जो स्वभाव से ग्रहण कर सकते हो उसे ग्रहण करो। इस प्रकार उन्होंने मानव धर्म की प्रतिष्ठा की।

योग में प्रेम, धर्म और ध्यान तीनों है। जो नहीं है उसे प्राप्त करने का उद्योग करो, जो प्राप्त है उसकी रक्षा करो। यही योग और क्षेम है। आपने बतलाया कि कबीर सा. का उपदेश उसके लिये नहीं है जो मरा है। विषयों की अग्नि में जलने वाले तथा ज्ञान के अहंकार में जलने वाले दोनों ही नष्ट होते हैं। विषय और अहंकार दोनों को ज्ञान की अग्नि में जलाओ। विवेक से कर्म फल को जलाओ। ज्ञान की तलवार लेकर अज्ञान का वध करो।

अन्त में आपने कहा कि आगे आने वाले युग में न कोई धर्म रह जायेगा न कोई वाद बचेगा। चिंतन की दृष्टि से एक समग्रवादी युग आने वाला है। यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो इस समग्रता के उद्‌गम का स्रोत हमें कबीर साहब में प्राप्त होता है।

आपके उपरान्त कबीर मठ के अधिकारी श्री गंगाशरण दास जो सा. ने अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा कि मंदिर जाना, माला जपना धर्म नहीं है। जिस उपाय से, जिस रास्ते से हमारा जीवन सम्भव हो वही हमारा धर्म है और जो उस मार्ग से जीवन यापन करता है वह मानवतावादी है। जो खुद जिये और दूसरे को जीने दे, दूसरे के अधिकारों का अतिक्रमण न करे, जिसमें दया, क्षमा, अहिंसा हो यह मानवतावादी है। पक्षा पक्षी से रहित निष्पक्ष होकर जो हरि को भजे वही सुजान है—ऐसा कबीर साहब कहते हैं। मनुष्यता को यही पूर्णता है। व्यक्ति ऐसा आदर्शवादी बने जिसका अनुसरण समाज कर सके।

इस अवसर पर गुजरात से आये श्री नान जी भाई मन जी भाई ने भी अपने विचार व्यक्त किये।

अन्त में श्री कबीर कीर्ति मन्दिर के व्यवस्थापक श्री श्याम दास जी शास्त्री ने उपस्थित वक्ताओं तथा श्रोताओं के प्रति आभार प्रकट किया।

—डा. लक्ष्मीशंकर गुप्त

## महन्त रामलखन महाविद्यालय

कबीर दल द्वारा संचालित महन्त रामलखन महाविद्यालय-केवस रसलपुर-समस्तीपुर (बिहार) का उद्‌घाटन १५ अगस्त १९८३ ई० को अपराह्न दो बजे दिन में परमादरणीय प्रो० परमानन्द सिंह "मदन" इतिहास विभाग, समस्तीपुर महाविद्यालय समस्तीपुर ने किया। प्रो. मदन जी ने उद्‌घाटन के समय उपस्थित जनसमूह को सम्बोधित करते हुये कहा कि यहाँ पर एक महाविद्यालय की बहुत ही आवश्यकता रही क्योंकि समस्तीपुर से पूरब और रोसड़ा से पश्चिम महाविद्यालय न होने से छात्र-छात्राओं को बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। आज उन कठिनाइयों का समाधान स्वर्गीय दुखादास साहब के परम सुयोग्य शिष्य महन्त रामलखन दास जी ने हल कर दिया। आपने शिक्षा पर बल देते हुए कहा कि शिक्षा का महत्त्व प्राचीन काल से चला आ रहा हैं। शिक्षा ही देश समाज और व्यक्ति को महान् बनाती है। इसलिए सभी को शिक्षा ग्रहण करना चाहिए। शिक्षित होकर बेकार रहना ठीक है लेकिन मूर्ख बन कर बेकार रहना समाज और देश के हित में ठीक नहीं है। आपने शिक्षा के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, और आर्थिक नीतियों पर विशद चर्चा करते हुए महाविद्यालय की उन्नति के लिए विशाल जन समूह से निवेदन किया कि आप सब भी राग-द्वेष को भुला कर तन मन-धन से सहयोग करें।

अन्त में आपने ५०१) पाँचसौ एक रुपये की पुस्तक देकर भविष्योज्ज्वल की कामना की।

श्री रास बिहारी राम यादव, श्री सत्यदेव शर्मा, श्री प्र० सिंह प्रधानाध्यापक—क्रमशः श्री कृष्ण उ. वि० जितवारपुर, राजमणि उ. वि. मोरेशाहपुर, उ. वि. देशुआ ने

मुख्य अतिथि पद से महाविद्यालय के भविष्योज्ज्वल की कामना करते हुए, तन-मन-धन से सहयोग करने के लिए समस्त जनता से अपील की।

महाविद्यालय के सचिव महन्त रामलखन दास जी ने महाविद्यालय खोलने का उद्देश्य और वर्तमान परिस्थितियों पर चर्चा करते हुए कहा कि आज शिक्षा का उतना ही महत्त्व है जितना जीवन में भोजन का। समाज शिक्षा के आभाव में दिशा-विहीन हो रहा है। विशेष कर देहात के गरीब छात्र-छात्राएँ धनाभाव के कारण शिक्षा का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। आपने मानव समाज को सम्बोधित करते हुए कहा कि इस समाज की बड़ी विचित्रता है। इसी विचित्रता के कारण समाज सत्य से कोशो दूर है। सत्य-वादी से सब भाग रहे हैं लेकिन असत्यवादी के साथ बहुत ही सांठ गांठ यानी मेल-जोल है। गोरस गली-गली में बिकता है परन्तु ग्राहक नहीं है। खरीदने वाला नहीं है। शराब मधुशाला में बिकता है। वहाँ पर आपार भीड़ है। मेरे कहने का आशय है कि समाज सच्चाई को पहचानें और सही मार्ग पर चलना सीखें। तभी कल्याण हो सकता है।

मैं देखता हूँ कि कोई भी व्यक्ति समाज में अच्छा काम करता है तो कुछ लोग टांग-घींच कर उसे बाधा पहुंचाते हैं, लेकिन उन टांग-घीचों से मुझे थोड़ा सा भी भय नहीं है।

आपने कहा कि शिक्षा प्राप्त व्यक्ति ही चरित्रवान् होकर देश और समाज में चार चाँद लगा सकता है।

अन्त में आपने कहा कि—आज सब सही दिशा चाहते तो सद्गुरु कबीर साहब की वाणी का अनुसरण अवश्य करें और राग-द्वेष को भुला कर तन-मन-धन से इस संस्था को सहयोग करें—जैसा की कहा गया है—

पानी बाढ़े नाव में घर में बाढ़े दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानों काम॥

इस समारोह के स्वागताध्यक्ष प्रो० रामाश्रय दास ब्रह्मचारी जी ने सभी का स्वागत करते हुए कहा कि यह महाविद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में एक विशेष स्थान लेगा और सद्गुरु कबीर साहब के आदर्शों का सही रूप देगा क्योंकि कबीर दल द्वारा संचालित यह संस्था है।

इस समारोह की अध्यक्षता श्री रामदेव मंडल ने की। आपने अध्यक्ष पद से बोलते हुए कहा कि—कर्म ही पूजा है ( Work is worship )। इसी मूल मन्त्र को चरि-तार्थ करने के लिए परमादरणीय श्री दुःखा साहब के सुयोग्य शिष्य कर्मनिष्ठ वैरागी महन्त राम लखन दास जी साहब ने इस महाविद्यालय में सात एकड़ बारह-डिसमिल जमीन देकर अपने उदारता का परिचय दिया है। इस सराहनीय कार्य के लिए मैं महन्त जी का बहुत ही आभारी हूँ। मैं महन्त जी का आभार प्रगट करता हूँ कि आपने इस महा-विद्यालय के उद्घाटन का कार्य सम्पन्न किया। इस समारोह में आये हुए जनसमूह का आभारी हूँ कि लाखो कामों को छोड़कर इसे सफल बनाया है। सबसे विशेष रामसागर राम जी मुखिया का आभारी हूँ क्योंकि आपने महा-विद्यालय चलाने के लिए पंचायत भवन और पुस्तकालय भवन रामप्रीत महतो ने देकर पुनीत कार्य किया है इसके लिए मैं आपका हृदय से धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ। आपने जिस उदारता का परिचय दिया उसे भविष्य में भी बनाये रखेंगे क्योंकि इस महाविद्यालय में महन्त जी के बाल-बच्चे नहीं पढ़कर हमारे और आप सभी के बच्चे ही पढ़ेंगे।

आपने विभिन्न उच्च विद्यालयों से आये हुए प्रधाना-ध्यापकों से आग्रह किया कि प्रत्येक वर्ष आप लोग इस महाविद्यालय को योग्य छात्र-छात्रायें देकर इसे आगे बढ़ाने में सहयोग करें।

अन्त में आपने कहा मेरा भी सहयोग हर दृष्टिकोण से इस विद्यालय में रहेगा। क्योंकि यह महाविद्यालय हमारा है।

श्री उषा और जुई घीपाल ने मधुर संगीतों के द्वारा सभी को रससिक्त कर आनन्द की धारा बहा दिया। तबला पर संगत श्री दयानन्द ठाकुर ने किया। अन्त में आयोजन का समापन महंत रामलखन महाविद्यालय के प्रभारी प्राचार्य डा० रामदेव महतो ने आशीर्वचनों से किया।

--वेदनिधि शास्त्री



# संत कबीर का मौलिक सिद्धान्त

राधेश्याम कटियार एम० ए० एल० टी० प्रधानाचार्य
ग्राम विकास इण्टर कालेज बुघौली, कानपुर

किसी भी देश की सामयिक व असामयिक परिस्थितियाँ तथा सामाजिक ढांचे एवं उसकी विभिन्न मान्यतायें किसी व किसी प्रतिभा को जन्म देती हैं; जो उनमें प्रकाश दीप का काम करती हैं। ये प्रतिमायें समाज की रूढ़ियों, विषमताओं और मान्यताओं का सामना करती हुई समाज को एक दिशा देती हैं और देती रही हैं। हर समाज में, हर देश में ऐसे विशेष जागरूक आदि तत्वों का उदय हुआ इतिहास ऐसा कहता है। ऐसे विशेष महामानवों से सार्वभौमिक, एकदेशीय तथा विशेष सभाओं के कल्याण होते हैं। या यों कहें ये प्रतिभायें वे शानें हैं, जो कुन्द तथा जंग लगे हुये समाज को धार और चमक देकर कार्य क्षमतायें प्रदान करती हैं। सन्त कबीर, एक अलौकिक प्रतिभा, देश की असन्तुलित, सामाजिक, धार्मिक और वैचारिक परिस्थिति में उदय हुई और फिर एक लौह स्तम्भ की भाँति अडिग व अटूट रह कर समाज की सम्पूर्ण वास्तविकताओं का नग्न चित्र समाज और समाज के ठकेदारों के समक्ष, तगड़ी लताड़ देते हुए प्रस्तु करने में तनिक भी न सकुचाई। पुनश्च उनका साहस सत्य का प्रतिपादन करने में नित्य प्रति बढ़ता ही गया। विभिन्न समाजों ( हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सिक्ख आदि ) की कुरीतियाँ, असमानता और मानवता से परे कार्यों को देख कर वे चुप नहीं रह सके। उनकी वाणियों ने तीखे तीरों के सदृश लोगों के हृदयों को वेधा। परिणामस्वरूप कुछ में सुधार तथा कुछ में ईर्ष्या का मोड़ आया और ईर्ष्यालु समाज ने उनके सिद्धान्त और उनके विचारों पर धूल डालने का प्रयास किया। अन्ततः तत्कालीन समाज कुछ अंशों में सफल रहा और उनकी निर्झर वाणियों को तथा चलते-फिरते साहित्य को वेपढ़ों का विषय बनाया, विद्वानों से वे अछूते रखे गये।

प्रतिभा को समाधिस्थ करना साधारण नहीं, समानता मानवता तथा अस्पृश्यता निवारण के दीर्घ स्वर दबाये नहीं जा सके। लोगों में प्रेरणायें उठीं, अपने को समझा और अपनी बात कहने वालों को भी, फलतः विश्व-आत्मा और समानता का पुजारी संत कबीर को सत्य खोजी और न्यायी सन्त, के आभूषणों से विभूषित किया गया फिर क्या था समाज में मोड़ आया और जाति पांति के भेद भाव से परे; उनके साहित्य और वाणियों की ओर लोगों की आस्था प्रवाहित हो चली और साथ ही उनकी अनुभूत एवं साक्षात् परमात्म शक्ति पर जिज्ञासुओं को विश्वास आया। कबीर साहब की वाणियाँ सोद्देश्य और उनके मौलिक सिद्धान्तों की स्पष्ट झलक है। उनका व्यक्तित्व और उदारता वाणियों से स्पष्ट झलकती है।

कबीरा खड़ा बजार में, सबकी चाहै खैर।
ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर॥

यह रहा उनका शारीरिक रूप और मानवता का सिद्धान्त। लौकिक अलाभकारी परम्पराओं को तोड़ सच्ची मानवता और सामाजिक समानता, को प्राप्त कराना जहाँ उनका सामाजिक उद्देश्य था, वहीं दूसरी ओर सांसारिक कर्तव्यों से परे प्रत्येक मानव को वह अपनी आदि शक्ति ब्रह्माण्ड में व्याप्त प्रेरक शक्ति की अनुभुति करने के लिये प्रेरित करते थे। मनुष्य विवेक एवं विचार में श्रेष्ठतम है. इसे प्राप्त कर यदि हम सर्वव्यापी सूक्ष्मतम शक्ति के श्रोत में अपने को आत्मसात् न कर सके तो यह मानव जीवन व्यर्थ ही है, ये उनके विचार थे जो शाश्वत समझे जाते हैं। इस प्रकार उनके आध्यात्मिक पक्ष की अनुभूतियाँ और आँखों देखा वर्णन समसामयिक धार्मिक मान्यताओ के लिये एक चुनौती बनी और जिज्ञासु सन्त विभूतियाँ उनके पथ-प्रदर्शन से आलोकित होने लगी। यह धार्मिक और वैचारिक क्रांति जोर पकड़ती गयी और कबीर साहब एक के नहीं अनेको के बन गये विश्वात्मा बन गये। वे सब के और सब उनके सारे भेद भाव दूर, सारे रंग फीके, रंग हीन हो गये। समानतावादी और मानवतावादी तथा स्वर शब्द बोधी सन्त कबीर ने लोगों के हृदय में प्रवेश किया। जिज्ञासु उमड़ पड़े साधक अनुभूतियों में विश्वास करने लगे और सत्य-शीलप्रतिष्ठित उनकी वाणियाँ उनको

रुचि कर हो गयीं। पूजा-पाठ, कर्म-काण्ड, तप-जप, और ब्रह्मवाद से परे सार शब्द स्वरूपी परमात्म शक्ति की अनुभूति के लिये, वैरागी बन कर अध्यात्मजगत् में प्रविष्ट होने के लिये लालायित हो उठे। उनका धार्मिक सिद्धान्त विश्व-स्थूलता और तर्कना शक्ति से प्रतिपादित ज्ञान से परे, स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जाता है। अति सूक्ष्म ही सर्व व्यापी और सर्व शक्तिमान तथा बन्धन-मुक्त हो सकता है। इस महान् सूक्ष्म से भी परे कल्पनातीत परमात्म शक्ति की अनुभूति सूक्ष्मतम बन कर ही की जा सकती है। योग, जप, तप आदि स्थूल हैं और इनसे भी आगे जीव, आत्मा और उसकी प्रेरक शक्ति सुरति है, जिसके सहारे हम इन्द्रियों से परे ऊर्ध्वगामी बनकर परमात्मतत्त्व की ओर अग्रसर हो सकते हैं। यह सुरति-साधना सूक्ष्तम का एक साधन है। हम जीते-जागते अपनी स्थूलता को त्याग, अभ्यास द्वारा पांच तत्वों और तीन गुणों से भी सूक्ष्म मन को ऊर्ध्वगामी कर सुरति की डोर से महान् सूक्ष्म, अगोचर शक्ति की अनुभूति कर सकते हैं। और उन्हीं के शब्दों में—

कहूँ नग्र की डोर, सो सूक्ष्म झीन है।
सूरति निरति से जाय, सोई परवीन है॥

दूसरे प्रकार से समझें—

सरकस का कलाकार अपने शरीर को विशेष संतुलित रखते हुये बड़ी सावधानी से श्वास प्रश्वास के सहारे अपने को हलका करके पतले तार पर अडिग रह कर अपनी सम्पूर्ण कलायें दिखाने में समर्थ रहता है परन्तु उसे विशेष प्रशिक्षण और संतुलन रख पाने का एक अभ्यास करना पड़ता है इसी प्रकार साधक अपने षट् शरीरों में ( स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, कैवल्य और हंस ) सूक्ष्मतम-निर्विकार शरीर हंस, तथा शरीर की सूक्ष्मतम और निर्विकार अवस्था तुरीय द्वारा सुरति के अधर तार—'बेतार के तार' के सहारे, परमात्म शक्ति से सान्निध्य स्थापित कर पाता है, और इस समाधि के पश्चात् तुरीयातीत दशा में सार-शब्द रूपी अमृत रस में पगजाने की दशा को पहुंचता है।

तनमन सोधि सोई फल चाखै गिरे तो चकनाचूर।

यह है महात्मा कबीर का निगमातीत और तुरीयातीत सारशब्द साधना का सिद्धान्त जिसकी सिद्धि, ज्ञान-तर्क से नहीं, विज्ञान के स्थूल विश्लेषणों से नहीं वरन् अनुभूति से ही सम्भव हो सकती है। और यह अनुभूति यौगिक समाधियों से परे कबीर साहब की सहज-समाधि से प्राप्त होती है।

साइँ को मिलन कोई, साइँ जन जाना सन्तो
करम से न्यारो-न्यारो सहज समाना सन्तो।

मन को किसी एक इन्द्रिय की वासना में वशीभूत करके रखना भी कठिन होता है। वह इतना गति शील होता है। कि क्षण मात्र भी किसी एक वासना के वशीभूत नहीं रह सकता फिर उसे उलट कर अनभ्यस्त मार्ग पर ले जाना जिसे वह पूर्णतः भूल चुका है, कितना दुरूह है। क्षण-क्षण में वासनाओं के झंझावात उसे पराभूत कर देते हैं। परन्तु सतत अभ्यास से मन की स्थूलता ( वासनाओं के प्रति आसक्ति ) मांज कर स्वच्छता और सूक्ष्मता प्राप्त कर सूरति संज्ञा प्राप्त करती है। और वही सुरतिडोर के सहारे हम अकार शून्य में प्रवेश होते हैं और सुरति ( ऊर्ध्व-खिचाव ) से अस्तित्वहीन-निरति, दशा को प्राप्त कर, पश्चात् सारशब्द में पगी आत्मा, परमात्म शक्ति से आत्मसात् करती है। मार्ग कितना कठिन है ? परन्तु साधक सावधान सजग रहकर जैसे—

नटनी बाँस पर उल्टा चढ़ने में रहती है—

सुरति निरति से नटनी खेले,
तन सम्हारि आगे पग मेले।

सफलता प्राप्त कर सकता है। उनके द्वारा यह साधना; सहज समाधि—

ठाढ़े बैठे परे उताने, कहें कबीर हम रहें ठिकाने।

साधारण मार्ग—दर्शन द्वारा प्राप्त हो सकती है—इसके लिये योग, तप, जप, तीर्थ, व्रत किसी भी क्रिया की आवश्यकता नहीं है।

अन्तर मांहि निरन्तर दरसे,
सहज शून्य मन लावे।
पिण्ड ब्रह्माण्ड दोऊ से न्यारा,
कहु कैसे लखि पावे॥

यह ब्रह्माण्ड व्यापी, घट-घट व्यापी अनादि शक्ति सहज-साध्य है इसकी खोज में भटकने की आवश्यकता नहीं वह आप के पास, और महान् सन्त कबीर के शब्दों में सहज

प्राप्य है। यदि संकेत और साधक सही है तो सुरति के आरोह से सान्निध्य सरल है—

परम पुरुष घर अधर तार है, अधर तार के आगे।
तेहि के आगे कौन बतावे, सबै शब्द में पागे।।

परन्तु महात्मा कबीर मार्ग दर्शन देते हैं—

वा ऊपर आकाश अमी का कूप है,
अनन्त भानु प्रकाश सो नग्न अनूप है,
तामें अक्षर एक सो सबका मूल है,
निःअक्षर का भेद हँस कोई पाइ है,
कहैं कबीर सो हसा जाइ समाय है।

सच्चा साधक कौन है—सहज समाधिस्थ की दशा कैसी होगी ? वह अपने को विस्मृत कर देगा,

शून्य मंदिर में ताड़ी लागी,
सूती सुरति भड़क दे जागी,

फिर आगे—

सुरति शब्द में रहेसमायी, कहैं कबीर गलतान कहाई,

( समाधिस्थ की दशा )

यह दशा बनी रहेगी तब—

होई गलतान रहै अनुरागी,
कहैं कबीर सो है वैरागी।।

महात्मा कबीर का यह अमिट सत्य विश्व के सम्पूर्ण दार्शिनकों और विचारकों को झिलमिला देता है, परन्तु साधना जन्य अनुभूति, तार्किकों के ज्ञान-कण्टकों से कहाँ प्राप्त हो सकती है। साधक, संकेतों के सहारे मार्ग-दर्शन पाकर, अपनी सुरति को सूक्ष्म और झीनी बना कर हंस-गति को प्राप्त कर, स्थूलता त्याग कर सूक्ष्मता धारण कर हंस बन कर शून्य में उड़ान करें तब कहीं निःअक्षर का भेद पावे और तब हंसा में प्रवेश होने को क्षमता पावे।

पाठकों के समक्ष महात्मा कबीर को वाणियों द्वारा उनके मौलिक सिद्धान्त की झलक मात्र प्रस्तुत करने का प्रयास मैंने किया। यह साधकों का साधना मार्ग है, अतः साधक गण मेरी त्रुटियों को क्षमा करेंगे इस आशा में।

## सांसारिक मोह

एक पुरुष महात्माओं की सेवा बराबर किया करता था। उसके यहाँ साल में एक महात्मा अवश्य ही आते थे। एक दिन महात्मा ने उससे कहा—अब तुम्हारी आयु बड़ी हो गई और पुत्र परिवार भी तुम्हारा बहुत सा हो गया और विषयजन्य सुख को भी तुमने भोग लिया है। अब हमारे साथ चलकर कुछ काल तपस्या करो। जिससे तुम्हारा जन्म सफल हा जाय। उसने कहा अभी लड़के सयाने नहीं हैं, जब वह सयाने हो जायँगे तब मैं चलूँगा। क्योंकि बिना मेरे उनका काम नहीं चलेगा। महात्मा चले गये और कुछ काल पोछे फिर आये, तब वह मर चुका था। महात्मा ने समाधि के बल से उसे देखा तब मालूम हुआ कि वह बछया का जन्म लेकर घर के द्वार पर बँधा है। महात्मा ने कहा—अब तो चल। उसने कहा—मेरे विना इनका काम नहीं चलेगा। क्योंकि दूसरा बेल इनका बूढ़ा हो गया है। महात्मा चले गये और कुछ काल पोछे आकर पुनः उसे देखा तब कुकर के जन्म में होकर उनके द्वार के सामने बैठा था। महात्मा ने कहा—अब तो चल। उसने कहा—अगर मैं चला जाऊँगा तब इनका सब धन चोर लूट ले जायँगे, मैं इनका पहरा देता हूं।

मोह ऐसा बंधन का हेतु है जो अनेक जन्मों में भी नहीं छूटता है। संसार मोह जाल ऐसा फैला है जिसमें तमाम जीव फँसे पड़े हैं अर्थात् इसी वश में होकर अपने परलोक को बिगाड़ रहे हैं।

ढिग बूडा उतरा नहीं, याहि अँदेशा मोहि। सलिल मोह की धार में, क्या निंदरी आई तोहि।।

--सद्गुरु कबीर

# आप लोग कौन बिरादर हैं

रामप्रवेश शास्त्री

ग्रीष्म ऋतु की आगमन जैसे विवाह शादियों के लिए हरी झंडी का द्योतक है। शरीर को झुलसा देने वाली लू और धूल धूसरित बना देने वाली आंधियों की परवाह किए बिना लोग बड़े उत्साह से दिन को दिन नहीं समझते और रात को रात नहीं समझते। पसीने से लथपथ शरीर को बारातों के आगे फुरसत कहाँ है कि चैन की सांस ले सके? बसों का हाल बुरा, ट्रेनों में दुर्दशा। यहाँ तक कि रिक्सा एक्का और ताँगों पर भी ठोसी। भूख प्यास की ज्वाला में झुलसते हुए भी चलते चले जा रहे हैं सज धज कर बाराती बनने, न्योता खाने। फिर जिनको दुल्हा और समधी बनना हैं उनके पाँव धरती पर कहाँ?

मैं स्वयं बहुत सी बारातों का भुक्त भोगी हूँ। शायद ही कोई लग्न खाली जाती हो? कभी-कभी एक ही लग्न पर तीन-तीन चार-चार जगह का न्योता पूरा करना पड़ता है। ऊपर से इसमें परेशानी दीख रही है लेकिन इससे आत्मतुष्टि भी होती है। वह भी कोई आदमी है जो किसी लग्न मे खाली रहे?

जहाँ तक शादी विवाह का प्रश्न है हिन्दुस्तान की धार्मिक और सामाजिक विशेषताओं के कारण यह कोई मामूली संस्कार नहीं बल्कि अपने आपको मिटा देने की साधना के समान है। यहाँ जाति-पाँति का नम्बर तो बहुत बाद में आता है बर और कन्या का भेद आकाश पाताल का भेद है। संतों ने जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि के भेदों को समाप्त करने के लिए प्यार, फटकार आदि अनेक प्रकार के उपायों का सहारा लिया। संत कबीर साहब ने आँख खोल देने वाली दो टूक बात बताई कि:—

बूड़ि गए नहि आपु संभारा,
ऊँच नीच कहु काहि जोहारा।
ऊँच नीच है मद्धिम बानी,
एकै पवन एक है पानी॥
एकै मटिया एक कुंभारा,
एक सभन्हि का सिरजनि हारा।
एक चाक सभ चित्र बनाया,
नाद बिन्द के मध्य समाया॥
ब्यापी एक सकल को जोति,
नाम धरे का कहिए भोति॥
राछस करनी देव कहावै,
वाद करै गोपाल न भावै॥

सच बात है। भला सबका परमपिता ऊँच नीच जाति-पाँति के भेद-भावों से कैसे प्रसन्न हो सकता है? जातीय अहंकार में डूबे हुए लोग इस बात का कहाँ ध्यान रख पाते हैं कि सारी सृष्टि की रचना एक समान तत्वों से हुई है।

लेकिन वर कन्या का भेद लड़के वाले और लड़की वाले का भेद यह तो शायद संतों की दृष्टि से भी ओझल रहा। राजस्थान वाले तो लड़कियों की हत्या कर देते थे। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। वहाँ की सरकार को इसके लिए कानून बनाने की जरूरत पड़ी। लड़की यानी मुहर्रम—मातम और लड़का अर्थात् ईद—दीवाली। लड़के का व्याह ऐच्छिक विषय है परन्तु लड़की-राम राम पास पड़ोस वाले भी कहने लगते हैं—सयानी हो गई जल्दी कोई लड़का ढूँढ़कर हाथ पीले कर दो। लड़का ब्रह्मचारी बन सकता है—सबका श्रद्धा पात्र, पूज्य लेकिन लड़की अगर शादी करने से इन्कार कर दे तो पता नहीं कितने सारे विशेषण उसके साथ चरचा कर दिए जायें? लड़की का विवाह जरूरी है। फिर लड़का वाला अलगर्जी लड़की वाला गर्जमन्द। दोनों का मेल कैसे बैठ सकता है? रुपये से गहने से, तिलक-दहेज से। इसलिए जिसने लड़की ब्याह दी समझ लीजिए गंगा नहा लिया। लड़का वरदान और लड़की अभिशाप—यह है व्यावहारिक रूप हमारे देश का।

यहाँ हम वर कन्या का तुलनात्मक विवेचन करने नहीं जा रहे हैं। इसका प्रसंग यों आ गया कि एक बारात का स्मरण आ गया वह भी एक विशेष घटना के कारण। बात है जून १९७५ की। हमारे मित्र दूधनाथ जी के लड़के अनिलकुमार की शादी थी। बारात वाराणसी जिले के पसहटा गाँव में गई थी—हिंगुतरगढ़ के पास, आधा मील की दूरी पर। वस्तुतः हिंगुतरगढ़ का ही वह अंग है। हरिजन

बस्ती होने के कारण मुख्य आबादी से अलग बसा हुआ है।

बारात धूम धाम से गई थी। दूधनाथ जी एक सामाजिक कार्यकर्त्ता हैं, अतः पट्टीदारों, रिश्तेदारों के अलावे काफी संख्या में सामाजिक कार्यकर्त्ता भी शामिल थे बारात में। तात्पर्य यह कि ऐसे लोग भी थे जिन्हें जातीय पैमाने से नहीं नापा जा सकता। सामाजिक कार्यकर्त्ता और जाति पांत—इनमें कोई सम्बन्ध नहीं। ऐसे लोगों में मित्तल साहब, नागर जी, शर्माजी, राय साहब आदि का उल्लेख कर सकता हूँ।

शाम को बाजा गाजा के साथ बारात लड़की वाले के दरवाजे लगी। रात में शादी हुई और भोर हुआ। चिन्ता हुई कलिकालामृत की, चाय की। यह ऐसी बूटी है जिसमें नशा भले न हो उसका नशा बहुत जबरदस्त होता है। बहुतों के लिए तो पेट साफ करने की महौषधि है।

पसहटा में कोई दुकान नहीं। हिंगुतरगढ़ से होकर पक्की सड़क, पिच रोड जाती है। उस पर दुकाने हैं चाय की तथा दूसरी भी। हम लोगों ने सोचा मानिंगवाक भी हो जायेगा और दिल को शकून भी मिल जायेगा। क़रीब सात आठ आदमी कुल थे जो चल पड़े। सड़क पर पहुँचने से पहले ही रिमझिम पानी पड़ने लगा। हमने पांव बढ़ाये, डग लम्बे किए और तेजी से एक ठाकुर साहब की पलानी में घुस गए। यह उनका बैठका था। पलंगें पड़ी थीं। ठाकुर साहब सड़क की एक दुकान में बैठे थे। हम लोगों को घुसते देखा तो दौड़े हुए आए। उनके साथ दो तीन और लोग भी थे। ठाकुर साहब को ऐसा लगा जैसे प्रलय हो गया हो क्योंकि उन्होंने देखा था हम लोग हरिजन बस्ती से आए हिमाकत की बात कि उनकी पलंगों पर आराम से बैठे हुए हैं।

ठाकुर साहब का पहुँचते ही प्रश्न हुआ—आप लोग कौन बिरादर हैं? उनकी मुखाकृति देखकर ऐसा लगा जैसे गुस्से को पी जाना चाहते हों पर उसे घोंट न पा रहे हों। ऐसे मौकों पर पता नहीं क्यों मुझे बहुत मजा मिलता है। तब आदमी-आदमी न होकर पुस्तक बन जाता है, खासा अच्छा पाठ बन जाता है जिसको पढ़ने का सुख काव्यानन्द की तरह मिलता है।

ठाकुर साहब तीन चार बार अपना प्रश्न दुहरा चुके और हम चुपचाप बैठे मुस्कुराते रहे। इसी बीच शर्मा जी झट से खड़े हो गए और अपना परिचय देते हुए बोले—हम ब्राह्मण हैं।

मैंने छूटते ही कहा—आप ब्राह्मण हैं तो इतनी जल्दबाजी की क्या बात? बरसात बाहर हो रही है और आप हैं कि ठाकुर साहब की पलानी में भी भींग रहे हैं। भले आदमी। आपके अकेले ब्राह्मण होने से क्या बनता बिगड़ता है? सवाल हम सबकी बिरादरी का है न कि केवल आपकी। आप चुप चाप बैठे रहते तब भी तो ब्राह्मण ही रहते। फिर इतनी कीमती चीज़ को जबान पर लाकर आपने जूठा कर दिया। शर्माजी? यह अच्छा नहीं किया।

शर्मा जी हमारी बातों से चित्र लिखे से बन गए तब हमने ठाकुर साहब को सम्बोधित करते हुए कहा—इनकी बिरादरी तो आप जान गए कि ये ब्राह्मण हैं यद्यपि मुझे सन्देह है कि ये ब्राह्मण हैं। लेकिन इसको बाद में देखेंगे। अभी ये प्रत्यक्ष ही हरिजन बस्ती से निकल कर आ रहे हैं और कह रहे हैं कि ब्राह्मण हूँ। अब रही बात हम लोगों की। तो इतना बता दूँ हम लोग ब्राह्मण नहीं हैं। क्या हैं—यह आप बतायें? आपके गाँव में कोई बिरादरी पहचानने के विशेषज्ञ हों तो उन्हें बुला लें।

अब तक ठाकुर साहब और उनके साथ आए हुए लोग खड़े थे, हमारी बात पूरी होते ही सामने एक चारपाई पर बैठ गए और चर्चा शुरू हो गई। बोले—हमारा मतलब कुछ और नहीं है। जो भी आता है उसका परिचय पूछा ही जाता है।

हमने कहा—लेकिन आपने तो बिरादरी पूछी है। संयोग से वह हम जानते नहीं। एक जो जानकार थे वे बता ही चुके हैं। लेकिन आज ही ये जाने वाले भी हैं जब कि हमको रात में भी रहना है। यहीं रहना है। समस्या यह है कि जब तक हमारी बिरादरी का पता न चले आप ठहरने कैसे देंगे?

हमने कहने के लिए ही नहीं कहा! दूधनाथ जी की बारात तीसरे पहर बिदा होने वाली थी और मुझे दूसरे दिन अपने प्रिय भाई महानन्द त्रिपाठी की लड़की की शादी में शामिल होने तारगाँव जाना था जो वहाँ से कुछ ही मील दूर था। इसलिए सोचा पता नहीं आज पानी बरसना

बन्द हो या न हो। इसलिए रात यहीं बिताऊँ इसी गाँव में हिन्दी के विद्वान् और गाजीपुर डिग्रीकालेज के प्रिंसिपल डा० मोती सिंह का भी घर था जिनसे हमारा आत्मीय सम्बन्ध था। वहाँ साधिकार ठहर सकता था लेकिन बीच में बात फँस गई ठाकुर साहब की।

ठाकुर साहब को प्रसंग बदलने का अवसर मिला। बोले—अरे साहब हमारा सौभाग्य है कि आप हमारे दरवाजे आए हैं। हम लोग गाँव देहात के आदमी हैं। छोटे बड़े की ध्यान रखना ही पड़ता है। बिरादरी किसी के माथे पर लिखी नहीं होती फिर भी बात चीत से पता चल जाता है कि कौन क्या है? आपकी बातों से ही हम समझ गए कि आप बड़े आदमी हैं।

हमने फिर पूछा—शर्मा जी की बातों से भी आप समझ गए होंगे कि ये ब्राह्मण हैं या और कुछ?

इस पर सब लोग हँस पड़े। और शर्मा जी ने अपनी आत्म कथा शुरू कर दी। बोले—ऐसा है शास्त्री जी! पैदा होते ही हमारी माँ मर गई। हमारा पालन पोषण एक नाई परिवार में हुआ तो चिढ़ाने के लिए लोग कहने लगे कि मैं नाई हूँ। दरअसल हम ब्राह्मण ही है। वैसे तो आदमी सब बराबर ही होते हैं। ब्राह्मण ठाकुर का भेद सब बनावटी है। लेकिन मैं कुलीन ब्राह्मण परिवार में पैदा हुआ।

मैंने एक कपोलकल्पित कहानी शुरू की शर्मा जी को प्रबोधित करते हुए। वह यों थी कि जिनको नाई कहते हैं वे श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं। उनको न्यायी ब्राह्मण कहा जाना चाहिए। प्राचीनकाल में ब्राह्मण वैद्यक भी करते थे। लेकिन चीर फाड़ का काम वे नहीं करते थे जब कि हकीम लोग नश्तर लगाने और घाव साफ करने का काम भी करते थे। अतः वैद्यों से ज्यादा हकीमों की पूछ थी। ब्राह्मण समाज को इससे चिन्ता, और एक सम्मेलन बुलाया गया। उसमें ब्राह्मणों के एक वर्ग ने धर्म रक्षा के लिए नश्तर लगाने का भी संकल्प लिया। आगे चल कर जब सर्जरी वैज्ञानिक बन गई तो सवाल उठाये लोग क्या करें? सबने तय किया जिस छूरे से नश्तर लगाते रहे अब उससे बाल बनाने का काम करें तो जीविका बनी रहेगी। और वह वर्ग न्यायी ब्राह्मण कहलाया।

हमारी यह कहानी शर्मा जी बहुत ध्यान से सुन रहे थे। जब पूरी हुई तो गम्भीरता से पूछे—सचमुच ये नाई लोग ब्राह्मण हैं?

हमने कहा हाँ और फिर हँसी का फौवारा छूटा। बहरहाल चाय पीकर हम लोग वापस बारात में गए। जाते समय ठाकुर साहब ने आग्रह किया कि मैं रात में उनका मेहमान बनूँ। मैंने उनका आग्रह स्वीकार किया। जब शामको बारात बिदा हुई, मित्तल साहब वगैरह सभी वापस गए। मैं पुनः ठाकुर साहब के दरवाजे आ गया। उन्होंने मेरे भोजन के बारे में पूछा।

मैंने कहा—जो आपके घर में बनता होगा वही खाऊँगा।

लेकिन रात में पूड़ी सब्जी, अचार, दही चीनी लेकर ठाकुर साहब दो बच्चों के साथ दरवाजे आए और मुझे भोजन करने के लिए कहा तो मैंने पूछा—क्या आप लोग रात में पूड़ी खाते हैं?

बोले—नहीं। हम लोगों को रोटी बनी थी हमने कहा भी कि आप रोटी खा लेंगे लेकिन औरतों ने कहा—ब्राह्मण को अपने दरवाजे कच्चा खाना कैसे खिलाया जाएगा। इसलिए आपके लिए पूड़ी बन गई।

मैंने कहा—आखिर आपने मुझे आदमी नहीं रहने दिया। ब्राह्मण बनाकर ही दम लिया। कम से कम यही देख लेते कि मेरे कंधे पर जनेऊ भी है क्या?

ठाकुर साहब हमारी बात पर केवल हँसते रहे और विश्वासपूर्वक बोले साहब आप जैसे समझा रहे हैं अगर सब लोग समझाने लगे तो कोई भी किसी की बिरादरी नहीं पूछेगा। आखिर हम सब लोग एक ही ईश्वर की सन्तान हैं तो भाई-भाई में भेद कहाँ?

ठाकुर साहब से चर्चा करते समय कबीर साहब की ये पंक्तियाँ मानस में मंडराती रहीं कि:—

कारीपिअरी दूहहु गाई।
ताकर दूध देहु बिल गाई॥
छाड़ कपट नल अधिक सयानी।
कहहि कबीर भजु सारंगपानी॥

पता नहीं वह दिन कब आएगा जब आदमी-आदमी के नाते मिलेगा?



# मेरे गुरुदेव

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

परम पूज्य सद्गुरुदेव परमात्मदेव महन्त श्री १००८ शान्ति दास जी साहब ऋद्धि सिद्धि भर पूर बंदी छोड़ ज्ञान ना दया भंडार ना सागर सन्तशिरोमणि अज्ञानरूपीतिमिर नो नाश करनार, अमृतसमवाणी वाला परम विवेकी, सत्यपद टेकी, आत्मा ध्यानी अडगता मा मेरु समान दुःख हरता, सुख करता भक्तमन रंजन सकल गुण सम्पन्न अनेक उपमा लायक म्हारा गुरुदेव जेम नी साथे अवार नवार परिचय मां अववा थी थोड़ो परिचय आपवा घणा दिवस थी दिल मां उत्कंठा हती। महाराज श्री नानी उमर मा ज साधु थई गवेल खूबज पर्यटन करी अनेक मुश्केलियो नो सामनो करी निडर निर्भय बनी, धारेला संकल्प मुजब ध्येय ने वडगी रही, सत्संग भजन करी अनेक लोकों ने सन्मार्गे चढ़ावेल छे। ते ओ जामखम्भालिया मां जूनी जग्या कवीर आश्रम काठियावाड मां रही ने भजन करता दर रोज एक नवुं भजन बनावी सेवको ने सवारे दर्शन करवा आवे प्यारे सम्भणावता तेमां नुं एक भजन नीचे मुजब छे।

## सत्यनाम

श्री माता नी दया दास परे छे।
ते थी सदा आनंद आ ऊरे छे॥ टेक॥
हूँ मस्त थयो तुं ज प्रेम पाने छकी,
जीवन स।ण बन्युं आप कृपा थको,
माँ त्हारा उपकारो भुलवा नथी।
मूरख जन वगो वे जगमाँ भले-बकी॥ १॥

मानव तन तें आप्युं—मां आ भक्ति माटे।
छतां मन हरामी रे जाय नर्क वाटे।
दुःख पामेश पाछल पस्ताशे।
कुकर्म नुं थाय भान आँख फाटे॥ २॥
पूर्व जन्म संस्कार विन न मले जाग्रती।
होय जेवा कर्म तेवी उपजे मति,
न कलाय प्रभु नी अकल गति।
त्यां न करवी चिंता जरिये रति॥ ३॥
कर्या कर तूं कार्य कल्याण तणां,
सुधरे बाजी सर्व जो तूं हमणा जरा।
भले भलूं न कहे मनुष्य न घणा,
शान्ति सत्य श्रेष्ठ छे बंधूं जाणो जरा॥ ४॥

इति सत्यम्

**श्री कबीर साहब विषय**

सिद्ध सम्प्रदाय अने नाथ पंथ नी योग साधना नी भारे पकड़ आ समाज पर हती। मठाधीश न पद ने पोता ना मत स्वतन्त्र खातर फगाविने।

जाति पाँति पूछे नहिं कोई।
हरि को भजे सो हरि का होई॥

जप मंत्र फुकनार स्वतंत्र विचारक हता। पोता नी विविध यातनाओ मां थी जे कांइ मेलव्युं ते पोथी पंडितो नी दुनिया मां थी कोई रीते मणे तेमने एटलुंज नहि। पोता ने अने पोता नी वाणी सामभणनार दुनियाँ ने पलक वार मां भ्रममुक्त अने भयमुक्त करी ने सत्य नो साक्षात्-कार करावीदे। तेवी वार्यवतीवाणी हती अने विश्वासपूर्वक कही शकाय तेमनुं ज्ञान अगाध हतु।

पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ पडित भया न कोय।
ढाई अखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय॥

**आत्मविश्वासः—**

आवुंज ज्ञान म्हारा सद्गुरु देव परमात्मा पासे हतुं कबीर साहेब ना सिद्धान्त मां अडग विश्वास राखी सेवको ना भला माटे ठिकाणे-ठिकाणे लाल किला जेवां तेमना स्मारको मोजूद छे। बोध दाता पूज्य सद्गुरु देव श्री १००८ महन्त शान्तिदास जी महाराज साहब तथा श्री १००८ महन्त श्री रामस्वरूप दास जी महाराज साहब नी—उदारता सरलता अने दयालुता नुं ते फल छे। जे थी आ दास ने आवा सेवा नां कार्य कारवानी आज्ञा आपे छे

श्रीमान् चन्दूलाल भाई, श्रीमान् धर्मसी भाई सामानी; श्रीमान् भरत भाई,सन्मुख भाई,श्रीजेठा भाई (नरहरि भाई) ट्रस्टी मंडल नी प्रेरणा आज्ञा आपे छे कारण के तेम्ना ऊपर घणो बोझो छे श्री काशी जी, द्वारिका जो पालनपुर, पोरबंदर जामनगर नो वहिवट चलाववो। काशी नी नोंध बाकी छे ते सर्वे करवा माटे हूं नान जी भाई तथा कर्षण भाई आव्या छीये, साथे नान जी भाई ना धर्मपत्नी देवी बाई तथा कर्षण भाई ना धर्म पत्नी वाली बाई आव्या छे। शिष्य समुदाय देश मां तेमज परदेश मां मोटी विशाल संख्या मां होइ खुब ज जवाबदारी लेइ संस्थाओं ने आगल ने आगल धपावी रह्या छे, तेम्नी नाजुक तवियत बराबर रहेती नथी छतां सद्गुरु देव ना ध्येय ने वलगी रही कार्यो कारी रह्या छे। एक बगीचा मां मनुष्य गया ते बगीचा मां एक कलाक फरवा, खावानी छूट हती। अन्दर जइ कोइ झाड़ गणवा लाग्या, कोइ ते नी जाति जोवा लाग्या कोइ झाड़ नी ऊँचाई तथा चौड़ाई मापवा लाग्या, कोई पाकां मधुर फलो खावा लाग्या, टाइम पूरो थतां बधा ने बाहर काढ्या। विचार करो बगीचा मां जवा थी बधारे लाभ कोने मण्यो। दृष्टान्त नो सिद्धान्त आपणे जगत रूपी बगीचा मां आव्या छीये। शा माटे आव्या छीये शुं करवुं जोइये, शुं करी रह्या छीये, तेनो रात दिवस विचार मंथन करशुं तोज लाभ मलशे। आ सद्गुरुदेव आपण ने वारम्वार समझावी रह्या छे, पण अज्ञानी जीव समझतो न थी। सत्य ही परम तत्व छे। सत्यधारण करऊँ तेज मानवता छे। सत्य आपनुं स्वरूप छे, ते नुं ज्ञान क्यारे थाय के ज्यारे मन वाणी कर्म सत्य नुं विचार करी आचरण मां मूकीए त्यारे लाभ थाय। ट्रस्टी मंडल नो हुं आभारी छूं।

लि० अज्ञान अबोध एवं—

बालक नान जी मन जी परमार जामखम्भालिया वाणा ना सत्यनाम बंदगी साहब।

## सद्गुरु कबीर ज्ञान आश्रम राजगीर में वार्षिक सत्संग

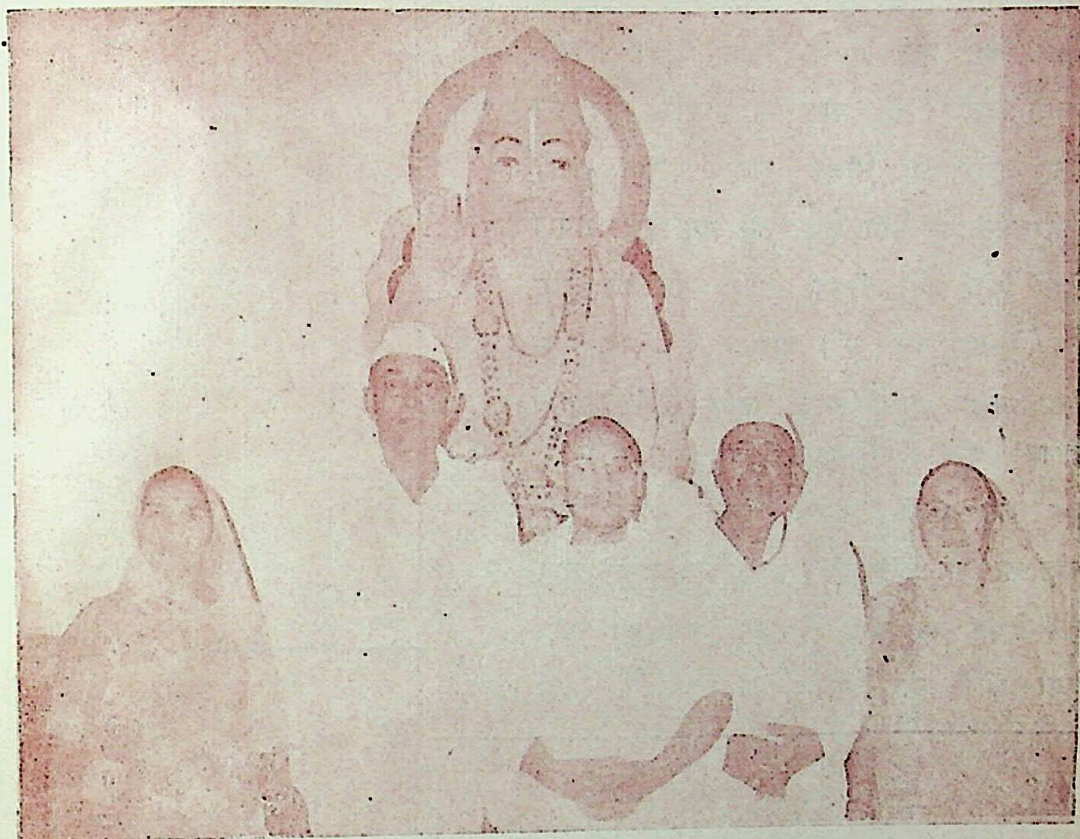
प्रत्येक वर्ष की भांति इस वर्ष ता० १९ से २१-९-८३ तक स्थानाधिपति श्री १०८ महन्त उत्तम दास जी साहब की अध्यक्षता में वार्षिक सत्संग सम्पन्न हुआ। भारत के दूर-दूर से सन्त महन्त तथा अन्य भक्त पधारे थे।

दि० १९-९-८३ को सभी संतों भक्तों का आगमन हुआ, रात्रि में सत्संग-प्रवचन का कार्यक्रम रहा।

दि० २०-९-८३ को रात्रि स्थानाधिपति महन्त उत्तम दास जी साहब के कर-कमलों से सात्विक-ज्ञान-यज्ञ ( चौका आरती ) सम्पन्न हुआ। इसी बीच सन्तों तथा महन्तों के प्रवचन भी होते रहे। श्री कबीर शान्ति सन्देश के सम्पादक श्री श्यामदास जी साहब शास्त्री ने सद्गुरु कबीर के सिद्धान्त, साधना-पद्धति तथा परमात्मा के निर्गुण, सगुण स्वरूप का प्रतिपादन किया। ऋषिकेश से पधारे श्री १०८ महन्त स्वामी मोहन दास जी साहब शास्त्री वेदान्ताचार्य ने सात्विक यज्ञ की विधि आन्तरिक तथा बाह्य रूप का प्रतिपादन सरल एवं सुबोध शब्दों में किया जिससे सभी जनता अच्छी तरह से इसके रहस्य को समझ सकी। दि० २१-९-८३ को १० बजे से सत्संग प्रारम्भ हुआ। संत रघुनाथ दास जी साहब, संत परमेश्वर दास जी ने भाव बोध शब्दों में अपना प्रवचन किया। महन्त श्री १०८ चन्द्रदास जी साहब ने छोटे-छोटे सुन्दर दृष्टान्तों द्वारा सद्गुरु कबीर के सिद्धांतों का निरूपण किया। अन्त में महन्त जी ने अपने आशीर्वचनों से भक्तों को अपनी सेवा-भक्ति में दृढ़ रहने का उपदेश दिया और सत्संग का समापन हुआ।

प्रेषक—मोहनलाल बरनवाल, वजीरगंज ( गया )

॥ सत्यनाम ॥



श्री कबीर कीर्ति मन्दिर, काशी के अपूर्ण कार्य को पूर्ण करने के हेतु अनुमानित व्यय का व्योरा लेने के लिए जामखम्भालिया से आये हुए मंदिर के सेवक एवं प्रबंधक —

बायें से—श्रीमती देवी बाई, श्री नानजी भाई, श्री श्यामदास जी शास्त्री साहब, श्री कर्षण भाई, श्रीमती वाली बाई।

## नागपुर में कबीर पंथी संत-सम्मेलन

पू० पा० पं० श्री हजूर उदितनाम साहब आचार्य कबीर पंथ सद्गुरु कबीर प्राकट्यधाम लहरतारा वाराणसी ( उत्तर प्रदेश ) तथा श्री कबीर धर्मस्थान, खरसिया, जिला रायगढ़ ( म० प्र० ) सद्गुरु की असीम कृपा से दि० १९-११-८३ से दि० २१-११-८३ दिन शनिवार, रविवार एवं सोमवार तक नागपुर कबीर पंथी समाज के संयोजकत्व एवं व्यवस्थापकत्व में कबीर पंथी सन्त-सम्मेलन का आयोजन होगा। इसमें पू० पा० श्री १००८ धर्माधिकारी श्री मनोहरदास जी शास्त्री साहब तथा पंथ के विद्वान् पधारेंगे।

प्रेषक—म० गुरुचरण जी साहब, नागपुर कबीर पंथी समाज
कबीर आश्रम, शांतिनगर, नागपुर – २

केन्द्रीय पञ्जीकृत संख्या आर० एन० ३३०२३/७७ जिला प० सं० ७९२/७९

# सद्गुरु कबीर का साखी

## गुरु शिष्य को अंग

ऐसा कोई ना मिला, जासों कहूं निसंक।
जासों हिरदा की कहूं सो फिरि मांडे कंक ॥ ७ ॥

ऐसा कोई ना मिला. जलतो जोति बुझाय।
कथा सुनावे नाम की, तन मन रहै समाय ॥ ८ ॥

ऐसा कोई ना मिला, टारे मन का रोस।
जा पैडे साधू चले (तूँ) चलि न सके इक कोस ॥ ९ ॥

ऐसा कोई ना मिला, सबद देऊँ बतलाय।
अक्षर और निहअक्षरा, तामें रहै समाय ॥ १० ॥

हम घर जारा आपना, लूका लीन्हा हाथ।
वाहू का घर फूँक दूँ (जो) चले हमारे साथ ॥ ११ ॥

हम देखत जग जात है, जग देखत हम जांहि।
ऐसा कोई ना मिला, पकड़ि छुड़ावे बांहि ॥ १२ ॥




ग्राहक-संख्या :

श्री

डाक पञ्जीकृत संख्या : एन० आर० एन० १२६
श्री कबीर-शान्ति-सन्देश
मासिक-पत्रिका
सम्पादक कार्यालय :
श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था
सी० २६/१, कबीर रोड,
वाराणसी-२२१००१

श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था, वाराणसी के लिए श्यामदास शास्त्री द्वारा सम्पादित
एवं आर्यावर्त प्रेस, जालपादेवी रोड, वाराणसी द्वारा मुद्रित
आवरण मुद्रण : पवन प्रिन्टर्स, बड़ी पियरी, वाराणसी।




卐 सत् सत् सोऽहं गुरु 卐 सोऽहं हंस सद्गुरु शरणम् 卐 ॐ श्रीराम सत्यराम सोऽहं गुरु राम 卐

# श्री कबीर - शान्तिसंदेश

मासिक पत्रिका

वर्ष ६ अंक १०



मोको कहाँ ढूंढ़े बंदे मैं तो तेरे पास में।

सद्गुरु कबीर

श्री कबीर शान्ति सन्देश के आद्य उद्भावक और श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था के आद्य संस्थापक :—महन्त श्री शांतिदास जी गुरु श्री १०८ श्री पुरुषोत्तमदास जी महाराज साहब, श्री कबीराश्रम, जामनगर [ सौराष्ट्र ]

संवत् २०४० | कबीराब्द ५८३ | अक्टूबर १९८३

कहता हूं कहि जातहूं, कहूं बजाये ढोल। स्वासा खाली जात है, तीन लोक का मोल ॥






मूल्य : वार्षिक १५) पन्द्रह रुपये आजीवन २५१) दो सौ इक्यावन विदेश में १८६) वार्षिक

एक प्रति का मूल्य १)५० मात्र


## आवश्यक सूचना

श्री कबीरशान्तिसन्देश का वर्ष ७ का १, २, ३ अंक बीजक साखी खण्ड पर आधारित विशेषांक होगा। लेखकों से निवेदन है कि समय को ध्यान में रखते हुए १५ दिसम्बर १९८३ तक लेख भेजने की कृपा करें।

### श्री कबीर शान्ति संदेश के उद्देश्य

१—विवादों से दूर रहकर सत् का प्रचार एवं प्रसार।

२—श्री कबीर साहब की वाणी एवं उनके उपदेशों की ओर ले चलने का सत्प्रयत्न।

३—प्रेम, दया, सद्भावना, सेवा, एकता, परोपकार एवं सत् चिंतन में प्रवर्तन।


प्रकाशक

श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था

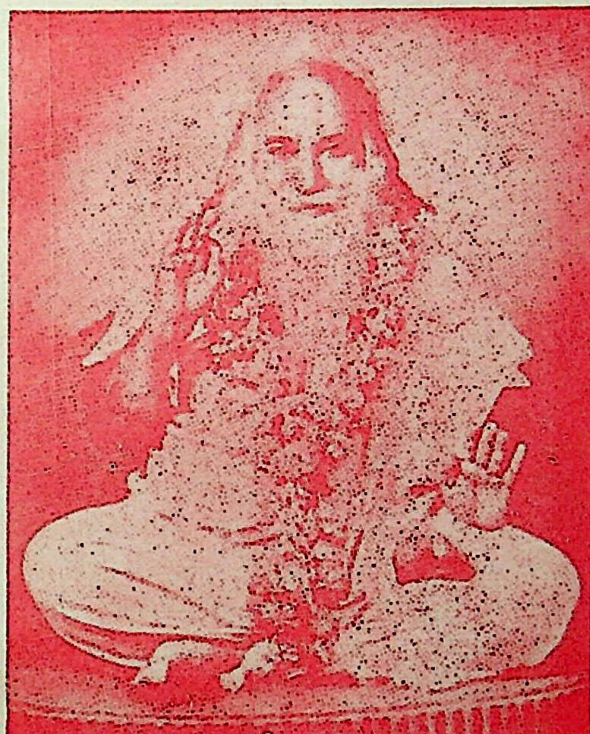
सी. २६/१ सन्त कबीर रोड

वाराणसी – २२१००१

संपादक

श्यामदास शास्त्री

यतीन्द्र वागीशं विगतरजसं शान्तिमनधम् सदानन्दं स्वामिन् ? सुरतपरकल्याणमनिशम् ।
दयागारस्वातं कमलदलनिर्लेपमनसम् नमामि श्यामोऽहं शमनभवदुखं निशदिनम् ॥



श्री कबीर शान्ति संदेश के आद्य उद्भावक परमात्मदेव सद्गुरु देव श्री १००८ महन्त शान्तिदास जी महाराज साहब गुरु श्री १००८ श्री पुरुषोत्तमदास जी महाराज साहब ।



सिद्ध स्थान श्री कबीर आश्रम जामनगर के आठव गादीपति त्याग वैराग्य तपोनिष्ठ पू० पा० सद्गुरुदेव श्री १००८ महन्त रामस्वरुपदास जी महाराज साहब गुरु श्री १००८ शान्तिदास जी महाराज साहब ।




卐 सत् सत् सोऽहं गुरु 卐 सोऽहं हंसः सद्गुरु शरणम् 卐 ॐ श्री राम सत्यराम सोहं गुरु राम 卐

# श्रीकबीर-शान्तिसंदेश

वर्ष ६ ] अक्टूबर १९८३ कबीराब्द ५८४ [ अंक १०

## भजन

संतो समझे की मति न्यारी ।
निज दुख सुख सम सबको जाने, आतम तत्त्व विचारी।
औरन को उपदेश दिढ़ावे, आप स्वतः नहि माने।
मुख कुछ और हृदय कछु औरहि, कैसे रामहिं जानैं।
औरन से कह मोह न कीजे, जो चाहो सुख भाई।
माया मोह आप उरझाने, धिक ऐसी चतुराई।
जग प्रपञ्च है अति दुखदाई, कहि औरहि समझावे।
आप रहत निशदिन प्रपञ्च में, मिथ्या साधु कहावे।
वैरागी बनि पर वैभव लखि, हँसि के नाक सिकोरे।
पड़ी अपावन फूटी कौड़ो, ताहि देख नहि छोड़े।
निज स्वास्थ की कथा सुनावे, बहु विधि करि बकवादा।
सो जग में पण्डित कहवाये,—है मूरख का दादा।
राग द्वेष जब लग घट भीतर, क्या भो वेष बनाये।
खर नहि होत केसरी कबहू, सिंह की खाल उढ़ाये।
जो चेतन तेरे उर अन्तर, सोई सब घट माहीं।
कहैं कबीर राम किमि दरशे, मैं तैं छूटत नाहीं।

—सद्गुरु कबीर साहब

# संपादकीय

भव की भयंकरता का भय किसको नहीं है ? इस भय से बचने के लिए अनेक सरल और कठिन उपाय बताये गये हैं। इसके निवारण में कठिन उपायों की अपेक्षा सरल उपाय अधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

संसार सागर को पार करने के लिए युगानुसार तप का प्रथम स्थान है। त्रेता में यज्ञ और द्वापर में पूजा का विधान है। कलियुग में यज्ञ और तप में अनेक बाधाएँ हैं। इसमें महापुरुषों ने केवल नाम का ही महात्म्य बताया है। गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने नाम को ब्रह्म और राम से भी बड़ा कहा है। वे कहते हैं :—

ब्रह्म राम ते नाम बड़ वरदायक वरदेस।

केवल नाम के माहात्म्य से कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। उसका जाप आवश्यक है। नाम के जाप से सर्वत्र मंगल ही मंगल होता है। गोस्वामी जी की उक्ति है—

नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ।

नाम के जाप से नामी का चिन्तन हो जाता है। नाम और नामी का अभेद सम्बन्ध है। नाम नामी से और नामी नाम से भिन्न नहीं है। जितना महत्त्व व्यक्ति का है उससे कम महत्त्व उसके नाम का नहीं है। सद्‌गुरु कबीर ने नाम स्मरण का ही निर्देश किया है। मन का सम्बन्ध नाम स्मरण से होना आवश्यक है। जब तक इसका सम्बन्ध संसार से बना रहेगा तब तक यथार्थ स्मरण नहीं होगा। यथार्थ स्मरण ही दुख से त्राण दिला सकता है। भक्तों में प्रह्लाद, गज, गणिका, अजामिल आदि ने नाम का स्मरण किया और अपने दुःख से मुक्त हो गये। नाम स्मरण में भक्तों की संख्या अधिकाधिक है इनमें देवर्षि नारद की गणना पहले होती है। वे नाम स्मरण में ही लीन रहते हैं। स्थिति सर्वविदित है। वे जहाँ भी देखे गये हैं नाम स्मरण करते हुए ही पाये गये हैं। इनका एक क्षण भी नाम स्मरण से रहित नहीं होता। यथार्थ नाम स्मरण से नामी की स्वरूपोलब्धि हो जाती है। स्वरूपोलब्धि रहित नाम स्मरण को सद्‌गुरु कबीर ने निरर्थक बतलाया है। अन्न के उच्चारण से भूख शान्त नहीं हो सकती। प्यास लगने पर भी पानी के स्मरण से वह शान्त नहीं हो सकती। वे कहते हैं—

बिन जाने बिन अरस परस बिन नाम लिये का होइ।
धन के कहे धनिक जो होते, निरधन रहै न कोइ॥

जिसके नाम का स्मरण किया जा रहा है वह सभी घट में विद्यमान है। सद्‌गुरु कबीर साहब ने परमात्मा का निर्देश सब घट में किया है किन्तु सभी प्रणम्य नहीं हो सकते। प्रणम्य वही है जिसके घट से परमात्मा प्रकट होता है। अग्नि सभी पत्थर एवं लकड़ी में विद्यमान है किन्तु लकड़ी के मंथन और पत्थर पर आघात के बिना दोनों से अग्नि प्रकट नहीं हो सकती। अग्नि को व्यवहार में लाने के लिए उसे प्रकट करना आवश्यक है।

परमात्मा अखंड, अविनाशी, अजर, अमर, सत्, चित्, आनंद है। उसके इस रूप में भगवान् राम, कृष्ण, शंकर, ब्रह्मा, विष्णु, बुद्ध, ईसा अल्लाह जितने भी हैं सभी सत्, चित् आनंदस्वरूप हैं। वह व्यापक है, उसका नाम भी व्यापक है। सत् की सत्ता सर्वत्र है सद्‌गुरु कबीर साहब ने उसकी व्यापकता बताते हुए कहते हैं—

फहम आगे फहम पीछे फहम दाहिने डेरी।

वह चारों ओर है, ऊपर है, नीचे है, सर्वत्र है, नाम से नामी, और नामी से नाम भिन्न नहीं है। यह ऊपर अंकित है प्राणी किसी प्रभाव से प्रभावित हैं किसी मोह से ग्रस्त है जिससे दोनो को भिन्न देखता सुनता और समझता है "मृत्यु स मृत्यु मारप्नोति यः नानेव पश्यति॥ भिन्न देखने वाले के लिए यह उपनिषद् वाक्य है जो उस परमात्मा को नाना देखता है वह मृत्यु को प्राप्त होता है। वह एक है अनेक नहीं, पर उसके नाम अनेक हो सकते हैं। जो उसे एक अखंड, अविनाशी देखता है वही अमृतत्व को प्राप्त करता है।

आज हम परमात्मा के स्वरूप को ही भूल गये हैं। हमारे अन्तःकरण पर आवरण छा गया है। हमारा अन्तःकरण शुद्ध नहीं हो पाया है। इसीलिए परमात्मा हमें भिन्न दिखाई पड़ता है। उसकी भिन्नता को लेकर हम आपस में लड़ रहे हैं। परमात्मा की सत्ता एक है किन्तु उसे भिन्न सत्ता वाला बना दिया गया है। उसकी भिन्न सत्ता से हमारे अन्दर भी भेद दृष्टि उत्पन्न हो गई है। सद्‌गुरु

( शेष पृष्ठ २०४ देखें। )

# मुक्ताकण

शंभुनाथ राय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय

## सबद—१९

ये ततु राम जपहु हो प्रानी,
(तुम) बूझहु अकथ कहानी।
जाको भाव होत हरि ऊपर,
जागत रैनि विहानी ॥ १ ॥
डाइनि डारे सुनहा डोरे,
सिंघ रहै बन घेरे।
पाँच कुटुंब मिलि जूझन लागे,
बाजन बाजु घनेरे ॥ २ ॥
रोहु-म्रिगा संसे बन हाँके,
पारथ बाना मेले।
सायर जरे सकल बन डाहे,
मच्छ अहेरा षेले ॥ ३ ॥
कहहिं कबीर सुनहु हो संतो,
जो यह पद अरथावै।
जो यह पद को गाय बिचारै,
आप तरै औ तारै ॥ ४ ॥

चूर्णिका :—ये ततु राम = जो तत्व है–राम ही है। बूझहु = समझो। अकथ = जो कही न गई हो, अकथनीय। भाव = प्रेम, आसक्ति। सुनहा = कुत्ता। डोरे = रस्सी में रोहु-मृगा = एक प्रकार का हरिण। पारथ = शिकारी। सायर = समुद्र। डाहैं = जल जाते हैं। मच्छ = मछली। अहेरा = आखेट शिकार।

अर्थ :—ऐ प्राणियो ( साधक या भक्तजन ) तुम इस अकथ कथा को ( भलीभाँति ) समझ लो कि जो कुछ तत्व है, वह केवल राम ही है, अतः उसी का भजन करो ( इतर साधनाएँ व्यर्थ होती हैं )। ( देखो, ) जिसका प्रेम परमात्मा के प्रति हो जाता है, उसकी तो रात ( परमात्मा के ध्यान में ) जागते हो बीत जाती है ॥ १ ॥

( सच्चा साधक ) वासनारूपी डाइन को डाँट भगाता है, कामनारूपी कुत्तों को ध्यानवृत्तिरूपी रस्सी से बाँध रखता है और मनरूपी सिंह को अंतःकरणरूपी बन में घेर लेता है। इसके बाद पंच ज्ञानेन्द्रियरूपी कुटुंबियों से मिलकर अर्थात् उनको अपने पक्ष में करके ( घिरे हुए मनरूपी सिंह से ) युद्ध करने लगता है। ( ये सारी क्रियाएँ समाधि के अभ्यास-काल में होती हैं, फिर तो साधक के सुनने के लिए अनहद के ) गंभीर बाजे बजने लगते हैं ॥ २ ॥

जिस प्रकार हँकवा होने पर वन-पशु वन छोड़कर भागने लगते हैं, तब शिकारी बाण चला-चला कर मारने लगते हैं, उसी प्रकार समाधिरत योगी में जन अनहद बजने लगता है तब संसयरूपी मृग भागने लगते हैं और योगी ज्ञानास्त्र से उनका आखेट करता है। इतना ही नहीं जब योगी की ज्ञानाग्नि धधक उठती है तो ) लोभ, मोह, कामना, क्रोधादिरूपी समस्त वन को जला डालती है, ( इसके पश्चात् उस ज्ञानाग्नि की लपटों से ) संसार-सागर भी जल ( सूख ) जाता है, फिर तो योगी सूक्ष्म वासनारूपी मछलियों तक का शिकार कर डालता है ( इस प्रकार निष्कंटक होकर आवागमन से मुक्त हो जाता है ॥ ३ ॥

कबीर साहब कहते हैं कि ऐ संतो सुनो, जो व्यक्ति इस पद का अर्थ करे, और गा-गा कर विचार करे, वह स्वयम् तो तरेगा ही औरों का भी तारने में समर्थ होगा ॥ ४ ॥

## सबद—२०

कोई राम रसिक रस पीयहुगे,
पीयहुगे सुष जीयहुगे ॥ १ ॥
फल-लंकृत बीज नहिं बकला,
सुष पंछी वहाँ रस षाई ॥
चुवै न बुंद अंग नहिं भींजे,
दास भँवर सभ संग लाई ॥ २ ॥
निगम-रिसाल चारि फल लागे,
तिनि मँह तीनि समाई।

एक दूरि चाहै सभ कोई,
जतन जतन काहु बिरले पाई ॥ ३ ॥
गे बसंत ग्रीषम रितु आई,
बहुरि न तरिवर तर आवै।
कहहिं कबीर सामी सुषसागर,
राम मगन होय सो पावै ॥ ४॥

चूर्णिका :—कोई = बिरला। फल-लंकृत = अलंकृत फल, सुंदर फल। बीज = गुठली। वकला = छिलका। सुष पंछी = शुक अर्थात् वीतराग साधक। दास-भंवर = भगवद्भक्तरूपी भ्रमर। निगम रिसाल = वेदरूपी आम्रवृक्ष।

अर्थ :—ऐ बिरले राम-प्रेम रस के रसिक (केवल तुम्हीं) राम-प्रेम-रस को पी सकोगे और (जब) पी लोगे तो (तुम्हीं) सुख से जी सकोगे (अर्थात् परम तत्त्व प्राप्त कर लोगे) ॥ १ ॥ (देखो, इस अद्भुत रस वाला) फल भी विचित्र होता है, उसमें न तो बीज होता है और न छिलका; साधनरूपी पक्षी भगवद्भक्तरूपी समस्त भ्रमरों को साथ लेकर बड़े ही आनंद से इस रामरस का आस्वाद लेता है। (इस रसपान में) न तो रस की बूंद ही टपकती है और न तो (पीने वाले के) अंग ही भीगते हैं ॥ २ ॥ वेद (ज्ञान) रूपी आम्रवृक्ष पर (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चार पुरुषार्थरूपी) चार फल लगे हैं, उनमें से (अर्थ, धर्म, काम) तीन की प्राप्ति तो इस जगत् में हो जाती है और एक (चौथा अर्थात् मोक्ष) दूर पड़ता है, उसे सभी लोग चाहते हैं किंतु नानाविध यत्न करते-करते कोई बिरला साधक ही इसे प्राप्त कर पाता है ॥ ३ ॥ कबीर साहब कहते हैं कि वसंतरूपी युवावस्था तो बीत गई और ग्रीष्मरूपी वृद्धावस्था आ गई (किंतु ऐसा उपाय तो किया नहीं जिससे नाना फलों को भोगने के लिए इस जगतरूपी) वृक्ष के नीचे फिर से न आना पड़े। स्वामी (राम) तो सुख का सागर ही है किंतु जो उसमें रमता है, वही प्राप्त कर पाता है ॥ ४ ॥

---

## (संपादकीय पृष्ठ २०२ का शेषांश)

कबीर ने इसी झगड़े को समाप्त करने के लिए सभी को एक परमात्मा का निर्देश दिया है। वह ईश्वर दो कहाँ से आ गया? उसे हमने ही दो बना दिया है। हम जानते हैं कि सोने के बने हुए आभूषण सभी सोने के हैं किन्तु हम कुण्डल, हार आदि में भेद स्थापित करते हैं। यही भेद हमारे लिए अहितकर हो जाता है। परिणाम में हमारा समस्वरूप भी हमें भिन्न दिखाई पड़ता है। इसी भिन्नता के कारण ही हम उसके साथ सभी असद् व्यवहार करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। यह सन्तों के बताये मार्ग पर चलने वालों के लिए शोभनीय नहीं है। सन्तों ने सदा शांति का पाठ पढ़ाया है। शांति की स्थापना के लिए प्रयत्न किया है समाज में शांति स्थापित करने के लिए शांति का पाठ पढ़ना आवश्यक है। उस पाठ को तभी पढ़ा जा सकता है जब अभेद दृष्टि हो। आज सुख और शांति दुर्लभ है, विनाशी को अविनाशी मानकर उसकी सत्ता के लिए लड़ना कहाँ तक युक्तिसंगत है। नाम के भेद का रोग भी बहुत बड़ा रोग है। राम के स्थान पर अल्लाह नहीं कह सकते, अल्लाह के स्थान पर राम नहीं कह सकते। जब तक हमारी भेद-बुद्धि समाप्त नहीं होगी हम समाज में न शांति स्थापित कर सकते हैं न शांति पा सकते हैं। हमारे साथ नाम का बहुत बड़ा झगड़ा खड़ा हो गया है। हम राम कह सकते हैं किन्तु राम नाम नहीं कह सकते। नाम और नामी का अभेद रूप देखने से हो परमात्मा का यथार्थ रूप दिखाई पड़ता है।

- ज्ञान ही सबसे बड़ी अच्छाई है।
- सादगी ही जिन्दगी का अमूल्य पहनावा है।

# हमारा धर्म — विश्व धर्म

डा० स्वामी सदानन्द

सृष्टि के प्रारम्भ से ही भारतवर्ष ( आर्यावर्त ) धर्म-प्राण देश है जिसका आलोक पाकर विश्व शान्ति का अनुभव करता है। वैदिक काल से ही यहाँ अनेक मत, पंथ ( सम्प्रदाय ) उद्भूत होते आये हैं और यहाँ नित्य नये-नये पंथ बनते जाते हैं, किंतु सभी का समावेश सनातन धर्म में ही हो जाता है। मुसलिम सम्प्रदाय एक ऐसा निकला जिसने सनातन धर्म से भिन्न मार्ग पर चल कर भिन्न संस्कृति की स्थापना की। इसको भी सद्गुरु कबीर साहब ने डाट-फटकार कर सही मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया है। अतः भारत अनेक धर्मों का एक विशेष अजायब घर बन गया। फल स्वरूप प्रत्यक्ष है कि आज स्वतन्त्रता के साथ ही धर्म निर्पेक्षता की महानता को लेकर भारत ने पुनः विश्व गुरु, शान्ति दूत धर्म पथ-प्रदर्शक, आदि संज्ञाओं से विभूषित हो विश्व में अपना सिर हिमालयवत् ऊँचा कर लिया है, क्योंकि हमारा धर्म 'विश्वधर्म' के रूप में व्यापक है। धर्म निर्पेक्षता हिमवत् शीतल शुद्ध और हिमालयवत्, उदार, शान्त रूप से भारत में सुसज्जित है। कहना नहीं होगा कि आज देश के कुछ स्वार्थी इसे भी धूमिल, निन्दनीय, कलुषित करने पर तुले हैं। इस तरह के लोगों पर सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि—

> तीन सजावत देश को, सती सन्त वो सूर।
> तीन लजावत देश को, कपटी कायर क्रूर॥
> बाना पहिरे सिंघ का, चले भेड़ की चाल।
> बोली बोले सियार की, कूत्ता खावे फाल॥

सभी भारतीय धर्मों के पूज्य पथ प्रवर्तक-आचार्यगण सम्पूर्ण मानव के शुभ चिन्तक थे और आज भी उनकी वाणी से उसी प्रकार के संकेत मिलते हैं। वे अल्पज्ञ, मनुष्य को परमात्मा की तरफ लगा कर कुत्सितवृत्ति, भेद भावों और हिंसात्मक कर्मों से दूर भगाते हैं। दीन हीन को सताने और शोषण करने वाला सन्त उपदेशक गुरु नहीं बन सकता। श्री शंकराचार्य, श्री कबीर साहब, गुरु नानकदेव जी आदि जो भी पथ प्रदर्शक हुए हैं वे और जो और होंगे, वे मानवता की रक्षा करते हुए धर्म की रक्षा हेतु आये और आयेंगे।

जब जब मानव में मानवता के स्थान पर प्रबल दानवता पनप उठी, धर्म का समूल नाश होने लगा, तब-तब कोई न कोई शक्ति अपना परिचय देकर चली गयी। यथा—

> यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत।
> अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

हम इन्हीं को ईश्वर का अवतार या पथ प्रवर्तक सन्त कहते हैं। इन्हीं का अनुसरण कर साधारण जनसमूह में शान्ति का अनुभव होता है, मानवता की रक्षा होती है। अनेक व्यक्ति जब इस मार्ग पर चलने लगते हैं तब वही एक संप्रदाय बन जाता है, किन्तु वह किसी प्रकार देश, धर्म, राष्ट्र के लिए घातक नहीं बनता। आज सन्त उपाधि धारी धर्म गुरु यदि देश धर्म के घातक हों तो रक्षक कौन होगा? श्री कबीर साहब और गुरु नानक देव जी का व्यक्तिगत कोई धर्म नहीं था किन्तु मानवता की रक्षा हेतु इन दोनों महापुरुषों ने अपना जीवन अर्पण कर दिया। आज उन्हीं के अनुयायी दानवता का पाठ पढ़ें यह 'सन्त' कहाने में शोभा नहीं देता। श्रीमद् भागवत् में सन्तों के प्रति है कि—

> संगो यः संसृते र्हेतुरसत्सु विहितोधिया।
> स एव साधुषु कृतो निःसंगत्वाय, कल्पते॥
>
> —श्री म० भा० ३।२३।५५

भारत वर्ष विश्व गुरु इसीलिए कहलाता है कि यहाँ के सन्त गुरु अन्यवत् एकाङ्गी नहीं हैं। भाव यह है कि सन्त वही हैं जिसके सम्पर्क, सत्संग, सेवा से हमारी दुष्प्रवृत्ति दूर हो, सद्विवेक बढ़े, मोह, स्वार्थ और संसार-बन्धन से छूटने का मार्ग प्राप्त हो। हमें भारतीय महापुरुषों एवं सन्तों के जीवन चरित्र पढ़ने सुनने देखने पर यही अनुभव होता है। सन्त शिरोमणि सनकादि, बुद्ध, शंकराचार्य, स्वामी रामानन्द, कबीर, नानक दादू आदि सन्तों को देखा जाय। जो इनके शरण गये वे बिलकुल शान्त चित्त से प्रभु स्मरण चिन्तन में मग्न हो गये। इन सन्तों में किसी के प्रति घृणा,

द्वेष, हिंसा, छोटे-बड़े की स्पर्धा, हेयता, लोलुपता शोषण आदि की भावना नहीं थी। वे सम्पूर्ण विश्व को ही अपना मानते थे। इन्हीं में एक उदाहरण श्री गांधी जी का लिया जा सकता है। बाद में उनके अनुयायी जब अपना सम्प्रदाय और पूर्वजों का मार्ग छोड़ कर जघन्य कर्मों में, हिंसा पर, राज सत्ता और धन दौलत के पीछे पड़ गये तब विनाश ही देखने को मिलता है। जो महापुरुष पथ-प्रवर्तक, सन्त, गुरु, स्वामी आदि पदों से सुशोभित हैं, विश्वधर्म और विश्व गुरु के अधिकारी हैं, उनका तो अपने सम्प्रदाय, धर्म और देश के हित के लिए निन्दनीय कर्म, हिंसात्मक प्रवृति, स्वार्थपरायणता को छोड़ कर मानवता का परिचय देना ही परम कर्तव्य होता है। गुरु अर्जुन देव की वाणी है कि—

साध नाम निर्मल जाके कर्म।

(सुखमणि साहब)

अन्यत्र गुरु ग्रन्थ साहब में जीवन्मुक्त सन्त को ब्रह्मज्ञानी और परमात्मा ही कहा है—

ब्रह्मज्ञानी को खोजे महेश्वर।
नानक ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर॥

ऐसे सन्तों के लिए विश्व में सभी अपना है या कोई भी पराया नहीं है। इन्हीं सन्तों के कथनानुसार जनता को चलना चाहिए। केवल सन्त उपाधि से युक्त व्यक्ति जो हमें आपस में द्वेष, भय घृणा, हिंसा आदि मानवता के घातक मार्ग बताता हो वह सन्त कहाने का अधिकारी नहीं है। विश्वधर्म के उपदेशक मानवता के पोषक श्री कबीर साहब की वाणी है—

जा गुरु ते भय ना मिटे, भ्रान्ति न जीव की जाय।
सो गुरु झूठा जानिये, त्यागत देर न लाय॥

वेष बना ले, सन्त कहलवा ले, यह सम्भव है, परन्तु दूसरों को सतानेवाले को मानसिक शान्ति नहीं मिल सकती, काम, क्रोध, लोभादि दूर नहीं हो सकते। ऐसे सन्त वेषधारी ढोंगी देश और अपने सम्प्रदाय को लज्जित कर देते हैं।

आज के युग में कुछ ऐसे व्यक्ति सामने आ रहे हैं जो धर्म निर्पेक्षता का गलत अर्थ कर के उससे लाभ उठा रहे हैं, धर्म की आड़ में देश और मानवता को लक्ष्य बना कर निशाना मार रहे हैं। सन्त उपाधिधारी को सन्त शब्द की लाज बचाना चाहिए या धर्म के आड़ में शिकार छोड़ कर सामने अनीति में हो कूद कर 'सन्त' की उपाधि हटा देनी चाहिए क्योंकि सन्त महात्मा ही 'विश्व धर्म' के पोषक हो सकते हैं।

आचार्य विनय मोहन शर्मा ने सन्त की परिभाषा इस प्रकार की है—सामान्य जनता में सांसारिकता से विरक्त परमतत्वान्वेषक को 'सन्त' कहते हैं। वह सोने को मिट्टी और जवाहर को पत्थर समझता है, वह अपने हृदय से क्रोध और वासना को हटा देता है।—'हिन्दी को मराठी सन्तों की देन' पृ० ५५-५६।

आज विश्वधर्म के प्रेरक, उपदेशक सन्त उपाधिधारी यदि हरिस्मरण छोड़ कर विभिन्न आग्नेय अस्त्र शस्त्रादि इकट्ठा करने और लूटने या लुटवाने में लग गये हैं, तो किस पर विश्वास किया जाए। देश, धर्म, सम्प्रदाय आदि को विनाशोन्मुख करने वाला, दूसरे को कष्ट देने, दिलाने, मारने, मरवाने वाला सन्त कहाने का अधिकारी नहीं हैं। श्री कबीर साहब कहे हैं—

साधू ऐसा चाहिए, दुःखे दुःखावे नाहिं।

सन्त महात्मा तो सभी में उसी आत्मा को देखते हैं जो अपना आत्म स्वरूप है। वही सन्त सच्चा सन्त है। अथर्ववेद संहिता में कहा है—'सन्त उन्हें कहते हैं जो सभी प्राणियों में ब्रह्म के दर्शन करते हैं'।

यही सद्गुरु कबीर साहब का अनुभव है—

मैं लागा उस एक से, एक भया सब माहिं।
सब मेरा मैं सबन का, तहाँ दूसरा नाहिं॥

ज्ञानी को, विश्वधर्मा को दूसरा दिखता ही नहीं किसका लूटे, किसको मारे, किससे लड़े? इसी विश्वधर्म को श्री सद्गुरु कबीर साहब ने अपनाया था। बाद में जितने सन्त मत के अनुयायी निर्गुणिया कहाने वाले सन्त मत पंथ के प्रवर्तक हुए सबने इसको स्वीकार किया। श्री गुरु नानक देव जी, श्री चन्द्र जी, दादू जी, रविदास और वर्तमान युग में श्री गाँधी आदि इन्हीं को स्वीकार कर सबका सिरमौर बन गये। अतः आडम्बरधारी, हिंसा, दुष्कर्म आदि में प्रवृत्त कराने वालों से जनता को सतर्क रहना चाहिये।

# संतों की आध्यात्मिक साधना में महात्मा गाँधी का जीवन

सत्य प्रकाश मित्तल, गाँधी विद्या संस्थान, वाराणसी

संतों की एक विशेषता यह रही है कि उन्होंने रूढ़ियों के बंधन को स्वीकार नहीं किया, फिर यह रूढ़ियाँ चाहे धार्मिक कर्मकाण्ड और शास्त्रगत हों या सामाजिक और सांसारिक। कबीर साहब ने कहा है "तू कहता कागज की लेखी, मैं कहता आँखिन देखी।" संतों ने अनुभव और परीक्षण को प्रधानता दी जिसमें से व्यक्तिगत स्वतंत्रता, स्वतंत्र चिंतन और विकास का पथ प्रशस्त हुआ। संत न तो सन्यासी थे और न पंडित। वे अध्यात्म और परमार्थ की ओर उन्मुख थे। तो भी उनके लिए असांसारिक होना आवश्यक नहीं था। इसी प्रकार पांडित्य भी उनका आवश्यक गुण नहीं था। यह सभी बातें महात्मा गाँधी पर लागू होती हैं। यों, उन्हें भक्ति परंपरा की निर्गुण धारा में रखा जा सकता है। गीता बोध की प्रस्तावना में उद्धृत गाँधीजी के यह शब्द "भक्ति के बिना ज्ञान और कर्म सूखे हैं, और उनके बंधनकारी होने की संभावना है।" (नवजीवन प्रकाशन मंदिर, १९६०, पृ० ५)।

वस्तुतः संतों का कोई एक संप्रदाय या धर्म नहीं है। वे स्वतः हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिख, पारसी, आदि कुछ भी हो सकते हैं। उनके यहाँ सबका स्वागत है। इस रूप में संत असांप्रदायिक है। वह धर्म की दीवारें खड़ी नहीं करता, उन्हें गिराता है। संतों ने मतखण्डन का काम भी नहीं किया, क्योंकि उन्हें साम्प्रदायिक संकीर्णता अभीष्ट नहीं थी। वस्तुतः उन्होंने संप्रदायों और धार्मिक पंथों के चौखटों से घिरे लोगों को मिलाने और एक दूसरे के निकट लाने में बहुत मदद की।

**धार्मिकताः—**

महात्मा गांधी यों तो सनातनी हिन्दू थे, पर वे परंपरागत हिन्दू शास्त्रों से बँधे हुए नहीं थे। वे मूर्तिपूजक भी नहीं थे। सत्य और अहिंसा की कसौटी पर जो उन्हें ठीक जँचा उसे करने और अपने जीवन में उतारने में वे कभी नहीं हिचके। उन्होंने यज्ञोपवीत धारण नहीं किया और कर्मकाण्ड के चक्कर में नहीं पड़े। शास्त्र-विहित वर्ण-धर्म की मर्यादाओं को भी उन्होंने नहीं माना, बल्कि अछूतों को देवमंदिर एवं विद्यामंदिर में पहुँचाने के लिए जन-आंदोलन तथा सत्याग्रह किया। जो अनुभव और नीति के विरुद्ध जायं, उसे उन्होंने शास्त्र मानने से इन्कार कर दिया। इस प्रकार उन्होंने जांत-पांत और छुआछूत आदि हिन्दू धर्म के अनेक बंधनों और संकीर्णताओं को तोड़ दिया। मनुस्मृति में स्त्री जाति पर अनेक प्रकार के बंधन डाले गये हैं। उसमें कन्या के लिए बाल-विवाह का विधान है और स्त्री जाति के लिए पुनर्विवाह वर्जित है। गाँधीजी ने दोनो बंधनों को नहीं माना। इसी प्रकार उन्होंने मनुस्मृति द्वारा प्रतिपादित न्याय-व्यवस्था तथा राज्य-व्यवस्था को भी स्वीकार नहीं किया। तिस पर भी वे एक धार्मिक और आध्यत्मिक पुरुष थे और उनके इस रूप को हिन्दू तथा गैर-हिन्दू सभी ने स्वीकार किया।

**राजनीतिक मंच**

आध्यात्मिक पुरुष होने पर भी वे जीवन भर राजनीतिक क्षेत्र मे सक्रिय रहे। उन्होंने सामाजिक तथा राजनीतिक क्रांति के लिए अनेक संस्थाओं का निर्माण किया, अनेक आंदोलनो का सृजन और नेतृत्व किया। भारत के स्वतंत्रता-संग्राम के तो व सर्वोपरि राष्ट्रनायक थे और अंत में 'राष्ट्रपिता की उपाधि से अभिहित हुए। वे भारतीय भूखण्ड के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पुनरंचना के लिए अंत तक संघर्षरत रहे। ऐसा लगता है कि उन्होंने अपने कार्यों और विचारों द्वारा भारतीय जीवन तथा चिंतन की जो दिशा प्रदान की है वह दीर्घकाल तक अपना प्रभाव दिखाती रहेगी। प्रत्यक्ष रूप से उनके अनेक विचारों को असामयिक तथा अति आदर्शात्मक कहने वालों की संख्या आज भी कम नहीं है, पर उनके आलोचक भी उनके प्रभाव से मुक्त नहीं हैं।

वस्तुतः गाँधी युगपुरुष था और उसके प्रयोग स्थानीय तथा देशज होने पर भी जागतिक थे। उन्हें अपने जीवन काल में ही 'विश्वबंधु' की मान्यता मिल गयी थी और उनके जीवन, कार्य और चिंतन ने विश्वभर में सभी जातियों और पंथों के लोगों को प्रभावित किया था।

इस प्रभाव की धारा आज भी अवरुद्ध नहीं हुई है। अवसर और अनुकूल समय पाकर वह कब वेगवती हो जायगी यह इतिहास ही बतायेगा।

उनका राजनेता और समाज सुधारक वाला रूप संत परंपरा को नये क्षेत्रों में ले जाता है। वे राजनेताओं में संत थे और संतों में राजनेता। ऐसा वह भारतीय इतिहास का पहला ही महान् पुरुष था।

**आध्यात्मिक प्रयोगवाद:—**

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, संत अरूढ़िवादी होता है और अपने अनुभव तथा स्वतंत्र चिंतन के प्रकाश में अपना मार्ग बनाता है। गांधीजी का समस्त जीवन अनेक क्षेत्रों में और अनेक प्रकार के प्रयोगों से ओतप्रोत है। उनके प्रयोग का क्षेत्र अति व्यापक है। उसमे अध्यात्म, नीति, धर्म, राजनीति, स्वास्थ्य, शिक्षा और अर्थ सबका समावेश है। विनोबा ने एक बार अध्यात्म का अर्थ 'करुणा' किया था। शायद वे यह कहना चाहते थे कि जहां करुणा है वहां अध्यात्म है और जहां करुणा नहीं है वहां अध्यात्म भी नहीं है। अन्य संतों की भांति गांधीजी ने भी अध्यात्म को लोकहित और मानव प्रेम के साथ देखा तथा अनुभव किया, और उन्हें नैष्ठिक भूमि पर मनुष्य की मुक्ति का मार्ग बना दिया। गांधीजी ने 'आत्मकथा' को अपने जीवन में सत्य के प्रयोग की कहानी माना है। इसकी भूमिका में वे अध्यात्म को नया अर्थ प्रदान करते हुए सत्य के प्रयोग को वैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। वे कहते हैं—

'मेरे प्रयोग में तो आध्यात्मिकता का मतलब है नैतिक, धर्म का अर्थ है नीति, आत्मा की दृष्टि से पाली गयी नीति धर्म है।

"इन प्रयोगों के बारे में मैं किसी भी प्रकार की संपूर्णता का दावा नही करता। जिस तरह वैज्ञानिक अपने प्रयोग अतिशय नियमपूर्वक, विचारपूर्वक, और बारीकी से करता है, फिर भी उससे उत्पन्न परिणामों को अंतिम नहीं कहता, अथवा वे परिणाम सच्चे ही हैं इस बारे में भी वह सशंक नहीं तो तटस्थ अवश्य रहता है, अपने प्रयोगों के विषय में मेरा भी वैसा ही दावा है।"

(भूमिका, पृ० ७)।

उन्होंने जो सोचा उसे व्यक्तिगत जीवन में चरितार्थ करने का ईमानदारी से प्रयास किया। साथ ही उन्होंने नैतिकता और नीति को सामाजिक जीवन तथा राजनीतिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया और अहिंसा को सत्य के साथ जोड़कर उसे सामाजिक तथा राजनीतिक क्रांति का साधन बनाया। इसे उन्होंने सत्याग्रह का नाम दिया। वस्तुतः यह आध्यात्मिक सिद्धांतों के आधार पर समाज की पुनर्रचना का प्रयत्न था जो सामाजिक नीति और नैतिकता के रूप में व्यक्त होता है। उन्होंने पहले दक्षिण अफ्रीका और बाद में भारत में सत्याग्रह के अनेक प्रयोग किये। अब तो सत्याग्रह को अहिंसक और शांतिमय अस्त्र के रूप में विश्व में मान्यता मिल चुकी है और उसका एक पृथक् दर्शन ही बन गया है। युद्धमुक्त और शोषण मुक्त मानव समाज की रचना का स्वप्न इसी अहिंसा और सत्याग्रह के आधार पर देखा जा सकता है, क्योंकि यह जन-साधारण का उपकरण है तथा इसके द्वारा अन्याय का प्रतिकार करने और जनाधारित समाज-रचना की ओर बढ़ने की असीम संभावनाएं हैं।

वे 'आत्मकथा' की भूमिका में इसकी चर्चा करते हुए कहते हैं—'यदि मुझे केवल सिद्धांतों का अर्थात् तत्त्वों का ही वर्णन करना है तो यह आत्मकथा मुझे लिखनी ही नहीं चाहिए। लेकिन मुझे तो उन पर रचे गये कार्यों का इतिहास देना है और इसलिए मैंने इन प्रयत्नों को सत्य का प्रयोग "जैसा—नाम दिया है। इसमें सत्य से भिन्न माने जाने वाले अहिंसा, ब्रह्मचर्य, इत्यादि नियमों के प्रयोग भी आ जायेंगे। लेकिन मेरे मन सत्य ही सर्वोपरि है और उसमें अगणित वस्तुओं का समावेश हो जाता है। यह सत्य स्थूल, वाचिक सत्य नहीं है। यह तो वाणी की तरह विचार का भी है। यह सत्य हमारा कल्पित सत्य नहीं है, बल्कि स्वतंत्र चिरस्थाई सत्य है, अर्थात् परमेश्वर ही है"—(पृ० ७ व ८), गांधीजी का भगवान् सत्य रूप है बल्कि सत्य ही भगवान् है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गांधी की साधना मात्र व्यक्तिगत और अंतर्मुखी नहीं है। अपनी चरितार्थता में वह समान रूप से सामाजिक और बहिर्मुखी है। उनका सत्य जनजीवन का सत्य है, न्याय रूप है जो मानव हित

और मानव प्रेम में प्रस्फुटित होता है। उनकी साधना अन्याय का प्रतिकार, न्याय की प्रतिष्ठा तथा मानवहित की योजना का रूप ले लेती है, और उसमें से भक्त गांधी कर्मवीर गांधी के रूप में उदित होता है। वह संघर्ष करता है, सत्याग्रह करके जेल जाता है, भूख हड़ताल करके सोई हुई चेतना को जगाता है नोवाखाली और बिहार में पदयात्रा करता है, साम्राज्य का विघटन करता है और नये समाज की आधारशिला बनाता है। किन्तु गद्दी और कुर्सी से दूर रहता है। यह सब गांधीजी की आध्यात्मिक आवश्यकता है। यह सत्य को, परमात्मा को प्राप्त करने की मंजिल है।

**भारत में संत परंपरा:—**

भारत में संत परंपरा को बहुत प्राचीन काल में भी ढूंढ़ा जा सकता है। हमें कुछ ऐसे चरित्र मिल जायेंगे जिन्हें निश्चय ही संतों की श्रेणी में रखा जा सकता है। पर एक अटूट परंपरा और सिलसिले के रूप में यह मध्य-युग की देन लगती है। कबीर साहब के पहले कुछ संत हुए हैं, लेकिन अधिक नहीं। मुझे लगता है कि भारत की संत परंपरा पर ईरान और मध्य एशिया के संतों का गहरा प्रभाव है। गत सवा हजार वर्ष से ये क्षेत्र और इनकी संस्कृतियाँ इस्लाम धर्म से भावित और प्रभावित हुई हैं। अतः फकीरों और ओलाओं के रूप में हम अनेक मुस्लिम संतों को मध्ययुगीन भारत में पाते हैं। इनमें से कुछ तो ईरान और बलख-बुखारा आदि से भारत आये और इसी को अपना वतन बना लिया। लेखक का इस दिशा में कुछ भी अध्ययन नहीं है। पर उसका ख्याल है कि भारत में संत पर विशेष कर इस्लाम के प्रभाव की उपेक्षा नहीं की जा सकती। स्वतः कबीर साहब और गुरु नानक पर मुस्लिम फकीरों और इस्लाम का प्रभाव स्पष्ट है। गांधीजी पर भी अनेक धर्मों और देशों के विचारकों का प्रभाव है।

**साधना:—**

महात्मा गांधी साधना के रूढ़ अर्थ में भी साधक थे। वे मोक्ष और आत्मदर्शन के पथ पर आरूढ़ थे, और राम-नाम का जप करते थे। 'आत्मकथा' की प्रस्तावना में वे कहते हैं—'मुझे जो करना है तीस वर्षों से मैं जिसकी आतुर भाव से रट लगाये हुए हूँ, वह तो आत्मदर्शन है, ईश्वर का साक्षात्कार है, मोक्ष है। मेरे सारे काम इसी दृष्टि से होते हैं। मेरा सब लेखन भी इसी दृष्टि से होता है, और राजनीति के क्षेत्र में मेरा पड़ना भी इसी वस्तु के अधीन है।"

गांधीजी का पथ विशेषकर गीता के अधीन बना है। 'अनासक्ति योग' की भूमिका में वे अपने ध्येय और पथ को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—"मनुष्य को ईश्वर रूप हुए बिना चैन नहीं मिलता, शांति नहीं मिलती। ईश्वर रूप होने के प्रयत्न का नाम सच्चा और एकमात्र प्रयास है और यही आत्मदर्शन है। यह आत्मदर्शन जैसे सब धर्मग्रन्थों का विषय है, वैसे ही गीता का भी। पर गीताकार ने इस विषय का प्रतिपादन करने के लिए गीता नहीं रची, वरन् आत्मार्थी को आत्मदर्शन का एक अद्वितीय उपाय बतलाना गीता का आशय है। वह अद्वितीय उपाय है 'कर्मफलत्याग' इसी को उन्होंने 'अनासक्तियोग' कहा है। (अनासक्ति योग, महात्मा गांधी, सस्ता साहित्य मंडल नयी दिल्ली, १९४९)।

यह मार्ग तो पुराना है, परन्तु गांधीजी ने उसे नया रंग दिया है। उन्होंने भक्ति के साथ कर्म और सेवा को जोड़ दिया है। सामाजिक स्तर पर उनका यह रूप अधिक उजागर है। वे गीता से अहिंसा की सीख लेते हैं, वे अहिंसा को भी नया रूप तथा नया चोला पहना कर उसे समाज परिवर्तन का साधन बनाते हैं। वे संसार से विमुख नहीं है, बल्कि उसके स्वस्थ निर्माण के लिए संघर्ष करते हैं, जीवन तथा समाज की समस्याओं से जूझते हैं। मोक्ष के लिए गीता में ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग आदि अनेक प्रकार के योगों का विधान है। गांधीजी ने भक्ति मार्ग को अपनाया और यज्ञ को सेवाकार्य या परार्थ कर्म के रूप में देखा। गीता के तीसरे अध्याय के विषय में वे कहते हैं:—

"इस अध्याय को मैंने गीता समझने की कुंजी कहा है। एक वाक्य में उसका सार यह जान पड़ता है कि जीव सेवा के लिए है, भोग के लिए नहीं। अतः हमें जीवन को यज्ञ-मय बनाना उचित है। पर इतना जान भर लेने से वैसा संभव नहीं हो जाता। जानकर आचरण करने पर हम उत्तरोत्तर शुद्ध होते जायेंगे। पर सच्ची सेवा क्या है; यह

जानने के लिए इंद्रियदमन आवश्यक है। इस प्रकार हम सत्य रूपी परमात्मा के निकट होते जाते हैं। ( गीता बोधे, सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली, पृ० २१–२२ )।

यज्ञ पर विचार करते हुए वह इसी पुस्तक में कहते हैं— "इस लोक या परलोक में कुछ भी बदला चाहे बिना परार्थ के लिए किये नये किसी भी कार्य को यज्ञ कहेंगे। इस व्याख्या के अनुसार विचार करने पर हम देखते हैं कि जिस कर्म से अधिक से अधिक जीवों का अधिक से अधिक क्षेत्रों में कल्याण हो और जिस कर्म को अधिक से अधिक मनुष्य अधिक से अधिक सरलता से कर सकें और जिससे अधिक से अधिक सेवा होती हो वह महायज्ञ है, अच्छा यज्ञ है। मनुष्यमात्र की पूँजी सेवार्थ हैं, और यह होने पर सारे जीवन में भोग का खातमा हो जाता है, जीवन त्यागमय हो जाता है, या यों कहें कि मनुष्य का त्याग ही उसका भोग है। ( गीता बोध, महात्मा गाँधी, पृ० २७-२८ )

गाँधीजी की श्रद्धा गीता और भगवान् पर है। भगवान् में श्रद्धा और भक्ति के साथ भक्त अपनी साधना में आगे बढ़ता और सफल होता है। 'गीता बोध' में वे कहते हैं—जहाँ देह है वहाँ कर्म तो है ही। उससे कोई मुक्त नहीं है, तथापि देह को प्रभु का मंदिर मानकर उसके द्वारा मुक्ति प्राप्त होती है, यह सब धर्मों ने प्रतिपादित किया है। परन्तु कर्म-मात्र में कुछ दोष तो है ही, मुक्ति तो निर्दोष की ही होती है। तब कर्मबंधन मे से अर्थात् दोषस्पर्श से कैसे छुटकारा हो ? इसका जवाब गीता ने निश्चयात्मक शब्दों में दिया है—"निष्काम कर्म से, यज्ञार्थ कर्मफल त्याग करके, सब कर्मों को कृष्णार्पण करके, अर्थात् मन, बचन और काया को ईश्वर में होम करके।" इसी भूमिका में वे पुनः कहते हैं —"गीता-युग के पहले कदाचित् पशु-हिंसा मान्य रही हो। गीता के यज्ञ में उसकी कहीं भी गंध नहीं है। उसमें तो जपयज्ञ यज्ञों का राजा है। "एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं—मैंने जो देखा और धर्म-शास्त्रों में पढ़ा है, उसके आधार पर मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि जब मनुष्य में उस अदृश्य शक्ति के प्रति पूर्ण जीवित श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है तब उसके शरीर में भीतरी परिवर्तन होता है। लेकिन यह सिर्फ इच्छा करने मात्र से नहीं हो जाता। इसके लिए सदा सावधान रहने और अभ्यास करने की जरूरत होती है। दोनों होते हुए भी ईश्वर कृपा न हो तो मानव-प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है। ( रामनाम, महात्मा गाँधी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, १९४९; पृ० २४ )

आध्यात्मिक क्षेत्र में गाँधीजी के अनुयायियों में विनोबा सर्वोपरि माने जाते हैं। वे भक्ति मार्ग का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं— ज्ञान व तितिक्षा के बल पर निरोध शक्ति उत्पन्न करो। किन्तु इस तरह बड़ी युक्ति से इंद्रिय निरोध करने पर भी जब तक मन वश में न हो जाय तब तक निरोध पूरा नहीं समझा जा सकता। मनोनिरोध के लिए मानवी बल काफी होता है। यहीं से भक्ति की शुरुआत होती है। मनोनिरोध संबंधी प्रयत्नों की पराकाष्ठा हो जाने पर भक्ति का स्थान आता है और हमने देखा है कि तभी उसकी आवश्यकता उत्पन्न होती है—सो, पहले अपनी शक्ति लगा कर इंद्रियों को वश में कर लो, विषयों से अलग हुई इंद्रियाँ जब मन पर धावा करने लगें तब उस सूक्ष्म आक्रमण के प्रतिकार के लिए ईश्वर से सहायता माँगो।" ( स्थितप्रज्ञ दर्शन, विनोबा भावे, सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली, १९५६, पृ० ४९ व ५२।

गाँधीजी की साधना पद्धति का स्पष्ट संकेत उनके 'नवजीवन' में ( ६-४-१९२४ ) छपे एक वक्तव्य से भी हो जाता है:—

"मैं तो पूर्णता का एक विनीत साधक मात्र हूँ। मैं उसका रास्ता भी जानता हूं, परन्तु रास्ता जानने का अर्थ यह नहीं है कि मैं आखिरी मुकाम पर पहुँच गया हूँ। यदि मैं पूर्ण पुरुष होता, यदि मैं विचारों में भी अपने तमाम मनोविकारों पर पूरा आधिपत्य कर पाया होता तो मेरा शरीर पूर्णता को पहुँच गया होता" वे पुनः नवजीवन में ( २५-५-१९२४ ) लिखते हैं—"मुझे लड़कपन से ही रामनाम सिखाया गया। मुझे उसका सहारा बराबर मिलता रहता है। इससे मैंने उसे सुझाया हैं। जो मंत्र हम जपें उसमें हमें तल्लीन हो जाना चाहिए। मंत्र जपते समय दूसरे विचार आवें तो परवाह नहीं। फिर भी, यदि श्रद्धा रखकर हम मंत्र का जाप करते रहेंगे तो अंत में सफलता अवश्य प्राप्त करेंगे।"

किन्तु अन्य साधना-विधियों का निषेध नहीं है। इसी

( शेष पृष्ठ २१२ पर देखें। )

# चम्बल का एक अविस्मरणीय दिन

रामप्रवेश शास्त्री

चम्बल के नाम में बागीपन है। एक अजीब भयानक आकृति बनती है इस नाम से। सैकड़ों साल का इतिहास है चम्बल और चम्बल के बागियों का। बल्कि इससे भी पहले से बागी उगते रहे हैं चम्बल के बीहड़ों में।

लेकिन १९६० एक उल्लेखनीय वर्ष है—जब कि संत विनोबा के सामने २० बागियों ने आत्मसमर्पण किया। कुख्यात बागी सरदार मानसिंह के गिरोह के बचे हुए बागी लोग थे। यही बहुचर्चित गिरोह था उन दिनों। गिरोह के सरदार थे लोकमन दीक्षित जो लुक्का नाम से प्रसिद्ध थे और जिनका नाम सुनकर लोगों के होशहवाश गुम हो जाते थे।

उसके बाद लोकनायक जयप्रकाश जी के सामने दूसरा दौर पूरा हुआ बागी समर्पण का। उसमें मोहर सिंह और माधोसिंह जैसे बागियों के गिरोह के गिरोह शामिल हुए। यह समर्पण एक समारोह के साथ मध्यप्रदेश के जौरा में सम्पन्न हुआ। इन दोनों समर्पणों ने सारे संसार को आश्चर्य चकित कर दिया।

लेकिन चम्बल बागी मुक्त न बन पाया। यह क्षेत्र भी कोई छोटा मोटा क्षेत्र थोड़े ही है। उत्तर प्रदेश और राजस्थान को इसने अविभाज्य बना दिया है। इसीलिए तीनों प्रदेशों की सरकारों ने सम्मिलित प्रयास कर के देख लिया था। एक दिन मध्यप्रदेश के आई. जी. साहब मिले भाई सुब्बारावजी से। सुब्बारावजी दरअसल संत स्वभाव सम्पन्न बहुत मोहक व्यक्तित्व वाले व्यक्ति हैं। आई. जी. साहब ने विनोद में ही एक बड़ी बात कह दी। बोले—"सुब्बाराव जी हमने तो समर्पण कर दिया अब बागी करे न करे"। और सचमुच सुब्बाराव जी तीसरे अभियान की अगुवाई में विधिवत निकल पड़े। इसमें प्रदेश सरकार का भी आग्रह था।

सुब्बाराव जी को ध्यान आया केवल सरकार को हाँ कर देने से काम नहीं होगा। अपनी टोली बनानी पड़ेगी। इसी क्रम में उन्होंने मुझे भी याद किया और मुझे खुशी हुई उनके आदेश का पालन करने में। हमसे भी पहले इसमें शिरीष भाई (श्री रामजनम सिंह 'शिरीष') शामिल हो गए थे।

एक दिन सुब्बारावजी ने मुझ से कहा—"अन्न व्यवस्था के लिए वादा कई लोग कर चुके, लेकिन प्राप्ति छटांक भर भी नहीं हुई।"

मैंने कहा—"आप चाहते क्या हैं?"

बोले—"आप दो चार दिन अगर इस काम में लग जायें तो शायद कुछ हो जाय।" सुब्बाराव जी आदेश की भाषा बोलना नहीं जानते जब कि वे अभियान के नेता थे। हमारा मुख्य केन्द्र बटेश्वर में था।

मैंने तय किया प्रयास करूंगा, यद्यपि मेरे लिए यह बिल्कुल नया क्षेत्र था। सब कुछ अपरिचित और हम सबके लिए अपरिचित। लेकिन एक महान कार्य से जुड़ गए थे जिसका सही न सही जानकारी जैसा परिचय तो सबको था ही।

दूसरे दिन अपराह्न का वक्त था। मुझे जैन साहब जो बाह के निवासी और विख्यात व्यक्ति थे एक गाँव अहिबरनपुर में पहुँचा कर वापस आ गए। एक पंडित जी को हमारा परिचय अनेक विशेषणों की मदद लेकर उन्होंने दिया था।

कुतूहल तो था ही लोगों में। "आखिर ये कैसे लोग हैं? ये डाकुओं से कैसे निवटेंगे।" इस तरह की जिज्ञासायें भी बहुत थीं। काफी संख्या में गाँव वाले इकट्ठा हो गए। एक सभा हो गई। लेकिन ऐसी सभा जिसमें हमको छोड़ कर बाकी सब वक्ता थे। बिना संयोजक और बिना अध्यक्ष की सभा ऐसी ही हो सकती है।

हमने देखा लोगों के भीतर काफी गुब्बार भरा हुआ है। पीड़ा भी है और रोष भी। हमको पाकर इनको मौका मिल गया है अपने आपको हल्का कर लेने का। सो जमकर सबने सुनाया। बिल्कुल सीधी गाली तो नहीं दी फिर भी कुछ बाकी नहीं रखा।

"आप लोग क्या उद्धार करेंगे? जो डाकुओं के संरक्षक है वही आपके साथ हैं। जो पुलिस की दलाली करते हैं वे

आपके आगे पीछे है।" आदि-आदि। सबका निचोड़ यही था।

बात भी बिलकुल झूठी नहीं थी। आखिर बागियों तक पहुंचाने में मददगार वही लोग हो सकते थे जो उनसे सम्बन्धित थे। इसलिए ऐसे लोगों से पहले सम्पर्क साधना जरूरी था। किसी जादू मन्तर से तो यह काम होने वाला नहीं था। जब तक बागियों में विश्वास पैदा न हो, वे किसी की बात क्यों मानने लगें? जनजीवन पूरा आतंकित, भयभीत और असहाय।

अहिबरनपुर वालों की खरी खोटी सुनने में मुझे खुशी हुई। मैं मूक श्रोता लगभग आधे घन्टे तक बना रहा। इससे सुनाने का उत्साह लोगों का बढ़ता गया। ऐसा लगा जैसे मुझे सुनाकर वे संतुष्ट हो रहे हैं कि हमलोगों ने डाकुओं को ही यह सब सुना दिया हो।

ऊपर-ऊपर से तो सचमुच यही महसूस होता था जैसे बागियों के समर्पण या समापन से इस क्षेत्र की समस्या का समाधान हो जाएगा। परन्तु इससे बड़ी समस्या की जन मन को भय मुक्त करने की। क्षेत्र को आतंक रहित बनाने की। अगर यह काम रह गया तो संत भी बागी दिखाई देगा। हर अपरिचित डाकू लगेगा।

इसलिए हमने सोचा हमारे ऊपर इनका रिहर्सल हो रहा है। अच्छाई को ही बुराई समझ कर सही बुराई को बुराई कहने की हिम्मत तो बने। कभी यह अनमोल पाठ पढ़ाया था संत कबीर ने। कहा था—

अन जाने को सरग नरक है हरि जाने को नाहीं।
जा डर से सब लोग डरत हैं ता डर हम न डराहीं॥

यदि ये अनजाने लोग 'हरि जाने' बन जायें तो बागी समस्या सदा के लिए समाप्त हो जाय। क्योंकि लोग बुज-दिल है तो बागी भी कायर है। लोग अपने घरों में भयभीत छिपे हुए है तो बागी लोग बेहड़ में। रोग दोनों का एक ही है। बागी लोग सामान्य नागरिकों को डराते हैं तो स्वयं भी पुलिस आदि से डरते हैं। यह कहाँ की निर्भयता? कबीर साहब ने कसौटी बता दी है:—

कहहिं कबीर सुख सहज समाऊँ।
आप न डरौं न और डराऊँ॥

जब हमने देख लिया कि इनका रिहर्सल पूरा हो गया, तब मुखर हुए। हमने कहा—

"अब आपकी ओर से हमारा स्वागत पूरा हो चुका। अब तो पूछिए मैं क्यों आया हूँ? मुझे खुशी है कि आपने मुझे देखने की चेष्टा की। लेकिन दुख भी है कि हमारे राज प्रासाद को देखने में प्रारम्भ से अन्त तक आप पाखाने का ही निरीक्षण करते रहे और उसीको प्रासाद मानकर महल का मूल्यांकन कर दिया।'

हमने कहना जारी रखते हुए आगे कहा—"आप सुबह सुबह हमारे घर आए। हमारे हाथ में झाड़ू देखकर 'आपने हमारे पूरे व्यक्तित्व का मूल्यांकन कर दिया। लेकिन मैं कहना चाहता हूँ कि केवल झाड़ू ही नहीं बल्कि झाड़ू भी हाथ में लेना हूँ। रोज सुबह उसी को हाथ में लेता हूँ और उसीके सहारे पूरे मकान की गन्दगी साफ करता हूँ'।

मेरी इन बातों का जैसे जादू की तरह प्रभाव लोगों पर पड़ा। सारा माहौल बदल गया और लगा जैसे मैं भी इनके बीच का इनका अपना होऊँ।

चम्बल का यह एक दिन अविस्मरणीय बन गया। आगे की घटनाओं का वर्णन फिर कभी करूँगा।

('संतों की आध्यात्मिक साधना में महात्मा गांधी का जीवन' पृष्ठ ११० का शेषांश)

प्रकार इष्टदेव कोई भी हो सकता है—राम, शिव, अल्लाह, ईसा। महत्त्व श्रद्धा का है, और श्रद्धा के साथ नामजप का।

गांधीजी ने पाँच के स्थान पर ११ व्रत निर्धारित किये। साधक के लिए उनका पालन और प्रयास आवश्यक है। पाँच को पतंजलि ने यम बताया है। इनमें गांधीजी ने शरीर श्रम, अस्वाद, भयवर्जन, सर्वधर्म समानत्व, और स्पर्शभावना को जोड़ा है।

गाँधीजी का कर्मवीर और सेवा वाला रूप अधिक, प्रबल और उजागर था, पर स्वतः उनके अनुसार वह सब कुछ उनके अध्यात्म मार्ग का अंग था। ईश्वर भक्ति के लिए नामजप में उनकी विशेष आस्था थी।

# शरीर में तीन चक्र

महन्त श्री महावीर दास, भू. पू. संसद् सदस्य, महामंत्री अ. भा. कबीरपंथ समाज
ई. ८ ए.; मुनीरका, नई दिल्ली

सतगुरु कबीर साहब विद्या, बुद्धि और कर्मकाण्ड में उलझा देख कर, जीवों को सत्यानुभूति द्वारा शरीर के अन्दर चक्रों को जानने को कहा। वे मूल शब्द कह गए हैं कि—

जब तक ठीका पुरे न भाई।
तब तक रहो नाम लौ लाई॥

यदि मानव केवल दर्शन शास्त्रों का ही अध्ययन करे तो उसे छह प्रकार के दर्शन शास्त्रों का अध्ययन, मनन, चिन्तन और अभ्यास करना पड़ेगा जिसको अपने जीवनकाल में, इस वर्त्तमान कलियुग में पूरा नहीं कर सकता है। दर्शन शास्त्र हैं—(१) सांख्य (२) योग (३) वेदान्त (४) मीमांसा (५) न्याय (६) वैशेषिक। गुरु द्वारा इन ग्रन्थों का अध्ययन किया जा सकता है। परन्तु इनके अर्थों में "नैको मुनी यस्य मतं" की कहावत चरितार्थ हो जाती है। इसलिए सतगुरु कबीर साहब ने जीव को अपना ही अध्ययन करने को कहा है जिससे मानव परब्रह्म परमेश्वर की अनुभूति करने में पहले आत्मा की अनुभूति कर सके और फिर भक्ति द्वारा, प्रभु को प्राप्त कर सके।

यदि हम दर्शन शास्त्रों का अध्ययन करें तो हमें इनके साथ (१) शिक्षा (२) कल्प (३) व्याकरण (४) निरुक्त (५) छन्द (६) ज्योतिष का भी अध्ययन और मनन करना जरूरी होगा। परन्तु इन ग्रन्थों का जितना ही अध्ययन करते रहें उतना ही और अध्ययन करने को शेष रह जाता है। दर्शन शास्त्रों के साथ वेदांग का भी अध्ययन कर लेने पर भी आज के युग में विज्ञान अपना प्रभाव प्रत्यक्ष रूप में इस प्रकार डाल रहा है कि वैज्ञानिक दर्शन शास्त्रों को पीछे छोड़ते जा रहे हैं। सतगुरु कबीर साहब इसी कलियुग में प्रकट होकर कह गए हैं:—

घर धरती के एक ही लेखा।
जस बाहर तस भीतर देखा॥

इस गूढ़ वाक्य का अध्ययन करने से भी 'भक्ति' मिल जाती है और तब ज्ञान और विज्ञान पीछे रह जाते है। 'भक्ति' को जानने के लिए शरीर के अध्ययन मनन और चिन्तन के साथ कर्म करने के लिए इनके भेदों की जानकारी से ही मानव अपने लक्ष्य, मुक्ति को प्राप्त कर सकता है।

शरीर के अध्ययन में चिकित्सा शास्त्र को छोड़ कर अवस्थाओं का अध्ययन करना होगा। सात प्रकार की अवस्थाएं मानव के शरीर में प्रतिदिन आती जाती रहती है जैसे—(१) जाग्रत (अंग्रेजी में-अवेक) (२) स्वप्न (अंग्रेजी में-ड्रीम) (३) तन्द्रा (अंग्रेजी में-स्लीपी) (४) सुषुप्ति (अंग्रेजी में-स्लीप (५) ध्यान (अंग्रेजी कन्सेण्ट्रेशन) (६) धारणा (अंग्रेजी में-मेडीटेशन), (७) समाधि (अंग्रेजी में-कण्टेम्पमेशन)। इन सातों को ग्रन्थों के अध्ययन, मनन अर्थों से जानना बहुत कठिन है इसीलिए अष्टांग योग और तपादि का अभ्यास प्रारम्भ हुआ। परन्तु ये भी लक्ष्य को प्राप्त कराने में असमर्थ रहे, क्योंकि शारीरिक तीन चक्रों को जाने बिना कुछ भी किया जाए वह लक्ष्य को प्राप्त कराने में समर्थ नहीं होता।

शरीर के अन्दर तीनों चक्र अपने-अपने काम हर पल, हर घड़ी, हर दिन और हर रात करते रहते हैं जो शून्य विन्दु के नीचे ऊपर जाते और आते रहते हैं। यह शून्य विन्दु इस शरीर में कहाँ है इसका भेद चिकित्सा विज्ञान भी नहीं जान सका है। यदि चिकित्सा विज्ञान जान जाता तो चिकित्सक कभी बीमार नहीं पड़ता और शायद मृत्यु पर भी काबू पा लेता।

मानव इन्हीं चक्रों के प्रभाव से छह प्रकार की रतियों से सम्बन्धित होता रहता है। कुछ तो दिखलाई पड़ता है और कुछ को अनुभव से जाना जाता है जैसे—

(१) दास्य रति - सेवा भाव। यह सेवा भाव किसी-किसी में इस प्रकार प्रगट हो जाता है कि केवल सेवा भाव से प्रेम करता है या करती है। वे सेवा में ही प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

(२) सख्य रति—यह केवल अपनी सच्ची भावना से किसी को मित्र या साथी बनाता या बनाती है। वह

उनसे सच्ची बातें कर सन्तुष्टि का अनुभव करता या करती है।

( ३ ) वात्सल्य रति—यह बच्चों के साथ प्रेम करने में सुख का अनुभव कराती है। बच्चे की प्रसन्नता के लिए हर प्रकार का कष्ट सहना और सुखी देखने के लिए हर तरह का प्रेम करना, त्याग करना और काम करना अच्छा लगता है।

( ४ ) शान्त रति—यह मन की कल्पना हैं जो भिन्न-भिन्न प्रकार की सिर्फ कल्पना करके प्रसन्न होता है। होती है, इस प्रकार के शान्त रति करनेवाले फोटो या चित्र या मूर्ति से प्रेम करते हैं।

( ५ ) कान्त रति—पति-पत्नि अर्थात् स्त्री-पुरुष के शारीरिक सम्बन्ध को ही कान्त रति कहा जाता है। यही जब नारी में पूर्णरूप से काम करती है तो पति के साथ जलकर सती हो जाती हैं। और यदि पुरुष में यह काम करती है तो मजनू या फरहाद के जैसा जान दे देता है। इसी कान्त रति का यह साधारण रूप है जिससे सन्तान उत्पन्न होते और घर गृहस्थी बनता है।

( ६ ) अद्‌भुत रति—यह आत्मा और परमात्मा के साथ भक्ति द्वारा सम्भव होता है। मीराबाई का उदाहरण अद्‌भुत रति से दिया जा सकता है। भक्त सूरदास की भक्ति को भी अद्भुत रति कह सकते हैं। गोपियों का उदाहरण भगवान् कृष्ण के साथ अद्भुत रति से दिया जा सकता है। भगवान् राम के साथ जंगल में रहनेवाली भेलनी के साथ भी मानी जा सकती है इत्यादि।

परन्तु ये सभी उपरोक्त कथनों का संचालन शरीर के तीनों चक्रों के द्वारा होता रहता है जिसे सतगुरु कबीर साहब कहते हैं कि 'भेद बिना वेद बेकार है'।

शरीर में जो तीन चक्र काम करते हैं उनके नाम हैं ( १ )—शारीरिक चक्र ( २ )—मानसिक चक्र और ( ३ )—भावनात्मक चक्र अर्थात् आध्यात्मिक चक्र। ये तीनों चक्र शून्य बिन्दू से ऊपर और नीचे चक्कर लगाते रहते हैं। यदि ( १ ) शारीरिक चक्र शून्य बिन्दु से नीचे की ओर आता है तो मनुष्य रोगी बन जाता है। चिकित्सा द्वारा इसी चक्र को दवाई आदि द्वारा शून्य बिन्दु के ऊपर उठा देता है तो वह निरोग हो जाता है। यदि शारीरिक चक्र शून्य बिन्दु पर रुक जाता है तो असाध्य रोग का रूप लेता है और अधिक दिनों तक शून्य बिन्दु पर शारीरिक चक्र के रूके रहने से आत्मा शरीर छोड़ कर निकल जाती है। यदि ( २ ) मानसिक चक्र शून्य बिन्दु से नीचे जाता तो मनुष्य १४ प्रकार के दोषों यथा—क्रोध, काम, असूया, मोह, विजिघित्सा, शोक, परासुवा, मद, ईर्ष्या, निन्दा, कृपणता, भय, लोभ, और आलस से ग्रसित होता रहता है। यदि मानसिक चक्र शून्य बिन्दु पर स्थिर होता है तो पागलपन का दौरा प्रारम्भ होता है। यदि मानसिक चक्र कई दिनों तक रूका रहे तो मनुष्य पागल हो जाता है। अत: मानसिक द्वारा शून्य बिन्दु से मानसिक चक्र को ऊपर उठाने का यत्न करते हैं। यदि ( ३ ) भावनात्मक चक्र शून्य बिन्दु से नीचे की ओर रहता है तो—गुणअवगुण का विचार करता है कल्पना और कलह उत्पन्न होने लगता है, लज्जा पैदा करता है, उदासी पैदा करता है, दुबिधा पैदा करता है, सत्संग और ज्ञान बुद्धि के पास जाने से रोकता है, स्वादों का विवेचन करता है, हर काम को समझता है, मन में संशय पैदा करता है। यदि यह चक्र शून्य बिन्दु से ऊपर रहता हैं तो सात्विक विचार, विश्वास, कर्मठता और सात्विक चरित्र की ओर ले जाता है। इसी की वृद्धि से आध्यात्मिक शक्ति बढ़ती है और तब आत्मा और परमात्मा की अनुभूति करने में समर्थता आती है। इसी ज्ञान को आध्यात्मिक ज्ञान कहते है

आध्यात्मिक ज्ञान भावनात्मक चक्र के शून्य बिन्दु से ऊपर रहने पर ही मानव भक्ति अपना कर भक्त बन सकता है। यदि भावनात्मक चक्र शून्य बिन्दु पर स्थिर हो जाता है तो मानव नास्तिक बन जाता है। वह मनमतिया हो जाता है। कर्मठता उसमें रहती नहीं है। और वह अकर्म कर्म करनेवालों के साथ जुड़ जाता है और वहाँ वह अपने को बहुत काबिल समझने लगता है।

योगियों ने इसी शून्य बिन्दु की खोज में त्रिकुटी तक स्वांस को लाने और सुषुम्ना स्वर तक पहुँचाने का प्रयत्न किया है अर्थात् योगी भी शून्य बिन्दु को खोजने के लिए हठयोग, अष्टांग योग आदि को अपनाते रहे। परन्तु उस शून्य बिन्दु को पा न सके, जिससे शारीरिक चक्र एक समय शून्य बिन्दु पर रुक कर भी उसे भी मौत के घाट उतार देता है।

सतगुरु कबीर साहब ने इसी शून्य बिन्दु को जानने का सहज मार्ग भक्ति बताया है। जो भक्ति को अपनाते हैं उनका भावनात्मक चक्र आध्यात्मिक चक्र बन जाता है और तब वह अपने ही अन्तःकरण में सतगुरु, सृष्टिकर्त्ता और अन्य शक्तियों के दर्शन अनुभूति द्वारा अपने तन-मन्दिर में ही करने लगता है और तब मानवकृत सतोगुण युक्त मन्दिर-मस्जिद तथा कर्मकाण्ड की समाप्ति हो जाती है। आध्यात्मिक चक्र जब बन कर मानव का शरीर, मन्दिर का रूप ले लेता है तो आत्मा परमात्मा की अनुभूति होने लगती और सत्यानुभूति के कारण जगत् को एक सराय समझने लगता है, और सत्यनाम के डोर को पकड़ कर वह निर्मोही, निर्वैर, और निर्भय हो जाता है। ऐसे भक्त सतगुरु की इस वाणी को अपना सकते हैं:—

कबिरा खड़ा बजार में, सब की पूछे खैर।
ना काहू से दोस्ती, ना काहू से वैर॥

## सुभाषित वचन

—जिसका मन वश में है वही जगद्गुरु है।
—मनुष्य का मन ही उसे गरीब या अमीर बनाता है।
—धैर्य रखना कठिन है, पर इसका फल मीठा होता है।
—आनन्द का रहस्य त्याग है।
—कीर्ति जीवन दूध का मक्खन है।
—चरित्र की रक्षा किसी भी मूल्य पर होना चाहिए।
—चिंतन बिना अध्ययन मेहनत खोना है।
—कर्जदार होना सबसे बड़ी गरीबी है।
—जीवन फूल है और प्रेम उसकी सुगंध।
—स्वास्थ्य के बिना सारे सुख व्यर्थ है।
—निर्धनता कोई पाप नहीं है।
—घर का मेल होना पृथ्वी पर स्वर्ग समान है।
—यह दुनिया शैतान की दुकान है।
—यदि भोजन मिलता रहे तो सारे दुख सहे जा सकते हैं।
—विद्या के समान दूसरा कोई नेत्र नहीं।
—बोलना चाहते हो तो सबसे मीठा बोलो।
—अप्रिय बचन कहनेवाला सबके मन का काँटा बन जाता है।
—लक्ष्मी आलसी व्यक्ति को नहीं चाहती।
—लोमड़ी अपनी खाल बदलती है, आदतें नहीं।
—आँखें नीची करके चलनेवाले को ही रत्न मिलते हैं।

# भ्रमित मानव

डा. देवकीनन्दन लाल, भागलपुर, बिहार

आज मानव वैभव विलास से सम्पन्न भौतिकि दुनियाँ में विचरण कर रहा है। पर क्या मानव आन्तरिक सुख-शान्ति का अनुभव कर रहा है ? उत्तर मिलेगा नहीं। आज मानव बाह्य भौतिकि सम्पन्नता से युक्त रहते हुए भी, हर क्षण भय रूपी क्लान्तिमय जीवन जी रहा है। आज के वैज्ञानिक युग में मानव को हर प्रकार की सुख-सुविधा प्राप्त है। जरा सा बटन दबाया अँधेरी रात्रि भी दिन के उजाला में परिवर्त्तित हो जाती है। गर्मी से मानव पीड़ित है, बटन दबाने पर शीतल वायु से गर्मी की भीषणता को दूर कर बसन्त-ऋतु का आनन्द प्राप्त हो जाता है। वातानुकूलित का व्यवहार करने पर मानव ठंढक और गर्म मौसम को भी बसन्त-ऋतु में बदल देता है। आज समय और दूरी भी बहुत कम हो गई है। मोटर-साइकिल, कार, ट्रक, स्टीमर तथा हवाई जहाज के द्वारा हम कई दिनों या महीनों की यात्रा घंटों या मिनटों में तय कर लेते हैं। इन सब वस्तुओं के आविष्कार से जहाँ एक ओर सुख-सुविधा प्राप्त है वहाँ दूसरी ओर इनसे खतरा भी अधिक है। आज बिजली के करेन्ट से कितने लोगों की मृत्यु हो रही है। ट्रक, बस, जहाज तथा हवाई जहाज की दुर्घटनाओं में भी कितने लोग कालकवलित हो रहे हैं। इस युग में तो परमाणुविक हथियारों का भी आविष्कार हो गया है। ये इतना खतरनाक हथियार हैं कि कब सृष्टि का प्रलय हो जायगा, कोई नहीं जानता। रूस और अमेरिका में इस तरह की वैमनस्यता है कि कौन इसका प्रयोग किस वक्त कर बैठेगा, इसका ठिकाना नहीं। एक एटम बम ने जापान के हिरोशिमा नगर में कैसा कहर ला दिया था। नगर के सारे लोग खाक में मिल गये। कितने तो मारे गये कितने विकलांग हो गये। इस बम का असर उसी शहर तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि आसपास के इलाकों में भी थोड़ी बहुत वही स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। जापान जो विश्व में अपनी शक्ति में बेजोड़ था। उसकी रीढ़ ही टूट गयी और तब से आज तक अमेरिका और यूरोपीय देशों के चंगुल में पिसता चला आ रहा है। और आज तो उससे भी अधिक शक्तिशाली हथियारों का निर्माण हो गया है। अब आप जरा कल्पना कीजिये, कल के आने वाले विश्व का क्या होगा ? यदि आज विश्व के राष्ट्र एक दूसरे से अधिक-सम्पन्न बनने की होड़ में, दूसरों के प्रति विद्वेष और वैमनस्यता का त्याग कर, इस परमाणुविक-शक्ति को रचनात्मक कार्यों में लगाये तो विश्व का कितना बड़ा कल्याण हो। लेकिन आज मनुष्य विश्व बन्धुत्व को भूल कर राग और विराग की दुनियाँ में विचरण कर रहा है। धनी व्यक्ति भी क्या आज सुखी हैं ? हर वक्त हर दिन उसके जीवन पर खतरा का बादल मड़रा रहा है। आये दिन आप सुनते आ रहे हैं कि रुपयों के लिए फलाँ को गोली मार दी गई, चाकू से हत्या कर दी गई। धनी व्यक्ति रात-दिन नाना प्रकार की चिन्ताओं और फिक्रों से ग्रसित रहते हैं कि कहीं चोरी-डकैती न हो जाय, सरकार कहीं छापा मारकर नाजायज अर्जन को जब्त न कर ले। वे शारीरिक श्रम के अभाव में भिन्न-भिन्न भयंकर रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं जैसे ब्लड-प्रेसर, मधुमेह, भूख की कमी, अनपच इत्यादि। आप ही सोचें, यह जीवन भी कोई जीवन है, जिससे जीना दूभर मालुम हो। यह क्या है ! गरीबों का शोषण कर, अधिक धन (सम्पत्ति) के संचय का ही तो परिणाम है।

आज अमेरिका और यूरोपीय देश इस भौतिकवादी दुनियाँ से ऊब गये हैं। वे रात-दिन भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिये रुपयों के लिये, मशीन की तरह व्यस्त जीवन से ऊब गये हैं। अब वे आन्तरिक सुख और शान्ति के लिये अध्यात्मवाद की ओर मुड़ रहे हैं क्योंकि सच्चा सुख और शान्ति आन्तरिक आत्म सन्तोष से ही प्राप्त हो सकता है। और यह तभी सम्भव है, जब हम काम, क्रोध, मोह, लोभ, वैभव-विलास का दमन कर आत्म-संयम की ओर मुड़ें। आसक्ति ही बन्धन है।

इसीलिये तो सद्‌गुरु कबीर साहब ने कहा है:—

साईं इतना दीजिये, जामें कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूं, साधु न भूखा जाय॥

हे आत्मा-देव रूप चेतन परमेश्वर, मुझे इतना ही चाहिये, जिससे मेरा, मेरे परिवार का तथा आगत साधु-सन्त तथा अतिथि का भरण-पोषण हो जाय। इससे अधिक की मुझे जरूरत नहीं है। अधिक की कामना करने पर मनुष्यों में शोषण की प्रवृत्ति का उदय होता है जिससे शोषण कर्त्ता तो अमीर बनता जाता है और जिनका शोषण होता है वह गरीब होता जाता है। इसीसे समाज में, राष्ट्र में विषमता का प्रादुर्भाव होता है। वही गरीब वर्ग जब अधिक अभावग्रस्त हो जाता है, तब खूनी-क्रांति को अपनाया करता है। आज जो आप देश ही क्या विश्व के अधिकांश भागों में हत्या, लूट-मार, चोरी और डकैतियों का बोल-बाला देख रहे हैं, यह शोषण का हो फल है। एक वर्ग विलास-वैभव की जिन्दगी जी रहा है और दूसरा वर्ग दाने-दाने के लिए मुँहताज है इसीसे राष्ट्र और विश्व पतन के गर्त्त में डूबता जा रहा है। खूनी क्रान्ति भी कम घातक नहीं है। क्या खूनी क्रान्ति के बल पर चीन में सच्चा साम्य-वाद है? चीन में अभी भी विषमता, वर्ग भेद, द्वेष, घृणा है और दिनों-दिन अधिक व्यापक रूप में पनप रहा है।

इसीलिये तो कबीर साहब की क्रान्ति आत्मसंयम की क्रान्ति है। जिससे हम भी सुखी रह सकते हैं और दूसरों को भी सुखी बना सकते हैं। केवल हृदय का परिवर्त्तन चाहिये। मानव-मानव से प्रेम करना सीखें। यह तभी सम्भव है जब आप शोषण की प्रवृत्ति का त्याग कर अपने में आत्म सन्तोष का अनुभव करेंगे। इसीलिये सन्त-महा-मना कबीर साहब कहते हैं:—

गोधन, गजधन, वाजि धन और रतन धन खान।
जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूरि समान॥

चाहे मनुष्य के पास बहुत सी गायें हों, हाथियों और घोड़ों का झुण्ड हो तथा धन सम्पत्ति और हीरे-जवाहरातों का ढेर ही क्यों न हो, जब तक उसको आत्म-सन्तोष नहीं है। उसका सब धन बेकार (धूलि के समान) है। विपरीत धन से धन प्राप्ति की तृष्णा बढ़ती जायगी और वह मशीन के चक्कों के समान व्यस्त जीवन बना लेता है तो उसे आराम-सुख और शान्ति कहाँ? इस जगत् में बड़े बड़े राजे और महाराजे हो गये हैं लेकिन आज उन्हें कौन जानता है। परन्तु जिन मनुष्यों ने, सन्तों ने मानव कल्याण में, दूसरों के परोपकार में अपने को लगाया उनकी कीर्त्ति सदासर्वदा के लिये कायम है। वैसे व्यक्ति ही भगवान् या परमात्मा के नाम से जाने जाते हैं। भगवान् बुद्ध, भगवान् महावीर, सन्त नाभा साहब, सन्त महामना कबीर साहब, चैतन्य महाप्रभु, राम कृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द तथा महात्मा गान्धी, ये सभी अभी तक अमर है और जब तक इनका सिद्धान्त जीवित रहेगा। ये अमर रहेंगे। व्यक्ति भले मर जाय, पर उनकी कीर्त्ति तथा सिद्धान्त हमेशा अमर रहते हैं।

अतः आप महानुभावों से निवेदन है कि महात्मा कबीर के बताये हुए मार्ग का अनुशरण करें। आज देश को या विश्व को कबीर साहब की वाणियों की कितनी आवश्यकता है इसका अनुमान आप ऊपर दर्शाये गये अभिव्यक्तियों से ही लगा सकते हैं कबीर साहब कितने बड़े साम्यवादी थे कि बिना खूनी क्रान्ति के केवल हृदय का परिवर्त्तन कर लोगों में समतावाद लाने का प्रयत्न किए। आज से बीस-बाइस वर्ष पूर्व रसियन विद्वान् चेकोस्लाव साहब ने कहा था कि "यदि कबीर-दर्शन पचास वर्ष पूर्व रूस में आया होता तो आज रूस का साम्यवाद ही एक अनोखे किस्म का होता।" कितना सुन्दर है कबीर साहब का सिद्धान्त—

कबिरा खड़ा बाजार में, लिये लुकाठी हाथ।
जो घर जारै आपना, चले हमारे साथ॥

कबीर साहब सार्वजनिक स्थान पर खड़े होकर उद्घोष करते हैं कि मेरे पास (हाथ) सत्य, अहिंसा तथा कर्त्तव्य परायणता रूपी अस्त्र (लुकाठी) है। जो व्यक्ति काम क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा तथा असत्य रूपी विकारों का अपने शरीर रूपी घर से त्याग कर सकता है वही व्यक्ति हमारे साथ चल सकता है अर्थात् हमारा अनुयायी बन सकता है। गाँधी जी ने तो पूर्ण रूपेण कबीर साहब के सिद्धान्तों पर चलकर सत्य और अहिंसा के बल पर अँग्रेजी शासन से भारत को मुक्त किया। गाँधीवादी विचार धारा क्या है, यह तो सद्गुरु कबीर साहब का ही मनन तथा चिन्तन है अर्थात् कबीर दर्शन है।

सद्गुरु कबीर साहब की जय

# सिवनी सत्संग सप्ताह के कार्यक्रम

दस अगस्त को सुबह साढ़े आठ बजे से "बीजक" पाठ प्रारम्भ हुआ, दस बजे से ग्यारह बजे तक "रमैनी" शब्द आदि प्रकरणों पर विवेचन किया गया। यह प्रत्येक दिन का कार्यक्रम "धर्माधिकारी श्री मनोहर दास जी शास्त्री साहेब" कबीर बाग, लहरतारा, वाराणसी की अध्यक्षता में सम्पन्न होता रहा। तीन बजे से छः बजे तक महिला मंडल का सत्संग चलता रहा। इस सत्संग में सनातन धर्मावलम्बी तथा जैन सम्प्रदाय की महिलाएँ भी आती थी और भाव भक्ति के साथ आत्म कल्याण के इस कार्य में पूरा भाग लेती रही। इन सबों का उत्साह उत्तरोत्तर सात दिन तक अनन्य श्रद्धाभक्ति के साथ बढ़ता ही रहा। रात्रि में आठ बजे से बारह बजे तक प्रतिदिन विभिन्न विचारधाराओं के आत्म-जिज्ञासु कल्याणार्थी मुमुक्षु सत्संग प्रेमी भक्त हंस जनों का समुदाय विशेष संख्या में एकत्रित होता था और तर्क वितर्क के साथ समाधान पूर्वक सत्संग के कार्यक्रम को विशेष गम्भीरता के साथ पूर्ण किया जाता था। सत्संग मानव-जीवन के लिए कितना उपयोगी है इस पक्ष पर पूर्ण रूप से विवेचन होता था "सत्संग से मानव जीवन का सुधार कैसे होता है।" इस पक्ष को लेकर सन्त श्री जगदीश दास, महन्त श्री मोहनदास जी साहेब ऋषिकेश निवासी का प्रवचन अत्यन्त सारग्राही और रुचिपूर्ण रहा। इसी विषय पर श्री धर्माधिकारी साहेब ने सत्संग की महिमा का सारगर्भित विवेचन किया। सत्संग की साधना से मानवीय तत्त्वों को कितना सहयोग मिलता है और जीवन का कितना सरस और मधुर सुधार होता है इन सभी पक्षों को लेकर वृहद् विवेचन किया गया।

संगति कीजे साधु की हरै और को व्याधि।
ओछी संगति क्रूर को आठो पहर उपाधि॥

सद्गुरु कबीर साहब ने साधु की संगति से जीवन में सुधार लाने का संदेश दिया है। इससे धर्मदास साहेब का कितना बड़ा सुधार हुआ है, उनकी आत्मकथा से ज्ञात होता है। धर्मदास साहब सर्वप्रथम प्रतिमा पूजन में विश्वास रखते हुए आत्म शांति के लिए साधना करते रहे; किन्तु सच्ची आत्म शांति आज तक समुपलब्ध नहीं हो सकी थी। जब से धर्मदास साहब ने सद्गुरु कबीर साहब के दर्शन और सत्संग किए उन्हें यह जानकारी हुई कि आत्म-शांति के लिए आत्माभिमुखी होना आवश्यक है। जब तक हमारी जीवनसाधना स्व स्वरूप अनुसंधान परक नहीं होगी तब तक आत्मदर्शन असंभव है। सद्गुरु कबीर साहब ने धर्मदास साहब को—

जीव दया अरु आतम पूजा।
सद्गुरु भक्ति देव नहि दूजा॥

का उपदेश देकर उनकी सोई हुई चेतना को जगा दिया। इस जागृति से धर्मदास साहब प्रत्येक दिशा में जग गये और जीवन पर्यन्य सत्य का संदेश देते हुए सत्संग की ज्ञान-गंगा में गम्भीरतापूर्वक गोता लगाते रहे। इसी प्रकार अन्य साधकों ने सत्संग से जीवन का निर्माण किया और वे सत्संग की साधना में लगकर कल्याण पथ के पूर्णपथिक बन सकें।

द्वितीय दिन का कार्यक्रम गुरुवार ग्यारह अगस्त को प्रातः "बीजक" पाठ बहुसंख्यक भक्त मंडल की समुपस्थिति में सस्वर मधुर एवं सरस ध्वनि के साथ—

जब हम रहल रहल नहिं कोई।
हमरे माँहि रहल सभ कोई॥

इत्यादि क्रम चलता रहा। बाद में बीजक का विवेचन करते हुए तथा सद्गुरु के वाणी वचनों की गम्भीरता का उल्लेख करते हुए इस "ग्रंथरत्न" का सारग्राही मानव समाज के लिए कितना उपयोग हुआ है इसका विवेचन किया गया। तीन बजे से पुनः महिला सत्संग, सायंकाल संध्या पाठ आरती पूजन एवं आठ बजे से पुनः भक्ति पक्ष को लेकर उपर्युक्त तीनों प्रवक्ताओं के द्वारा रामायण, गीता, भागवत, बीजक तथा अन्य महापुरुषों के ग्रंथों के आधार पर भक्ति की महत्ता पर बल दिया गया। प्रेम श्रद्धा के संयोग से भक्ति का जन्म होता है भक्ति की परिपक्वावस्था को ज्ञान कहते हैं और ज्ञान की समुपलब्धि श्रद्धावान् पुरुष को होती है।

श्रद्धावाँल्लभतेज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञान लब्ध्वा परांशान्तिमचरेणाधिगच्छति ॥

ज्ञान ही जीवन के लिए एवं आत्मबोध के लिए सर्वोपरि साधन है ज्ञान के समान दुनियाँ में कोई दूसरी वस्तु नहीं है। किन्तु इसकी उपलब्धि मन की एकाग्रता रूप योग से प्राप्त होती है। योग से युक्त व्यक्ति राग; द्वेष कलह कल्पना आशा तृष्णा आदि मानसिक विकारों से दूर होकर पूर्णता को प्राप्त होता है जो कि कल्याणार्थी मुमुक्षु साधकों का परम लक्ष्य है। यथा—

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योग संसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥

बारह अगस्त शुक्रवार को सुबह का कार्यक्रम ठीक पूर्व दिन की भाँति प्रारम्भ हुआ। रात्रि का सत्संग भक्तों की भावना के अनुसार 'कर्म विवेचन' पर वृहद् रूप से प्रकाश डाला गया। मनुष्य का शरीर कर्म भूमि है इसलिए जहाँ तक उचित है श्रेष्ठ कर्मों की ओर ही ध्यान होना चाहिए। उत्तम कर्मों द्वारा मानव की प्रगति होती है, मानसिक निर्मलता होती है और मन को निर्मलता मानव जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि है। हमारे कर्म जितने निर्मल, विवेकपूर्ण, परोपकारमय तथा सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय होंगे उतना ही मानसिक संतुलन ठीक रहेगा। अतः कर्मों की निर्मलता एवं स्वच्छता अपने लिए तथा समाज और देश के लिए महान् लाभकारी है। कल्याणार्थी व्यक्ति भी वर्तमान जीवन निर्वाह के लिए स्वयं कर्म करता हुआ अन्य साधकों को प्रेरणा प्रदान करता है। ज्ञानी पुरुष का कर्म सद्गुण सदाचारों से परिपूर्ण होता है और वह अपनी कर्मसाधना से मन के दुर्गुणों को दूर करता हुआ समाज का आदर्शपथ प्रदर्शक बन जाता है। अतः प्रत्येक क्षेत्र में व्यक्ति को व्यवहार की पवित्रता की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए जिससे कि हम "योगः कर्मसु कौशलम्" की साधना का पूरा-पूरा लाभ ले सके। कर्मठ व्यक्ति अपनी जीवन साधना में सफल रहता है एवं कपड़ा, भोजन और मकान की समस्याओं को सरलता पूर्वक हल करता हुआ समाज में आदर्श जीवन का परिचय देता है। सन्त और सद्गृहस्थ प्रत्येक व्यक्ति को कर्म साधना की ओर ध्यान देना आवश्यक है। सद्गुरु कबीर साहब स्वयं कर्म परायण कर्मठ कर्मयोगी थे। किसी दूसरे का सहारा न लेकर अपने बाहुबल पर पूर्व भरोसा रखते थे।

कर बहियाँ बल आपनी छाँड़ि बिरानी आस।
जाके आँगन नदी बहै, सो कस मरे पियास ॥

यदि साधक आध्यात्मिक क्षेत्र से लाभ लेना चाहता है तो सर्व प्रथम व्यावहारिक पक्ष को निर्मल बनाये। अपनी दिनचर्या तथा घर के संगठन में पूर्ण सहयोग दे तो उसकी आध्यात्मिक साधना का फल आत्म शांति—स्व स्वरूपोपलब्धि एवं ब्राह्मी स्थिति में बहुत बड़ा सहयोग प्राप्त होगा। "सर्वेभवन्तु सुखिनः" 'एवं सत्यनाम सत्यनाम सत्यनाम बोल। जय करुणामय सत्यनाम बोल।" की मधुर और बुलन्द ध्वनि के साथ आज का कार्य क्रम सम्पन्न हुआ।

तेरह अगस्त शनिवार का सत्संग क्रम वही "बीजक पाठ महिला सत्संग एवं रात्रि में "ज्ञान" विषय को आधार शिला मान कर तीनों प्रवक्ताओं ने सत्संगी साधकों की वृहद् समुपस्थिति में अपनी-अपनी विचारधाराओं का निवेदन किया।

चौदह अगस्त रविवार को पूर्वक्रमानुसार रात्रि में "साधना योग" विषय को आधार मानकर विवेचन किया गया। साधना से साधक सिद्धि को प्राप्त करता है। अपनी साधना की क्रमबद्धता के द्वारा साध्य को भी हस्तगत कर लेता है। स्वय योग से मन को विषयों की ओर से हटाकर तथा आचार विचार की निर्मलता के साथ मन को संयमी बनाकर पूर्णता की प्राप्ति कर लेता है। इसी पूर्णता के द्वारा योग ससिद्धि की प्राप्ति होती है।

पन्द्रह अगस्त सोमवार को पूर्वक्रमानुसार रात्रि के प्रवचन में "आचार विचार" विषय को लेकर शंका समाधान चलते रहे।

आचारः प्रथमो धर्मः।

प्रथम धर्म आचारण ही है। आचरण से मानसिक संशुद्धि होती है। क्योंकि जैसा भोजन किया जाता है उसी प्रकार मन बनता है—

जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन।
जैसे पीवे पानी, वैसी होवे बानी ॥

विचारों की निर्मलता आहार के ऊपर ही निर्भर है। सात्विक आहार से व्यक्ति का मन सात्विक सत्यान्वेषी,

धर्मपरायण, एवं न्याय, धर्म से परिपूर्ण रहता है। अतः आहार का शुद्धिकरण मन की निर्मलता के लिए परमावश्यक है।

स्मरण शक्ति को विशाल बनाकर जड़ चेतन की ग्रंथियों को शिथिल करना एवं स्व स्वरूप के अनुसंधान पूर्वक आत्म साक्षात्कार करना आहार की ही आधार शिला पर निर्भर है। यथा—

आहार शुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः।
स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः॥

विचारों की निर्मलता पर ही साधक शुद्ध संकल्पों का सम्राट बनता है एवं अपनी कार्य प्रणाली को जीवन के लिए परमोपयोगी बनाता हुआ समाज के देश के तथा राष्ट्र के सर्वतोमुखी हित में संलग्न रहकर अन्तिम अवस्था में शांति प्राप्त करता है। अतः सदाचारों द्वारा एवं आचार विचार की पवित्रता से अपने जीवन को महान् बनाना हम सबका परम कर्त्तव्य है।

सोलह अगस्त मंगलवार का कार्यक्रम प्रातःकाल "बीजक" पाठ से बहुसंख्यक पाठकगण मातृ शक्ति के साथ प्रारम्भ हुआ और सब लोग—

जहिया जन्म मुक्ताहता, तहिया हता न कोय।
छठीं तुम्हारी हूँ जगी, तू कहँ चला बिगोय॥
बाजन दे बाजन्तरी कल कुकही मत छेड़।
तुझे बिरानी क्या पड़ी तू अपनी आप निबेर॥
साखी आँखी ज्ञान की समुझ देखि मन माँहि।
बिन साखी संसार का झगरा छूटत नाँहि॥

इस बीजक की अंतिम साखी का पाठकगण कई बार सस्वर ध्वनि के साथ अपने साप्ताहिक "बीजक पाठ" की पूर्णाहुति की। बाद में भक्त श्री टिक्कन लाल जी तथा उनकी धर्मपत्नी वाता बाई एवं सुपुत्री ताराबाई दामाद श्री सुन्दर लाल जी आदि भक्तों ने पूजन के सहित "बीजक पाठ पूर्णाहुति का कार्यक्रम प्रारम्भ किया। इस कार्य में उपस्थित भक्तहंस जन ने लाभ लिया। तीन बजे से पुनः महिला सत्संग बड़े उत्साह के साथ एवं बहुसंख्यक मातृ वर्ग की समुपस्थिति में प्रारम्भ हुआ। भजन सत्संग एवं नारी धर्म की शिक्षा तथा गृह-कार्य एवं परिवार संगठन में किस प्रकार का समता भाव तथा व्यवहार को निर्मल रखकर एक पूरे परिवार के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए यह परम कर्त्तव्य आप सभी गृह लक्ष्मीं माताओं का है। सत्संग में मनुष्य अपनी कमजोरियों को समझ कर उन्हें दूर करता है। अच्छाइयों को जीवन में संग्रह कर उनका धनी बन जाता है। अतः प्रत्येक गृह स्वामिनी माताओं का परम कर्त्तव्य है कि घर में सुमति और सद्भाव का संचार करती हुई अपने व्यावहारिक जीवन को सरस और निर्मल बनावे।

सायं संध्या पाठ के बाद रात्रि में 'सार शब्द' क्या है? इस विषय पर पूर्वोक्त तीनों प्रवक्ताओं ने अपनी-अपनी सूझ-बूझ के अनुसार विचारधाराओं का सारगर्भित शब्दावली का सहारा लेकर विवेचन किया। सार शब्द के सम्बन्ध में लोगों की विभिन्न प्रकार की धारणायें हैं।

सार शब्द जब आ गये हाँथा।
सकलो काल नवावे माथा॥
सार शब्द निर्णय का नामा।

इत्यादि उदाहरणों के द्वारा सार शब्द का विवेचन करते हैं। वस्तु स्थिति तो यह है कि "सार शब्द" एक पारिभाषिक शब्द समूह है जो कि सन्त संप्रदाय में इसकी बहुमुखी चर्चा चलती है किन्तु सार शब्द यह साक्षात् अपने चेतन स्वरूप आत्मा का ही बोधक है जिसका बोध अपनी साधना के बल पर हो जाता है। वह सार स्वरूप चेतन जीवात्मा का निश्चय कर लेता है कि मैं शरीर से सर्वथा भिन्न अर्थात् प्रकृति से सर्वथा पृथक् अजर, अमर, अखण्ड, अविनाशी, निराधार, असंग चेतन हूं। इसी स्व स्वरूप बोध के लिए सार शब्द का सन्त साहित्य में प्रयोग किया गया है। इस विवेक से हम अपने आप को समझ पाते हैं।

अन्त में सर्वे भवन्तु सुखिनः एवं सत्यनाम सत्यनाम बोल। जय करुणामय सत्यनाम बोल॥ की सरस एवं मधुर ध्वनि के साथ यह साप्ताहिक सत्संग कार्यक्रम की निर्विघ्न पूर्णाहुति हुई।

सत्रह अगस्त को दिन में विभिन्न शंकाओं का समाधान ही सत्संग का अंग बना रहा। रात्रि में सात्विक यज्ञ, चौका आरती दस बजे प्रारम्भ हुई। इस यज्ञ में आमंत्रित बहु

( शेष कवर पृष्ठ ३ पर देखें )

( सिवनी सत्संग सप्ताह पृष्ठ २२० से आगे )

संचपक भक्त मण्डल ने नारियल भेंट किया तथा "चौका आरती एक सात्विक यज्ञ है" इस विषय को लेकर श्री धर्माधिकारी जी साहेब द्वारा प्रवचन हुआ है। इस सात्विक यज्ञ में धर्मदास साहेब को कबीर साहब ने दीक्षा मंत्र दिया था। और हर मांगलिक कार्य की पूर्णाहुति के लिए इस शुभकार्य को करने की प्रेरणा प्रदान की थी। इस यज्ञ में नारियल, पान, सुपारी, अगरबत्ती, कपूर मेवा, मिष्ठान्न, फल-फूल आदि समस्त सामग्री सात्विक रहती है। इससे जीवन में सात्विकता का संचार हो इसलिए इसे गुरु पूजा भी कहा गया है। गृहपति इस यज्ञ की पूर्णाहुति में आगन्तुक सभी सन्तों को यथा योग्य विधि से सम्मानित किया और सब लोग प्रसाद लेकर विश्राम करने की भूमिका निर्वाह किए।

अठारह अगस्त को भक्त श्री टिक्कनलाल जी के भाई, मानक लाल, नेमीचन्द जी लीला साव के यहाँ रात्रि में सात्विक चौका, आरती हुई। पुनः भोज भण्डारा के साथ इस कार्यक्रम को आगामी वर्ष के लिए विश्राम कराया गया।

●

---

## आत्म निवेदन

लेखकों से:—

१—श्री कबीर साहब और सन्त भक्त सम्बन्धी लेख, कविता, कहानी आदि ही प्रकाशित होंगे।

२—लेख स्पष्ट और एक ही पृष्ठ पर लिख कर सम्पादक के नाम भेजना चाहिये।

३—मुद्रित सामग्री की पाण्डुलिपि वापस न होगी किन्तु लेखों वाला अंक ही लेखकों की सेवा में भेजा जायेगा।

४—जहाँ तक हो सरल, सुबोध भाषा का प्रयोग करें। स्पष्ट बड़े अक्षरों में एक तरफ लिखें।

५—विवादग्रस्त लेख छप न सकेंगे। उसके लिये क्षमा करें।

६—लेख को सम्पादक न्यूनाधिक कर सकते हैं।

ग्राहकों से :—

१—ग्राहक महानुभावों को पत्र-व्यवहार करते समय अपना पता स्पष्ट लिखना चाहिए।

२—वार्षिक मूल्य वर्ष समाप्ति के १ माह पूर्व आगामी वर्ष के लिये भेजना चाहिए।

३—पत्रिका हमारे यहाँ से हर मास के ६ या ता० १० को भेजी जाती है। यदि वह समय से आपको न मिले तो १५ ता० के बाद अपने डाक घर से पूछ-ताछ करें तब हमें सूचित करें।

४—वर्ष भर का चन्दा एक साथ आने पर ही ग्राहक बनाये जाते हैं और उसकी रसीद भेजी जाती है।

५—वार्षिक मूल्य १५) रु० श्रीकबीर शान्ति-सन्देश के संपादक के नाम साफ-साफ पता लिखकर भेजें।

६—पत्र-व्यवहार में यदि उत्तर चाहते हैं तो ५० पैसे का डाक टिकट लगा लिफाफा भेजना न भूलें।

७ पत्रिका न मिलने की शिक़ायत या अन्य प्रकार की शिकायत श्रीकबीरशान्ति-सन्देश, श्रीकबीर कीर्ति मन्दिर, काशी संस्था, सी. २६/१ संत कबीर रोड, वाराणसी के पते पर भेजें, जामनगर कदापि न भेजें क्योंकि पत्रिका सम्बन्धी शिकायत पत्र का उत्तर यहीं से प्राप्त हो सकता है।

— सम्पादक

केन्द्रीय पञ्जीकृत संख्या आर० एन० ३३०२३/७७ जिला पं० सं० ७९२/७९

## आवश्यक सूचना

श्री कबीर शान्ति सन्देश के वर्ष ७ का अंक १ से ३ बीजक साखी खण्ड पर आधारित विशेषांक होगा। लेखकों से निवेदन है कि समय को ध्यान में रखते हुए १५ दिसम्बर १९८२ तक तत्सम्बन्धी लेख, कविता अदि भेजने की कृपा करें।

—सम्पादक

श्री कबीर शान्ति सन्देश हिन्दी मासिक पत्र का वार्षिक शुल्क दिसम्बर में समाप्त हो जायगा। अतः आपसे निवेदन है कि वर्ष १९८४ के लिए वार्षिक शुल्क १५ रु० या आजीवन शुल्क २५१ रु० मनिआर्डर द्वारा इसी पृष्ठ पर दिये गये पते पर भेजकर अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करा लें, १९८४ का बीजक साखी खण्ड विशेषांक मार्च के तीसरे सप्ताह में भेजा जायगा।

— श्यामदास शास्त्री

ग्राहक संख्या :

श्री




डाक पञ्जीकृत संख्या : एन० आर० एन० १९६

श्री कबीर-शान्ती-संदेश

मासिक-पत्रिका

सम्पादक कार्यालय :

श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था

सी० २६/१, कबीर रोड,

वाराणसी-२२१००१

श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था, वाराणसी के लिए श्यामदास शास्त्री द्वारा संपादित एवं आर्यावर्त प्रेस, ... रोड, वाराणसी द्वारा मुद्रित

आवरण मुद्रक : पवन प्रिन्टर्स, बड़ी पियरी, वाराणसी।




卐 सत् सत् सोऽहं गुरु 卐 सोऽहं हंस सद्गुरु शरणम् 卐 ॐ श्रीराम सत्यराम सोऽहं गुरु राम 卐

# श्री कबीर - शान्तिसंदेश

मासिक पत्रिका

वर्ष ६ | अंक ११



**मोको कहाँ ढूंढ़े बंदे मैं तो तेरे पास में।**

**सद्गुरु कबीर**

श्री कबीर शान्ति सन्देश के आद्य उद्भावक और श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था के आद्य संस्थापक :—महन्त श्री शांतिदास जी गुरु श्री १०८ श्री पुरुषोत्तमदास जी महाराज साहब, श्री कबीराश्रम, जामनगर [ सौराष्ट्र ]

संवत् २०४० | कबीराब्द ५८३ | नवम्बर १९८३

कहता हूं कहि जातहूं, कहूं बजाये ढोल। स्वासा खाली जात है, तीन लोक का मोल ॥






मूल्य : वार्षिक १५) पन्द्रह रुपये आजीवन २५१) दो सौ इक्यावन विदेश में १८६) वार्षिक

एक प्रति का मूल्य १)५० मात्र


## आवश्यक सूचना

श्री कबीरशान्तिसन्देश के वर्ष ६ के जो जो अंक जिन पाठकों को न मिले हों, सूचित करने का कष्ट करें। उन्हें वे सभी अंक भेज दिये जायँगे। इस वर्ष के अंक ७ वें वर्ष के दो मास के अन्तर्गत भेजे जा सकते हैं।

## श्री कबीर शान्ति संदेश के उद्देश्य

१—विवादों से दूर रहकर सत् का प्रचार एवं प्रसार।

२—श्री कबीर साहब की वाणी एवं उनके उपदेशों की ओर ले चलने का सत्प्रयत्न।

३—प्रेम, दया, सद्भावना, सेवा, एकता, परोपकार एवं सत् चिंतन में प्रवर्तन।


प्रकाशक

श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था

सी. २६/१ सन्त कबीर रोड

वाराणसी – २२१००१

संपादक

श्यामदास शास्त्री




卐 सत सत सोऽहं गुरु 卐 सोऽहं हंसः सद्गुरु शरणम् 卐 ॐ श्री राम सत्यराम सोहं गुरुराम 卐

# श्री कबीर - शान्ति संदेश

वर्ष ६ ] नवम्बर १९८३ कबीराब्द ५८४ [ अंक ११

## चेतावनी

दुनिया अजब दीवानी।
मोरी कही एक न मानी ॥
तजि प्रत्यक्ष सतगुरु परमेश्वर।
इत उत फिरत भुलानी ॥
तीरथ मूरत पूजत डोलै।
कंकड़ पत्थर पानी ॥
विषय वासना के फंदे परि।
मोह जाल उरझानी ॥
सुख को दुख, दुख को सुख माने।
हित अनहित नहिं जानी ॥
औरन को सुख ठहरावत,
आये बनत सयानी ॥
साँच कहौं तो मारन धावै,
झूठे को पतियानी ॥
कहैं कबीर कहाँ लगी बरनौं।
अद्भुत खेल बखानि ॥

—सद्गुरु कबीर साहब

# संपादकीय

मानव को जब अपने कर्तव्य एवं अकर्तव्य कर्मों का ज्ञान होता है तब वह अकर्त्वय कर्मों की समाप्ति का उपाय ढूंढ़ता है। जब तक उसे उपाय नहीं मिलता वह अशान्त रहता है। शान्ति प्राप्त करने के लिए उसे उपाय करना पड़ता है। जब तक वह उसकी शान्ति का उपाय नहीं करता तब तक उसे शान्ति नहीं मिल सकती।

शास्त्रकारों ने कर्तव्याकर्तव्य की लम्बी शृंखला प्रस्तुत कर दी है। उसको उन्होंने अपने स्वार्थ के लिए नहीं अपितु मानव के दुखविनाश के लिए बनाया है। इसी को धर्माधर्म की संज्ञा में बाँधा जाता है। कर्तव्य कर्म ही धर्म है और अकर्तव्यकर्म ही अधर्म। वैदिक काल के परवर्ती संत भी इस विषय में सहमत हैं। वे कहते आये हैं और कहते हैं कि 'दूसरे को कष्ट देना अधर्म है।' अर्थात् दूसरे को कष्ट पहुँचाना कर्तव्य कर्म नहीं है। 'परहित सरिस धरम नहिं भाई, पर पीड़ा सम नहिं अधमाई'। यह गोस्वामी तुलसी दास जी महाराज की उक्ति है।

प्रत्येक प्राणी यही चाहता है कि मुझे सुख ही मिले दुःख नहीं। यह धारणा स्वाभाविक है। किन्तु बबूल का पेड़ बोकर आम का फल कैसे खाया जा सकता है। सुख प्राप्ति का कार्य करने पर ही सुख मिल सकता है। अनजाने में भी व्यक्ति यदि दुःख प्राप्ति का कर्म कर बैठता है तो उसे दुःख मिलना स्वाभाविक ही है। अनजाने में अग्नि में हाथ पड़ने पर वह उसे जला देती है। अज्ञान के कारण इसकी दाहकता समाप्त नहीं होती। उससे जलने का कष्ट अवश्य होगा। कोई रोक नहीं सकता। कष्ट के पश्चात् उसके निवारण का उपाय अवश्य ढूंढ़ा जाता है। यदि जानकर कोई कष्टदायक कर्म किया जाय तब तो वह कष्ट देगा ही। मानव जानता है कि किसी के प्राण लेने पर प्राण दण्ड होता है। वह जानकर भी किसी का प्राण ले लेता है तो उसे प्राण दण्ड मिलता ही है। यह नियम हमारे शास्त्रों में सन्तों की वाणियों में और वर्तमान दण्ड विधान में भी है। सद्गुरु कबीर का कथन है—

जिव मत मारो बापुरा सबके एकै प्रान।
हत्या कबहुं न छूटिहै कोटिक सुनो पुरान॥

जैसे किसी का प्राण लेना अकर्तव्य कर्म है उसी प्रकार चोरी करना भी अकर्तव्य कर्म ही है। इसके लिए भी दण्ड विधान है। यह दण्ड विधान ही उस कर्म का निषेधक है। यदि चोरी की जाती है तो दण्ड मिलेगा ही। प्राणी चोरी के परिणाम से ही भयभीत होता है। यदि उसे चोरी के परिणाम की जानकारी न रहे तो भय नहीं होगा और इस दुष्कर्म से विरत नहीं होगा। शास्त्रों में इसके दण्ड का विधान तो है किन्तु लोक व्यवहार में उसे इसके प्रत्यक्ष फल दिखाई पड़ते हैं। समाज के प्रत्येक प्राणी की यही कामना रहती है कि उसे किसी प्रकार का कष्ट न हो। न्याय शास्त्र के प्रणेता गौतम का कथन है—

सर्वेषां अनुकूल वेदनीयं सुखम्'

जो सबके अनुकूल हो वही सुख है। किसी दुःखी के दुःख निवारण कर्ता को जब दूसरा व्यक्ति देखता है तब उसे सुख होता है यद्यपि उसके दुःख का निवारणकर्ता अन्य है। फिर भी द्रष्टा को सुख का अनुभव होता है। परोपकारी परदुख-निवारण के कष्ट का अनुभव करता ही नहीं। परदुख निवारण का अध्यवसाय सुखमूलक ही होता है जिसका लोभ व्यक्ति को सतत प्रयत्नशील रखता है। यही सन्तों का लक्षण है। संत का पर्याय है पर-दुखकातर। गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने कवियों से कहा है कि जिस कवि ने संत के हृदय को नवनीत के समान माना है ठीक नहीं किया है। कहाँ नवनीत जो अपने दुख से द्रवित होता है और कहाँ सन्त जो पर-दुख से विगलित होता है। वे कहते हैं—

संत हृदय नवनीत समाना कहै कविन पै कहै न जाना।
निज परिताप द्रवहिं नवनीता, पर दुखद्रवै संत सुपुनीता॥

पर-दुख ने जिसके हृदय को द्रवित किया वही संत है। जो इससे द्रवित नहीं हुआ वह संत की श्रेणी में रहने योग्य नहीं है। सद्गुरु कबीर साहेब ऐसे ही संत थे जिन्हें पर-दुःख ने सदा द्रवित किया। उनको मानव के स्वार्थ निरर्थक दिखायी पड़े। परमात्मा कहीं दो होता है? उसका स्थान कहीं निश्चित है? शास्त्रों तथा संतों की वाणी में कोई अन्तर नहीं। ईश्वर एक है। केवल उसके नाम अनेक हैं। ये

(शेष पृष्ठ २२४ पर देखें।)

## मुक्ताकण

शंभुनाथ राय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय

### सबद ( २१ )

राम न रमसि कौन डंड लागा,
मरि जेबे का करबे अभागा।
कोइ तीरथ कोइ मुंडित केसा,
पाषंडमय भरम उपदेसा ॥१॥
विद्या बेद पढ़ि करै हंकारा,
अंतकाल मुष फाके छारा।
दुषित - सुषित तो कुटुंब जेंवावे,
मरन बेर एकसर दुष पावे ॥२॥
कहहि कबीर यह कलि है षोटी,
जो रहै करवा सो निकले टोंटी॥

चूर्णिका :—न रमसि = तू रमता नहीं, तू लीन नहीं होता। कवन = कौन सा। डंड = पाप। मरि जेबे = तू मर जाएगा। का करबे = तू करेगा क्या। हंकारा = अहंकार। छारा = धूल। बेर = बेला, समय, अवसर। एकसर = अकेले। करवा = टोंटीदार लोटा।

अर्थ :—कबीर साहब कहते हैं कि अरे, अज्ञानी जीव, तेरे सिर कौन सा पाप लग गया है कि तू राम में रमता ही नहीं, अरे अभागे, ( अभी तो तू राम को भजता नहीं, किंतु यह निश्चित है कि ) तू मर जाएगा, ( फिर अवसर हाथ से निकल जाने पर ) तू करेगा तो क्या करेगा ? ( अर्थात् जन्म-मरण के चक्कर में फँसा रह जाएगा )। ( इसे भली-भाँति समझ ले कि आवागमन से मुक्त होने के लिए ) कोई तीर्थों में भ्रमण करता है, कोई केश मुड़ा लेता है, कोई पाषंडमय मंत्र और दीक्षा के भ्रम में पड़ा रहता है। कोई विद्या और वेद पढ़कर ( ज्ञान का ) अहंकार करता है किंतु अंतकाल में सभी को धूल ही फाँकनी पड़ती है ( कोई भी परमार्थ को प्राप्त नहीं कर पाता है )। ( यह तो रही विरक्तों की स्थिति, अब गृहस्थों की दशा भी देखें, गृहस्वामी ) दुःख-सुख झेलते हुए कुटुंब का भरण-पोषण करता है किंतु वह भी मरते समय अकेले ही मृत्यु-वेदना को झेलता है ( कोई भी उसकी पीर बटाता नहीं )। वस्तुतः इस कलि की स्थिति ही टेढ़ी है, इसमें तो जो करवा था या जिसे करवा समझा जाता था, वह केवल टोंटी निकलता है ( वह करवा है ही नहीं, उसमें तो केवल रस को गिरा देने का धर्म है, वस्तुतः अज्ञानी साधक की साधना ही व्यर्थ होती है। )

### सबद ( २२ )

अवधू छाड़हु मन-विस्तारा।
सो पद गहहु जाहि ते सद्गति,
पारब्रह्म ते न्यारा ॥१॥
नही महादेव नहीं महँमद,
हरि हजरत किछु नाहीं।
आदम ब्रह्मा नहि होते,
नहीं धूप नहि छाहीं ॥२॥
असियासै पैगंबर नाहीं,
सहस अठासी मूनी।
चंद सुरज तारागन नाहीं,
मच्छ कच्छ नहि दूनी ॥३॥
बेद कितेब न सुम्रिति संजम,
नहीं जवन परसाही।
बंग निमाज न कलमा होते,
रामौ नाहि षुदाई ॥४॥
आदि अंत मन मध्य न होते,
आवस पवन न पानी।
लष चौरासी जिया जंतु नहि,
साषो सबद नबानी ॥५॥
कहहि कबीर सुनहु हो अवधू !
आगे करहु बिचारा।
पूरन ब्रह्म कहाँ ते प्रगटे,
किरतम किन उपराना ॥६॥

चूर्णिका :—अवधू = अवधूत। मन-बिस्तारा = मन की बहक। पद = दशा, स्थिति, चरण। असियासै = असी सहस्र। मच्छ कच्छ = मत्स्य तथा कच्छपावतार। दूनी =

दुनिया। कितेब = कुरान की पुस्तक। सुम्रिति = स्मृतियाँ। जवन = यवन, मुसलमान। परसाही = बादशाही। बंग = बाँग, अजान। आतस = आग। किरतम = जगत्-प्रपंच, कृत्रिम। उपराजा = उत्पन्न किया।

अर्थ :—हे अवधू मन की बहक से विरत हो जाओ। जिससे सद्गति अर्थात् मुक्ति प्राप्त होती है, उस पद को ग्रहण करो ( अर्थात् उसकी शरण जाओ ) वह परब्रह्म सबसे परे है ।।१।। ( वह परब्रह्म शाश्वत है, इस सृष्टि के आदिकाल में तो अकेले वही था, उस समय ) न तो महादेव की सत्ता थी और न मुहम्मद की, हरि और हजरत कोई था ही नहीं। उस समय न आदम होते हैं न ब्रह्मा, न धूप होती है न छाया ।। २ ।। वहाँ न तो ( इस्लाम के अनुसार) अस्सी हजार पंगम्बर होते हैं और ( हिंदू धर्मग्रंथों के अनुसार ) अठासी हजार मुनि गण ही होते हैं। वहाँ चंद्र, सूर्य और तारागण भी नहीं होते, मत्स्य अथवा कच्छप अवतार भी नहीं होते और दुनिया भी नहीं होती ।। ३ ।। वहाँ के वेद, कुरान, स्मृति तथा नियम-संयम कुछ नहीं होते हैं, ( यह ) मुसलमानी बादशाही भी नहीं होती है। वहाँ न अजान होता है, न नमाज होती है और न कलमा होता है, न तो राम की स्थिति होती है और न खुदा की ।। ४ ।। आदि, मध्य और अंत भी नहीं होता; मन की भी सत्ता नहीं होती है, अग्नि, पवन और जल भी नहीं होता। जीव जंतुओं की चौरासी लाख योनियाँ भी नहीं होती, वहाँ न साखी होती है, न बानी होती है और न सबद होता है ।। ५ ।। कबीर साहब कहते हैं कि हे अवधू, सुनो, इसके आगे भी विचार करो कि पूर्ण ब्रह्म ( ईश्वर ) कहाँ से प्रकट हुए और इस जागतिक प्रपंच का विधान किसने किया ।। ६ ।।

---

( संपादकीय पृष्ठ २२२ का शेषांश )

अनेक नाम उसके अनेक रूपों के कारण है। एक रूप राम का है तो एक अल्लाह का और एक गाड का। इस प्रकार ईश्वर के रूप अनेक है तो उनके नाम भी अनेक हैं। यदि ईश्वर के रूप ही धर्म हैं तो ईश्वर के जितने रूप हैं उतने ही धर्म हो जाएगे। धर्म की यह परिभाषा शास्त्रों या सन्तों ने नहीं दी है। प्राणी इसी के लिए लड़ता आया और आज भी लड़ने को तैयार है। भेद बुद्धि चरम सीमा तक पहुँच चुकी है। इसी भेद बुद्धि ने सम्पूर्ण समाज को छिन्न भिन्न कर दिया है। सद्गुरु कबीर ने इस भेद बुद्धि को देखा। उनसे सहन नहीं हो सका। वे द्रवित हो गए और कह पड़े—

'दो ईश्वर कहाँ से आए" जिनके लिए इतना भयंकर कर्म कर रहे हो। वह एक है पर अनेक हैं। अनेक होते हुए भी एक है। वे कहते हैं।

एक ते अनंत अनंत एक हो आया।
परिचय भया जो एकते एकहि माँह समाया ।।

आज हम अपने कर्तव्यों को भूल हो नहीं गये अपितु जानकर छोड़ रहे हैं। हमारा पग अकर्तव्य कर्मों की ओर बढ़ता ही चला जा रहा है हमारा मन हमें शांति से रहने नहीं देता। हम अंतर्मुखी हो अंतरात्मा को नहीं पाते। हमारी आँखों की गतियाँ बाहर की हो गई हैं। ये आँखें बाहर को ही देखती हैं। इनकी बाह्य गतियों को रोकना होगा तभी प्राणियों में स्वयं को और स्वयं में प्राणियों को देख सकते हैं। जब तक हमारी वृत्ति सात्त्विक नहीं होगी; कार्य सर्वजनहित के लिए नहीं होगा, तब तक सुख का अनुभव नहीं कर सकते न समाज ही सुखी हो सकता है।



## आवश्यक सूचना

श्री कबीर शांति संदेश का वर्ष ७, १९८४ से प्रारम्भ हो रहा है। अतः पाठकों से निवेदन है कि सातवें वर्ष का शुल्क भेजने की कृपा करें।

# निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म

आचार्य युधिष्ठिर शास्त्री, दर्शनाचार्य, एम. ए.

श्री साधुबेला संस्कृत महाविद्यालय, सकरकन्द गली, वाराणसी

सगुण और निर्गुण ब्रह्म में तत्त्वतः विचार करने पर सगुण ब्रह्म की सत्ता निर्गुण ब्रह्म से अतिरिक्त नहीं ठहरती क्योंकि यह सगुण ब्रह्म उपाधि[1] विशिष्ट होने से जैसे घटा उपाधि से विशिष्ट होने के कारण उस घटाकाश[2] की सत्ता महाकाश से भिन्न नहीं उसी तरह सगुण ब्रह्म की भी निगुर्ण ब्रह्म से अतिरिक्त[3] सत्ता नहीं है। निर्गुण ब्रह्म की सत्ता व्यापक[4] है और सगुण ब्रह्म की सत्ता व्याप्य है जैसे समुद्र के जल की सत्ता नदी एवं तालाब के जल की अपेक्षा व्यापक है, क्योंकि समुद्र का जल अपरिमित हैं और नदी तालाबों का जल इसके ठीक विपरीत परिमित है। उसी तरह सगुण ब्रह्म की अपेक्षा निर्गुण ब्रह्म की सत्ता व्यापक और अपरिच्छिन्न है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में स्वयं कहा है कि—"अथवाबहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन 'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्। गीता १०।४२। अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् मेरे एक अंश में ही समाविष्ट है अर्थात् जैसे जगत् की अपेक्षा ब्रह्म की सत्ता अधिक व्यापक है" पादोऽस्य विश्वा भूतानि" "सहस्र शीर्षापुरुष," "सहस्रशीर्षदेवम्" इत्यादि श्रुतियों से भी यही बात सिद्ध होती है वैसे ही सगुण ब्रह्म की अपेक्षा भी निर्गुण ब्रह्म की सत्ता अधिक अपरिमित तथा व्यापक है।

इतना होने पर भी दोनो में कोई भी भेद नहीं है, क्योंकि यह जो ऊपर भेद बतलाया गया है वह तो सब उपाधि कृत ही है। सगुण ब्रह्म तथा निर्गुण ब्रह्म में नाम भी तो माया सापेक्ष और माया कल्पित है जब तक माया रहती है तभी तक यह व्यवहार होता है कि ब्रह्म निर्गुण है या सगुण।'

लेकिन यथार्थ ज्ञान होते ही ये सभी[5] भेद छूट जाते हैं। दृष्टान्त द्वारा इस बात को इस तरह समझा जा सकता है—"एक आदमी था। उसकी एक सोने की अँगूठी पानी में गिर गयी। पानी बहुत गहरा था, किन्तु वह तैरता जाता था अतः उसने जब डुबकी लगाई तो उसे पानी में अँगूठी के साथ-साथ एक हीरा भी मिला किन्तु जब तक उसका सिर पानी में ही रहता है तब तक हर्ष होने पर न तो वह चिल्ला सकता है और न ही बोल सकता है यदि वह बोलने की कदाचित् कोशिश भी करे तो उसके मुँह में पानी भर जाएगा इसी लिए जब तक वह पानी में है तब तक अपना अनुभव तथा हर्ष शब्दो में प्रकट नहीं कर सकता, ऊपर आने के बाद ही बोल सकता है। इसी

---

१. कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः।
कार्यं कारतां-हित्वापूर्णं बोधोऽवशिष्यते।शुकरहस्योप०।३।१२

२. मायातत्कार्यं विलयेनेश्वरत्व न जीवता।
यथाकाशो घटाकाशो मठाकाश - इतीरितः॥
—श्री जाबालदर्शनोप० १०।६ ४॥
मयि जीवत्वमीशत्वं-कल्पितं वस्तुतो नहि॥
——सरस्वतीरहस्योप०

स्वपूर्णात्मातिरेकेण-जगज्जीवेश्वरादयः।
न सन्ति नास्ति माया च तेभ्यश्चाहं विलक्षण।
वराहोपनि० २।२१

३, आत्मवेदं सर्वं" छा० उ० ७।२५।१
अहमेवेदं सर्वम् छा० उ० ७।२५।२
एकमेवाद्वयं ब्रह्मनेहनानास्ति किञ्चन। अध्यात्मोप० मं-६३।
निर्विकारो निराकारो निर्विशेषे भिदाकुतः। अ.उ. २२।
एकात्मके परेतत्वे भेदकर्ता कथं वसेत्। तत्रैव २५।
मायाऽविधे विहायैव उपाधीपरजीवयोः।
अखण्ड सच्चिदानन्दं परंब्रह्मावशिष्यते॥ अध्यात्मोप० १।३
मायामात्र मिदं द्वैतम्" मा. का. १।१७
सगुण निर्गुण स्वरूपं ब्रह्म। त्रिपाद्विभूति महानारायणोप०६।१
घटनाम्ना यथा पृथ्वी पटनाम्ना हि तन्तवः।
चिदाभाति सर्वं ब्रह्मैवकेवलम्।
—योगशिखोप० ।४।१७।

४. व्याप्य व्यापकता मिथ्या सर्वात्मेति शासनात्"
—योगशिखोप० ४।४

५. एकः सन्भिद्यते भ्रान्त्या मायया न स्वरूपतः। अ.नो प०५।७।

तरह हम जब तक माया[1] के चक्कर में फँसे रहते हैं तभी तक ब्रह्म ऐसा है वैसा है बोल सकते हैं लेकिन जब स्वयं उसके अन्दर डुबकी लगाये तो बोलने का मौका ही नहीं रहेगा। श्रुति भी कहती है—

"यत्तद्रूपमग्राह्यमगोत्रमचक्षु:"—मुण्डकोपनिषद्

वह दृश्य नहीं है, न ग्राह्य ही है, उसकी इन्द्रियाँ नहीं है चक्षू नहीं है इत्यादि तरह से निर्गुण ब्रह्म में सभी का निषेध है तो वहाँ वाणी कैसे जा सकती है? कबीर साहब भी कहते हैं कि वह निर्गुण ब्रह्म तो—

रङ्ग नहीं रूप नहीं नहीं वर्ण छाया।
निर्गुण निराकार तूही रघुराया॥

श्रुति भी केनोपनिषद् में कहती है—

"यन्मनसा[2] न मनुते येनाहुर्मनोमतं तदेवब्रह्मत्वं विद्धिनेदं यदिदमुपासते।

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषिपश्यति तदेवब्रह्मत्वं-विद्धि ··· (१।५-६वे) इन सभी श्रुतियों का अभिप्राय यही है कि उस निर्गुण ब्रह्म को न तो—

आँखें देख सकती हैं न मन देखता है और न ही इन्द्रियाँ देख सकती है, क्योंकि निर्गुण ब्रह्म रङ्ग रूपादि से रहित तथा उसके अन्दर त्रिपुटी[3] न होने से अर्थात् प्रमाता, प्रमेय, प्रमाण न होने से वह किसी का भी विषय नहीं होता। श्रुति का भी वह विषय नहीं है। तो फिर शंका होती है कि श्रुति तो ब्रह्म का स्थल-स्थल पर बहुत वर्णन करती है तब फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि श्रुति भी वर्णन नहीं कर सकती। उसका वर्णन वह निषेध मुख से ही करती है विधि मुख से नहीं। दृष्टान्त—

एक अच्छे ब्राह्मण की लड़की थी। उसका विवाह हो गया। कुछ दिन बाद वह अपने पिता के घर दीप-मालिका त्योहार करने आई उसका पति भी उसके साथ आया तब उस लड़की की सहेलियाँ झट जमा हो गई और पूछने लगी कि तुम्हारा पति कौन है? उसने जवाब नहीं दिया तो दूसरी सहेली कहती है वह काली टोपी वाले तुम्हारे पति हैं क्या? उसने कहा नहीं। वह मूँछ वाला है क्या? नहीं। इस प्रकार जितने आदमी बैठे थे सभी का निर्देश करके वह पूछती जाती थी और वह नहीं उत्तर देती जाती थी। जब उसने ठीक उसके पति की ओर इशारा करके पूछा तो उसने कुछ उत्तर न देकर सिर झुका लिया। ठीक उसी तरह श्रुति सत्र दृश्य जगत् का निषेध करती हुई जब ब्रह्म का वर्णन करने पहुँचती है तो उक्त लड़की नेति[4] अथवा नव वधू की तरह मौन हो जाती है अर्थात् केवल निषेध मुख से ही वर्णन करती है न कि विधि मुख से। निर्गुण ब्रह्म विविध भेदरहित स्वगत सजातीय तथा विजातीय भेद रहित है, स्वगत भेद क्यों नहीं है। स्वगत भेद जैसे वृक्ष की शाखा और कलियों में जो भेद रहता है उसको स्वगत भेद कहते हैं। वह निर्गुण ब्रह्म में नहीं घट सकता। निर्गुण ब्रह्म वृक्ष सदृश तथा मानव सदृश शाखा डालियाँ या हस्तपादवाला नहीं है सजातीय भी नहीं हो सकता। सजातीय भेद समान-समान में होता है। जैसे वृक्ष-वृक्ष का भेद, मानव-मानव का भेद वह भेद भी निर्गुण ब्रह्म के सदृश और कोई अन्य निर्गुण ब्रह्म न होने से सजातीय भेद बन नहीं सकता। स्वयं श्रुति कहती है—

"एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन। अध्यात्मो० एक अद्वितीय ब्रह्म ही है नाना प्रकार का नहीं और जितनी संसार की चीजें है वे भी उसके अतिरिक्त न होने से सजातीय भेद नहीं घट सकता। इसी तरह विजाजीय भेद भी नहीं घट सकता। एक ब्रह्म के अलावा और कोई चीज नहीं है जो कि विजातीय भेद का साधन कर सके। वृक्ष और पत्थर में जो भेद पाया जाता है

---

१., २. दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ १॥ गीता।
माया विधे विहायैव उपाधी परजीवयो।
"अखण्डं सच्चिदानन्दं, परं ब्रह्मैव शिष्यते॥अन्नायत्योप१।३२
भेददृष्टिरविधेयं सर्वथा तां विसर्जयेत"। महोप० ५।१३।
अद्वितीये परेतत्त्वे निर्विशेषे भिदाकुतः। अध्यातोप० ।२४।

३. जीवात्मपरमात्मैक्या त्रिपुटि रहितापरमानन्दस्वरूपा शुद्ध। चैतन्यात्मिका समाधिः। शांडिल्योप० १ ७२।

४. ब्रह्मामिदं सर्वंब्रह्मणोऽन्यन्नकिञ्चिन" तेजोबिन्दुप० ३ ३२॥
उपादानं प्रपञ्चस्य ब्रह्मणोऽन्यन्न विद्यते।
तस्मात् सर्वप्रपञ्चोऽयं ब्रह्मैवास्ति निचेतरत्॥
योगशिखोप० ४।३।

उसकी परिभाषा ही विजातीय भेद है। वैसे ही निर्गुण ब्रह्म में देशकृत कालकृत, वस्तुकृत, परिच्छेद भी नहीं हैं। ब्रह्म निरवयव, हस्त पादादि रहित) होने पर भी सबका अधिष्ठान है जैसे—सर्प के लिए रज्जु,[1] रजत के लिए शुक्ति का, मृग जल के लिए मरुस्थल अधिष्ठान है तथा स्थाणु के ऊपर भासमान पुरुष के लिए अधिष्ठान जैसा स्थाणु (खम्भा) है, उसी तरह दृश्यमान चराचरात्मक जगत का अधिष्ठान ब्रह्म ही है। वह निर्गुण ब्रह्म है तथा लय चिंतन में भी अन्तिम पर्यवसान निर्गुण ब्रह्म में ही हो जाता है। जैसे—पृथ्वी का लय जल में, जल का लय तेज में, तेज का वायु में, वायु का आकाश में, आकाश का माया में, और माया का लय ब्रह्म में होता है। वही निर्गुण ब्रह्म है। योगी लोग भी योगाभ्यास द्वारा संप्रज्ञात[2] समाधि में पहुँच कर जब असंप्रज्ञातसमाधि में पहुँचते हैं और उस समय जिस तत्त्व का वे अनुभव करते हैं—वही निर्गुण ब्रह्म है। क्योंकि वहाँ तो ध्याता, ध्येय और ध्यान सभी का लय हो जाता है। केवल वह तत्त्वाकार योगी रह ही पाता है। इसलिए असंप्रज्ञात योगी की समाधि का जो तत्त्व साक्षात्कार है, वही निर्गुण ब्रह्म है। भक्त लोग भी जब अपरा भक्ति से उठकर परा भक्ति में पहुँचते हैं तो उनका उस परा भक्ति में जो तत्त्व साक्षात्कार होता है वह निर्गुण ब्रह्म का ही साक्षात्कार है और वही निर्गुण ब्रह्म सबका आधार है तथा व्यापक है क्योंकि चौदह स्वर्ग और सात पाताल इनको एक ब्रह्माण्ड कहते हैं। ऐसे अनन्त ब्रह्माण्ड उसके एक अंश में ही समाविष्ट हो जाते हैं। उसकी व्यापकता अकल्पनीय है। इसीलिए श्रुति भी कहती है कि—"नायमात्मा प्रवचनेनलभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। अर्थात् यह (निर्गुण ब्रह्म) आत्मा प्रवचन करने से तथा बुद्धि के द्वारा (विषय वासना से लिप्त बुद्धि से) गम्य नहीं है।

"अवाङ्मनसागोचरः"।

मन और वाणी से वह ब्रह्म परे है। इसका निर्णय नहीं कर सकते कि इस प्रकार का या इस आकार का है। एक समय की बात है कबीर साहब घूमने जा रहे थे रास्ते में दादू बिजारी का मकान पड़ता था। उन्होने उनको पुकारा तो दूसरे आदमी ने कबीर साहब से कहा कि वे भगवान के पैर दबा रहे हैं। यह सुनकर कबीर साहब को बड़ा गुस्सा आया और कहा—

"दादू भड़वा पैर दबावे उसे न हाथ न पाँव"।

कहने का अभिप्राय यह है कि उस परब्रह्म को (निर्गुण-ब्रह्म) आप देख नहीं सकते उसकी सेवा नहीं कर सकते तथा किसी प्रकार निश्चय नहीं सकते कि वह ऐसा है वैसा है। वह है यह भी नहीं कहा जा सकता, वह नहीं है ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। दृष्टान्त—एक राजा था। उसको बहुत दिन के बाद पुत्र हुआ, लेकिन उसी दिन उसकी वृद्धा माता भी मर गई और एक समय में ये दोनों विरुद्ध कार्य हो गये। कई लोग राजा से पेड़े लेकर चले गये और वे लोग हंसते-हंसते गये तो राजा ने इनको देखा और उसे बड़ा क्रोध आया और राजा ने कहा क्या आप लोगों को मेरी माता जी के मरने से बड़ा आनन्द हुआ? और पुलिस को बुलाकर सबको जेल में डलवा दिया, तो लोगों ने सोचा कि राजा को पुत्र होने की इतनी खुशी नहीं है जितना माता की मृत्यु का दुःख है अतः कुछ लोग पेड़े लेकर रोते हुए जाने लगे राजा ने फौरन हुक्म दिया कि ये सब राजद्रोही हैं इनको फौरन कैद करो क्योंकि मुझको पुत्र हुआ है यह आनन्द इन लोगों से देखा नहीं जाता। वे भी बन्द हो गये। आखिर में एक बूढ़ी औरत राजा के पास गई। वहाँ जाकर वह न हंसी न रोई, चुपचाप खड़ी हो गयी। राजा ने पूछा तुम क्या कहना चाहती हो? बुढ़िया ने झट उत्तर दिया मेरे राजा साहब को पुत्र उत्पत्ति कहने से न तो कोई खशी होती है और न माता की मृत्यु हुई है यह कहने से दुःख होता है। उत्तर सुनकर राजा खुश हो गया और कहने लगा जो तुम्हें मांगना है मांगो बुढ़िया ने कहा कि पहले सभी आदमियों को मुक्त कर दो। तो कहने का अभि-

---

१. सर्पादौरज्जुस-त्तैव-ब्रह्मसत्तैव केवलम्।
प्रपञ्चाधाररूपेण वर्ततेऽतो जगन्नहि॥
—आत्मप्रदोधोप

२. समाधिः समतावस्था जीवात्म परमात्मनो। शाडिल्योप० १.७
ऊर्ध्वपूर्णमधः पूर्णं मध्यपूर्णं शिवात्कम्॥
साक्षाद् विधि मुखोह्येष समाधिः परमार्थिकः॥
—मुक्तिकोप० २।५६।

प्राय यह है कि निर्गुण ब्रह्म को आप "है" ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि 'है' कहेंगे तो किसी के सापेक्ष ही कहना पड़ेगा तो सापेक्ष कोई है ही नहीं। जो कहने वाला है वह भी ब्रह्म ही है और नहीं भी नहीं। कह सकते क्योंकि स्वानुभूतिक विषय होने से अपलाप नहीं कर सकते। यदि ऐसा हो जाय तो उष्ण अग्नि जल के समान शीतल है ऐसा प्रत्यय होने लगेगा। अर्थात् उसका अपलाप नहीं कर सकते। जैसे—

"एक कहौं तो है नहीं, दूइ कहौं तो गार।
है जैसा रहै तैसा, कहै कबीर बिचार ॥१॥

इसका भी अभिप्राय यह है कि उसका वर्णन इस तरह से है ऐसा नहीं कर सकते। संत ज्ञानेश्वर कहते हैं कि -

तिथ ब्रह्म आत्मा ईशु। मया बोला मोडे पैरसु।
न बोलना याही पेसु। आहे जेथ ॥

उस निर्गुण ब्रह्म को तो न ही ब्रह्म कह सकते है, न ईश्वर, न आत्मा। इन सब नामो के तो उसके पास जाने के लिए पैर ही कटे हैं। कुछ न बोलना यही इसके लिए ठीक है। संत तुकाराम भी यही कहते हैं—

"सहज भी आंध का गा निज निराकार पन्थे।
वृत्ति हे निवृत्ति झाली मन न दिसे ते थे।
मो माझे हारपते ठाई जेथिच्या तेथे।
अदृश्य तेचिझाले कांही दृश्यजे होते"।

इस निराकार पन्थ में जाने के बाद वृत्ति यह निवृत्ति हो गई। मन का मनपन चला गया। 'मैं-मैं' यह प्रत्यय और 'मेरा मेरा' यह प्रत्यय उसी ही जगह कहाँ लीन हो गये उसका पता ही नहीं चला और जो दृश्य जगत पहले था वह भी अदृश्य हो गया। इसमें—"वृत्ति हे निवृत्तिझाली" पद बड़ा ही महत्वपूर्ण[1] है उसमें वेदान्त सिद्धान्त भरा हुआ है। वह ऐसा कि ब्रह्म साक्षात्कार में वृत्ति व्याप्ति है लेकिन फल व्याप्ति नहीं। वृत्तिव्याप्ति[2] और फल व्याप्ति क्या चीज है उसके बारे में थोड़ा सा वर्णन करता हूं—'वृत्ति व्याप्ति का काम यह है कि जब अन्तःकरण वृत्ति नेत्रेन्द्रिय द्वारा निकल कर घट की तरफ जाती है तब वह प्रथमतः घट के ऊपर जो आवरण अर्थात् घटावच्छिन्न चैतन्य के ऊपर जो आवरण है उसको भंग करती है बाद में वृत्तियों में प्रतिबिम्बित चैतन्य घट को विषय करता है तो घट विषयक ज्ञान उत्पन्न हो जाता है यहाँ वृत्ति व्याप्ति तथा फल व्याप्ति में व्यक्ति शब्द साहचर्य नियमों व्याप्ति इस अर्थ में नही बल्कि विषय वाचक यह व्याप्ति पद है अर्थात् वृत्ति का विषय वृत्तिव्याप्ति तथा वृत्ति व्याप्ति में प्रतिबिम्बित जो चैतन्य वही फल उसका विषय घटादि वह फल व्याप्ति है। अब शंका उत्पन्न हो सकती है कि चैतन्य तो स्वयं-प्रकाश है फिर घटावच्छिन्न चैतन्य में—

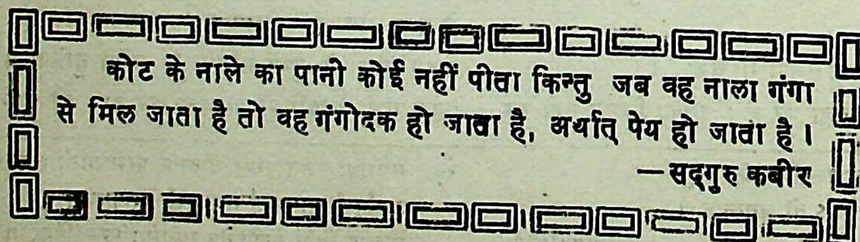
आवरण कैसे आया? उत्तर घटावच्छिन्न चैतन्य सामान्य होने के नाते वह आवरण का विरोधी नहीं, इस लिए घटावच्छिन्न चैतन्य पर आवरण रह सकता है। उसका भंग करने के लिए वृत्ति व्याप्ति आवश्यक है।

---

१. अद्वैत सिद्धान्तमेव हि सत्यं शिवं सुन्दरं सिद्धान्तमास्ति।
शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा ॥ मा. उ. ७

२. फल व्याप्यात्वमेवास्य शास्त्रकृद्भिर्निवारितम्।
ब्रह्मण्यज्ञाननाशाय वृत्ति व्याप्तिरपेक्षिता ॥ प० द०

(यह लेख अगले अंक में समाप्त होगा।)



# कबीर साहब आधुनिक चिंतनधारा के महान् गुरु

यशपाल जी

कबीर साहब की चर्चा करते समय मुझे अपना अज्ञान स्वीकार करने में संकोच अनुभव नहीं हो रहा है। इसका कारण है, स्वयं कबीर साहब ने कभी ज्ञानी होने का गर्व या दम्भ नहीं किया। मेरा यह भी विचार और विश्वास है कि यह निश्चय न हो सकना कि कबीर साहब का सम्प्रदाय या रिलीजन क्या था, मानव के रूप में उनकी महत्ता का बहुत बड़ा प्रमाण है। वे किसी भी सम्प्रदाय की घोषणा और अवलम्ब के बिना मानव मात्र थे। मेरे विचार में जीवन के लिए साम्प्रदायिक आध्यात्मिक विश्वास का सहारा खोजना मानव में आत्मबल अर्थात् अपने भरोसे हो सकने की अनिच्छा और असामर्थ्य है। केवल विश्वास के आधार पर किसी लोकोत्तर निर्देशन और नियमन के सहारे का विश्वास का सहारा मानव के आत्मनिर्णय के गुण और अधिकार को भूल जाना है। मानव व्यक्ति और समाज अपने इस आत्म निर्णय के गुण और अधिकार के प्रयोग से जब भयभीत होता है तभी वह स्वयं को लोकोत्तर शक्ति के निर्देशन और नियमन में छोड़ देना चाहता है और उसके लिए आँख मूंदकर आप्त लोगों गुरुओं या खलीफाओं के शब्द-प्रमाण पर ही चलना चाहता है। मेरे विचार में इस स्थिति को स्वीकार करना मनुष्यत्व खो बैठना है। कबीर साहब की चर्चा के समय सबसे पहले मुझे उनके मानव को मनुष्य बने रहने का उद्‌बोधन और सीख याद आते हैं। कबीर साहब के शब्दों में--

तूं कहता कागद की लेखी।
मैं कहता आँखिन की देखी।।

में हमें सम्पूर्ण लोकायत दर्शन और सांख्य तथा मीमांसा के तत्व लोक सुलभ भाषा में दिखाई देते हैं और यही यथार्थवाद रियलिज्म, इम्पेरीरिज्म, सादर्श लोकायत दर्शन, द्वान्दात्मक भौतिकवाद और व्यावहारिक दर्शन प्रैग्येटिज्म की मूल दिशा जान पड़ती है। इतना ही नहीं, इस प्रकृति और सृष्टि के उद्‌भव के विषय में अपौरुषेय शब्दप्रमाण को न मानकर आँखिन देखी अर्थात् मनुष्य के अनुभव, परख और तर्क के आधार पर जानने का यत्न ही आधुनिक सम्पूर्ण वैज्ञानिक उपलब्धियों का मार्ग है। आज की विकट समस्याओं से भरे जीवन में यदि कोई सहज सुलझाव का मार्ग हो सकता है तो यही कि कागद की लेखी की अपेक्षा आंखिन की देखी अर्थात् परम्परागत मान्यताओं और शब्द प्रमाण या अगमैटिज्म की अपेक्षा अनुभव और परख तथा तर्क का भरोसा किया जाय।

कबीर साहब ने अपने अनुभव तथा तर्क में आधारित दर्शन को बहुत सरल शब्दों में जनगण के लिए स्पष्ट कर दिया है।

साखी आंखी ज्ञान की, समुझ देखु मन मांहि।
बिन साखी संसार के, झगरा छूटत नांहि।।

कबीर साहब केवल इहलौकिक समस्याओं और व्यवहार के लिए ही मानव व्यक्ति और समाज के अनुभव, परख और तर्क के साधन तथा मार्ग को भरोसे लायक मानने का सुझाव नहीं देते परन्तु पारलौकिक अथवा आध्यात्मिक विचार के लिए भी उनकी उपयुक्त साखी में स्पष्ट संकेत है। यदि संसार के झगड़े और बंधन से मुक्ति की कामना है तो आंखी प्राप्त ज्ञान अर्थात् अनुभव तथा तर्क का मार्ग ही लक्ष्य की ओर लेजा सकेगा। इस विषय में भी अनुभव और तर्क का मार्ग अपनाए बिना झगड़ा छूटेगा नहीं जो मार्ग और विश्वास मानव को लौकिक जीवन में मुक्त नहीं कर सकता पारलौकिक मुक्ति कैसे देगा। क्या इसी विचार को ज्ञान मार्ग का मूलभूत नहीं कहा जा सकता? इस भरोसे लायक ज्ञान की बात को कबीर साहब ने लोक सुलभ भाषा में कह डाला है। परन्तु पंडितों तथा अभिजात वर्ग की भाषा में भी यही बात तत्वरूप में कही गई है। उदाहरणतः "सा विद्या या विमुक्तये" अर्थात् ज्ञान वही है जो मनुष्य को मुक्त कर दे। मुक्ति शब्द व्यापक है। उसका अर्थ स्वतन्त्रता, आत्मनिर्भरता तो है ही पारलौकिक या आध्यात्मिक दृष्टि से जन्म मरण से मुक्ति अथवा निर्वाण भी समझ लिया जा सकता है।

प्रसिद्ध साहित्यिक विद्वान् आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को भाषा का डिक्टेटर 'शास्ता' कहा है मैं कबीर

को लोक साहित्य का आधुनिक स्वतन्त्र चिन्तन की विचारधारा का महान गुरु प्रमुख उद्गाता या अपोसल कहना चाहता हूं। यह लोकतंत्र का युग है इसलिए मैं उसे अपना मार्गदर्शक मानना चाहता हूं। काव्य और साहित्य की मीमांसा मेरा क्षेत्र और अधिकार नहीं है। मुझसे भूल भी हो सकती है परन्तु अपना विचार प्रकट करने के लिए साहस करना चाहता हूं। हिन्दी काव्य मीमांसा के दिग्गजों ने कहा है—"सूर सूर तुलसी ससी, उडगन केशवदास" अर्थात् काव्य जगत में सूरदास सूर्य है, तुलसीदास चन्द्रमा है, केशवदास को साधारण चमकता तारा समझ लीजिए। बाकी सब कवि "जुगून" है। आधुनिक युग में और आधुनिक विचार दृष्टि सूरदास, तुलसीदास, केशवदास आदि कवियों को प्रकाश का स्रोत या उद्गम मानने के लिए तैयार नहीं होगी। जो कवि समाज की आंखों पर शब्द प्रमाण और विश्वासमूलक भक्ति की पट्टी बांध कर मुक्ति का मार्ग दिखाने का आश्वासन दे उसे हम प्रकाश दिखाने वाला नहीं मान सकते। सगुण आराधना का मार्ग केवल विश्वासमूलक भक्ति का मार्ग है इसकी तुलना में कबीर साहब के निर्गुण आराधना का मार्ग आंखिन देखो अर्थात् अनुभव द्वारा समर्पित तर्क का मार्ग है। इसी मार्ग को मानव को दिखाई दे सकने वाला और स्वयं अपने ज्ञान का निर्णय और भरोसे से चल सकने का मार्ग कहा जा सकता है इस मार्ग पर चलने से ही समाज साम्प्रदायिक अंधविश्वासों और बोझिल रूढ़ियों से मुक्त होकर चल सकता है। मेरा अनुमान है कि सगुण भक्ति-मार्ग की कविता हमें मुग्धावस्था में ले जाने में इसीलिए समर्थ है कि वह हमें चितंन के उत्तरदायित्व और कष्ट से मुक्त कर देती है और कबीर साहब की निर्गुण भक्ति की कविता हमें मानव के रूप में अपने आत्मनिर्णय के उत्तरदायित्व के लिए सावधान करती रहती है।

आज हमारे देश के समाज के सामने राष्ट्रीय भावात्मक समन्वय और एकता का प्रश्न है। आज हम साम्प्रदायिक पार्थक्य स्थानीय पार्थक्य और जातीय-पार्थक्य की व्याधियों से बुरी तरह पीड़ित हैं। सोचिए यदि हमारे देश के जनगण के चितंन और विश्वास में अंध सगुण भक्ति की प्रवृत्ति के स्थान पर कबीर साहब द्वारा ऐसे कवि द्वारा जिनकी साम्प्रदायिक स्थिति के बारे में कुछ निर्णय नहीं किया जा सकता, जिसे सभी सम्प्रदायों ने अपना समझा प्रतिपादित निर्गुण भक्ति की प्रवृत्ति प्रमुख होती तो शायद हमारे देश का जन-समाज साम्प्रदायिक तथा अन्य पृथकतावादी संघर्षों के अभिशाप और परिणामों से बचा रहता। यह भी सम्भव जान पड़ता कि यह भूखण्ड कबीर सा.के समय का अखण्ड भारत या हिन्दुस्तान बना रहता; कबीर साहब की चितंनधारा न केवल राष्ट्रीय भावात्मक समन्वय और एकता का भरोसा योग्य मार्ग है बल्कि वह मानवमात्र के साम्प्रदायिक, राष्ट्रीय जातीय और साम्प्रदायिक भावात्मक, समन्वय और एकता "नेशनल रेशल और रिलीजस इमोशनल इन्टीग्रेसन" का मार्ग है। वह विश्व मानववता के लिए स्वतंत्र चितंन और भावात्मक समन्वय एवं सामीप्य का मार्ग है।

## सद्गुरु ज्ञान कबीर मंदिर कोरबा में वार्षिक महोत्सव, सत्संग

जय श्री सद्गुरु कबीर धर्मस्थान कुदुरमाल की शाखा सद्गुरु कबीर ज्ञान मन्दिर कोरबा में माघ शुक्ल अष्टमी ता० १०-२-८४ शुक्रवार से माघ शुक्ल दशमी ता० १२-२-८४ रविवार तक सत्संग, भजन कीर्तन का आयोजन है।

माघ पूर्णिमा में प्रति वर्ष होने वाली चौका आरती सद्गुरु मुक्तामणि नाम साहब के सिंहासन कुदुरमाल दिन गुरुवार ता० १६-२-८४ को निश्चित समय पर होगा।

नोट—कोरबा में सर्वमंगला रोड, ईदगाह के पास सद्गुरु ज्ञान कबीर मंदिर स्थित है।

शुभाकांक्षी—आचार्य श्री ज्योतिर्दास शास्त्री
जयश्री कबीर धर्म स्थान कुदुरमाल, सद्गुरु कबीर ज्ञान मंदिर, कोरबा

# भक्ति से मुक्ति

स्वामी सदानन्द शास्त्री, श्री सन्त कबीर कुटी, ब्रह्म सरोवर, कुरुक्षेत्र ( हरियाणा )

"भक्ति निसेनी मुक्ति की, सन्त चढ़े सब धाय।
जिन-जिन मन आलस किया, जनम-जनम पछताय ॥

श्रीकबीर साखी ग्र० पृ० १७३

जन्म-जन्मान्तर से मनुष्य मात्र के अंतःकरण में संस्कार वासना के साथ ही मल (पाप) विक्षेप (चंचलता) और अज्ञान ( आवरण ) चले आ रहे हैं। जब पूर्व जन्म का पुण्य उदय होता है और पाप कर्मों का भोग समाप्त हो जाता है तब उस मानव के हृदय में मुक्ति, भक्ति की इच्छा उत्पन्न होती है। मन कुकृत्यों का पश्चात्ताप करने लगता है। किसी-किसी को सत्संग से, भक्तों, सन्तों के सम्पर्क-दर्शन से भी जागृति हो जाती है। इसे पूर्व जन्म की कमाई समझें। कुछ ऐसा कर्म है जो प्रत्यक्षतः तो बहुत ही बुरा दीखता है, परन्तु उसका फल उत्तम होता है। जिससे अन्तःकरण का मल बिलकुल धुल जाता है। यहीं पर देखने को मिलता है कि—"गहना कर्मणो गतिः"।

अतः कर्म विपाक से पाप का फल भोग द्वारा या निष्काम कर्म द्वारा मल-निवृत्त होकर जब मात्र विक्षेप-रूपी चञ्चलगति से साधक का मन ध्यान, धारणा समाधि में स्थिर नहीं हो पाता। या श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा गुरूपदेश से आत्म-साक्षात्कार करने में असफल होता है। वहाँ भक्ति द्वारा साधक को अन्तःकरण की वृत्तियों को अन्तर्मुख, ऊर्ध्व गमन में सोपानवत् सुलभ हो जाता है असमर्थ विषयासक्त, अल्पज्ञ भी अपने इष्ट तक पहुँच सकता है। विक्षेप को स्थिर कर लेता है। ध्यान, धारणा आदि में मन रुक जाता है। इसीलिए सन्तगण सर्व प्रथम जिज्ञासुओं को भक्त बन कर भक्ति करने को कहते हैं। परम वेदान्ती श्रीशंकराचार्य का वचन है कि—

मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।
स्वात्मतत्त्वानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते ॥

वि० चू०

अर्थात् मोक्ष के सम्पूर्ण साधनों में भक्ति ही श्रेष्ठ साधन है। वह भी आत्मतत्त्व का चिन्तन स्वरूप ही है। भक्ति दो प्रकार की है परा और अपरा। अपरा भक्ति मन्द बुद्धिजनों के लिए लोक में प्रसिद्ध है जिसे प्रायः सकाम भक्ति ही कहा जा सकता है यह अपनी-अपनी रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न इष्टों के रूप में है। अपरा भक्ति द्वारा भक्त अपने इष्ट से अनेक प्रकार की सिद्धियों की याचना करते हुए देखे जाते हैं जिनकी पूर्ति न होने पर वे नास्तिक भी हो जाते हैं। कोई सन्तोष कर बैठ जाता है। ऐसे सकाम भक्ति को सुविज्ञ जन हेय समझते हैं। श्री कबीर वाणी में आया है कि—

"जब लग भक्ति सकाम है, तब लग निष्फल सेव।
कहैं कबीर वह क्यों मिले, निष्कामी निजदेव ॥"

भक्ति अं० साखी पृ० १७४

स्पष्ट है कि जो भक्ति इच्छा लेकर की जाती है वह एक प्रकार का व्यापार है हमारा यह काम होगा तब मैं आप का भजन करूँगा। वस्तु भेंट दूँगा। इसमें कभी सफलता और कभी असफलता स्वाभाविक ही है। इस पर भी भूत, प्रेत, देवी-देवता पत्थर लकड़ी लोहा आदि की पूजा भक्ति करने वालों की बुद्धि तद्वत् ही होती है उनकी गति भी अधः ही समझनी चाहिए। गीता में आया कि—

"यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या, यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥

गीता ९।२५

जो जिसका चिन्तन, मनन, भजन, सेवा करेगा उसकी बुद्धि और संस्कार में वही रहेगा, अन्तिम वही याद आयेगा यह स्वाभाविक है। अन्तिम जैसा संस्कार होगा वैसी ही योनियों में वह जायेगा। जिसका संस्कार अनेक देवता देवियों में होगा वह किस गति को प्राप्त कर सकता है? यथा—

"रही एक की भई अनेक की, वेश्या बहुत भतारी।
कहहिं कबीर काके संग जरहो, बहुत पुरुष की नारी ॥

क्यों कि एक परमात्मा पर ऐसे अधम जीव को विश्वास रहा ही नहीं। बुद्ध के क्षणिकवाद जैसे क्षण-क्षण में भिन्न-

भिन्न इष्ट या देवी देवताओं की स्तुति में जीवन बिता दिया। सही भक्ति हो नहीं पाई। फलस्वरूप मन की चञ्चलता दूर नहीं हो सकी इसी से श्री कबीर साहब ने ऐसे व्यक्ति को वेश्यावृत्तिवत् बुद्धिवाला कहा है। यथा—

"हाथों में माला फिरे, हिरदा डामा डूल।
पग तो पाला में पड़ा भा.न लागे शूल॥"

सु० अ० साखी पृ० १४०

"भक्ति-भक्ति सब कोइ कहे, भक्ति न जाने भेव।
पूरन भक्ती तब मिले कृपा करें गुरुदेव॥"

भ० अ० साखी ५२

"भक्ति उपासना के लिए विचित्र वर्णन मिलता है। इस भेद को जाने बिना भ्रम हो जाता हैं जिसकी निवृत्ति सद्गुरु की कृपा से होती है। जैसे अन्य उपासना तथा भक्ति से चित्त की शुद्धि और एकाग्रता द्वारा कल्याण होता है। वैसे ही सद्गुरु की भक्ति और उपासना से भी—चित्त की शुद्धि एकाग्रता सद्गुरु की प्रसन्नता आदि द्वारा कल्याण होता है।" उपनिषद् वाक्य है—

"सर्वशरीरस्थ चैतन्य ब्रह्मप्रापको गुरुरूपास्यः।"

निरालम्बोपनिषद्

"गुरुभक्ति सदा कुर्याच्छ्रेयसे भूयसे नरः।
गुरुरेव हरिः साक्षान्नान्य इत्यब्रवीच्छ्रुतिः॥

ब्रह्मविद्योपनिषद्

भावार्थ है कि—सम्पूर्ण शरीरस्थ चैतन्य आत्मा में गुरु ही उपास्य देव हैं गुरु भक्ति से, गुरु कृपा द्वारा ही मुक्ति सम्भव हैं। गुरु साक्षात् परमात्मा स्वरूप ही हैं, दोनों में अभेद दृष्टि ही यहाँ कहा है। इसीलिए श्रीकबीर साहब ने गोविन्द से गुरु की भक्ति को श्रेष्ठ बताया है। साथ ही निराकार निर्गुण राम को सद्गुरु में ही कहा है। यथा—

निराकार वह राम है, लहि न सके कोइ अन्त।
जो चाहे आकार युत, तो प्रत्यक्ष गुरु सन्त॥"

अन्यत्र— सा० ग्र० भ० अ०

"ईश्वर ते गुरु में अधिक धारे भक्ति सुजान।
बिनु गुरु भक्ति प्रवीण हूँ, लहै न आतम ज्ञान॥"

गोस्वामी तुलसीदास जी का अनुभव है—

"अन्तर्यामी गर्भगत, साधु सुन्दरी मांहि।
तुलसी पूजे एक के, दोऊ पूजे जाहि॥"

अन्यत्र आया है कि जो गुरु आचार्य मूर्ति में ईश्वर का रूप देखता है उसे गुरु ईश्वर ही उपदेश द्वारा परतत्त्व में जोड़ देते हैं। यथा—"परिपक्वमला ये तानुत्सादन हेतु शक्तिपातेन योजयति परे तत्वे सः दीक्षयाऽऽचार्यमूर्तिस्थ।"

गीता में आया हैं—

"तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥"

गी० ४।३४

इससे सिद्ध होता है कि तत्ववेत्ता (आत्मज्ञानी) सदाचारी निर्लोभी उपदेशक गुरु की सेवा भक्ति ही सर्व प्रथम जिज्ञासुओं के लिए परम कर्तव्य होता है। गुरु मिल जाने पर ही परमात्मा की भक्ति और भक्ति द्वारा मुक्ति हो सकती है। गुरु को खोज विवेकी अन्धविश्वास द्वारा परम्परा गत और ख्याति द्वारा न करे बहुत से प्राणी भक्ति की महत्ता, गुरु की भक्ति और गुरु शब्द का अर्थ न समझ कर आचार्यपीठ; जातिवाद, विद्वता, तथा पद में ही भूल जाते हैं आध्यात्म पथ में यह परम घातक सिद्ध होता है।

गोस्वामी तुलसीदास जी, गुरु नानकदेव जी, सद्गुरु कबीर साहब, नामदेव जी, ज्ञानेश्वर जी आदि सन्तों स्वानुभूति के आधार पर बताया है कि अध्यात्म पथ के पथिक को आरंभ में गुरु-भक्ति और गुरुमूर्ति का ही ध्यान पूजन करना चाहिए क्योंकि सन्त और गुरु की जाति नहीं होती। जिस उपास्य देवादि इष्ट का ध्यान हम करेगें उसको इन आँखों ने तो देखा नहीं। जिस सद्गुरु के साक्षात् दर्शन कर उनसे उपदेश लिया है। जिस वस्तु को प्रत्यक्ष देखा उसका हम एकान्त में व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से एक साथ बैठ कर त्रिकुटी में ध्यान करेगें तो मनोवृत्तियाँ सद्यः वहाँ टिक जायेगी। इसका अनुभव प्रायः सभी ध्यान मार्गी कर चुके हैं। ईश्वर, शंकरादि देवों के ध्यान करते समय तर्क, वितर्क, प्राचीन, आधुनिक मूर्तियों में भेद विभिन्न शास्त्रों द्वारा विभिन्न कल्पना से मन में चञ्चलता पैदा हो जाती है। भक्ति, पूजन, अर्चनादि भी विभिन्न गुरुओं द्वारा भिन्न-भिन्न देखने-सुनने को मिलते हैं। यह भी मन को स्थिर नहीं होने देते। यह रीति भक्ति मार्ग से भिन्न दीखती है। भक्ति में मन स्थिर होना चाहिए, किन्तु सद्गुरुदेव के गुण धर्मस्वरूप हमारे सामने रहता

है शारीरिक गुण, दोष तो त्रिकुटी में ध्यान के समय रहता ही नहीं, मात्र उपदेशादि गुण ही ग्राह्य हैं। गुरुदेव की प्रसन्नता जीवों के कल्याण का हेतु है, साथ साथ समय पर उपदेश मन में शंका भ्रम हो उसका निवारण, और हृदय से आशीर्वाद अत्यन्त हितकारी सिद्ध होता है। भक्ति, सेवा, पूजा आदि द्वारा सद्गुरु प्रसन्न हो जाने पर परतत्त्व परमात्मा के अनुभवगम्य ज्ञान को दुर्लभ होते हुए भी सुलभ बना देते हैं।

भक्ति और ज्ञान मार्ग के लिए जाति विशेष अधिकार बताना अपनी अज्ञानता का परिचय देना है कि हमने कूपमण्डूकवत् एकाङ्गी अध्ययन किया है, अथवा वेद, पुराण, शास्त्र, गीता आदि का अपमान करना चाहते हैं। प्राचीन काल से ही चारो वर्णों में भक्त और ज्ञानी का उल्लेख स्पष्ट रूप से मिलता है। मध्यकालीन युग ( स्मृति पुराण काल ) में यह अधिकार और द्विजाति मात्र के लिए लिखकर कुछ स्वार्थियों ने आज भारत को तीन खण्डों में विभक्त ही नहीं करा दिया अपितु देश में विभिन्न देशी विदेशी सम्प्रदाय और जातिवाद के नाम पर खाई भी खोद दी हैं। गीता में भगवान् कृष्ण के शब्दों में ही उनके उपासक

"अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्य भाक्"

गीता अ० ९।३०

से लेकर ३२ श्लोक तक देखें यथा—

"मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यान्ति परां गतिम् ॥"

गी० ९।३२

नारद-भक्ति-सूत्र में भी स्पष्ट कर दिया है कि भक्तों में जाति, विद्या, रूप, कुल, धन और क्रियादि का भेद, नहीं है यथा—

"नास्ति तेषु जातिविद्यारूपकुल धनक्रियादिभेदः"

नारद भ० सू० ७२

शाण्डिल्य भक्तिसूत्र में चाण्डाल आदि तक को अहिंसा, तप भक्ति आदि में पूर्ण अधिकार कहा है—

"आनिन्द्ययोन्यधिक्रियते पारम्पर्यात् सामान्यवत्"

शा० भ० सूत्र ७८

और तो और भक्ति रस और भक्तिरहस्यवाद के प्रधान ग्रन्थ श्रीमद्भागवत् से भी ये हमारे स्वार्थी बड़े कहाने वाले पण्डितमानी जन दूर ही रहे। यथा—

"भक्त्याहमेकया ग्राह्य श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियसताम्।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ॥"

श्री म० भा० ११।१४।२१

अर्थ—हे उद्धव ? सन्तों का परमप्रिय आत्मा रूप में एक मात्र श्रद्धा-भक्ति से ही वशीभूत होता हूँ। मेरी भक्ति जन्मतः चाण्डालों को भी पवित्र कर देता है। यथा—

"किरात हूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा
आभीरकङ्का यवनाः खसादयः।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः
शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥"

श्री म० भ० २।४।१८

अर्थ—जिनके आश्रित भक्तों का आश्रय लेकर किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कंक, यवन और खस आदि अधम जाति के लोग तथा इनके सिवाय और भी बड़े-बड़े पापी मनुष्य शुद्ध हो जाते हैं, उन जगत्प्रभु भगवान् विष्णु को नमस्कार है। अन्यत्र—

"व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का,
का जातिर्विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्।
कुब्जायाः कमनीयरूपमधिकं किं तत् सुदाम्नो धनं,
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः ॥

इसका भावार्थ सदगुरु कबीर साहब ने अपने इस भजन में इतनी सुन्दर रीति से कहा है कि देखते ही बनता—

"प्रभु तो भक्ति के वश भाई।
जाति वरन कुल रीझत नाहीं ना रीझे चतुराई ॥
करमा कौन अचार कियो है, कब कासी करि आई।
छप्पन भोजन पीछे लागे पहिले खिचड़ी पाई ॥
सेवरी जाति कौन कुल कहिये, जूठ बेर ले आई।
प्रीति जानि ताके फल खाये, तीनों लोक बड़ाई ॥
व्याधा कब आचार कियो है, कब गीता पढ़ भाई।
तुरत गोपाल पकरि ले आया, घड़ी न दूसर बिताई ॥
तिरलोचन नामदेव पीपा, हरि सो हेत लगाई।
सैनरूप ह्वै मर्दन कोन्हा, आप भये हरि न ई ॥
सहस अठासी मुनि यज्ञ में जेमें, तबहु न घंटा बाजे।
कहैं कबीर सुपच के जेमें, घण्ट गगन ह्वै गाजे ॥

अर्थ स्पष्ट है कि उपर्युक्त भक्तिसूत्र, भागवत् और महाभारत तथा विभिन्न पुराणों को भली प्रकार अध्ययन कर के श्री कबीर साहब सूत्र रूप में सारगभित शब्दों द्वारा वर्ण व्यवस्था वालों को ललकारा है कि जाति से बड़े नहीं होते और बड़प्पन पर भगवान् नहीं रीझते। सद्-गुरु की शरणागति और परिचय बिना शरीराभिमानी सभी चमार तुल्य ही हैं यथा—

"बूड़े वड़े वड़ापने, रोम रोम हंकार।
सतगुरू के परिचय विना, चारो वरन चमार।।

कवीर साखी

इस कथा विशेष को देखना हो तो जनक के दरबार में अष्टावक्र के संवाद में वृ. उपनिषद में देखें।

भक्ति का हिन्दी जगत् में प्रादुर्भाव श्री स्वामी रामानुजाचार्य से मिलता है, और वह स्वामी रामानन्द द्वारा दक्षिण भारत से आई तथा सद्गुरु कबीर साहब द्वारा सर्वत्र प्रचारित हुई इसे सभी जानते हैं।

"भक्ती द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानन्द।
परगट करी कबीर ने, सात दीप नौ खण्ड।।

इस भक्ति के जन्म दाता श्री शटकोपाचार्य जो महाराज हैं ऐसा सुना जाता जाता है जो श्वपचकुल में पैदा हुए थे। परा भक्ति द्वारा उन्हें परमात्मा का प्रत्यक्ष साक्षात्कार हुआ और मुक्ति या वैकुण्ठ के अधिकारी बने। पुराणों में प्रह्लाद, शबरी, विदुर, व्याध, निषादराज आदि का वर्णन मिलता ही है कि भक्ति द्वारा इन सबको प्रभु ने अपनाया और उन्हें सद्गति दी। तब यह ढोंग किस काम का कि स्त्री, शूद्र, अन्त्यज, जप, तप, संन्यास, तीर्थ यात्रा, देव पूजा, यज्ञ, ज्ञान, वेदादि अध्ययन या श्रवण के अधिकारी नहीं हैं? यथा—

"जपस्तपस्तीर्थयात्रा प्रव्रज्या मन्त्रसाधनम्।
देवताराधनं चैव स्त्रीशूद्रपतनानि षट्।।

स्वयं कितना भी कुकर्म अभक्ष्य भक्षण, कुदान ग्रहण, दुराचार आदि रावणवत् करें फिर भी यदि वे द्विजाति हैं तो श्रेष्ठ अधिकारी हैं। परन्तु अन्य कितना भी सदाचारी, सद्विचारी शुभकर्मी हो, हेय है। यहाँ तक कि स्त्री जाति मात्र और शूद्र को निम्नस्तरीय बता कर मानवता पर कुठाराघात किया गया, जिसका फल हुआ कि ईसाई और मुसलिम का गुलाम बन कर रहना पड़ा। मुगल कालीन नवाबों के यहाँ द्विरागमन की डोली प्रथम ही भेजनी पड़ी। परमात्मा के नियमों का उलंघन कर स्वार्थियों को ऐसा ही दण्ड भोगना पड़ता है, जो आज मिल रहा है। भक्तों से भगवान् दूर नहीं रह सकता चाहे वह किसी वर्ग का या किसी जाति का क्यों न हो। और भक्ति द्वारा अन्तःकरण के शुद्ध हो जाने पर वह आत्म ज्ञान द्वारा मुक्ति का पूर्ण अधिकारी बन जाता है। उसका अपमान करने वाले को परमात्मा दण्ड दिये बिना नहीं रहता, चाहे वह जिस वर्ग का हो। सन्तों की अनुभूति द्वारा भक्ति का मार्ग अवलोकन कर हम उसका अनुसरण करें और अपना जीवन सुधारें, यहीं इस लेख का उद्देश्य है—

"जब लग नाता जगत का, तब लग भक्ति न होय।
नाता तोड़े हरि भजे, भक्त कहावे सोय।।
कामी क्रोधी लालची, इनते भक्ति न होय।
भक्ति करे कोई सूरमा, जाति वरन कुल खोय।।
जाति वरन कुल खोय के, भक्ति करे चित लाय।
कहैं कबीर सतगुरू मिले, आवागमन नसाय।।,'

भक्ति अं० साखी

विचारणीय विषय है कि ध्रुव, प्रह्लाद, शबरी आदि ने भक्ति हेतु सम्पूर्ण जगत् से नाता तोड़ा, तब प्रभु की प्राप्ति में बहुत थोड़ा समय लगा। मीरा ने भी अपने कुल मर्यादा की भक्ति हेतु समाप्ति कर दी तब प्रभु आकर उसके भजन सुनते थे। भक्तों के हृदय में जब तक कामना काम, क्रोध अभिमान आदि रहेंगे तब तक प्रभु दूर रहेंगे इनके दूर होते ही प्रभु अन्दर ही दीख पड़ते हैं। यथा—

"जब मैं था तब हरि नहिं, अब हरि हैं मैं नाहिं।"

यह कहते सुनते सब हैं किन्तु अपने ऊपर घटाते कम ही है। स्वयं अपने इन दुर्गुणों को अन्दर से निकाल दिया जाए तो चित्त चञ्चलता को छोड़कर भक्ति में तल्लीन हो जायगी। हम तो देखा देखी भक्ति करना चाहते हैं। हृदय में प्रेम है नहीं बाहरी दिखावे से अंतर्यामी प्रभु को प्रसन्न करना चाहते हैं। स्वार्थी मन निस्वार्थपूर्वक सच्चा प्रेम श्रद्धा युक्त भक्ति कर नहीं पाता। कहा है—

"देखा देखी भक्ति का, कबहु न चढसी रंग।
विपति पड़े यो छाड़सी, केंचुली तजत भुवङ्ग॥
टोटे में भगवी करे, ताका नाम सपूत।
मायाधारी मसखरे, केते जमे अकूत॥
निर्पक्षो को भक्ति है, निर्मोही को ज्ञान।
निर्द्वन्द्वी को मुक्ति है, निर्लोभिहि निर्वान॥
विषय त्याग वैराग है, समता कहिये ज्ञान।
सुखदाई सब जीव सो, यही भक्ति परमान॥

भ० अ० साखी ग्रन्थ पृ० १८३-१८४।

"प्रगटत जिमि सद्भक्ति से सहज निजातमदेव।
मिटत द्वन्द्व सब सहज हो, सो अब कहु गुरूदेव॥

बीजक ग्रन्थ में भक्ति के सम्बन्ध में सुन्दर विवेचन है—

"सन्तो? भगती सतगुरु आनी।
नारी एक पुरुष दुई जाथा, बूझहु पण्डित ज्ञानी।
पाहन फोरि गंग एक निकली, चहुँ दिशि पानी पानी॥

हे सन्तो, ज्ञानादि मुक्ति हेतु सद्गुरु संसार में प्रेम श्रद्धा विचार भक्तिरूपी एक स्त्री ले आए उस भक्ति द्वारा वैराग्य और ज्ञान रूपी दो पुत्र (मानव के हृदय में) पैदा किये। इस रहस्य को ज्ञानी पण्डित ही जानते हैं। अथवा हे ज्ञानियो, पण्डितो इसको तो हृदय से समझो। शास्त्रों में आया है कि—मोक्ष के कारण सामग्री में भक्ति ही सब से श्रेष्ठ है। भागवत् में गुजरात प्रान्त में प्रवेश करते ही भक्ति स्वयं कहती है—

"अहं भक्ति रिति ख्याता इमी मे तनयौ मतौ।
ज्ञान वैराग्य नाम्नौ कालयोगेन जर्जरी॥"

अर्थात्—ज्ञान और वैराग्य को उत्पन्न करने वाली भक्ति ही है। यही भक्ति आत्मा परमात्मा या ब्रह्म, जीव को मिलाकर आत्मज्ञान करा सकती है। उपनिषद् वाक्य है कि—विवेक ज्ञान कृपा से विशुद्ध अन्तःकरण वाला प्रेम और भक्ति से जब ध्यान करता है तब अविनाशी निरवयव परब्रह्म परमात्मा का अनुभव करता है। यही अनुभव ज्ञान मुक्ति का स्वरूप है। भक्ति में इतनी शक्ति है कि पहाड़ रूपी मन को फोड़ कर गंगावत् सतत धार रूपी वृत्ति बन जाती है। जहाँ भक्तिरूपी गंगा की धारा बह जाती है सर्वत्र शीतल जलवत् शान्ति, सुख, सद्भावना, एकता, सद्वृत्तिरूपी पानी ही पानी दीखता है, यही सद्भक्ति का फल है। यह शुद्ध भक्ति आज के मन्दिरों आदि के पुजारियों में नहीं दीखती।

ऐसी भक्ति में श्री कबीर साहब उक्त प्रकरण में कहते हैं कि—

"ता पानी दुइ पर्वत बूड़े दरिया लहर समानी"

इत्यादि बी० श० ४९

उस भक्ति-धारा-रूपी गंगा जल में दो पर्वत हिमालय और विन्ध्या भेद भाव और इर्ष्या रूपी द्वन्द्व भाव, डूब गये, समाप्त हो गये। वस्तुतः देखा जाय तो जितने भी उच्च-कोटि के ज्ञानी भक्तों का परिचय हमें संस्कृत और हिन्दी साहित्य से मिलता हैं उनमें राग द्वेष, इर्ष्या आदि द्वन्द्व नहीं है। उनकी भक्तिरूपी धारा में ये संसार और संसारिक वस्तु सब समा गये। वही मुक्ति के भागी बने। इन द्वन्द्वों, भेद भाव, छोटे बड़े में भूले जीव भले जितना बड़े पारखी अभिमानी, ज्ञानी हो, जो जन्म में भी मुक्ति नहीं पा सकते। यही सन्तों का अनुभव है। जिज्ञासु समझ कर अपना अपना मार्ग सुधार ले, द्वन्द्व को छोड़ दें।

## डूमरपारा में सत्संग ज्ञान महायज्ञ साधु भंडारा

बंधवा सरोवर के पास पावन तट पर ग्राम डूमरपारा में दि० २२-२-८४ से २३-२-८४ फाल्गुन बदी षष्ठी, सप्तमी दिन बुधवार, गुरुवार को संत सम्मेलन साधु-भंडारा है। इसमें पंथ के आचार्य शिरोमणि पं० श्री १००८ हजूर उदितनाम साहब आचार्य कबीर पंथ पधार रहे हैं।

निवेदक—महंथ भजन दास
हाल मुकाम तुसार कबीर कुटी के शाखा डूमरपारा
बिलासपुर (म० प्र०)

# सत्पुरुष की भक्ति

( श्रीमती शशिप्रभा )

शहर से दूर एक गाँव में निर्गुण-मतावलम्बी एक साधु कुटिया बनाकर रहते थे। गाँव के लोगों ने ही इन्हें सार्वजनिक भूमि पर बसाया था। इनकी कुटिया के पास ही एक वृक्ष था जिसके नीचे पहले से ही मूर्तिपूजा हुआ करती थी। आस-पास के सभी स्त्री-पुरुष वहाँ आकर पूजन-अर्चन किया करते थे। माँ-बाप के साथ कुछ शरारती बच्चे भी आते थे जो बाबा के नित्य नैमित्तिक कार्यों में व्यवधान डाला करते थे। हर ढंग से समझाने पर भी जब वे न माने तो बहुत सहते-सहते एक दिन बाबा को क्रोध चढ़ा और वे कुल्हाड़ी लेकर वृक्ष को काटने को उद्यत हुए। सोचा न रहेगी बांस न बजेगी बाँसुरी। कुटिया से बाहर निकलकर जा ही रहे थे कि एक हट्टा-कट्टा, आदमी मिला और पूछने लगा—'कुल्हाड़ी लेकर कहाँ जाते हो महाराज !' बाबा ने जवाब दिया—'मैं उस वृक्ष को काटने जा रहा हूँ। आदमी ने आपत्ति करते हुए कहा—'ऐसे हरे-भरे वृक्ष को काटना अच्छा नहीं हैं। परन्तु साधु बाबा अपने निश्चय पर अड़े रहे। आदमी ने भी अपने पक्ष में बल का प्रयोग किया। फिर क्या था—दोनों भिड़ गये। कुछ देर मल्ल युद्ध करने के बाद बाबा ने उस आदमी को धरती सुंघा दी। पराजित हो उसने बाबा से अनुरोध किया—'यदि आप इस वृक्ष को न काटें तो मैं आपको नित्य पाँच स्वर्ण-मुद्रा प्रदान करता रहूँगा। बैठे बैठाये पाँच स्वर्ण मुद्रा नित्य मिले, इसे कौन त्याग सकता है ? बाबा जी स्वर्ण मुद्रा ले आनन्दित मन कुटिया में वापस आ गये।

परन्तु यह शर्त टिकाऊ न रही। तीन-चार दिन स्वर्ण मुद्रा देने के बाद उस आदमी ने शर्त को ठुकरा दिया। फिर क्या था, बाबा जी ने पुनः कुल्हाड़ी उठायी और वृक्ष को काटना चाहा। लेकिन इस बार भी वह मनुष्य वहीं कुटिया के बाहर मिला। बाबा का मन्तव्य जानने के बाद उसको सावधान करते हुये वह आदमी बोला—'यदि अब भी वृक्ष काटने का विचार रखेगा तो तुझे जान से मार डालूँगा। अभी चार दिन पहले जो पराजित हुआ ऐसा कहना दंभ के अतिरिक्त और क्या माना जा सकता है ? बाबा ने उसके बात पर ध्यान नहीं दिया और कुल्हाड़ी चलाना चाहा। आदमी ने प्रतिरोध किया। दोनों में जमकर पुनः मल्लयुद्ध छिड़ गया। इस बार साधु की पराजय हुई और वह आदमी बाबा को आसमान दिखाते हुए उनकी छाती पर चढ़ बैठा और बोला—( कहो तो तेरा गला दबाकर अभी तुझे यमपुर पहुँचा दूँ। साधु बाबा बहुत गिड़गिड़ाये। आदमी ने उन्हें छोड़ दिया। विनम्र ही बाबा ने पूछा—'कृपाकर यह बतलाइये कि आप कौन हो ? और इसका कारण क्या है कि अभी चार दिन पूर्व मैंने आपको पराजित किया था परन्तु आज मुझे पराजित होना पड़ा है'। आदमी बोला—'मैं शैतान हूँ। तुमने मेरे ऊपर पहले जो जय प्राप्त की थी वह तुम्हारी निष्कामता का फल था। उस समय तुम्हारी दृष्टि दूषित नहीं थी इसी कारण तुम मुझ पर विजय प्राप्त कर सके। परन्तु अब मैंने तुम्हें लोभ से मलीन कर दिया। इस बार 'स्वर्णमुद्रा न मिलने के कारण, स्वार्थवश क्रोधित हो तुमने वृक्ष काटने का संकल्प किया था, इसी कारण मैं तुमको हराने में समर्थ हो सका।'

मनुष्य योनि में जिसने भी शरीर धारण किया है उसे जीवनयापन-संबन्धी व्यापार तो करना ही है पर जो निष्काम-भाव से कर्तव्य पालन करता है ईश्वरी-शक्ति उसके साथ रहती है। जो सत्पुरुष सच्चे मन से, निष्काम भाव से ईश्वर की भक्ति करता है उसे ही उत्तम फल मिलता है, वह ईश्वर का प्यारा होता है और वही दैवी-शक्ति का अधिकारी होता है। इसीलिए कबीर साहब ने कहा है—

जब लग भक्ति सकामता, तब लग निष्फल सेव। कहैं कबीर कैसे मिले, निष्कामी निजदेव ॥

# कबीर चिन्तन के बौद्ध स्रोत

प्रस्तुति : श्री रामलखन मौर्य

[ सद्गुरु कबीर व्याख्यानमाला के अन्तर्गत श्री जगन्नाथ उपाध्याय द्वारा २५ अक्टूबर १९८३ को दिये गये प्रवचन का सार-संक्षेप ]

मैं कबीर साहब का उनकी सामाजिक दृष्टियों के लिए भक्त हूँ। यदि कबीर साहब को ठीक ढंग से समझने की चेष्टा की जाय तो इस देश की अनेक ऐतिहासिक गलतियों में सुधार हो सकता है। इसके विपरीत आज कबीर साहब के जन्मस्थान में ही उनका अपमान हो रहा है। आज जो क्रांतिकारी हैं, उन्हें दबाया जा रहा है, जो प्रतिक्रियावादी हैं उन्हें प्रोत्साहित किया जा रहा है। जो व्यवहार में, वर्ग स्वार्थ की पूर्ति में, यथास्थितिवाद में सहायक हैं उनका कबीर समाज स्तुति करता है, इससे मुझे कष्ट होता है।

भारतीय इतिहास का सर्वाङ्गीण अध्ययन आज भी होना बाकी है। इसकी कड़ियाँ आज भी टूटी नहीं है। एक हजार वर्ष की संस्कृति को हम क्रम से अध्ययन कर सकते थे। इस देश में इतने आक्रमण हुए कि वह छिन्न-भिन्न अवश्य हो गया है, इस कारण उसे क्रमबद्ध जोड़ पाना कठिन होता है। हमारे देश का प्राचीन ग्रंथ ऋगवेद है। हम जब भी कुछ अनुसंधान का प्रयास करते हैं तो इसका ख्याल रखते हैं कि हमारे विचार उससे मिलने चाहिए। इस प्रकार अपने विचारों की ऋगवेद से समानता कर अपने टूटे इतिहास को जोड़ने का प्रयास करते हैं। किन्तु हम यह भूल जाते हैं कि यहाँ एक लोक-संस्कृति और दर्शन भी था जिसने पूरे देश को प्रभावित रखा, यहाँ तक कि पूरे विश्व को प्रभावित किया। उदाहरणार्थ पाली, बौद्ध, जैन साहित्य का विशाल इतिहास जो हिन्दु साहित्य से भी अधिक है, उसको हम खोजने का प्रयत्न नहीं करते अतः हमारा अध्ययन अधूरा रह जाता है। यही तथ्य संत कबीर के बारे में भी लागू होता है।

लोग सोचते हैं कि कबीर साहब जो परंपरागत नहीं लगते, कहाँ से आ गये। वे ऐसा प्रकट करते हैं मानों उन्होंने नया नहीं कहा। हाँ, इतना भर स्वीकार करते हैं कि उन्होंने कुछ नये ढंग से कहा। यह आज के बहुत उदार-चेता लेखकों की सम्मति है। लोग उन्हें स्वतन्त्र चिन्तक मानने के लिए तैयार नहीं हैं। इसलिए कबीर साहब को कुछ लोग इस्लाम से और कुछ वेदान्त से जोड़ने की कोशिश करते हैं। किन्तु मेरी दृष्टि में यह स्वीकारना कि कबीर साहब स्वतन्त्र चिन्तन और जीवन दृष्टि के नहीं थे, उचित नहीं लगता।

जब लोग उन्हे वेदान्त की दृष्टि से देखते है तो वैष्णवों और रामानुजाचार्य से जोड़ कर उनकी व्याख्या करते हैं कुछ लोग शांकर वेदान्त से उनकी व्याख्या करने लगते हैं क्योंकि उनकी कुछ बातें उससे मिलती हैं।

मुझे इस बात का काफी दर्द है कि पिछले पचास वर्षों से कबीर साहब की इतनी गलत व्याख्या हो रही है। वेदान्ती बना कर लोंगो ने उन्हें छिपा दिया।

आज से २५०० वर्ष पहले वेद के विरोध में यहाँ एक सशक्त स्वर खड़ा हुआ जिसका कहना था हम कर्मकाण्डी यज्ञवादी; हिंसावादी नहीं हैं, हम अहिंसक हैं, अन्तरवादी हैं, वाह्यवादी नहीं हैं। हमारा धर्म मन से प्रारम्भ होता है। धर्म वाह्य नहीं है। जिस वाह्य धर्म की व्याख्या करते हैं वह धर्म नहीं कामनाओं, इच्छाओं की पूर्ति है। इस प्रकार इस देश में दो प्रकार की धाराएँ विकसित हुईं। प्रश्न यह है कि यदि कबीर कर्मकाण्डी नही हैं तो किस धारा के हैं। यह बहुत मोटी बात है कि यदि उनका धर्म मन योग के अन्दर है तो वह हिंसा प्रधान नहीं है। उनका धर्म बाहरी दिखाई पड़ने वाला धर्म नहीं, गुनने, अनुभव करने वाला धर्म हैं। वह वाह्य कर्मकाण्डियों के विरुद्ध है। वैष्णव भी कभी अवैदिक थे, वे आज वैदिक हैं। वैष्णव शैव दोनो कहते थे कि वेद प्रामाणिक नहीं है। कहीं विरोध होने पर आगम प्रमाण होगा वेद नहीं। यह रामानुजार्चाय थे जिन्होने वेद के प्रमाण की स्थापना की और कर्मकाण्ड को मान्यता दी वैष्णव जो पहले जात-पांत के विरोधी थे जात-पांतवादी हो गये। आज कबीरपंथी महात्मा, विद्वान कबीर साहब को अपने से विपरीत धारा से जोड़ने में अपनी प्रतिभा का और

ज्ञान का सम्मान समझते हैं।

मेरा कहना है कबीर साहब वेद विरोधी हैं। वेद-विरोध कोई बुरी बात नहीं है, गाली नहीं है एक संस्कृति है। भारतीय संस्कृति की पूरी व्याख्या कभी भी मात्र वर्ण-आश्रम व्यवस्था द्वारा सम्भव नहीं हो सकती। कबीर साहब इस क्रांतिकारी विचारधारा के वाहक हैं। उनकी जीवन दृष्टि वास्तव में नयी थी। उन्होंने सम्पूर्ण को ललकारा। यह एक नवीन सांस्कृतिक उद्‌बोधन था जो कबीर साहब द्वारा किया गया।

बौद्ध तत्वज्ञान और जीवन दृष्टि से कबीर साहब कितने नजदीक हैं। एक मार्ग निरोध का है—कोई भी स्वीकार अस्वीकार के बिना नहीं है। हमारे अस्तित्व की सुरक्षा और विस्तार के लिए सम्बन्ध स्थापित होते हैं जो राग-द्वेष मूलक होते हैं। फिर उनकी सुरक्षा के लिए कानून बनाये जाते हैं। जो सुधारक होते हैं वे व्यक्ति की इच्छा पर, चिन्तन पर प्रहार करते हैं। धर्म के प्रारम्भ के लिए निषेध आवश्यक है। जो धर्म निषेध नहीं करता वह सद्धर्म नहीं हो सकता। एक तेजस्वी दर्शन का कार्य है कि वह हमारे सामाजिक जीवन का विश्लेशण करे और उसके अन्तर्विरोधों के लिए उसे धिक्कारे और तब अपने मत की स्थापना करे। बुद्ध ने यही किया। उन्होंने आम जीवन के विरोध एक आन्दोलन खड़ा किया। इसी आन्दोलन को कबीर साहब ने आगे बढ़ाया।

कबीर साहब की साखियों तथा पदों का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए श्री जगन्नाथ उपाध्याय ने कबीर साहब के निषेध पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए कहा—कबीर साहब का यह प्रयास आज की नेतागीरी नहीं है। उन्हें धर्म का दर्द है, मनुष्य के कल्याण का दर्द है। कबीर साहब ने जो कुछ कहा वह राजसत्ता लेने के लिए नहीं कहा। उन्हें समाज में स्वार्थ की पीड़ा नहीं है। उन्हें इस बात की पीड़ा है कि मनुष्य सत्य से दूर है। कबीर साहब के पास अपना अनुभव है। वे अपना अनुभव सामने रख कर दूसरों का खण्डन कर रहे हैं।

स्वानुभव के स्तर पर कबीर और बुद्ध में समानता स्थापित करते हुए श्री उपाध्याय ने कहा कि भगवान बुद्ध इतिहास में सर्वप्रथम अनुभववादी हैं। उन्होंने प्रथम अपने जीवन में सभी दर्शनों का आचरण किया। और समाधान न मिलने पर स्वयं चिंतन कर समाधान पाने का प्रयत्न किया। और बुद्धत्व न मिलने पर उन्होंने कहा कि आज तक का ज्ञान झूठा था। मुझे अब जो ज्ञान मिला है वह आज तक मेरा पिछला देखा-सुना नहीं था। आज तक का जो मेरा सम्बन्ध बना था, जो मेरा जीवन था, जो मेरा व्यक्तित्व था उसे आज मैंने अपने हाथों तोड़ दिया है। जो अपने को अपने हाथों तोड़ नहीं सकता वह हमारे साथ न चले। हम जिस राग-द्वेष के ज्ञान के साथ जीते हैं, उसे तोड़ना होगा। यही बुद्धत्व था। प -पग पर कबीर साहब भी यही कहते हैं। इस प्रकार स्वानुभव और निषेध के बिन्दु पर कबीर और बुद्ध शुरू होते हैं। यह भारतीय संस्कृति का हृदय है जिसे बुद्ध और कबीर ने समझा था।

बुद्ध और कबीर निषेधवादी और स्वानुभववादी थे। कोई भी ज्ञान शाश्वत नहीं होता। और जब तक ज्ञान शाश्वत नहीं होगा तभी वह नयी नयी परिस्थितियों में विकसित होगा, जीवित रहेगा। बुद्ध नयी-नयी परिथितियों में जीवित रहे और प्रेरणा के स्रोत रहे।

साधना और दृष्टि के सन्दर्भ में कबीर और बौद्ध चिंतन की समानता की विवेचना करते हुए श्री उपाध्याय ने बतलाया कि कबीर शून्य में स्नान करना चाहते हैं। वे कहते हैं – मैं शून्य-अभाव—में स्नान कर रहा हूं। नागार्जुन ने कहा —यह जगत नहीं है, तुम बंधे नहीं हो। जगत हुआ ही नहीं। इतना बड़ा निषेध एक बौद्ध ने किया। और यह तथ्य 'नहीं होना है' परमार्थ यह है कि 'नहीं हुआ'। और कबीर कहते हैं —"तू मैं की सीमाएँ टूट गयीं जब शून्य में स्नान किया। जहाँ मुनि लोग भी जा नहीं पाते, क्योंकि उनकी सीमा है, मैं इस सीमा को पार कर गया हूं।"

जो ईश्वर आत्मा को नहीं मानते—योग, निर्माण को मानते हैं, वे मनोवादी हैं। वह मन को मानना है। मनुष्य की सारी समस्या सारा अस्तित्व उसका मन है। यहीं पर उसका योग, धर्म, अध्यात्म खड़ा होता है। मन में राग-द्वेष, मोह है। केवल साधना से ये समाप्त नहीं होंगे, क्योंकि इनका आश्रय मन ही है। इसलिए मन अगर बच जायगा तो राग, द्वेष, धर्म समाज व्यवस्था फिर आयेगी। अतः मन को उन्मन करो। मन को उलट दो। मन के दो पीठ हैं। एक संसार है— आसक्ति, कामना और इच्छा है।

इस मन को उलटने पर मन उनमन हो जाता है। योगी को संसार दिखाई देगा शादी व्याह है, बाल बच्चे हैं किन्तु वे उनमन है, क्योंकि वे जानते हैं कि मन से संसार, अध्यात्म, मन से भोग और मन से ही मोक्ष है। यह स्थिति वैदिक शास्त्रों में कहीं नही मिलती। हजारों वर्षों तक बौद्ध दर्शन में केवल इसी बात पर लिखा गया कि किस प्रकार मन को उनमन किया जा सकता है। हम सोचें—कबीर साहब को जब चिन्तन कहां से मिला, यह शून्य में स्नान करोगे जब सीमाओं को तोड़ दोगे, तब मन उनमन होगा। शून्य अभाव नहीं होता। जगत की व्याख्या 'नहीं होने' से होती है। जो शून्य होता है वह 'सब होता' है, जो 'होता है।' वह सीमित, अपूर्ण, खण्डित होता है। शून्य सर्व होता है जो शून्य में स्नान करता है वही योगी सम्पूर्ण का कार्य कर सकता है। हम अपने देश, अपनी जाति, परिवार का काम करते हैं, सर्व का नहीं करते। सर्व का हमे ज्ञान ही नहीं है। हमने अपने को खण्डों में बाँट रखा है। कबीर कहते हैं कुल खोया कुल ऊबरे ...... । हम अस्तित्वों के घेरे में बैठे हैं। कबीर साहब का ईश्वर निर्गुण है। अगर कुल तोड़ दो तो सब कुल में रहेगा।

मन संसारी, रागी, द्वेषी है। यदि मन को उनमन कर दिया जाय तो यही भोग मोक्ष हो जाय, यही संसार मोक्ष हो जाय। जब मन उलटता है, परावृत्त होता है तब सहज सुख का बोध होने लगता है। बौद्धों का सहज यान यहीं से प्रारम्भ होता है। वह कहता है—हम जगत को सब कुछ स्वीकार नहीं करते। हम निर्वाण और संसार दोनों को स्वीकार करते हैं। संसार को छोड़ कर नहीं संसार में निर्वाण है। हमारी संस्कृति भोगवादी नहीं। भोग-मोक्षवादी है। यह उभयवादी नहीं अभेदवादी है। भोग का परिष्कार ही मोक्ष है ऐसा हमारी संस्कृति मानती है। कबीर साहब कहते हैं—कहीं जाना नहीं है, यहीं रहना है और यहां रहते हुए लेशमात्र आसक्त नहीं होना है। वे बारम्बार कहते हैं—'मन मनहि समाना'। मन को आकाश, गगन कहते हैं। जैसे आकाश खण्डित नही है वैसे ही उनमन व्यक्तित्व वाले व्यक्ति का मन खण्डित नहीं होता। इस उनमन की स्थिति में जाओ, फिर भोग का निषेध न करो, ऐसी स्थिति में जो भी स्वीकारोगे वह परमात्मा की भूमि पर स्वीकारोगे, वह राग द्वेष, मोह के लिए नहीं, संसार के कल्याण के लिए करोगे। ऐसी स्थिति के जीवन को कबीर साहब ने सहज समाधि और और बौद्धों ने सहजशील कहा है।

वज्रयानी विद्वानों द्वारा 'निरंजन' की साधना पर लिखे गये साहित्य की चर्चा करते हुए अन्त में आपने कहा कि कबीर साहब की जो नयी साधना, नयी जीवन दृष्टि थीं उसे समझने में बौद्ध परम्परा बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

## आवश्यक सूचना

श्री कबीर शान्ति सन्देश हिन्दी मासिक पत्र का वार्षिक शुल्क दिसम्बर में समाप्त हो जायगा। अतः आपसे निवेदन है कि वर्ष १९८४ के लिए वार्षिक शुल्क १५ रु० या आजीवन शुल्क २५१ रु० मनी-आर्डर द्वारा सम्पाक श्री कबीर शान्ति सन्देश हिन्दी मासिक सी. २६।१ संत कबीर रोड, वाराणसी के पते पर भेजकर नवीनीकरण करा लें। १९८४ का बीजक साखी खण्ड विशेषांक मार्च के तीसरे सप्ताह में भेजा जायगा।



# भीमगढ़ की मंगल मूर्ति

गत १६ सितम्बर को अचानक बैठे ही बैठे कुछ ही क्षणों में भक्तशिरोमणि मंगल मूर्ति श्री मंगल दास जी अपने समृद्धशाली परमसुशील विस्तृत परिवार को छोड़कर तथा दिन में ग्रामवासी व्यक्तियों से घरके सभी आबाल वृद्ध, नर, नारी शिशु-समाज से बड़ी प्रसन्नता से साथ प्रसन्न मुद्रा में वातचीत करते हुए एकाएक ध्यान मग्न होकर समाधि में लीन हो गये।

अन्तिम अवस्था की प्रकाशमयी छवि का दर्शन करने वाले आपके सुपुत्र श्री छविलाल द्वारा ज्ञात हुआ कि ऐसा शुभ अवसर तो बहुत ही कम लोगों को नसीब होता है— निराशा और व्याकुलता के कोई भी चिन्ह नहीं दिखाई दिये और सत्यनाम का संस्मरण करते रहे उस समय उनकी मुख मुद्रा प्रसन्नता से ओत-प्रोत थी।

चारों तरफ खबर बिजली सी दौड़ गयी और सगे सम्बन्धियों नेमी प्रेमियों के आने का तांता लग गया एवं समुचित समय पर समाधि कार्य सम्पन्न हो गया।

१ अक्टूबर शनिवार "चलावा चौका" धार्मिक विधि सम्पन्न करने के लिये धर्माधिकारी श्री मनोहरदासजी शास्त्री साहब के पास दो महापुरुषों का जाना हुआ और वाराणसी से कबीर कीर्तिमंदिर के व्यवस्थापक एवं श्री कबीर शान्ति सन्देश के सम्पादक श्री श्यामदास जी शास्त्री साहब तथा गाजीपुर से गोस्वामी श्री राजपति शास्त्री साहब को तार द्वारा आमन्त्रित किया गया। विभिन्न स्थानों के विद्वान महात्माओं के साथ श्री धर्माधिकारी साहब अपने निश्चित समय पर आकर शनिवार की रात्रि में विधिविधान पूर्वक इस कार्य को प्रारम्भ किये।

भीमगढ़ ग्राम, वेन गंगा नदी के सुरम्य तट पर बसा है। यहाँ आने में प्रत्येक व्यक्ति को भयंकर परिस्थिति का सामना करना पड़ता है। वायु मंण्डल की प्रतिकूलता होने पर भी नरनारी भक्त हंसजनों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी और सिवनी बरघाट, लालवरी, वैहर, परसवाड़ा, नैनपुर, बम्हनी, धन्सौर, कोयलारी, कान्ही-वाड़ा, चिरचिरा, पलारी, भोमा टोला, गोपालगज, छपारा, आदेगांव; नरसिंहपुर, कहानी बरगी, मोहगांव, आदि विभिन्न स्थानों से नातेदारों का पूरा समुदाय आ गया।

रात्रि में ११ बजे चौका प्रारम्भ हुआ और मंगलदास जी के परम श्रद्धालु पूरे परिवार एवं आगन्तुक भक्त-समाज ने नारियल भेंट किया। ३ बजे रात्रि में यह विधि-पूर्ण होते ही श्री धर्माधिकारी साहब मंगलदास जी के दुखी परिवार को सान्त्वना प्रदान करते हुये कहा कि सत्यलोक वासी श्री मंगलदास जी की आत्मा को शान्ति प्राप्त होने के लिये मंगलकामना करें जिससे उन्हें चिर शान्ति मिले। उनके प्रभावशाली जीवन से शिक्षा ग्रहण करते हुए उनके पद चिन्हों पर चलने का प्रयत्न करें। उनका परोपकारी परिश्रमी जीवन पूरे परिवार के लिये अनुकरणीय है। उनका अपने घर पर पूर्ण शासन था, उनमें घर के संगठन को बनाये रखने की अपूर्व क्षमता थी, भावभक्ति की ओर उनका पूरा लक्ष्य था, और उनकी प्रत्येक व्यक्ति को परखने की पूरी पहुंच थी। अवधिया समाज तथा अन्य समाजो में उनकी पूरी धाक थी। यह उनका स्वाभाविक जीवन ही उनको सभ्य समाज में महान् बनाकर लोकप्रिय बनाया था।

धर्माधिकारी साहब के सरल सात्विक तथा सरस जीवन से प्रभावित होकर पूरे परिवार ने कई बार सात्विक चौका आरती कराकर दीक्षामन्त्र लिया और कण्ठी बंधवायी। आपका परम प्रेमी परिवार भावभक्ति से परि-पूर्ण रहे और हमेशा शुभकर्मों में प्रीति रखे यही सद्गुरु से प्रार्थना है। मगलदास जी के हरे भरे परिवार को चाहिये कि उनका आशीर्वाद ग्रहण करते हुए भावभक्ति में लगा रहे।

इस परिवार की एक विशेषता देखने को मिली कि— परिवार के किसी भी व्यक्ति में निराशा का भाव दिखाई नहीं दिया, यह मंगलदास जी की भावभक्ति तथा संत-सेवा एवं सत्संग का साक्षात् फल है। आपके परिवार में विचार वान् विवेकी सज्जन महापुरुष आते ही रहते हैं। बाबा श्री वैजनाथ जी का आपके साथ बहुत ही प्रेम था।

दूसरे और तीसरे दिन दोनों विद्वानों के प्रवचन हुये उन्होंने मानव जीवन की सार्थकता पर प्रकाश डाला गया।

अमरपुरी ले चलु हो सजना।
अमरपुरी की साँकर गलियाँ, अड़बड़ है चलना।
ठोकर लगी गुरु ज्ञान की उधर गये झपना॥
वही अमरपुर लागि बजरिया, सौदा है करना।
वही अमरपुर संत बसत है, दरसन है लहना॥
सत समाज सभा जहँ बैठी, वही पुरुष अपना।
कहत कबीर सुना भाई साधो, भवसागर तरना॥

●

## आत्म निवेदन

**लेखकों से:—**

१—श्री कबीर साहब और सन्त भक्त सम्बन्धी लेख, कविता, कहानी आदि ही प्रकाशित होंगे।

२—लेख स्पष्ट और एक ही पृष्ठ पर लिख कर सम्पादक के नाम भेजना चाहिये।

३—मुद्रित सामग्री की पाण्डुलिपि वापस न होगी किन्तु लेखों वाला अंक ही लेखकों की सेवा में भेजा जायेगा।

४—जहाँ तक हो सरल, सुबोध भाषा का प्रयोग करें। स्पष्ट बड़ अक्षरों में एक तरफ लिखें।

५—विवादग्रस्त लेख छप न सकेंगे। उसके लिये क्षमा करें।

६—लेख को सम्पादक न्यूनाधिक कर सकते हैं।

**ग्राहकों से :—**

१—ग्राहक महानुभावों को पत्र-व्यवहार करते समय अपना पता स्पष्ट लिखना चाहिए।

२—वार्षिक मूल्य वर्ष समाप्ति के १ माह पूर्व आगामी वर्ष के लिये भेजना चाहिए।

३—पत्रिका हमारे यहाँ से हर मास के या ६ ता० १० को भेजी जाती है। यदि वह समय से आपको न मिले तो १५ दिनो के बाद अपने डाक घर से पूछ-ताछ करें तब हमें सूचित करें।

४—वर्ष भर का चन्दा एक साथ आने पर ही ग्राहक बनाये जाते हैं और उसकी रसीद भेजी जाती है।

५—वार्षिक मूल्य १५) रु० श्रीकबीर शान्ति-सन्देश के संपादक के नाम साफ-साफ पता लिखकर भेजें।

६—पत्र-व्यवहार मे यदि उत्तर चाहते हैं तो ५० पैसे का डाक टिकट लगा लिफाफा भेजना न भूलें।

७—पत्रिका न मिलने की शिकायत या अन्य प्रकार की शिकायत श्रीकबीरशान्ति-सन्देश, श्रीकबीर कीर्ति मन्दिर, काशी सस्था, सी. २६/१ संत कबीर रोड, वाराणसी के पते पर भेजें, जामनगर कदापि न भेजें क्योंकि पत्रिका सम्बन्धी शिकायत पत्र का उत्तर यहीं से प्राप्त हो सकता है।

—सम्पादक

केन्द्रीय पञ्जीकृत संख्या आर० एन० ३३०२३/७७ जिला पं० सं० ७९२/७९

## आवश्यक सूचना

श्री कबीर शान्ति सन्देश के वर्ष ७ का अंक १ से ३ बीजक साखी खण्ड पर आधारित विशेषांक होगा। लेखकों से निवेदन है कि समय को ध्यान में रखते हुए १५ दिसम्बर १९८२ तक तत्सम्बन्धी लेख, कविता आदि भेजने की कृपा करें।

—सम्पादक

श्री कबीर शान्ति सन्देश हिन्दी मासिक पत्र का वार्षिक शुल्क दिसम्बर में समाप्त हो जायगा। अतः आपसे निवेदन है कि वर्ष १९८४ के लिए वार्षिक शुल्क १५ रु० या आजीवन शुल्क २५१ रु० मनिआर्डर द्वारा इसी पृष्ठ पर दिये गये पते पर भेजकर अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करा लें, १९८४ का बीजक साखी खण्ड विशेषांक मार्च के तीसरे सप्ताह में भेजा जायगा।

— श्यामदास शास्त्री

ग्राहक संख्या :

श्री




डाक पञ्जीकृत संख्या : एन० आर० एन० १४६

**श्री कबीर-शान्ती-संदेश**

मासिक-पत्रिका

सम्पादक कार्यालय :
श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था
सी० २६/१, कबीर रोड,
वाराणसी-२२१००१

श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था, वाराणसी के लिए श्यामदास शास्त्री द्वारा संपादित
एवं आर्यावर्त प्रेस ... रोड, वाराणसी द्वारा मुद्रित
आवरण मुद्रक : पवन प्रिन्टर्स ...

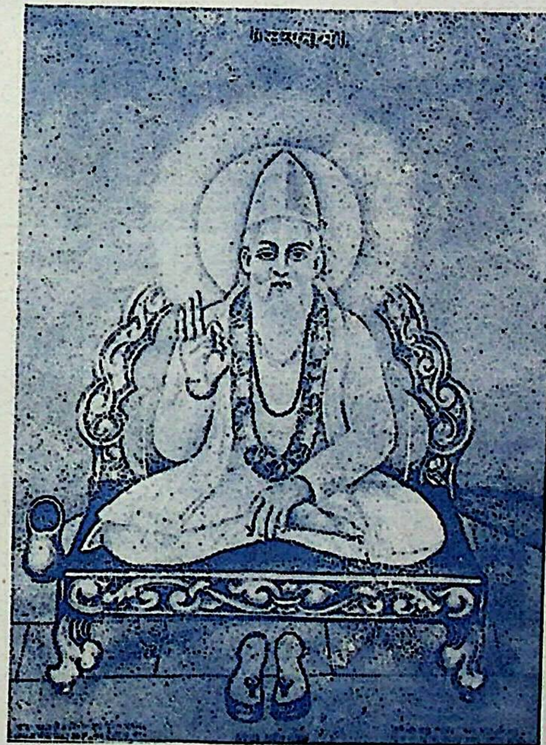



卐 सत् सत् सोऽहं गुरु 卐 सोऽहं हंस सद्गुरु शरणम् 卐 ॐ श्रीराम सत्यराम सोऽहं गुरु राम 卐

# श्री कबीर-शान्तिसंदेश

मासिक पत्रिका

वर्ष ६ अंक १२



मोको कहाँ ढूंढ़े बंदे मैं तो तेरे पास में।

सद्गुरु कबीर

श्री कबीर शान्ति सन्देश के आद्य उद्भावक और श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था के आद्य संस्थापक :—महन्त श्री शांतिदास जी गुरु श्री १०८ श्री पुरुषोत्तमदास जी महाराज साहब, श्री कबीराश्रम, जामनगर [सौराष्ट्र]

संवत् २०४० | कबीराब्द ५८३ | दिसम्बर १९८३

कहता हूं कहि जातहूं, कहूं बजाये ढोल। स्वासा खाली जात है, तीन लोक का मोल ॥




मूल्य : वार्षिक १५) पन्द्रह रुपये आजीवन २५१) दो सौ इक्यावन विदेश में १८६) वार्षिक

एक प्रति का मूल्य १)५० मात्र


## आवश्यक सूचना

श्री कबीरशान्तिसन्देश के वर्ष ६ के जो जो अंक जिन पाठकों को न मिले हों, सूचित करने का कष्ट करें। उन्हें वे सभी अंक भेज दिये जायेंगे। इस वर्ष के अंक ७ वें वर्ष के दो मास के अन्तर्गत भेजे जा सकते हैं।

### श्री कबीर शान्ति संदेश के उद्देश्य

१—विवादों से दूर रहकर सत् का प्रचार एवं प्रसार।

२—श्री कबीर साहब की वाणी एवं उनके उपदेशों की ओर ले चलने का सत्प्रयत्न।

३—प्रेम, दया, सद्भावना, सेवा, एकता, परोपकार एवं सत् चिंतन में प्रवर्तन।


प्रकाशक

श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था

सी. २६/१ सन्त कबीर रोड

वाराणसी – २२१००१

संपादक

श्यामदास शास्त्री




卐 सत् सत् सोऽहं गुरु 卐 सोऽहं हंसः सद्गुरु शरणम् 卐 ॐ श्री राम सत्यराम सोहं गु॰ राम 卐

# श्री कबीर-शान्तिसंदेश

वर्ष ६ ] दिसम्बर १९८३ कबीराब्द ५८४ [ अंक १२

## गुरु की आवश्यकता

सौदा कर सोई जाने, कायागढ़ खूब बजार ॥ टे० ॥

या काया गढ़ में हाट लगी है, लालच लोभ दलाल ।

या काया गढ़ में हीरा मोती, परखेगा परखनहार ॥

या काया गढ़ में काजी मुलना निशदिन करन पुकार ।

या काया गढ़ में धनी विराजे, तन के आठ पहार ॥

या काया गढ़ में सात समुन्दर, कोई मीठा कोई खार ।

कहै कबीर सुनो भाई साधो, गुरु बिन जग अँधियार ॥

—सद्गुरु कबीर साहब

# संपादकीय

भारतीय दर्शन परमात्मा केन्द्रित है। ब्रह्मज्ञान ही भारतीय संस्कृति और धर्म की मूल प्रतिष्ठा है। अध्यात्म भारतीय विचारधारा का मेरुदंड है। पुरुषार्थ चतुष्टय का साधक परमात्मा को पाने की उत्कट इच्छा रखता है। ब्रह्मतत्त्व के साक्षात्कार में ही वह सर्वसुख की प्राप्ति मानता है।

शास्त्रों ने परमात्मा को शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव, सत्-चित्-आनंद नित्य, निर्विशेष, निर्गुण सत्ता माना है। पर मानव ज्ञान का मुख्य आधार तो केवल इंद्रियाँ हैं। इंद्रियाँ केवल साकार और सगुण को ही ग्रहण कर सकती हैं। अतः वह सर्वव्यापी, सर्वात्मक, सर्वज्ञ ब्रह्मसत्ता इंद्रिय ग्राह्य आराध्य और आधिभौतिक उपास्य तभी हो सकती है जब साकार हो सगुण हो अनुभूति गम्य हो। आकार भेद से परमात्मा भी अनेक हो जाता है। चेतन आत्मा है तो सब प्राणियों में एक, पर अनेक आकार में होने के कारण अनेक दृष्टिगोचर होता है। मानव, पशु, पक्षी आदि योनियों के आकार भिन्न-भिन्न दिखायी देते हैं पर वास्तव में यह भेद स्थूल है बाह्य है। चेतन तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। वह सम्पूर्ण आत्म निहित है। यह सच है कि विशेषीकरण से उसके विशेषणों में सीमितता आ जाती है. निश्चयीकरण से अभावात्मकता उत्पन्न हो जाती है पर बुद्धिगम्य और अनुभूति गम्य बनाने के लिए हमें अनिवार्यतः उस विश्वातीत को सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता बनाना पड़ता है, उस नित्य, अद्वितीय निर्लेप को अपना आराध्य बनाने के लिये भाग्य विधाता, कृपालु एवं कल्याणकारी सृष्टि-शासक ईश्वर का स्वरूप देना पड़ता है।

सद्गुरु कबीर साहेब ने इसीलिए कहा है—

एक कहौं तो है नहीं दोय कहौं तो गारि।
हैं जैसा तैसा रहे, कहै कबीर बिचारि॥
भारी कहूं तो बहु डरूं हलका कहूं तो झीठ।
मैं क्या जानूं पीव को नैना कछू न दीठ॥

रुचि, प्रकृति, प्रवृति एवं परम्परा के अनुसार हम ईश्वर की भिन्न-भिन्न रूपों में कल्पना करते हैं। उपासना में निर्विशेष ब्रह्म ही सविशेष ईश्वर बन जाता है। दर्शन का निरपेक्ष ब्रह्म ही भक्त का आराध्य ईश्वर बन जाता है।

ब्रह्मांड की नियामक सत्ता है ब्रह्म और पिण्डाण्ड की नियामक सत्ता है आत्मा। दोनों में सर्वतो भावेन एकता है। पर इस एकता का बोध सबको नहीं हो पाता। जिसको इस संप्रत्यय का सम्यक् सम्बोध हो जाता है उसी को पंडित की संज्ञा दी जाती है। केवल पंडित की बुद्धि ही सद्-असद् का निर्णय कर सकती है। पंडित का विवेक ही स्थूल और सूक्ष्म का विवेचन कर पाता है। ब्रह्म को पहचानने का अर्थ है स्वयं को पहचानना अपने से साक्षात्कार करना—'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः'। शुद्ध हृदय ही आत्म साक्षात्कार कर सकता है। सद्गुरु ने इसी सत्य को सुझाया है "खसम ठाढ़ ढिग नाही सूझ" ।

यह जगत् ब्रह्म का ही प्रसार है। वह विश्वातीत भी है और विश्वमय भी। पर चेतन के नित्य होते हुए भी संसार अनित्य है, उसके अपरिवर्तनशील होते हुए भी यह प्रतिपल परिवर्तनोन्मुख रहता है। इसीलिए इसे माया कृत, कल्पित, मिथ्या एवं भ्रान्ति मानते हैं। "बाजी झूठ बाजीगर साँचा"। ज्ञानी वही है जो इस परिवर्तनशील जगत् के नित्य-अनित्य में विभेद कर सके, सत्य असत्य को विविक्त कर सके, "एक समाना सकल में सकल समाना ताहि" का विशद विवेचन कर सके। ज्ञानी के लिए मिथ्या पदार्थों का अधिष्ठान साक्षात्कार के अनन्तर बाध हो जाता हैं पर मूढ़ इस जगत् के मनोहर रूप पर मुग्ध हो जाता है और इसे ही सब कुछ मान बैठता है।

'माया मोह मोहित कीन्हा, ताते ज्ञान रतन हर लीन्हा' माया ज्ञान रतन छीनकर अन्धा बना देती है। पर ज्ञानी की सूक्ष्म दृष्टि सूक्ष्म-भेदी होती है, पारदर्शी होती है, माया के पर्दे के आर पार भी देख सकती है। ऐसी दृष्टि बहिर्मुखी नहीं अन्तर्मुखी होती है। बहिर्मुखी चित्तवृत्ति केवल बाह्य संसार में ही उलझी रह जाती है। उसके लिए

उस परमात्म तत्त्व को प्राप्त करना कठिन ही नहीं असंभव है। सद्गुरु ने बार-बार चेतावनी दी है—"मन मति ढिग फेलावहु" और राह भी दिखायी है—"दिल महु खोज दिलहि मा खोजो"। मृग कस्तूरी की खोज में दर-दर दौड़ता फिरता है; कभी अपनी ओर देखता भी नहीं। जब बहेलिया उसका वध करके उसी की नाभि से कस्तूरी निकालता हैं तब उसे ज्ञात होता है कि वह बेकार भटकता रहा कस्तूरी तो उसके पास ही रही। संसारी जीव तो मृग से भी गया गुजरा होता हे, उसे तो मृत्यु काल में भी यह ज्ञान नहीं हो पाता कि वह स्वयं ही सत्यस्वरूप है, आनन्द स्वरूप है, सत्य पुरुष हैं।

यह जगत केवल अनुभूति पर अवलम्बित हैं। इसी सत्य का अनुभव ज्ञानी की ज्ञान-साधना है। संसार दशा में जीव और ब्रह्म में भेद भले ही दीखे पर मुक्तावस्था में दोनों में अभेद है। इसी दृष्टि को प्रतिष्ठित करना ज्ञान विधान है। ब्रह्मविद् स्वयं ब्रह्म होता है यही ज्ञान की परिणति है। पर ज्ञान-साधना क्रम में यह चरण कोरा तर्क से नहीं आ पाता। दर्शन की प्रकाशकिरण केवल मार्ग की सूचना भर दे पाती है। तर्क, तत्त्वमीमांसा और प्रमाण शास्त्र से प्राप्त ज्ञान हमारे अज्ञान को तब तक नहीं मिटा सकता जब तक हम सत्य-ज्ञान को आत्मसात् न कर लें, ज्ञान को आचरण में न उतार लें, ज्ञानवत् न हो जाँय। निरंतर चिन्तन-मनन और अभ्यास इसके आवश्यक और अनिवार्य कारक हैं। केवल बुद्धि से परम सत्ता के अस्तित्व को समझने बूझने निकले तो पकड़ में कुछ भी नहीं आएगा। समझने का अर्थ होता है जीवन में उतारना बुझने का अर्थ होता है अनुभव में लाना, जानने का अर्थ होता हैं प्राणों के पोर-पोर में प्रवेश कराना।

हमारे जीवन का सब कुछ है हमारी आत्मा में ही विश्राम भी, आनन्द भी, ज्ञान भी। पर हम हैं जो सब कुछ बाहर ही खोजा करते हैं। सुख भी बाहर से पाना चाहते हैं, ज्ञान भी बाहर से ही बटोरते हैं आनन्द भी किसी के देने पर ही पाते हैं। जैसे अपने भीतर कुछ है ही नहीं। हम कभी भी नहीं सोचते कि दूसरे कहाँ से लाकर हमें देंगे वस्तुतः इस प्रयास में हम सब एक दूसरे को धोखा देते रहते हैं। जिसे हम सुख समझते हैं, वह है केवल सुखाभास, जिसे ज्ञान मानते हैं वह है सिर्फ सूचनाओं का संकलन। ज्ञान भीतर से आता है। आनन्द अपने में से ही मिलता है। बाहर केवल आभास होता है वास्तविकता अन्दर होती है। बाहर केवल दुःख है भीतर सुख है।

यदि वास्तविक आनन्द पाना है, यदि सच्चिदानन्द स्वरूप को पाना है तो चित्त को ठहराना होगा, वृत्तियों को रोकना होगा, आसक्ति को मिटाना होगा, प्रीति-अप्रीति के बीच तटस्थ रहना होगा, पक्ष-विपक्ष में अकंप रहना होगा। चेतना स्थिर हुई कि परमात्मा से सम्बन्ध जुड़ा। □

---

# मुक्ताकण

शंभुनाथ राय, काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी

## सबद ( २३ )

अवधू कुदरति को गति न्यारी ।
रंक निवाजि करे वे राजा, भूपति करे भिखारी ।१।
याते लौंगहि फर नहि लागे, चंदन फूल न फूला ।
मच्छ सिकारी रमे जंगल महं, सिंघ समुद्रहिं झूला ।२।
रेंडा-रूष भये मलयागिरि, चहुं दिसि फूटी वासा ।।
तीनि-लोक ब्रह्माण्ड षंड महँ, देषै अंध तमासा ।।३।।
पंगा मेर सुमेर उलंघे, त्रिभुवन मुक्ता डाले ।
गूंगा ग्यान विग्यान प्रकासे, अनहद बानी बोले ।।४।।
आकासहि बाँधि पताल पठावे, सेस सरग पर राजे ।
कहहिं कबीर राम हैं राजा, जो किछु करें सो छाजे ।५।

चूर्णिका :—अवधू = अवधूत योगी । कुदरति = प्रकृति, ईश्वर की माया । निवाजि = रक्षा करके, पोषण करके, अनुग्रह करके । रेंडा-रूष = एरंड वृक्ष । मलयागिरि = श्वेत चदन । पंगा = पंगु ।

अर्थ :—ऐ अवधूत, (ईश्वर की) कुदरत (माया) की गति अद्‌भुत है । अनुकूल हो जाने पर वह परम दरिद्र को राजा बना देती है और प्रतिकूल हो जाने पर समस्त साधन संपन्न भूपति को भिखारी बना देती है ।। १ ।। यह माया की ही करतूत है कि (सुगंधित फूलोंवाली) लौंग में फल लगते ही नहीं और ( सुगंधित काष्ठ वाला ) चंदन निफूला होता है । मछली का शिकारी जगल में भटक रहा रहा है । अर्थात् अपनी विषयोन्मुख चित्तवृत्ति को नियंत्रित करने के लिए साधक जगत से पराङ्‌मुख होकर वनवास करता है किन्तु उसका मनरूपी सिंह भवसागर में ही थपेड़े खाता रहता है, मन जगत से पराङ्‌मुख होता ही नहीं, वन में मछली और सागर में सिंह जैसी विरोधी स्थितियाँ इसी कुदरत की करतूत है ।। २ ।। ईश्वर की यह माया एरंड जैसे निकृष्ट काष्ठ को मलयगिरि के सुगंधित चंदन के रूप में परिवर्तित कर देती है और उससे चतुर्दिक सुवास फैलने लगती है अर्थात् ईश्वर की महिमा से सामान्य साधक भी सिद्ध पुरुष हो जाता है और उसकी ख्याति चतुर्दिक फैलने लगती है । दृष्टिहीन साधक की अंतर्दृष्टि ऐसी विकसित हो जाती है कि वह समस्त ब्रह्मांड का रहस्य एक जगह बैठे-बैठे जान लेता है ।।३।। जागतिक आकर्षणों के प्रति उदासीन निश्चल भाव वाले पंगु सदृश साधक अपनी साधना के माध्यम से सुमेरु पर्वत पर चढ़ जाते हैं, उनकी सर्वत्र अबाध गति से हो जाती है । गूंगा अर्थात् बोलने में अशक्त पुरुष भी प्रभु की कृपा से ज्ञान विज्ञान का प्रकाश करने लगता है अनहद अर्थात् ब्रह्म विषयक वाणी बोलने लगता है ।। ४ ।। प्रभु की महिमा सब कुछ कर सकती है, आकाश को बाँध कर पाताल में भेज सकती है और पातालवासी शेष को आकाश में स्थापित कर सकती है । कबीर साहब कहते हैं कि राम राजा हैं, समर्थ हैं, जो कुछ करें उन्हें शोभा ही देता है ।। ५ ।।

## अखिल भारतीय कबीर पंथ समाज विराट संत सम्मेलन सद्ज्ञान महायज्ञ

पं० श्री १००८ आचार्य स्वामी महेश साहब अध्यक्ष अखिल भारतीय कबीर पंथ समाज की अध्यक्षता में गद्दी सद्‌गुरु कबीर धर्म स्थान भीमा टोला में फाल्गुन शुक्ल पक्ष तिथि १२।१३।१४ दिन बुधवार, गुरुवार शुक्रवार तारीख १४।३।८४ से १६-३-८४ तक विराट् संत सम्मेलन होगा।

महन्थ श्री अनूपदास जी साहब के द्वारा सद्‌गुरु कबीर मठ रोहड़ा सीवान, ( बिहार ) में चैत्र शुद ७, ८ रविवार, सोमवार तारीख ८, ९ मार्च ८४ को संत सम्मेलन ज्ञान यज्ञ आयोजित है। इसमें देश के कोने-कोने के संत, महन्थ तथा विद्वान् पधारेंगे।

# अनुभूत पथ

डा० स्वामी सदानन्द शास्त्री, श्री कबीर कीर्ति मन्दिर, वाराणसी

प्राणी सुख की इच्छा से और परमानन्द की प्राप्ति के लिए युग-युगान्तर से दौड़ लगा रहा हैं। मार्ग अलग-अलग ( भिन्न-भिन्न ) होते हुए भी सब का लक्ष्य एक ही है—आत्यन्तिक दुःख की निवृत्ति और परम सुख; ( परमानन्द ) शान्ति की उपलब्धि । क्षणिक सुख और दुःख की अनुभूति सभी को होती है। परन्तु ऐसा सुख नहीं मिल पाया जिसने पुनः दुःख न हो। जिसने उस सुख का अनुभव कर लिया वह मौन हो गया। इसे अकथनीय, शब्दातीत, मन, वाणी-इन्द्रियों से परे कह कर गूंगे की मिठाई ही माना है।

इस प्रकार परमानन्द की प्राप्ति एवं स्वात्मानुभव स्वस्वरूप का ज्ञान सतयुग त्रेता में बहुचर्चित विषय रहा। मुण्डक उपनिषद में आया है कि ऋषिगण ने योग द्वारा वेद के मन्त्रों का साक्षात्कार किया। फिर उसे लिपिबद्ध करके या शब्दों द्वारा शिष्यों को बताते रहे। तत्तद् मन्त्रों के तत्तद् ऋषि द्रष्टा कहे जाते हैं। योगाभ्यास द्वारा योगी लोगों में बहुत बड़ी शक्ति आ जाती है। अनेक सिद्धियाँ भी प्राप्त हो जाती हैं। वे त्रिकालदर्शी बन जाते हैं। इच्छा शक्ति ऐसी हो जाती है कि बाद में जो भी संकल्प किया जाय वह पूरा होकर ही रहेगा।

कठोपनिषद् में है कि—जिस समय मन सहित पांच ज्ञानेन्द्रिय चंचलता को छोड़कर स्थिर हो जाती हैं और बुद्धि भी विषयों से विमुख होकर अन्तर्मुखी हो जाती है उसे योग कहते हैं और उसे परम गति परमानन्द की प्राप्ति भी कहा गया है। मन को रोकना कठिन हैं।

योग दर्शन में "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" तस्मात् "बैरभावत्यागः" कहा है। अर्थात् योग द्वारा चित्तवृति का निरोध हो जाता है और उसका फल है उस व्यक्ति के समीप के सम्पूर्ण प्राणी में जगत के बैर भाव का परित्याग। सिंह और हिरण, सर्प और मयूर, चूहा और बिल्ली तक एक दूसरे से विरोध और बैर भाव उस महापुरुष के समीप परित्याग कर देते हैं। प्राचीन काल में ऐसा देखा सुना जाता था। किन्तु आज के नकली योगीराज कहानेवालों में इसका सर्वथा अभाव है। नकलीको न वह सुख न वह शान्ति, न ही सन्तोष, न समता प्राप्त हो सकती है। सच्चे योगी, योगाभ्यासी के लिए गीता के ये वाक्य विचारणीय है—

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योग सेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति॥
गीता ६।२०

"युञ्जन्नेवं सदात्मानं, योगी विगत कल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शनत्यन्तं सुखमश्नुते॥
गीता ६।२८

सतत प्रयत्न द्वारा साधक ( योगी ) जब अपनी चित्तवृत्तियों का निरोध कर सम्पूर्ण लौकिक पदार्थों से उपराम हो जाता है, तब मन परमात्मा के ध्यान में एकाग्र वृति द्वारा तदाकार होकर या आत्म चिन्तन करके उसी में तृप्त हो जाता है। कहा है—

"गोधन गजधन, बाजिधन, और रतनधन खान।
जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूरि समान॥
कबीर साखी

सत्य तो यह है कि लौकिक वस्तु तभी तक प्रिय और सुख मय दीखती है, जब तक सर्वव्यापी अनन्तविभु चेतन आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो पाता, तथा उसकी सत्ता विश्व के चराचर में नहीं दीखती। योग, भक्ति, ज्ञान द्वारा जब आत्मतत्व का प्रत्यक्षीकरण हो गया तब किस से बैर विरोध और द्वैत भाव से द्वेष होगा तब तुच्छ लौकिक नाशवान को अविनाशी सत्य और सुखकारक, परमानन्द प्राप्ति का साधन क्यों समझा जाएगा। अतः वह पदार्थ स्वतः धूलवत् तुच्छ दीखने लगता है। यह गीता का उपदेश, सदगुरु कबीर साहब का संक्षिप्त संकेत है। महायोगी सद्गुरु कबीर साहब के जीवन में कभी भी तुच्छ माया और मायिक वस्तु प्रिय नहीं बन पायी। सदैव ही उन्होंने मायिक पदार्थों को हेय ही समझा और निन्दा ही की। कहूरा

प्रकरण बीजक में संसारिक दुखों का वर्णन प्रसिद्ध है—

"सहज ध्यान रहु सहज ध्यान रहु।
गुरू के बचन समाई हो।"—बी० क० ६।

विचारणीय विषय है कि क्या योग और भोग दोनों एक साथ सम्भव हैं? जैसे कि आज कल के पुस्तकों में संभोग से समाधि आदि की कल्पना पढ़ने को मिलती है। उत्तर स्पष्ट है कि पूर्व चर्चित ग्रन्थों द्वारा ज्ञात होता है कि बड़े-बड़ राजा-महाराजों के यहाँ ऐश्वर्य और भोग पदार्थों की कमी नहीं थी। फिर वे सम्पूर्ण को तुच्छ समझ कर, परित्याग कर परमानन्द की प्राप्ति हेतु वैराग्य स्वीकार करते थे। अतः आज के भोग में समाधि वालों को परमानन्द की प्राप्ति, यौगिक शक्तियों का परिचय देखने को नहीं मिला है। कर्ता स्वयं जानते हैं अतः सद्गुरु की वाणी सही है कि—

"बलिहारी तिहि सन्त के मन को राखे टेक।

यही उपनिषद्,गीता एवं योगशास्त्रों का सार रूप उपदेश है। मनः स्थिति रुके बिना आज तक कोई समाधि, ध्यान और परमानन्द की प्राप्ति न कर पाया न भविष्य में आशा ही है। वह स्थिति चाहे हठयोग द्वारा हो, या राजयोग द्वारा हो भेद इतना दीखता है कि उत्तमाधिकारी का मन स्वभाव से यम नियमादि से युक्त होता है। उसे हठयोग की आवश्यकता ही नहीं है। सीधे राजयोग द्वारा गुरूपदेशमात्र से आगे बढ़ जाता है। मध्यमाधिकारी सांसारिक विषयों से मन को सीधे रोक नहीं सकता है अतः उसके लिए हठयोग अनिवार्य हो जाता है। कहा है—

"प्रसन्नं तु बलात्कारो हठः"

इस परिभाषा के अनुसार चित्तवृत्ति के बलात्कार निरोध को ही हठयोग कहते हैं। इसके अनेक प्रकार और अनेक आसन, मुद्रा-प्रणायाम आदि का वर्णन है। तदनुसार फल भी मिलता है किन्तु सही गुरु द्वारा सही मार्ग न मिलने पर रोगों का होना स्वाभाविक ही है। इन्हीं नकली योगियों पर श्री कबीर की वाणी का प्रहार है। आज के आहार विहार भी हठयोग के अनुकूल नहीं रह गए हैं उतना समय भी साधारण मनुष्य के पास कहाँ है। एकान्त निवासवाली गुफा भी तथा शारीरिक शक्ति भी आज हठयोग के अनुकूल नहीं दीखती। अतः सद्गुरु साहब के बताये संयम द्वारा सहज योग (राजयोग) ही सर्वजन सुलभ हो सकता है। यह तब सम्भव हैं जब उनके अनुसार भोजन आचरण, व्यवहार को शुद्ध कर लिया जाय। श्रुति में भी इसका प्रतिपादन हैं—

"आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।"

छा० उ० ७।२६।२

भोजन शुद्ध होने पर (मन) बुद्धि शुद्ध होती हैं। बुद्धि शुद्धि होने पर लक्ष्य पर (ध्यानयोग में) वृत्ति टिकती हैं। जब वृत्ति स्थिर हो जाती तब अन्दर की ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं। आत्म साक्षात्कार हो जाता हैं। अतः सर्वप्रथम आहार विहार आचरण को ही शुद्ध करना चाहिए, जिस पर ध्यान नहीं दिया जाता और फल चाहते हैं कैसे सम्भव होगा। अतः सद् पुरुषों का उपदेश है कि—

प्रथम अन्न जल संयम राखे।
योग लक्षण श्री सद् गुरु भाखे।।

श्री सद्गुरु कबीर साहब का उपदेश है—

अकुर भखै सो मानवा, रजवीर्य भखै सो श्वान।
जीव बवै सो काल है, सदा नरक प्रमान।।

गुरु नानक देव की वाणी है—

जे रत लागे कापड़ा, जामा होय पलित।
जे नर खावें मांसड़ा, तिन किन निर्मल चित।।

इत्यादि वाक्यों से सिद्ध होता है कि मांस, शराब आदि जितने भी अभक्ष्य, उत्तेजक पदार्थ हैं उनके सेवन करने वालों का अन्तःकरण कभी शुद्ध नहीं होगा चाहे वे जितना भी योगी, ध्यान मार्गी, द्रष्टा आदि कहावें। 'उनका मन स्वतः साक्षी होता है कि उन्हें परम शान्ति, परमानन्द की प्राप्ति नहीं हो सकी। हम विषयासक्त, राग द्वेष युक्त; ऐषणा में आसक्ति, लौकिक वस्तु में भूले हैं।' इससे यह सिद्ध होता है कि जितने स्वार्थी गुरु हैं वे अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु या अपनी जिह्वा के स्वाद के कारण इस प्रकार का मार्ग चला दिये हैं। कहते हैं कि हमारा अनुयायी बन जाओ और सब कुछ अभक्ष्य खाते रहो, सब कुकर्म करते रहो, मुक्ति हो जायेगी। ऐसों के प्रति सद्गुरु कहते कि—

जिह्वा स्वाद के कारणे, कीन्हो बहुत बलाय।।

बीजक रमैनी ४०

(शेष पृष्ठ २४८ पर देखें।)

# श्रीमन्त माधवदेव के बड़गीत

डा० लक्ष्मीशंकर गुप्त, काशी विद्यापीठ, वाराणसी

## ५७—राग श्री गांधार

ध्रु०—रूपे भुले गोवाली, सुंदर वनमाली,
मोहन वनमाली।
कह कैसन स्वामी हे हरि, हरि मिलव हामारि।
पद—ए स्याम तनु हरि हरि ए पीतवसना।
ए रूपे भुलाल मन हे हरि, हरि कोटि मदना।
ए जग भुलाल हासि हरि, हरि वयस नवीना।
कैसन धरवो चित हे हरि, हरि नंदसुत विना।
कमलनयन स्वामी, हे हरि, हरि सुचांद वयना।
कहय माधव गति हे हरि, हरि नंदकु नंदना॥

रूपे···गोवाली=गोपी (श्रीकृष्ण के) रूप में भूल जाती है। भुलाल=भूल गया। हरि···मदना=करोड़ों कामदेव के समान हरि। हासि=(हरि की) हँसी से। बयस नबीना=नवीन वय वाले। चित्त कैसे धारण किया जाएगा। सुचांद वयना=सुंदर चंद्र के समान मुख वाले। कहय···नंदना=माधवदेव कहते हैं कि हे हरि, नंद के नंदन (आनंददाता) हरि, (आप ही मेरी) गति (शरण, आश्रय) हैं।

## ५८—राग आसावरी

ध्रु०—आवत ब्रजेर जोवन रे हरि।
त्रिभुवन मोहन मधुर रूप धरि॥
पद—बिराजित स्याम तनु धेनु-पद-रेनु।
अरुन अधरे पूरे सुमधुर बेनु॥
बनज कुसुम कोरि माला उज्ज्वलित।
सरीरक कांति सब दिस प्रज्ज्वलित॥
भ्रमरे रंजित उरे लोले बनमाला।
रतन भूषन नब सरीर उज्ज्वला॥
चरन-पंकजे मनि-मंजिरकु ध्वनि।
कहय माधव मेरि गति जदुमनि॥

ब्रजेर जीवन=व्रज के प्राण। तनु=देह पर। धेनु-पद-रेनु=गायों के चरणों से उड़ी धूलि। अधरे=अधर पर। पूरे=फूँकते हैं, बजाते हैं। बनज=वन्य। कोरि=कली। भ्रमरे···बनमाला=भ्रमरों से शोभित माला वक्षस्थल पर झूल रही है। रतन···उज्ज्वला=शरीर पर नवीन और उज्ज्वल (प्रकाशमान) रत्नों का भूषण है। मंजिरकु=नूपुर की। गति=शरण, आश्रय।

## ५९—राग आसावरी

ध्रु०—मोहन बावत मुरारी रे कानु।
सुनि ब्रज रमनीक न रहे परान॥
पद—मधुर बासीर स्वरे अमिया झुरय।
पाषान द्रवय मृत तरु मंजरय॥
सचेतन सब थिक अचेतन होइ।
तरंगिनी सब रहु अचलित तोइ॥
सचर अचर हय, अचरे चर-गति।
ऐसन मोहन बेनु पूरे जदुपति॥
त्रिभुवन विमोहन गोविन्दक वेनु।
कहय माधव गति कानु पद-रेनु॥

मुरारी=मुरली। मोहन···कानु=अरे, कन्हैया मोहिनी मुरली बजाते हैं। न······परान=प्राण नहीं रहते, (उन्हें छोड़ कर) वे कन्हैया के पास पहुँच जाते हैं। बासीर······झुरय=वंशी के स्वर में अमृत झरता है। मंजरय=पल्लवित हो जाता है। सचेतन······होइ=सारे चेतन जीव (मुग्ध हो कर) जड़ हो रहे हैं। तरंगिनी···तोइ=सारी नदियाँ स्थिर जल वाली हो गई हैं। उनका जल बह नहीं रहा है। सचर···गति=चल वस्तु अचल हो गई है और अचल में चल का स्वभाव आ गया है। ऐसन=ऐसा। पूरे=फूँकते हैं, बजाते हैं। बिमोहन=मोहित करने वाला।

## ६०—राग कामोद

ध्रु०—आजु गोपीनाथ पेखलो आखि।
जमुना तीरे फिरे धेनु राखि॥
पद—स्याम सरीरे पीतांबर सोहे।
लावन्य कोटि मनमथ मोहे॥

सुचांद बयने ईषत् हासि।
नयन राता-उत्पल पासि ॥
कपोले चंदन तिलक साजे।
सोभन अलकापाँति बिराजे ॥
माथे जलमल मयूर चूड़ा।
कुसुमे रंजय मोहन जूड़ा ॥
कदंब कुसुम श्रवन मूले।
कंबु कंठे मनि कौस्तुभ लुले ॥
गले गुंजा मनि-मुकुता माला।
कनक भूषने भूषित काला ॥
गोपद रेनु विराजित अंगे।
वेनु बजावत अंग त्रिभंगे ॥
सुस्वर उच्चाया पंचम गावे।
बंकिम नयने भ्रुव दुलावे ॥
नवीन पीत धटि कटि माजे।
कनक मेखला किंकिन बाजे ॥
नूपुर वाजे पद अरविंदे।
कहय माधव गति गोविंदे ॥

पेखलो आखि = आँख से ( प्रत्यक्ष ) देखा। राखि = रखाते हुए, रक्षा करते हुए। सरीरे = शरीर पर। बयने = मुख पर। ईषत् हासि = हलकी हँसी। राता⋯पाखि = रक्त कमल की पंखुड़ी ( के समान हैं )। पासि = पंखुड़ी। जलमल = झलमलाता है, चमकता है। मयूर चूड़ा = मोर-पंख की चोटी। जूड़ा = चोटी। मोहन = मोहक। कुसुमे⋯जूड़ा = ( कृष्ण की ) मोह लेने वाली चोटी फूलों से शोभित हो रही है। कंबु कंठे = शंख के समान गले में। लुले = झूल रहा है। काला = कला। कनक⋯काला = सोने के आभूषणों में कला ही भूषित हो गई है ( सोने के आभूषण इतने सुदर हैं कि ऐसा प्रतीत होता है मानो मूर्तिमती कला ही उनमें सुशोभित हो रही है )। उच्चाया = ऊँची तान से। पंचम = पंचम स्वर ( जो वसंतकाल में कोकिल-कंठ से निकलता है )। दुलावे = डुलाते हैं। धटि = धोती। पीतांबर। माजे = माझे = में। पद अरविंदे = कमलवत् चरणों में, पदारविंद में।

---

( अनुभूत पथ पृष्ठ २४६ का शेषांश )

परमार्थ तत्व आत्मज्ञान के इच्छुक, जिज्ञासु, ध्यान मार्ग वाले विचार कर अनुभव करें। इन रज वीर्य सम्बन्धी वस्तुओं को सदैव के लिए त्याग कर राज योग द्वारा चित्त-वृत्ति को रोक कर आवागमन से रहित परमानन्द प्राप्ति के मार्ग का अनुसरण करे। चित्तवृत्ति निरोध के बिना परम शान्ति असम्भव है। यथा—

कबीर लहरि समुद्र की केतिक आवहि जाहिं।
बलिहारी वा साधु की, उलट समावै ताहि ॥
चंचल मन निश्चल करे, फिर फिर नाम लगाय।
तन मन दोऊ बशि करे, ताको कछु नहिं जाय ॥

मन अं० साखी



## संत सम्मेलन ज्ञानयज्ञ

स्थान—अलखुसा कोइलरी ६ नं०, धनबाद, बिहार में फाल्गुन वद १ से ३ तक ता० १७-२-८४ १६-२-८४ तक संत सम्मेलन आयोजित है। इसके संयोजक मुख्या विश्वविजय सिंह, महन्त योगेश्वर साहब, श्री नागोदास जी, मोरीदास जी, विदेशी दास अलकुसा कोइलरी के सभी भक्तगण हैं।

---

भूल-सुधार—अक्तूबर, नवम्बर तथा प्रस्तुत अंक के कवर पृष्ठ ४ पर प्रकाशित आवश्यक सूचना में चौथे लाईन में भूल से १५ दिसम्बर १९८२ छपा है जो १५ दिसम्बर १९८३ होना चाहिए।

# निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म

आचार्य युधिष्ठिर शास्त्री, दर्शनाचार्य, एम. ए.
श्री साधुबेला संस्कृत महाविद्यालय, सकरकन्द गली, वाराणसी

[ गतांक से आगे ]

उदाहरणार्थ—सूर्य का प्रकाश बाहर बहुत है, लेकिन अन्धेरे में रखे घट का भान स्पष्ट नहीं होता है, क्योंकि वह तम से आवृत्त है उस कोठरी में सूर्य का सामान्य ही प्रकाश है विशेष नहीं तो उस घट को प्रकाशित करने के लिए आप एक दर्पण सूर्य के प्रकाश में रखकर सूर्य की किरण दर्पण द्वारा घट पर फेंकिए तो आपको घट का ज्ञान हो जाएगा अर्थात वह प्रकाशित हो जाएगा। ठीक इसी तरह वृत्ति आवरण को भंग करके तत्प्रतिबिम्बित चैतन्य का घटादि विषय होकर ज्ञान होता है अर्थात् वह घट को प्रकाशित करता है। लेकिन ब्रह्म में केवल वृत्तिव्याप्ति है फल व्याप्ति नहीं क्योंकि ब्रह्म स्वयं प्रकाश है उसको प्रकाशित करने के लिए वृत्ति में प्रतिबिम्बित चैतन्य को प्रकाशित करने के लिए आवश्यक नहीं है। जैसे—घट के नीचे एक दीपक जलता है, अंधेरा है तो आपको घट को उस दीपक पर से हटाना पड़ेगा तब दीपक का ज्ञान स्वयं ही हो जाएगा। उस दीपक को प्रकाशित करने के लिए अन्य दीपक की अपेक्षा नहीं है। वह तो स्वय प्रकाश है। ठीक इसी तरह निर्गुण ब्रह्म दीपक स्थानीय मान लेना और घट का आवरण स्थानीय मान लेना है। शंका—ब्रह्म जब इतना बड़ा और व्यापक है तो उसको ढकने के लिए आवरण उससे भी बड़ा होगा उत्तर—आवरण उससे बड़ा नहीं होगा जैसे सूर्य हमें कभी-कभी मेघाच्छन्न होने से दिखता नहीं लेकिन मेघ के ऊपर के लोगों को सूर्य का दर्शन हो जाता है क्योंकि वह मेघों का आवरण परिच्छिन्न है ठीक इसी तरह हमारी ही नजर के ऊपर यह आवरण अवलम्बित है। मेघ हटते ही सूर्य दर्शन तथा आवरण हटते ही ब्रह्म का दर्शन होता है लेकिन वृत्ति को उसकी तरफ लगाना पड़ेगा। यह है वृत्ति व्यापी जो कि आवरण को भंग करती है और ब्रह्म स्वयं प्रकाश दीपक की तरह होने के नाते फल की अपेक्षा नहीं रखता। यही है "वृत्ति हे निवृत्ति झाली" वृत्ति निवृत्ति हो गयी इसका अर्थ है कि ब्रह्म न तो वृत्ति का और न मनादि का विषय है वह तो निर्विषय है एक बार सूर्य दीपावली त्योहार पर खाने के लिए ससुरे के यहाँ चला गया वहाँ लड्डू, जलेबी, श्रीखडपेड़े और मिठाई का सेवन किया। उसका पेट खराब हो गया तो वैद्यराज अश्विनी कुमार के यहाँ गया। अश्विनी कुमार ने कहा—'तुम्हारा रोग बहुत भयंकर है इसके लिए तुम्हें एक पाव अन्धकार दवा के रूप में खाना पड़ेगा। सूर्य ने डर से पूछा भी नहीं कि अन्धकार क्या होता है। सूर्य वहाँ से निकला और मर्त्य लोक के आदमी के पास पहुँचा और कहा—"भाई मुझको एक पाव अन्धेरा चाहिए" दोनों रेल से बंबई की यात्रा करते हुए गुफाओं में अन्धेरा ढूढ़ने निकले लेकिन वहाँ चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश नजर आया। दोनों ढूढ़ते-ढूढ़ते थक गये और वापस लौट आए। कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे सूर्य के पास अन्धेरा ठहर नहीं सकता ठीक उसी तरह निर्गुण ब्रह्म में पहुँचते ही इन्द्रियाँ, विषय माया, जगत कुछ भी नहीं रह पाता। इसलिए उस निर्गुण ब्रह्म को आप इस तरह का या उस तरह का है नहीं कह सकते। गीता का वचन है—

"अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः। १३। ३१

संत ज्ञानेश्वर की वाणी है—

'सकल ना निष्कल'।

वह कला सहित नहीं तथा कला रहित भी नहीं। वह अक्रिय भी नहीं क्रियाशील भी नहीं। कृश भी नहीं स्थूल भी नहीं, क्योंकि वह निर्गुण है। वह साभास भी नहीं, निराभास भी नहीं। प्रकाश भी नहीं, अप्रकाश भी नहीं। अल्प भी नही वृहत् भी नहो, वह अरूप होने के नाते वह रिक्त भी नहीं भरा हुआ भी नहीं। वह किसी से (बिना) रहित भी नहीं और किसी के साथ भी नहीं मूर्त भी नहीं अमूर्त भी नहीं वह आनन्द स्वरूप भी नहीं

निरानन्द भी नहीं, एक भी नहीं और अनेक भी नहीं। न मुक्त है न बद्ध ही है, वह स्वयं सिद्ध है, वह न तो सृष्टि कर्त्ता है न संहार कर्त्ता है क्योंकि वह क्रियातीत है। अर्थात् सभी भौतिक विशेषणों से परे है। संतो का उद्गार है कि—

"तुझे नामगामी न राशी"।

तेरा नाम तो मौनस्वरूप ही है अर्थात् वर्णनाम विषम तू परमात्मा अर्थात् निर्गुण ब्रह्म नहीं। वह वर्णनातीत है। शेष नाग ने इस परमात्मा का वर्णन करने का प्रयत्न किया तो उसकी जिह्वा सहस भागो में बट गयी। यह पौराणिक कथा भी प्रसिद्ध है। वह निर्गुण ब्रह्म स्वानुभवैक गम्य है और किसी भी तरह से वह गम्य नही। केनोपनिषद में भी कहा है "न तत्र चक्षुर्गच्छति; न वाग्गच्छति, न मनो, न विद्या, न बिजानिमो यथे तदनुशिष्यादन्य देवतद्विदिता दधी अविदितादधि" इति शुश्रुमपूर्वेषाम् न स्तद्वयाचचक्षिरे"

उस निर्गुण (ब्रह्म तक) नेत्रेन्द्रिय नहीं जाती, वाक नहीं जाती और नहीं मन ही जाता है, वह इन्द्रियातीत है। अतः किस प्रकार शिष्य को ब्रह्म का उपदेश करना चाहिए यह हम नहीं जानते वह जानने से परे है तथा अविदित से भी परे है अर्थात् इन दोनों से भिन्न है। ऐसा ही हमने पूर्व महापुरुषों से सुना महाऋषियों से सुना।

अब शंका उत्पन्न होती है कि "तत्त्वमसि"[1] यह उपदेश नहीं बन सकता और "अयमात्मा ब्रह्म" "अहं ब्रह्मास्मि"[2] इत्यादि वाक्य भी अनर्थक ही सिद्ध होंगे क्योंकि ब्रह्म तो नित्य बोध स्वरुप है। वह किसी की अपेक्षा नही रखता। जैसे सूर्य स्वयं प्रकाश होने से दूसरे प्रकाश की अपेक्षा नहीं रखता वैसे ही ब्रह्म भी है।

समाधान—ये उक्तियाँ अनर्थक नहीं हो सकतीं क्योंकि ये महावाक्य जीवात्माओं के द्वारा अध्यारोप की निवृत्ति के लिए ही हैं। अर्थात् लोगों ने नित्य आत्म स्वरुप पर शरीरादि धर्म थोप कर जिन अनित्य धर्मों का आरोप किया है। उनकी निवृत्ति के लिए यह उपदेश सार्थक ही है।

"यत्साक्षादपरोक्षं ब्रह्म" इत्यादि।

—बृहदरण्यकोप ३।४।१।

यह उपदेश भी अतात्विक ही है।

अतात्विक उपदेश से अध्यारोप की निवृत्ति कैसे होगी? एक राजा को स्वप्न हुआ कि वह शिकार करने जंगल चला गया। वह एक हरिण को मारने के लिए उसके पीछे पड़ा। सेना पीछे रह गयी। अन्धेरा हो गया। राजा रास्ता भूल गया। जंगल में कोई भी आदमी नहीं। जंगल का रास्ता काटते-काटते उसका घोड़ा मर गया। कपड़े फट गये। भूख खूब लगी। आखिर वह एक गांव में पहुँचा तो उसको किसी ने भी रोटी नहीं दी गालियाँ ही मिलीं आखिर एक धर्मी पुरुष ने उसको जली हुई रोटी दी। राजा सन्तुष्ट हो गया। इतने में उसकी नींद खुल गयी तो देखता है सब पहरेदार, सिपाही, सम्पत्ति आदि मौजूद है और यह कैसा विपरीत स्वप्न दिखाई पड़ा। उस राजा की स्वप्नावस्था की भूख जली हुई रोटी ने ही पूरा कर दी न कि दरबार में पड़े हुए पकवानों ने। कहने का अभिप्राय है कि स्वप्निक भूख को स्वप्निक चीज ही निवृत्त कर सकती है व्यावहारिक नहीं। वैसे ही लोगों के अन्दर का अध्यारोप लौकिक उपदेश से ही निवृत्त हो जाएगा क्योंकि समान सत्ता से साधक बाधक व्यवहार होता है इसलिये शास्त्रोपदेश अनर्थक नहीं। तो उस निगुर्ण ब्रह्म को तत्त्व साक्षात्कार मे इनका अस्तित्व ही नहीं क्योंकि सभी का बाध हो गया वह प्रपञ्च हो नहीं, माया ही नहीं तो शास्त्र तथा शास्त्रोपदेश वहाँ कैसे काम करेंगे। इसलिए निर्गुण ब्रह्म अनुभवैसंवेद्य है न कि वाह्य साधनों से। यह भी बात ठीक है और मन्त्र (श्रुति कहता है वह भी सभी ठीक है। जो इस तत्त्व को मैंने जाना है ऐसा कहता है वह भी वह तत्त्व नहीं जानता क्योंकि वह निर्गुण ब्रह्म सविषय नही। वह निर्गुण ब्रह्म अचल, व्यापक आद्यन्तरहित नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त आनन्दघन है। भगवान् कृष्ण ने कहा है कि—

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयतिमारुतः"।

इस निर्गुण ब्रह्म को न तो जल गीला सकता है। न वायु शोषित कर सकता है। अग्नि जला नही सकती। कोई भी इसका कुछ बिगाड़ नही सकता तथा वह जैसा का तैसा ही है। जैसे—

---

१. छान्दोग्योपनिषद् २।८।७।

२. बृहदारण्यकोप० १।४।१०।

"न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं
भूत्वाभाविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमानेशरीरे॥

इसका जन्म[1] नहीं होता न मृत्यु होती। भगवान् स्वयं कह रहे हैं वह भी निर्गुण ब्रह्म के बारे में। वही निर्गुण ब्रह्म सर्वव्यापी है। संत तुकाराम कहते हैं—

"विट्ठल जली स्थली घरला रिक कोठे नाहि एला"।

यह विट्ठल नाम निर्गुण ब्रह्म के लिये ही पुकारा है। वह निर्गुण ब्रह्म (परमात्मा) जल में थल में समी[2] जगह ठोस भरा हुआ है। कहीं भी उससे रिक्त नहीं। "सर्वं खल्विदंब्रह्म" सभी जगह यह निर्गुण ब्रह्म हो व्याप्त है। श्रुति भी कहती है—

अणोरणीयान् महतो महीयान्[3]।

अर्थात् वह तत्व अणु से भी अणु है और महत से भी महत हैं। इसका अभिप्राय यही हैं कि परमाणु से लेकर महत पदार्थ में भी वह तत्व व्याप्त है। वह ही है निर्गुण ब्रह्म।

शंका—वह निर्गुण ब्रह्म है ही नहीं क्योंकि वह रूपादि से रहित है। हम व्यवहार में अनुभव करते हैं कि जो वस्तु रस रूपादि से युक्त होती है उसका ज्ञान हमें हो जाता है इसलिए वह वस्तु है लेकिन यह निर्गुण ब्रह्म जब कि रूप रसादि से हीन हैं तो उसका ज्ञान भी नहीं तो वह भी नहीं। समाधान—वह निर्गुण ब्रह्म रूप रसादि के सहित है या नहीं, यदि है तो उसका रूप कैसा है अर्थात् वह रूपादि से विहीन रहते हुए भी प्रत्यक्ष अनुभव में आता है कि मेरा मन आज चञ्चल है। जब मन नहीं मानोगे तो उसके अन्दर यह प्रत्यक्ष भी अर्थात् मेरा चित्त चञ्चल है ऐसा प्रत्यय नहीं होना चाहिए और वह प्रत्यक्ष अनुभव गम्य होने से उसका अपलाप नही कर सकते। इसमें आपको हठात् मानना ही पड़ेगा चाहे वह रूप युक्त हो या अणुपरिमाण तो दूसरी और बात है कि सुख दुख जब आपको होते हैं तो क्या वे रूप रस वाले हैं? तो उस सुख का रूप कौन सा? रस कौन सा? इसी प्रकार दुःख की रूप रसादि नहीं कह सकते लेकिन उसका अपलाप भी नहीं कर सकते, प्रत्युत प्रत्यक्ष मानना ही पड़ेगा। वैसे ही अपने मकान को किसने आग लगाई इसका पता न चलने पर भी मकान की आग जब तक बुझाओगे नहीं जलती ही रहेगी। वहाँ तो आप यह कह नहीं सकते कि आग लगाने वाला दिखाई नहीं पड़ा इसलिए आग मेरे मकान में लगी नहीं। अर्थात् वह तुम्हारा नियम नहीं लग सकता कि जो वस्तु दिखती नहीं वह हैं ही नहीं। वैसे ही ब्रह्म चक्षुरादि के द्वारा दिखता नहीं तो इसका तात्पर्य यह नही कि ब्रह्म है ही नहीं। अध्यस्त वस्तु अधिष्ठान के बिना रह नहीं सकती। जैसे—रज्जु में सर्प भासता हैं तो यदि वहाँ रज्जु (रस्सी) नहीं होती तो सर्प को भी नहीं दीखना चाहिए था और वह दीखता हैं उसे सर्प तो कहना होगा। उस समय रज्जु न दीखने पर भी वह रज्जु तो है ही। वैसे ही यह सारा कार्यरूप चित्र विचित्र विलक्षण नाना विध सुख दुःखों से भरा हुआ प्रतिक्षण बदलने वाला अन्तवान् विनाशी प्रपञ्च अध्यस्त है तो उसका अधिष्ठान जो तत्व है वह ही निर्गुण ब्रह्म[3] है यदि उसका अपलाप

---

१. न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वान भूयः।

२. यत्तः पर तरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतंसूत्रे मणिगणाइव। गीता ७।७।
अपिच—"मद्व्यतिरिक्तं सर्वबाधितं"।
—त्रिपादिभूतिमहानारायणोप० ८।१।
पुनरपि—"भातितद्वच्चतिः साक्षाद् विश्वाकारेण केवला"।
—योगशिखोप० ४।४।२।

अस्मिन्नात्मनि सर्वाणि भूतानि सर्वदेवाः सर्वलोकाः।
सर्वप्राणा सर्वएते आत्मनः समर्पिताः। वृहदारण्य २।५।१५।
रसोऽहमप्सु कौन्तेय ! प्रभास्मिशशिसूर्ययोः।
प्रणव· सर्ववेदेपु शब्दः रवे पौरुषं नृपु॥ ७।८।
यदादित्य गतंतेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसियच्चाग्नौतत्तेजो विद्धिमामकम॥ गीता १५।१२।
सर्वेलोका आत्मनि ब्रह्मणय इवौताः प्रोताश्च।
—सुबालोपनिषद् १०

३. यतो वा इमानि भूतानि जायन्तेयेन जातानि जीवन्तियत् प्रयन्त्यभि संविशन्तितद्ब्रह्म"। तैत्तिरीयोप० ३।१।
और भी—"जन्माद्यस्य यतः। ब्र. सू. १।१।२।
जगद्रूप तयाप्येतद् ब्रह्मैव प्रतिभासते"। आत्मोपनिषत्. २।
स एवाऽधस्तात् स उपरिष्टात् स पश्चात् स दक्षिणतः स उत्तरतः एवेदं सर्वम्"। छान्दोग्योपनिषद् ७।२५।१।

करोगे तो अपने आपको सिद्ध नहीं कर सकोगे। क्या तुम हो या नहीं अर्थात् देह भिन्न ऐसा तुम हो या नहीं हो तो बताओ कहाँ हो तुम ? अर्थात् यदि आत्मा मैं हूं ही नहीं ऐसा कहोगे तो व्याघात आएगा। जैसे—

"मम माता बन्ध्या" मेरी माता बन्ध्या है। अरे पागल ? बन्ध्या होती तो तू पैदा ही कैसे होता ? दूसरा दृष्टान्त—कोई व्यक्ति कहे कि "मम मुखे जिह्वा नास्ति" मेरे मुख मे जिह्वा नहीं है ऐसा कहना केवल पागलपन का ही काम है जिसके द्वारा बोलता भी हैं और कहता हैं कि मेरे मुख में जिह्वा नहीं है। बातें करना अच्छा नहीं। आत्मा तो सर्वदैव विद्यमान है उसका न होना कैसे सिद्ध करोगे। और दूसरी बात अगर तुम कहते हो कि आत्मा नहीं है तो मैं पूछता हूँ कि यह वाक्य बोलने वाला है या नहीं ? यदि है तो बताओ कौन है कहाँ है यदि नहीं कहोगे। तो वाक्य हीन ही बोल सकोगे तो इन सब युक्तियो के द्वारा उस तत्व का अपलाप नहीं कर सकते, वही है निर्गुण ब्रह्म। भगवान् श्री कृष्ण गीता में कहते ही हैं कि—

> द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षरएव च।
> क्षरः सर्वाणिभूतानि कूटस्थोऽक्षरउच्यते ।।
> उत्तमःपुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
> यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्ययईश्वरः ।।

इस श्लोक का पर्यवसान उसी तत्व में होता है। संत ज्ञानेश्वर इस—श्लोक पर लिखते समय स्वानुभव को स्पष्ट करते हैं। तब इस तत्व में जीवात्मा जाता है तो उसके द्रष्टा तथा दृश्य दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। बाद में तो केवल स्वानुभव से ही वह तत्त्व जाना जाता है वह तत्त्व ही वास्तविक निर्गुण ब्रह्म है। उस अवस्था का जरा वर्णन तो सुनिए। वह अवस्था तत्व प्रकाश के बिना प्रकाशित है। नियमन कार्य के बिना ही नियंता है। अपने आप ही अपने आपको अवकाश देता है। और नाद ही नाद का श्रवण करता है, स्वाद ही स्वाद को चाखता है और जो आनन्द का भोग आनन्द से ही करता है वह पूर्णता का तो पूरा परिणाम है अर्थात् कहीं भी न्यूनता नहीं। सर्वत्र पूर्ण और व्यापक रूप से है। विश्राम का भी वह तत्व विश्राम है और उस दिशा में सुख को ही सुख मिल गया और आलिंगन किया तेज को तेज मिल गया। शून्य भी महाशून्य में डूब गया। ऐसा यह स्वरूपभूत तत्व है और जैसे अलंकार रूप में सोना न छिपते हुए भी छिपा हुआ मालूम पड़ता है, क्योंकि सोने का स्वरूप अलंकार नहीं अपितु सुवर्ण है वैसे ही विश्वास रूप होने का इसका स्वभाव नहीं तो भी जैसे अलंकारों को सुवर्ण धारण करता है अर्थात् सुवर्ण के बिना अलंकार नहीं बन सकते वैसे ही जगत ( प्रपञ्च ) बनाने का इस तत्व का स्वभाव न होते हुए भी इस विश्व रचना को धारण करता है। जैसे जल, तरङ्ग फेन बुद्बुदों का समुद्र के अलावा अस्तित्व नहीं अर्थात् समुद्र है तभी तो इन सबों का अस्तित्व है वैसे ही इस जगत् की उस तत्व के अलावा सत्ता नहीं। वह है इसलिए इसके अन्दर सत्ता मालूम होती है वैसे ही अपने स्वरूप के संकोच तथा विकास के लिए अपना ही आकार प्रकार कारण जैसा है ( दर्पण में देखते समय ) छोटा दर्पण लेंगे तो थोड़ा मुख प्रतिबिम्ब में दिखाई पड़ेगा बड़ा दर्पण लेंगे तो अधिक मुख प्रतिबिम्ब दर्पण में दिखाई पड़ेगा। लेकिन वास्तविक मुख में कोई अन्तर नहीं होगा। ऐसा ही वह तत्व है। इसके भी आगे चलिए जैसे सूर्य को रात्रि का और दिन का पता नहीं अर्थात् उसने जब रात्रि देखी नहीं तो दिन की कल्पना कैसे आएगी ? वैसे ही विश्व होता है या मरता है इन दोनों ही धर्मों का उसको पता ही नहीं। ये तो हमारी कल्पना है। उसको तो इस बात की खबर तक नहीं। ऐसा जो तत्व श्रुतियों में भी कहा है—

> इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था अर्थेभ्यश्च परंमनः
> मनसस्तु पराबुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः।
> महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः
> पुरुषान्नपरं किञ्चिद् सा काष्ठा सा परागतिः ।।

वह तत्व ही निर्गुण ब्रह्म हैं।

## सगुण ब्रह्म

अब तक निर्गुण ब्रह्म का विचार किया अब सगुण ब्रह्म के ऊपर विचार आरम्भ किया जाता है। प्रथम ही बताया था कि दोनों में भेद नहीं है और सगुण ब्रह्म की स्वतंत्र सत्ता भी नहीं। जैसे ज्ञानियों के लिए निर्गुण ब्रह्म सर्वश्रेष्ठ है वैसे ही भक्तों के लिए सगुण ब्रह्म सर्वश्रेष्ठ

है। भक्तों का तो सगुण ब्रह्म से अपने घर के माता, पिता, बहन, भाई जैसे सम्बन्ध है। इन भक्तों का पिता तो सगुण ब्रह्म ही है। माँ भी, भाई भी, चाचा भी, गुरु भी सब कुछ वही है। सन्त तुकाराम कहते हैं—

कृष्णमाझो माता कृष्ण माझा पिता,
वहिन वन्धु चुलता कृष्णमाझा।
कृष्ण माझा गुरु कृष्ण माझा तारु,
उतरो पैलपार कृष्ण माझा।
कृष्ण माझे जन कृष्ण माझे;
सोईरा सज्जन कृष्ण माझा॥

राम कृष्ण अवतार सभी सगुण ब्रह्म ही है। वह सगुण ब्रह्म ही भक्तो का मन, धन, प्राण, तारनेवाला, मारनेवाला, और जो कुछ है वह है सगुण ब्रह्म।

उस सगुण ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्म में भेद नहीं। जैसे गर्मी के दिन एक जंगली आदमी ने घी ले लिया और उस घी को लेकर वह जंगल में चला गया ठंडी से वह सब जम गया। वह रोने लगा कि मेरे पैसे व्यर्थ चले गये। लेते समय यह बिल्कुल पतला और अच्छा था अब तो बिगड़ गया। वह छाती पीटने लगा और जोर-जोर से चिल्लाने लगा। इतने में एक नागरिक वहाँ पहुँचा तो उसने पिघला कर उसका घी ठीक कर दिया तो वह जंगली आदमी कहने लगा कि मैं तो फिजूल रो बैठा। यह तो वही घी है। इसमें विकृति कुछ भी नहीं अर्थात् जैसे पतले घी में और जमे हुए घी में किञ्चिदपि भेद नहीं उसी तरह सगुण और निर्गुण ब्रह्म में भी कोई भेद नहीं। सन्त लोगों ने गर्जन कर सुनाया है—

सगुण निर्गुण नाही भेद रे।
दो ही टिपरी एक सो नाद॥

जेसे दो डण्डे से खेलते एक ही आवाज आती है या दोनों होठो से एक ही शब्द निकलता है, दोनो कानो से एक समय एक ही शब्द सुनाई पड़ता है, दोनों आँखो से एकही नजर उत्पन्न होती हे, बैलगाड़ी के दो चक्रो से एक ही बैलगाड़ी चलती है, पति, पत्नी दोनो को एक दम्पति कहते हैं, दों अगुलियों के बजाने से एक ही चुटकी निकलती है वैसे ही सगुण और निर्गुण से एक ही ब्रह्म का बोध होता है अर्थात् दोनों में भेद नहीं। भेद न होने पर भी यह व्यवहार कैसे होता है ? उत्तर यह—व्यवहार उपाधि कृत कल्पित है वास्तविक नहीं। एक आदमी ऋषिकेश गया, स्नानादि करके वह गंगा का जल एक शीशी में भर कर अपने गाँव पहुँचा। लोग जमा हो गये उसने वह तीर्थ जल सबको देना प्रारम्भ किया। एक आदमी उसको ऐसा मिला जिसने ऋषिकेश की गंगा देखी थी तो उसने कहा यह तो गंगा जल नहीं हो सकता क्योंकि उसके किनारे पर चीड़ के पेड़ नहीं तथा किनारा नहीं और न वृक्षों की छाया तथा फूल-पत्ती भी नहीं पड़ी है। और भी, ऋषिकेश में स्वर्गधाम के पास नोका चलती है वह भी कहा दिखाई पड़ती है तो उनको उसने उत्तर दिया कि जल तो वही है लेकिन इसमें कुछ धर्म नहीं अर्थात् औपाधिक धर्म नहीं, लेकिन इस जल के अन्दर आप कोई जन्तु छोड़िये अर्थात् कीटाणु ( कीड़ा ) तो वह तुरन्त मर जाएगा। वह धर्म ऋषिकेश के गंगा जल में भी है। इस उक्ति के द्वारा उसने उस व्यक्ति को समझाया तो उसने कीड़ा लाकर उसमें डाला तो कीड़ा तुरन्त मर गया। यह वात दोनों भी जानते थे कि शुद्ध गंगा जल में कीड़े मकोड़े मर जाते हैं तो वह जल सिद्ध हो गया कि गंगाजल ही है। वैसे ही दृष्टान्त में निर्गुण ब्रह्म की व्यापकता, अविकारिता, नित्यता धर्म सगुण में नहीं रहने पर भी सर्वज्ञत्वादि धर्म है ही इसमें सगुण और निर्गुण साम्यता होने से दोनों का बिल्कुल अभेद है। उपाधि धर्म नहीं रहने पर भी स्वरूपभूत धर्म तो है इसलिए सगुण और निर्गुण में कदापि भेद नहीं हो सकता। जो भेद मालूम होता है वह काल्पनिक और मिथ्या है। उसमें सगुण ब्रह्म ही भक्तों का अभीष्ट देवता है।

अब प्रश्न देव भक्तों का है। यह झगड़ा मजे का है। भक्त कहते हैं कि हमने तुझको सगुण ब्रह्म सिद्ध कर दिया। भगवान कहते हैं कि यह बात बिल्कुल झूठ है कि आप लोगों ने मुझे सिद्ध कर दिया बल्कि मैंने ही आप लोगों को सिद्ध कर दिया। भक्तों ने कहा अच्छा ये बताओ अगर हम लोग नहीं होते तो तुझ को भगवान ही कौन पुकारता ? भगवान ने कहा अरे भक्तों अगर मैं नहीं होता तुम भक्त कैसे कहलाते मैं हूं इसलिये तो तुमको भक्त कहते हैं। भक्तों को जरा गुस्सा आया और कहा भगवान देखो तो तेरा स्वरूप निर्गुण, निराकार अरूप इत्यादि है लेकिन जैसे ठंडी

पड़ने से जल जम जाता है। वह घना होता है वैसे ही वह निर्गुण ब्रह्म हमारी भक्ति से जम गया और वही सगुण ब्रह्म पूं है। संत तुकाराम भी इसी आशय से कहते हैं—

"अरुप होते रुपासि आले। ते नान रुपासी पावले रे"

।। १ ।।

अर्थात् जो निर्गुण ब्रह्म अरूप था वही रूप को प्राप्त हो गया। हे भगवान हमने ही आपको सिद्ध किया है और पैदा किया है। इसलिए आप जादा बकवक न करिये। भगवान का दिमाग अधिक गरम हो गया और कहा हे भक्तो अच्छा यह बताओ जो अरूप निर्गुण है ऐसे ब्रह्म की तुमने उपासना करके मुझे सिद्ध किया—यदि कहो निर्गुण की उपासना करके मुझे सिद्ध किया तो आप लोग निर्गुण की उपासना नहीं कर सकते और मुझे पूरा विश्वास है कि आप लोग निर्गुण को बिल्कुल पसन्द नही करते। द्वितीय विकल्प, यदि सगुण की उपासना करके मुझे सिद्ध किया तो फिर वाद ही नहीं क्योंकि मैं ही आप लोगों की उपासना का आलम्बन हो गया। इसके बाद भक्तों ने कहा भगवान आप पहले यह बताओ जब आपने यह सिद्ध कि ा कि हम लोगो ने पहले सगुण की उपासना करके आपकी सिद्धि की तो आप हमारे उपासना करने से पहले सगुण थे। निर्गुणी निर्गुण तो नहीं कह सकता क्योंकि तुम्हारा पक्ष खण्डित हो जाएगा सगुण भी नहीं कह सकता क्योंकि कोई भी कार्य बिना कारण के नही हुआ करता। आप किस कारण से सगुण पहले थे? मानना पड़ेगा कि भक्तों के अदृष्टवश तथा जीवात्माओं के अदृष्टवश सगुण में पहले बन गया तो इससे भक्तों की ही सिद्धि पहले हो चुकी कि आपकी? अब तो भगवान चुप हो गये। भक्त भी चुप हो गये। क्योंकि उनके ऊपर भी वह दोष आया था कि लोग पहले निर्गुण की उपासना नहीं कर सकते ऐसा भगवान ने कहा था। दोनो निरुत्तर हो गये। आखिर दोनों ने निश्चय किया कि बीजाङ्कुर न्याय सेदोनो ही अनादि हैं। पहले बीज या पहले अङ्कुर। अङ्कुर के बिना बीज नहीं बीज के बिना अङ्कुर नहीं तो यहा अणु जैसा अनवस्था दोष नहीं माना जाएगा वैसे ही अपने दोनों में है। दोनों को सन्तोष हो गया। अब प्रश्न यह उठता है कि यह सगुण ब्रह्म क्यों होता है इसका कारण खोजना पड़ेगा तो भगवान् ने स्वयं गीता में कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय चदुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।

अर्थात जब धर्म का नाश होता है और अधर्म की वृद्धि होती हैं तो मैं स्वयं को ही उत्पन्न करता हूँ (उत्पन्न हो जाता हूँ) और भी साधु की रक्षा करना तथा दुष्टों का मर्दन करना इत्यादि कारणों से मैं युग युग में अवतार धारण करता हूँ। प्रश्न—क्या भगवान को हमारे सदृश ही कर्मानुसार जन्म लेना पड़ता है? तथा अविद्यावश जन्म लेना पड़ता है? नहीं भगवान स्वयं गीता में कहते हैं—

प्रकृति ········· विसृजामि पुनः पुनः।

मैं माया को अपने कब्जे मे रखकर बार-बार जन्म लेता हूँ तथा मेरा स्वयं तो कोई अदृष्ट नही लेकिन भक्तों का अदृष्ट तथा दृष्ट देख कर मै यह कार्य करता हूँ। इसका मतलब यह नहीं कि मैं परावलम्बी हूँ। क्योंकि भगवान का लक्षण है—

"उत्पत्ति प्रलयञ्चैव भूतानां गतिमगतिम्।
वेत्ति विद्याम विद्याञ्च सवाच्यो भगवानिति ।।

अर्थ—उत्पति, प्रलय, भूतो की गति तथा अगति, विद्या तथा अविद्या सभी को जो जानता है। वह भगवान है। सन्त ज्ञानेश्वर भी कहते हैं--

"एका यशश्री औदार्य ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य।
हे सहा गुण वयं सती जेय वृणोमि ते भगवन्तु"।

यश, श्री, औदार्य, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य ये छः गुण जिसके अन्दर रहते हैं वह ही सगुण ब्रह्म या भगवान है। वह भगवान कर्तुमकर्तम् अन्यथा कर्तुम् शक्ति से युक्त है। यह सगुण ब्रह्म बड़ा ही चमत्कारी है। उसका वर्णन करना मेरी लेखनी से बाहर है तो भी कुछ प्रयत्न कर रहा हूँ। इसकी लीला अलग ही है—प्रभु यह लीला तेरी अजब निराली हैं। इसके यहाँ तो भक्तों में कोई भेद भाव ही नहीं लेकिन शुद्ध प्रेमी भक्त चाहता है फिर तो कुछ भी आप इससे काम करवा लें यह स्वय काम करता है। वह भी बाबू टाइप काम नही करता। भक्त सावतामाली के यहाँ तो सब्जी की गड्डिया बांधता है

उसकी सब्जी काटने का कार्य करता है और इसके विपरीत गोपियों की बनी बनाई रसोई तथा घी मक्खन चुराता है और खाता है। अपने घर में क्या इसको कमी थी ? राजा का लड़का था लेकिन इसका स्वभाव ही है ऐसा क्या करें ? अच्छा इधर सन्त जामा बाई के यहाँ गोबर लाने के लिए उसके साथ जाता है। तथा उसका गोबर ढूंढ़ ढूंढ़ कर इकट्ठा करता है तो इधर गोपियों के घी के और मक्खन के ढेर नीचे कर देता है और यदि कोई गोपी गोबर इकट्ठा करते हुये मिल जाय तो उसके गोबर को दूर-दूर रख कर के उसको परेशान करता है। इधर जामाबाई के यहाँ सुबह चार बजे आकर आटा पीसने का कार्य करता है। तथा उसके साथ चक्की पर गाना गाता है। इसके विपरीत गोपिकाओं की चक्की पीसने में मदद तो दूर रही चक्की पर खड़ा होकर चक्की बन्द करता है। इधर गोरा कुम्हार के यहाँ घड़े बनाता है और उधर गोपिकाओं के सिर के ऊपर के घड़ों का मक्खन खाकर घड़ों को भी फोड़ देता है। ऐसे इस सगुण ब्रह्म की लीलाएँ विचित्र हैं। सन्त शकनाथ के यहाँ १२ वर्ष तक पानी भरता रहा है। कहीं कहीं तो अपनी पूजा स्वयं आप ही करता रहा है। तो कहीं गणेश जी के मोदको के ऊपर हाथ मारता है, कहीं मिट्टी खाता है तो यशोदा माता ने जरा थप्पड़ लगाई और कहा जरा मुख तो खोलो तो अन्दर मिट्टी तो नहीं बनाई लेकिन जो विश्वरूप अर्जुन को बताया उससे पहले ही वह विश्व रूप यशोदा माता के गुस्से से भरकर आवेश में बताया। इस सगुण ब्रह्म को कभी-कभी अपना भी भान नहीं रहता। महा बिनोद पूर्ण वाक्य है लेकिन एक स्थल ऐसा है जैसे विदुर काका ने इनको निमन्त्रण दिया कि आज आप हमारे यहाँ पधारना। उनकी घर वाली स्नान कर रही थी कि ये महाराज वहाँ पहुँचे। उन्होंने घरवाली को कहा था कि आज अपने यहाँ आनन्दकन्द मुरली मनोहर मेघश्याम आने वाले हैं तो इनके पहुंचते ही उसने उसी अवस्था में उठकर दरवाजा खोल दिया। ये महाराज आसन बिछा हुआ होते भी नीचे बैठ गये एक तो यह भूल दूसरी भूल जब विदुर की घर वाली ने इनको केला देना शुरु किया तब वह केला तो स्वयं खा रही थी और छिलका इनको देती जा रही थी क्योंकि वह देह मान नहीं भूल गयी थी। ये भी छिलके को ऐसा खा रहे थे मानो कोई पकवान और मेवा खा रहे हों। क्योंकि इनको भी अपना मान नहीं इतने में विदुर काका आए। देखा तो सब विपरीत विदुर जी ने केले का गर्भभाग भगवान को देना प्रारम्भ किया तो भगवान बोले अब इसके अन्दर तो कुछ भी आनन्द नहीं। इसका अभिप्राय यह है कि भगवान तो केवल भाव का ही भूखा है फूल पत्तियों का नहीं। इस कथा से यही निष्कर्ष निकला है कि यह भगवान की वास्तविक भूख नहीं है बल्कि भक्तों के प्रति इतना प्रेम है स्वयं भगवान कहते हैं–

मन्मनाभव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु'।

हे अर्जुन, तू मेरा भक्त बनो मुझको नमस्कार करो तथा अपना मन भी मेरे समान करो। अर्थात् भगवान का अभिप्राय यह है कि तू मेरा सम्पूर्ण भक्त बन जा फिर तेरे लिए कोई चिन्ता नहीं। सब कुछ मैं ही चिन्ता करूंगा। तो इस तरह से भक्तों का सम्पूर्ण भार वहन करने वाला जो तत्व है वही सगुण ब्रह्म है। इसकी उपमा किसके साथ दी जाय ऐसा कोई पदार्थ मुझे नजर नहीं आता। यह सगुण ब्रह्म सर्व शक्ति सम्पन्न है। इसको कोई कार्य करने में देर नहीं लगती। जब द्रौपदी का चीर हरण हो रहा था तो उस समय ये भोजन कर रहे थे लेकिन जब उसने पुकारा तो एकदम वहाँ पहुँचे और वस्त्रों का भण्डार खोल दिये। दुशासन थक गया उसका अभिमान चूर हो गया। वैसे ही गजेन्द्र ने जब पुकारा तो वे बैकुण्ठ में बैठे थे लेकिन उसके पुकारते ही आ गए और बाद में गजेन्द्र को भी साथ ले गये। जिस समय पाण्डव वनवास में थे और दुर्वासा साठ हजार शिष्यों के साथ भोजन करने पहुँचे इस महानुभाव ने सब्जी का एक पत्ता खाया और अन्न का ढेर लगा दिये और ऋषियों को तो–स्नान करते समय ही भोजन दिया अर्थात् उनकी क्षुधा नष्ट हो गयी। उन्होंने लौटना कबूल ही नहीं किया इतने में भगवान ने देखा कि ये लोग आयेंगे नहीं तो भीम को भेजा। भीम गदा लेके गया और उसने उनसे चलने को कहा तो सब ऋषियों ने पूछा कि वह नाटकी कृष्ण आया है क्या ? भीम बोले वह तो एक घंटे से आया हुआ है ऋषियों ने यह सुनते ही भागने की

## सद्गुरु कबीर की गादी कबीराश्रम जामनगर में

# ब्रह्मनिरूपण सप्ताह

अनादि सत्य ब्रह्मगुरु सत्येश्वर हमारे सद्गुरुदेव श्री १००८ रामस्वरूपदास जी महाराज साहब गुरु श्री शान्तिदास जी महाराज साहब की असीम कृपा से हमारे सत्यलोकवासी परम पूज्य पिताश्री दरजी डायालाल भाई, बेलजो भाई तथा परम पूज्य मातुश्री जीवीबेन डायाभाई धर्मपरायण भावना को मूर्त रूप देने के लिए और उनके आत्म कल्याणार्थ "श्रीमद् ब्रह्म निरूपण ग्रंथ" का सप्ताह परायण ज्ञानयज्ञ वि० सं० २०४० कार्तिक सुद ९ सोमवार ता० १४-११-८३ से प्रारम्भ हुआ और कार्तिक सुद १५ रविवार ता० २०-११-८३ को पूर्णाहूति हुई। व्यासपीठ पर श्री कबीराश्रम, जामनगर के पूज्यपाद श्री १००८ स्वामी रामस्वरूप दास जी महाराज साहब गुरु श्री शान्तिदास जी महाराज साहब तथा मोर्वी के पूज्य महंत श्री १०८ प्रेमदास जी महाराज साहब गुरु श्री माधव दास महाराज साहब बैठे थे। कथा प्रति दिन प्रातः ९ से १२ बजे तथा सायं ३ से ६ बजे तक होती थी।

श्री ब्रह्मनिरूपण सप्ताह यज्ञ में परम पूज्य श्री १०८ महन्त विजयदास जी गुरु श्री वीरदास जी साहब जुनागढ़ ( लनीवाब ) कृषि मंत्री गुजरात राज्य, परम पूज्य श्री १०८ महन्त सत्यरामदास साहब गुरु श्री सोऽहंदास जी महाराज सगरामपुरा, सूरत, परम पूज्य श्री १०८ महन्त रतनदास जी महाराज साहब गुरु श्री सेवादास जी महाराज साहब, खाड़िया, अहमदावाद तथा अन्य संत तथा महन्त पधारे थे। मानव कल्याणार्थ सभी प्रवचन होते रहे, रात्रि में रेडियो कलाकार परम भजनिक संत श्री रामदास जी गुरु श्री वीरदास जी के सुमधुर श्रुति सुखावह भजन होते रहे।

ता० २१-११-८३ सोमवार को सात्विक ज्ञानयज्ञ चौका आरती हुई।

प्रेषक बाबुलाल डायालाल

[ पृष्ठ २५५ का शेषांश ]

तैयारी की इस कृष्ण के आगे अपनी दाल गलने वाली नहीं है। कहने का अभिप्राय यह है वह सर्वशक्ति सम्पन्न है। सन्दीपनी गुरू जी का लड़का मरा हुआ समुद्र से दिया वह भी जिन्दा है। सुदामा जी को एक मुट्ठी भर चने के लिए स्वर्ण का गाँव दे दिया। इतना है यह शक्तिशाली, वैभवशाली तथा शूरता की तो बात ही क्या। रावण जैसे को राम भगवान ने मारा, बालि को मारा। कंस को कृष्ण ने मारा। हिरणकश्यपु को नृसिंह ने मारा। वामन औतार में तीन पग में तीनों लोक नाप लिए और बली को मारा। तो यह परमात्मा बहुत शक्ति सम्पन्न है वह ही है सगुण ब्रह्म। इसके एक एक अवतार की लीला भी भिन्न २ है। अब जरा राम कृष्ण का ही चरित्र देखे। राम का अवतार चैत्र मास गर्मी के दिन में कृष्ण का बरसात के समय में राम का अवतार दिन में १२ बजे कृष्णवतार रात्रि में १२ बजे। राम अवतार राजदरबार में ठाट बाट के साथ। कृष्णावतार जेलखाने में बड़ी चतुराई के साथ तथा चुपचाप। राम एक वाणी कृष्ण अनेक वाणी। राम ने कभी चोरी नहीं की कृष्ण का पूरा जीवन चोरी करते बीता वह भी पैसे की नहीं मक्खन की। इस तरह हर एक अवतार में विचित्रता है। यही है सगुण ब्रह्म। □

# कबीर साहब की प्रतीक-योजना

□ रामजीत यादव, एम. ए.; एम. फिल्., शोध छात्र
काशी विद्यापीठ, वाराणसी

जब कवि अथवा साधक अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों को साधारण शब्द-राशियों के माध्यम से व्यक्त करने में स्वयं को असमर्थ पाता है, तब उसे लौकिक स्तर की उन वस्तुओं, पदार्थों आदि का सहारा ढूंढ़ना पड़ता है जिनसे जनसामान्य पूर्व परिचित रहता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि जब साधक कवि की अनिर्वचनीय, आध्यात्मिक अनुभूति को व्यक्त करने में शब्द अथवा वाणी अपनी पंगुता के कारण लाचार सी दिखाई पढ़ती है तथा दूसरी ओर साधक कवि के अंतःकरण में विद्यमान भावानुभूति बाहर निकलने के लिए आतुर हो उठती है तो कवि को साम्य के लिए लौकिक जीवन से सम्बद्ध अनुभवों का आलम्बन लेने के लिए बाध्य होना पड़ता है। साहित्य के क्षेत्र में ऐसे प्रयोग को ही प्रतीक योजना के नाम से जाना जाता है।

कबीर साहेब का परं तत्व भी वस्तुतः मन, वाणी से परे है, अगम है, अगोचर है उन्होंने लिखा है—

बरनहु कौन रूप औ रेखा,
दोसर कौन आहि जो देखा।
औ ओंकार आदि नहिं वेदा,
ताकर कहहु कौन कुल भेदा।[1]

इस प्रकार यह तथ्य स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि कबीर साहेब ने प्रतीक योजना क्यों की? अब हम यह देखेंगे कि उनकी प्रतीक योजना किस प्रकार की है।—

कबीर के आध्यात्मिक प्रेम वर्णन, सांसारिक पदार्थों की अनित्यता के निरूपण, माया वर्णन आदि में प्रायः प्रतीकों का विधान किया गया है। ये प्रतीक उनकी जीवनानुभूति तथा चिंतन मनन के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

सर्वप्रथम हम उनके प्रेम-क्षेत्र में प्रयुक्त प्रतीकों का विवेचन करेंगे। कबीर साहेब मूलतः प्रेम के अनन्य, अप्रतिम एवम् अमर गायक हैं। उनके प्रेम के तीन सोपान हैं—अनुराग, विरह और मिलन। सामान्यतया जीव अज्ञानावस्था में रहने के कारण स्वयं को और संसार को ही सर्वस्व समझता है, किन्तु जब उसे वास्तविकता का बोध होता है, तब उसे यह ज्ञात हो जाता है कि सुत, दारा, भ्राता, भगिनी आदि से परे भी एक असीम अखण्ड सत्ता है। आत्मा का वास्तविक सम्बन्ध उसी परम सत्ता से ही स्थापनीय है। इसके परिणामस्वरूप शनैः शनैः उसके प्रति अनुराग जागृत होने लगता है। यही नहीं, अंश को अंशी से मिलने के लिए प्रतिक्षण व्यग्रता, आतुरता एवं व्याकुलता सताना प्रारम्भ कर देती है। इसी स्थिति को ही विरह कहते हैं। विरह का तात्पर्य है—'विशेषेण राहित्यानुभूतिः अभावानुभूतिः इति" अर्थात् विशेष रूप से रहित होने की अनुभूति। कबीर साहेब ने इस विरह-व्यग्रता का वर्णन दाम्पत्य प्रेम के प्रतीक द्वारा किया है, क्योंकि सांसारिक सम्बन्धों में पति-पत्नी का प्रेम ही प्रगाढ़तम होता है, इस प्रेम में विद्यमान अद्वैत की स्थिति अन्यत्र अलभ्य है।

इसकी अभिव्यक्ति हेतु कबीर साहेब ने अत्यंत व्यापक क्षेत्र से प्रतीकों का चयन किया है। ये प्रतीक ही कबीर की गहन अनुभूति के परिचायक हैं। उन्होंने विरहणी आत्मा की अभिलाषा, संदेश चिंता उद्वेग, प्रलाप आदि के जो मनोरम चित्र उपस्थित किए हैं वे अत्यन्त मार्मिक हैं। उदाहरणार्थ—उनकी आत्मा रूपी प्रिया अपने प्रियतम से मिलने के लिए अभिसार कर रही है। इसी बीच आकाश मेघसंकुल हो जाता है, अरण्य में उसकी दूती स्वयं मार्ग भूल जाती है। वर्षा से अपनी सुरक्षा को दृष्टि में रख कर प्रिया ने अपने सिर पर चौपर्ता कंबल डाल रखा है। जैसे जैसे वृष्टि की बूंदों से कम्बल भींग रहा है, भारी होता जा रहा है और बेचारी प्रिया अपने प्रिय से मिलने में विफल हो जाती है—

१. कबीर वाङ्मय, रमैनी, ६।

उनई बदरिया परिगो संझा,
अगुआ भूले बनखंड मंझा।
पिया अनते धनि अनते बहई;
चौपरि कामरि माथे गहई।
फुलवा भार न सहि सके, कहे सखिन ते रोय।
ज्यों-ज्यों भीजे कामरी, त्यों-त्यों भारी होय॥
(क० वा०, रमैनी—१५)

उक्त पंक्तियों में बदरिया, संझा, अगुआ, वनखण्ड, चौपारि कामरि, सखिन, आदि क्रमशः अज्ञान एवं मोह की श्याम घटा, जीवन का अंतिम समय उपदेशक (गुरुआ लोग), वेद पुराण एवं मतमतांतरों का उलझन, बाल किशोर, युवा, और वृद्धावस्था में किए गए विविध कृत्या-कृत्य, अन्य जीवों आदि के प्रतीक हैं। इसके अतिरिक्त धनि और पिया क्रमशः प्रिया और प्रियतम अर्थात् आत्मा एवं परमात्मा के प्रतीक हैं। इन प्रतीकों के माध्यम से जो बिम्ब कबीर साहेब ने उभारा है, वह वास्तव में हृदय-स्पर्शी है।

इसी प्रकार एक पद में दाम्पत्य-प्रेम के प्रतीक द्वारा जीवात्मा की कातरतापूर्ण पुकार का जो चित्र खींचा गया है उसका भावलालित्य भला किस सहृदय को आकृष्ट किए बिना रह सकता है ?

बालम आउ हमारे गेह रे।
तुम्ह बिनु दुखिया देह रे।
× × ×
एकमेव ह्वै सेज न सोवे तब लगि कैसा नेह रे।
× × ×
ज्यों कामी को कामिनि प्यारी,
ज्यों प्यासे को नीर रे।
(डा० पारस नाथ तिवारी, क० ग्रं० पद १३)

वेदना की उत्कृष्टता, अनन्यता एवम् अतिशयता इत्यादि के लिए क्रौंच चक्रवाक, पपीहा आदि काव्य-जगत में विशेष ख्यातिलब्ध रहे हैं। कबीर साहेब इन्हीं प्रतीकों के माध्यम से आत्मा की व्यग्रता का चित्र खींचते हुए कहते हैं:—

अंबर कुंजा कुरलिया गरजि भरे सब ताल।
जिनते गोबिंद बीछुरे तिनको कौन हवाल॥ २॥
चकई बिछुरी रैनि की, आइ मिली परभाति।
जे जन बिछुरे राम सों ते दिन मिले न राति॥ ३॥
(क० वा०, विरह कौ अंग)

लौकिक प्रम में विरह के प्रायः तीन कारण बताए गए हैं, पूर्वानुराग, मान और प्रवास। इनमें प्रवासजन्य विरह का वर्णन सबसे अधिक मिलता है। कबीर साहब ने भी विरहिनी आत्मा के लिए प्रोषित पतिका नायिका का प्रतीक चुना है। आत्मा रूपी विरहिणी संसार रूपी पथ पर खड़ी होकर प्रत्येक साधक एवं संत रूपी पथिक से प्रियतम राम का संदेश पूछने के लिए व्यग्र है :—

बिरहिन ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझे धाइ।
एक सबद कहि पीव का, कबरे मिलेंगे आइ॥[1]

यही नहीं :

अँखियन तौ झाई परी, पंथ निहारि-निहारि।
जिभ्या में छाला परा, राम, पुकारि-पुकारि॥[2]

कहीं-कहीं हम देखते हैं कि कबीर साहेब ने अनेक भावों का संश्लिष्ट रूप प्रतीकों के माध्यम से इस प्रकार हमारे समक्ष प्रस्तुत कर दिया है, जैसे अनेक विकसित फूलों वाली बहुरंगी क्यारी। इसे हम 'प्रतीक गुंफन' भी कह सकते हैं। उदाहरणार्थ निम्नलिखित[3] पंक्तियाँ प्रस्तुत है।

रैनि गई मत दिन भी जाइ।
भँवर उड़े बग बैठे आइ॥ टेक॥
थर हर कंपं बाला जीव।
ना जानौं का करिहैं पीव॥ १॥
काँचे करवे रहै पानी।
हंस उड़ा काया कुम्हलानी॥ २॥
काग उड़ावत भुजा पिरानी॥
कहै कबीर कहु कथा सिरानी॥ ३॥

उक्त पंक्तियों में रैनि युवावस्था का दिन अनुभव की प्रौढ़ता का, भँवर काले बालों का, बक पके हुए सफेद

१. क० ग्रं०, ५    २. वही, पद ७०    ३ वही, २२

बालों का तथा हंस जीवात्मा का प्रतीक है। 'थर हर कांपै बाला जीव' में मुग्धा नववधू और 'काग उड़ावत भुजा पिरानी' में प्रोषितपतिका नायिका की व्यंजना है। इन दो प्रतीकों के माध्यम से सद्गुरू कबीर साहेब ने जीव के अंतर्द्वन्द तथा प्रभु मिलन के संकल्प-विकल्प का अच्छा चित्र उपस्थित किया है।

आध्यात्मिक विरह की मर्मभेदिनी व्यंजना के लिए कबीर साहेब ने तीन प्रतीक चुने हैं—सती, शूर और रसायन उनके उदाहरण यहां उद्धत हैं:

सती :

सती पुकारे सलि चढ़ी, सुनु रे मीत मसान।
लोग बटाऊ चलि गए, हम तुम रहे निदान॥ ३३॥
सती बिचारी सत किया, काठों सेज बिछाय।
लेइ सुती पिउ आपन, चहुं दिसि अगिनि लगाइ॥३४॥
सती जरन को नीकसी, चित धरि एक उमेख।
तन मन सौंपा पीव को, अंतर रही न रेख॥ ३७॥
(क० ग्रं० सूरातन को अंग)

यहां यह तथ्य भली भांति स्पष्ट हो जाता है कि जीवात्मा रूपी सती साधना रूपी चिता पर चढ़ कर कहती है—तुम्हारे सभी पथिक साथी साथ छोड़कर चले गए, अंततः तुम और हम रह गए। यह कह कर वह चिता रूपी सेज पर परमात्मा रूपी प्रियतम के साथ सो जाती है। तदुपरांत अपना तन, मन अपने प्रियतम को सौंप देती है, वहीं पर दोनों का पार्थक्य समाप्त हो जाता है।

शूर :

कबीर साहब की दृष्टि में सच्चा आध्यात्मिक शूर वह है जिसने अंतस्थ शत्रुओं-काम संपृक्त मन और काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि सेनानियों को पराजित कर द्वैतभाव को निराश कर दिया है।

कबीर सोई सूरि मन सौं माड़ै जूझ।
पंच पियादे पारि के दूरि करे सब दूज॥३॥
(सुरातन को अंग)

यही नहीं, उन्होंने स्पष्ट करते हुए कहा कि साधना रूपी युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए जीवात्मा रूपी योद्धा को प्रेम के घोड़े पर सवार होकर ज्ञान रूपी तलवार लेकर जन्म-मरण के सिर को काटना पड़ता है।

कबीर घोड़ा प्रेम का, चेतन चढ़ि असवार।
ग्यांन खड्ग गहि काटि सिर भली मचाई मार॥२७॥
(सुरातन को अंग)

रसायन :

आध्यात्मिक प्रेम की अनन्तता के लिए कबीर साहेब ने रसायन को भी प्रतीक रूप में चुना है। प्रभु का प्रेम वह रसायन है जो देहात्म भाव को स्वरूप भाव में परिणित कर देता है। वह पीने में अत्यधिक स्वादिष्ट एवं मधुर होता है। उसका पीना कठिन मात्र इसलिए है कि पिलाने वाला (गुरू) उसके मूल्य के रूप में आपा का विनाश चाहता है। यह प्रेम की मदिरा सामान्य मदिरा से पूर्णतया इसीलिए भिन्न होती है।

राम रसाइन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीवन दुलभ है, मागे सीस कलाल॥

राम रस पीकर मन मस्त हो जाता है। वह उन्मनी अवस्था को प्राप्त हो जाता है और चैतन्य के प्रकाश से तीनो लोक आलोकित हो जाते हैं। यही मिलन अवस्था है:

अवधू मेरा मन मतिवारा।
उनमनि चढ़ा मगन रस पीवै त्रिभुवन भय उजियारा।
(क० ग्रं० पद १६)

दैनिक जीवन से सम्बद्ध प्रतीकों में जुलाहा लोहार बढ़ई, कलवार, महाजन आदि के जीवन तथा व्यवसाय से सम्बन्धित वस्तुओं को उपमान रूप में इस प्रकार आपने प्रस्तुत कर दिया है कि संबद्ध दृश्य साकार हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप भावुक पाठक बड़ी ही सरलतापूर्वक काव्य के मर्म को समझ जाता है। गांव तथा प्रकृति संबन्धी प्रतीकों में रहट, खेत, चिड़िया, चरवाहा, ढेकुली आदि के बिम्ब उभारे गए हैं। यहां सबका उदाहरण देना संभव नहीं है। एक नमूना अवश्य द्रष्टव्य है।

सुरति ढेकुली लेज लौं मन नित ढोलनहार।
कंवल कुंवा में प्रेमरस, पीवै बारम्बार॥१२॥
(लै को अंग)

उनके प्रतीकों के कुछ उदाहरण हम यहां प्रस्तुत कर हैं ज्ञान (दीपक, प्रकाश, हीरा), संसार (हाट), ज्ञानेन्द्रियां (पंच सखी, पंच चोर, पांच नाग, नदियां), शरीर (दीपक). प्राण (बाती), विषयवासना (शलभ), संचित कर्म (झोली), जीवात्मा (पक्षी, मच्छ हंस, सुंदरी; नलिनी), वासनात्मक जीव (मृग) सहस्त्रार (वृक्ष, गगन मण्डल, मानसरोवर, औंधा कुंवां), पिंगला (शिव, सूर्य, जमुना), इड़ा चन्द्र, शक्ति गंगा). आदि।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कबीर साहेब का सम्पूर्ण काव्य प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त है, जिन्हें उन्होंने जीवन के विस्तृत क्षेत्र से चुने हैं।

# नागपुर कबीर पंथानुयायी संत सम्मेलन

दिनांक १६-११-८३ को प्रातः पं० श्री १००८ हजूर उदित नाम साहब के दर्शनार्थ शोभा यात्रा निकाली गयी। सायंकाल श्री माता सुभद्रा देवी के घर सत्संग प्रवचन हुआ तथा पं० १००८ हजूर साहब के कर कमलों से आरती चौका सम्पन्न हुआ।

परम पूज्य प्रातः स्मरणीय कबीर पंथाचार्य पं० श्री हजूर उदित नाम साहब की अध्यक्षता में दिनांक २०-११-८३ को प्रातः ९ बजे सत्संग प्रारम्भ हुआ, माल्यार्पण के पश्चात् महन्त श्री रामराव साहब ने अपने प्रस्ताव भाषण में आज से ४२ वर्ष पूर्व हुए सत्सग सम्मेलन पर प्रकाश डालते हुए बताया कि कबीर साहब को लोग आज जिस रूप में देख रहे हैं उस रूप में उस समय नहीं देखते थे। पं० श्री हजूर प्रकाश मणि नाम साहब तथा महन्तों ने अथक प्रयास से उनकी दृष्टि बदल दी। महन्त श्री भजन दास जी साहब ने सन्तों की महिमा बताते हुए "सो साधु संसार में कमला जल मांही" को सुमधुर कण्ठ से प्रस्तुत किया।

श्री कबीर शान्ति संदेश के सम्पादक श्री श्याम दास जी शास्त्री साहब वेदान्ताचार्य दर्शनाचार्य ने सद्गुरु कबीर के सिद्धान्त पर प्रकाश डालते हुए गुरु तत्व का विस्तृत विवेचन किया। संत श्री सुकृत दास जी साहब ने बताया कि बंधनों से छूटने के लिए एक मात्र उपाय भक्ति है किन्तु भक्ति विवेक पूर्वक करनी चाहिए। महन्त श्री मोहनदास जी साहब ने सद्गुरु कबीर के सत्य सिद्धान्त पर प्रकाश डालते हुए महाभारत के युधिष्ठिर का दृष्टान्त देते हुए कहा कि आज की शिक्षा मत भेद पूर्ण है। आज विद्यालयों में वह शिक्षा नहीं मिल रही है जो समाज उन्नति करे। सद्गुरु कबीर साहब इस संसार में आए और उन्होंने ढाई अक्षर प्रेम का पाठ पढ़ाया।

अध्यक्षीय भाषण में पूज्य पाद श्री हजूर उदित नाम साहब ने ईश्वर के सभी नामों में सत्यनाम को ही सर्वश्रेष्ठ नाम बताया। आपने सत्य की विशद व्याख्या की। वेद के विषय में आपने कहा कि ज्ञान ही वेद है। परमात्मा का स्थान बताते हुए आपने कहा कि परमात्मा अपने अन्दर है किन्तु इन्द्रियाँ वहिर्मुखी हो गयी है इसलिए वह दिखाई नहीं पड़ता।

परिचय भया जो एक ते एकहिं माहिं समाया।
अल्लह राम करीमा केशव हरि हजरत नाम धराया॥

आपने परमात्मा का रूप ही गुरु को बताया और उनमें एक शब्द का अनन्त विचार है। इसका विचार मुनि जन भी नहीं कर सकते। मानव के हृदय में अज्ञान का अंधकार छाया रहता है। जिससे सभी वस्तुओं को वह यथार्थ रूप में नहीं समझ पाता। सद्गुरु कबीर आये और उन्होंने समझाया। सद्गुरु कबीर साहब का उपदेश किसी एक के लिए नहीं उनके सत्य उपदेश में सभी आ जाते हैं। अन्त में आपने कहा कि सद्गुरु के दर्शन संतों ही हो सकते हैं।

श्री कबीर शान्ति सन्देश के सम्पादक श्री श्याम दास जी शास्त्री साहब ने सद्गुरु कबीर जयन्ती पर सार्वजनिक अवकाश का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जो सर्वसम्मति से पास करके सरकार से लागू करने का अनुरोध किया गया।

सायंकाल के सत्संग में महन्त कल्याण दास साहब ने मानव-शरीर प्राप्ति के उद्देश्य को बताया। सुख और दुख की व्याख्या करते हुए संत दर्शन में सुख बताया।

श्री कबीर शान्ति सन्देश के सम्पादक श्याम दास जी शास्त्री साहब ने "जीव मत मारो बापुरा सबके एकै प्रान, हत्या कबहु न छूटहि कोटिन सुनो पुरान" का उद्धरण देते हुए सद्गुरु कबीर के अहिंसावाद की विस्तृत व्याख्या की।

संत श्री सुकृत दास जी ने कहा कि आवरण के हटने से ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं। आपने "घूंघट के पट खोल रे तोहिं पिया मिलेंगे" का उद्धरण

( पृष्ठ २६० से आगे )

दिया। महन्त श्री मोहन दास जी साहब ने सुख को मानव का अभिलषित बताते हुए कहा कि संसार में सुख नहीं सुख की राशि वह परमात्मा है। अन्त में पूज्य पाद पं० श्री हुजूर उदित नाम साहब ने कहा कि मनुष्य शरीर मिलता अवश्य है किन्तु मानवीय बुद्धि सभी को प्राप्त नहीं हो पाती, आपने कहा कि इस संसार को पार करने के लिए मनुष्य शरीर ही उपयुक्त है। अतः सभी को संसार सागर पार करने का उपाय करना चाहिए।

रात्रि में ८ बजे सत्संग प्रारम्भ हुआ। श्री कबीर शान्ति सन्देश के सम्पादक श्यामदास जी शास्त्री साहब ने कहा कि मानव को सर्वप्रथम अपने झगड़े को समाप्त करना चाहिए। ये इन्द्रियाँ और मन ही आपस में अपने २ भोग के लिए झगड़ते हैं। आपने कहा कि सद्गुरु का वहीं प्यारा है जो इसके झगड़े को समाप्त कर दे।

संत श्री सुकृत दास जी ने कहा कि शरीर ही खेत है। इससे जानने वाला ही क्षेत्रज्ञ है सद्गुरु कबीर साहब ने कहा है कि अपने को समझो तभी कल्याण हो सकता है। महन्त स्वामी मोहन दास जी साहब ने "अपन पौ आपहि बिसरो" का उद्धरण देते हुए कहा कि मानव स्वयं बंधन में पड़ा है। किसी ने उसे नहीं बांधा है।

अंत में पूज्यपाद प० श्री हुजूर उदित नाम साहब ने सतयुग, त्रेता, द्वापर आदि चारों युगों का वर्णन करते हुए कलियुग में सद्गुरु कबीर के ज्ञान को उत्कृष्ट बताया और कहा कि सभी को शांति तभी मिल सकती है जब सद्गुरु कबीर का ज्ञान अमल में हो।

दिनांक २१-११-८३ को प्रातः ६ बजे से सत्संग प्रारम्भ हुआ। महन्त रामराव साहब ने "तेहि लागहु साथा" की विस्तृत व्याख्या की। महन्त कल्याण दास जी साहब ने लहरतारा के सम्बन्ध में सरस कविता प्रस्तुत की। श्री कबीर शांति सन्देश के सम्पादक श्री श्यामदास जी शास्त्री साहब ने दान पर विशेष प्रकाश डालते हुए लहरतारा में विशेष योगदान देने के लिए सभी को प्रेरित किया। स्वामी मोहन दास जी साहब ने परमात्मा को सर्वव्यापी बतलाते हुए लहरतारा के निर्माण में योगदान देने को प्रेरित किया।

आचार्य महन्त श्री ज्योतिर्दास जी शास्त्री साहब ने परमात्मा को हृदय में बताते हुए 'जेहि खोजत कल्पो गये……ताते परिगौ दूर" का उद्धरण देते हुए परमात्मा से दूर रहने का कारण बताया। आपने लहरतारा के निर्माण में योगदान देने के लिए कहते हुए प्रथम आचार्य गद्दी कुदुरमाल के समाधि स्थान के जीर्णोद्धार के लिए जनता को प्रेरित किया। अंत में पं० श्री १००८ हुजूर उदित नाम साहब ने लहरतारा के जमीन की प्राप्ति की कठिनाइयों को बताते हुए इसके निर्माण के लिए भरपूर दान देने के लिए कहा। साय ६ बजे से चौका आरती पं० श्री १००८ हुजूर उदित नाम साहब के करकमलों से सम्पन्न हुआ।

नागपुर कबीर पंथानुयायी सत सम्मेलन समिति के अध्यक्ष हल्लू सिंह कार्याध्यक्ष ईश्वर दास तथा हरीचन्द दास सचिव बाजू दास उपाध्यक्ष महंत रामराव साहब तथा हीरा लाल वन्दे सहसचिव रामरावदास, सभासद, श्रीमती सुभद्रा माता शान बाबू, महन्त रामदास आदि के विशेष प्रयास से इसका आयोजन एवं समापन हुआ। स्थानीय महन्त गुरु चरणदास जी साहब ने तन मन धन से पूर्ण योग दान दिया। यह महान कार्य कोषाध्यक्ष कावणे साहब एवं सुभद्रा माता के विशेष परिश्रम से ही सम्पन्न हुआ।

ता० २२-११-८३ को सायं पूज्यपाद बालकृष्ण दास जी साहब के लगाये हुए बगीचे (भक्तसमाज) ने अपने सत्कार रूपी फलों को पं० श्री १००८ हुजूर उदित नाम साहब तथा संत महन्तों को अर्पित किया। पं० श्री हुजूर साहब तथा संतों विद्वानों ने अपने उपदेश रूपी जल से सिंचित किया।

केन्द्रीय ... स्वीकृत संख्या आर० एन० ३३०२३/७७ जिला पं० सं० ७९२/७९

## आवश्यक सूचना

श्री कबीर शान्ति सन्देश के वर्ष ७ का अंक १ से ३ बीजक साखी खण्ड पर आधारित विशेषांक होगा। लेखकों से निवेदन है कि समय को ध्यान में रखते हुए १५ दिसम्बर १९८२ तक तत्सम्बन्धी लेख, कविता आदि भेजने की कृपा करें।

—सम्पादक

श्री कबीर शान्ति सन्देश हिन्दी मासिक पत्र का वार्षिक शुल्क दिसम्बर में समाप्त हो जायगा। अतः आपसे निवेदन है कि वर्ष १९८४ के लिए वार्षिक शुल्क १५ रु० या आजीवन शुल्क २५१ रु० मनिआर्डर द्वारा इसी पृष्ठ पर दिये गये पते पर भेजकर अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करा लें, १९८४ का बीजक साखी खण्ड विशेषांक मार्च के तीसरे सप्ताह में भेजा जायगा।

— श्यामदास शास्त्री

ग्राहक संख्या :

श्री




डाक पञ्जीकृत संख्या : एन० आर० एन० १९६

# श्री कबीर-शान्ती-संदेश

मासिक-पत्रिका

सम्पादक कार्यालय :

श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था

बी० २६/१, कबीर रोड,

वाराणसी-२२१००१

श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी संस्था, वाराणसी के लिए श्यामदास शास्त्री द्वारा संपादित
एवं आर्यावर्त प्रेस, जालपादेवी रोड, वाराणसी द्वारा मुद्रित
आवरण मुद्रक : पवन प्रिन्टर्स, बड़ी पियरी, वाराणसी



